अनुक्रम

1/ इ चिंग 4

2/ दि मिथ ऑफ सिसिफस 8

3/ दि बॉलड् गार्डन ऑफ ट्रूथ 13

4/ हजरत इनायत खान 17

5/ तंत्र-आर्ट: अजित मुखर्जी 21

6/ सिद्धार्थ-(हरमन हेस) 26

7/ मिटिंग्ज़ विद रिमार्केबल मैन-(गुरूजिएफ) 28

8/ थियोलॉजिया मिस्टिका-(डियोनोसियस) 32

9/ दि मैडमैन:(खलील जिब्रान) 36

10/ दि लाइट ऑफ एशिया:(अर्नाल्ड) 39

11/ ब्रह्मसूत्र-(बादनारायण) 44

12/ विमल कीर्ति निर्देश-सूत्र 47

13/ दि प्रॉफेट-(खलिल जिब्रान) 51

14/ ताओ तेह किंग-(लाओत्से) 56

15/ दि तवासिन-(मंसूर) 60

16/ दि सांग ऑफ सांगस्–(सालोमन) 63

17/ दि सॉंग्ज ऑफ मारपा-(तिलोपा) 67

18/ टर्शियम ऑर्गेनम—(डी.पी. ऑस्पेन्सकी) 73

19/ श्री भाष्य-(रामानुज) 77

20/ मैन एंड सुपरमैन -(बर्नार्ड शॉ) 80

21/ दि फीनिक्स-(लॉरन्स) 84

22/ दि डेस्टिनी ऑफ दि माइंड-(ह्रास) 89

23/ मदर-(गोर्की) 91

24/ सायकोएनेलिसिस एंड दि अनकांशस–(लॉरेन्स) 96

25/ लल्लावाख—(लल्ला)..... 99

26/ सरमद :यहूदी संत-(सरमद)..... 103

27/ दीवान-ए-गालिब-(गालिब)..... 108

28/ सायकोसिंथेसिस-(असोजियोली)..... 112

29/ दि हिस्ट्री ऑफ वेस्टर्न फिलॉसॉफी-(रसेल)..... 116

30/ दि विल टु पावर: (नीत्से)..... 122

31/ ब्रदर्स कार्मोझोव-(दोस्तोव्सकी)..... 127

32/ रिसरेक्शन-(टॉलस्टॉय)..... 130

33/ एक आदमी पर्वत जैसा-(हु आंग पो)..... 135

34/ दि गॉस्पल-(थॉमस)..... 139

35/ दि बुक-(ऐलन वॉटस)..... 143

36/ दि फर्स्ट एंड लास्ट फ़्रीडम-(जे कृष्णामूर्ति)..... 147

37/ कमेंटरीज़ ऑन लिविंग-(कृष्ण मूर्ति)..... 150

38/ एट दि फीट ऑफ दि मास्टर-(जे कृष्ण मुर्ति)..... 153

39/ ए न्यू मॉडल ऑफ दि यूनिवर्स-(पी. डी. ऑस्पेन्सकी)..... 155

40/ दि आऊटसाइडर-(विलसन)..... 161

41/ माय ऐक्सपैरिमैंट विद दि टूथ-(गांधी)..... 165

42/ मैन्स पॉसिबल इवोलुशन-(ओस्पेंस्की)..... 169

43/ दि वे ऑफ झेन-(ऐलन वॉटस)..... 173

44/ बालशेम तोव—(हसीद)..... 178

45/ दि सूफीज़-(इदरीस शाह)..... 181

46/ लिसन-लिटल मैन-(विलहम रेक)..... 186

47/ उमर ख्याम की रूबाइयां..... 192

48/ बीइंग एंड टाईम-(मार्टिन हाइडेगर)..... 196

49/ प्रिंसिपिया एथिका-(जी. इ. मूर)..... 199

50/ लस्ट फॉर लाइफ-(विंसेंट वैनगो)..... 203

51/ ट्रैक्टेटस लॉजिको-फिलोसफिकस 210

52/ मुल्ला नसरूद्दीन कौन था 215

53/ दि बुक ऑफ ली तज़ु 219

54/ एनेलेक्टस ऑफ कन्फ्यूशियस 224

55/ एरिस्टोटल्स थियोरी ऑफ पोएट्री एंड फाइन आर्ट 227

56/ अन्ना कैरेनिना : लियो टॉलस्टॉय 231

57/ मिस्टर एकहार्ट-रहस्य सूत्र—(057) 234

58/ लीव्स ऑफ ग्रास: (वॉल्ट विटमैन) 236

59/ सेवन पोर्टलस आफ़ समाधि 238

60/ दि स्प्रिचुअल टीचिंग ऑफ—रमण महर्षि 240

61/ राबिया बसरी के गीत 243

62/ लाइट ऑन का पाथ 246

63/ दी कन्फेशन्स ऑफ सेंट ऑगस्टीन 249

64/ गॉड स्पीक्स-(मेहर बाबा) 253

65/ समयसार-(आचार्य कुन्दकुन्द) 256

66/ लॉग पिलग्रिमेज-(शिवपुरी बाबा) 260

67/ दि सर्मन ऑन दि माउंट 265

1/ इ चिंग

इ चिंग

दि बुक ऑफ चेंजेस-(I Ching: Book of Changes)

(प्राचीन चीन की गहन प्रज्ञा, संस्कृति और दर्शन का सार-निचोड़ है ''इ चिंग' अर्थात दि बुक ऑफ चेंजेस —परिवर्तनों की किताब उसी ऊँचाई से लिखी गई है जिससे उपनिषाद, ब्रह्म सूत्र, धम्म पद, या अन्य आध्यात्मिक ग्रंथ। फर्क इतना ही है कि इसे किसी एक लेखक ने नहीं लिखा है। इस किताब में संग्रहीत ज्ञान सदा से है, जो इन पृष्ठों में केवल प्रगट हुआ है ।

(सूत्र रूप में)

एक और फर्क जो भारतीय और चीनी साहित्य में बहुत स्पष्ट है, वह यह कि चीनी चित्रमय है। ये सूत्र शुरूआत में चित्रों और रेखाओं के ज़रिये अभिव्यक्त हुए, और बाद में शब्द बनकर। रेखाओं के द्वारा बात कहनी चीनी भाषा की विशेषता है। इन रेखांकनों को हैक्साग्राम कहा जाता है। शब्दों में लिखे गए सूत्र इन रेखांकनों की व्याख्या करने की खातिर बनाने पड़े।

इ चिंग एक प्राचीन चीनी विधि है स्वयं के जीवन की स्थितियों को समझाने की। तीन हजार पहले चीन में ताम्र युग, ब्रॉज एज था। उस समय से लेकर आज तक सभी सदियों में यह किताब राजा और प्रजा दोनों के लिए रहनुमा साबित हुई है। लाओत्से की ''ताओ तेह चिंग'' और उससे भी पुरानी ''इ चिंग'' चीनी संस्कृति और चिंतन के दो आधार स्तंब रहे है।

यह किताब कम है, अपने अवचेतन को और वर्तमान परिस्थिति को समझने का साधन अधिक। इसकी प्रकृति कुछ टैरो कार्ड जैसी, ज्योतिष या तिलिस्म जैसी है। भविष्य को जानने का एक उपाय। पहले ''यारो'' नाम के एक पौधे की तीलियां फेंककर नंबर गिने जाते थे। उन नंबरों का मतलब किताब में समझाया गया है। किताब के सिर्फ शब्दों को पढ़कर इसे समझना असंभव है। यह किताब उस जमाने की है जब अरस्तू की तर्क प्रणाली पैदा नहीं हुई थी। बीसवीं सदी के साधारण बुद्धिजीवी के लिए यह या तो बेबूझ रही या बकवास। इसलिए चीन और जापन के अलावा पूरा विश्व ''इ चिंग'' के रहस्य से अंजान रहा।

तर्क और बुद्धि से आविष्ट आधुनिक मनुष्य के लिए ''इ चिंग'' जंतर-मंतर मालूम होती है। पाँसे फेंककर अपना भविष्य जानने का एक उपाय, बस। लेकिन ''इ चिंग'' बहुत गहन है, अथाह समुंदर की भांति। यह उस कोटि की किताब है जिसे ओशो बहुआयामी किताब कहते है। बुद्धि से लिखी गई किताबें एक आयामी होती है। उनमें सीधे सपाट शब्दों के पार कुछ नहीं होता। उनमें ऐसे इशारे छिपे होते है जो हमारे जीवन की समस्याओं को हल करने में करते है।

''इ चिंग'' चीनी मनुष्य का, अस्तित्व को समझने का पहला प्रयास है। लगभग तीन हजार साल पुरानी, या हो सकता है उससे भी पुरानी किताब। उस युग में समय को नापने का दु: साहस कौन करता था? लाओत्से की प्रेरणा स्त्रोत यही किताब है। कन्फूशियस ने विस्तार से इन सूत्रों की व्याख्या कि है। इसलिए उसके साथ इन सूत्रों के रहस्य लोक में नैतिक मापदंड प्रविष्ट हुआ।

मूल चीनी किताब को रिचर्ड विलेहम ने जर्मन में अनुवादित किया। उस अनुवाद को अँगरेजी में लाया कैरी वाइन्स। 1951 में प्रकाशित इस संस्करण की भूमिका कार्ल गुस्ताख जुंग ने। यह भूमिका इसलिए पठनीय है क्योंकि पश्चिम और पूरब की मानसिकता पर प्रखर प्रकाश डालती है।

जुंग ने सीधे ही स्वीकार किया कि चीनी मस्तिष्क जिस तरह की अनुभूति करता है वैसा पाश्चात्य दिमाग सोच भी नहीं सकता। पाश्चात्य दिमाग कार्य कारण के नियम में उलझा हुआ है। इसलिए वहां विज्ञान विकसित हुआ। चीन में कोई विज्ञान पैदा नहीं हो सका क्योंकि चीन प्रज्ञा संयोग में विश्वास रखती है, कार्य कारण में नहीं। उस संयोग के लिए जुंग ने नाम खोजा है: सिंक्रॉनिसिटी चीजें एक सामंजस्य के अनुसार घटती है, उनका कोई कारण नहीं होता।

''इ चिंग'' चीनी जनता की रोजमर्रा की जिंदगी में प्रवेश कर गई है। सड़क के किनारे अपनी छोटी सी मेज लगाये बैठा ज्योतिषी ''इ चिंग'' के सूत्रों के सहारे सितारों का गणित करता है। गली-कूचे में मकानों की सज्जा करने के लिए इ चिंग के सूत्र और रेखांकन कलापूर्ण ढंग से लिखकर टांगे जाते है। जापान के राजनेता आज भी राजनैतिक समस्याओं का हल ढूंढने के लिए ''इ चिंग'' के पन्ने पलटते है।

''इ चिंग'' की शुरूआत चीनी लोगों की संप्रेषण पद्धति से हुई है। चीनी ''हां'' को इंगित करने के लिए— लंबी रेखाओं का उपयोग किया जाता था और ''ना'' टूटी रेखा से कहा जाता था। एक व्याख्या यह भी है कि याँग (पुरूष) और यान (स्त्री)—। फिर धीरे-धीरे इन दो रेखाओं के मेल से आठ तरह के चित्र बने।

इन आकृतियों में वह सभी समाता है जो आकाश में और पृथ्वी पर घटता है। ये आठ चित्र निरंतर बदलते रहते है। और अस्तित्व में सतत हो रही बदलाहट के प्रतीक है। ये रेखाएं छह पंक्तियों में लिखी गई है जिसे हैक्साग्रास कहा जाता है।

जैसा कि सभी पुराने आध्यात्मिक ग्रंथों के साथ हुआ है, ''इ चिंग'' की कई व्याखाएं है। मूल सूत्रों में बहुत कुछ जूड़ गया है। अंत: चीनी परंपराओं में इसके चार लेखक बताये जाते है। जिनमें एक कन्फूशियस भी है। इस किताब में कुछ चौंसठ चित्रों का हैक्साग्रास की व्याख्या की गई है। ये सूत्र लिखने की चीनी शैली अनूठी है।

किताब के दो भाग है। पहले भाग में चौंसठ हैक्साग्रास और सूत्र है और दूसरा भाग यह बताता है कि पहले भाग को किस तरह से पढ़ा जाये। क्योंकि ये सूत्र महज पहेलियाँ है। जो शब्दों से कहा गया है वह बहुत थोड़ा है। जो नहीं कहा गया वह विराट है। यदि हम केवल शब्दों को पढ़ें तो वह ऐसा होगा जैसे सात बक्सों के अंदर रखे हुए हीरे को देखने की कोशिश करें।

''इ चिंग'' या ''दि बुक ऑफ चेंजेस'' कैसे बनी। दूसरा भाग टीका करों की व्याख्याओं से बना है। ये व्याख्याएं भी दो से ढाई हजार साल पुरानी है। उनमें लिखा है:

प्राचीन समय पवित्र ऋषियों ने बुक ऑफ चेंजेस इस प्रकार बनाई:–

उन्होंने देवताओं के प्रकाश को सहायता देने की गरज से यारो नाम के पौधे की तीलियां लीं। अंतरिक्ष के लिए उन्होंने 3 नम्बर दिया और पृथ्वी को 2 नंबर। यहां से उन्होंने बाकी नंबर निर्मित किये।

अंधकार और प्रकाश में होनेवाले परिवर्तनों पर उन्होंने ध्यान किया और उनके अनुसार हैक्साग्राम बनाये।

उन्होंने अपने आपको ताओ और उसकी शक्ति के हिसाब से ढाला, और फिर उसके अनुकूल क्या सही है इसके नियम बनाये। बह्म जगत की जो व्यवस्था है उसका गहरा चिंतन, और स्वयं की प्रकृति के नियमों का गहन अन्वेषण कर उन्होंने भाग्य को समझ लिया।

''इ चिंग'' के हैक्साग्राम का मूल उद्देश्य था, भाग्य के बारे में जानना। दिव्य आत्माएं अपने ज्ञान को सीधे नहीं कहती। उनके लिए कोई माध्यम खोजना जरूरी था जिसके द्वारा वे ज्ञान को प्रगट करतीं। अति मानवीय प्रज्ञा ने शुरू में अभिव्यक्ति के तीन माध्यम चुने है—मनुष्य, पशु-पक्षी, और वनस्पति। इन तीनों के भी तर जीवन एक अलग ही लयबद्धता से धड़कता है।

इन ऋषियों ने वनस्पति को दिव्य शक्ति के संवाहक की तरह चुना। अति मानवीय प्रज्ञा के साथ बातचीत करने के लिए नंबर और उनके प्रतीकों को चुना। हैक्साग्रास की रेखाओं की संरचना संसार की स्थितियों का प्रतीक है।

''यह ऐसी किताब है जिससे तटस्थ नहीं रहा जा सकता। उसका ताओ निरंतर बदल रहा है। बिना किसी विश्राम के सतत गतिमान। छह खाली स्थानों से बहता हुआ।

इसे कैसे पढ़ें:

पहले शब्दों को देखें।

फिर उनके अर्थों पर ध्यान करें।

उसके बाद शाश्वत नियम स्वयं को प्रगट करते है। लेकिन अगर आप सही आदमी नहीं है तो अर्थ आपके सामने प्रगट नहीं होंगे।

चौंसठ सूत्रों में मानव जीवन से संबंधित विषयों का बहुत ही खूबसूरत, सटीक विश्लेषण है। इनमें कुछ दार्शनिक है, कुछ नैतिक और कुछ व्यावहारिक। जैसे, पहले दो सूत्र है अंतरिक्ष और पृथ्वी पर। ये प्रतीक है। सृजन और शक्ति और ग्रहणशील शक्ति के। इसके बाद जो सूत्र है वह रोज की जिंदगी में काम आने वाले है। जैसे प्रतीक्षा, धीरज, शुरूआत, विनम्रता, स्थिरता, मैत्री, संघर्ष, इत्यादि गुण जो प्रत्येक मनुष्य के अवचेतन से जुड़े है। उनकी व्याख्याएं की गई है।

सूत्र शाब्दिक तल पर भी पढ़े जा सकते है। तब वह निर्मल काव्य है। बहुत सुंदर प्रतीकों से बना हुआ काव्य ह्रदय को गहरे छू जाता है।

लेकिन सूत्रों का वास्तविक उपयोग है—मन की दुविधा में, अनिर्णय की स्थिति में, किंकर्तव्यविमूढ़ अवस्था में, जैसे हम किसी ज्ञानी से, पथप्रदर्शक से या गुरु से पूछते है। ''अब क्या करूं?'' वैसे ही आप इन सूत्रों से पूछ सकते है, ओर ये आपको उत्तर देते है। ये उत्तर वस्तुत: हमारी ही अंतरात्मा की आवाज है। चूंकि हम उसे सीधे नहीं सुन सकते इसलिए बहार के तिलिस्मों का सहारा लेना पड़ता है।

''इ चिंग'' का साधारण जिंदगी में उपयोग इस तरह किया जाता है। कोई भी प्रश्न मन में लेकिर आप तीन सिक्कों को हाथ में लें। सिक्के एक ही किस्म के हों, जैसे एक रूपया या दो रूपये। प्रश्न अगर वास्तविक है तो उसकी उर्जा हाथों में उतरेंगे। हाथों में सिक्के हिलाकर जमीन पर फेंकिए जैसे जुए में पाँसे फेंकते है। सिक्के को ''यन'' नाम दें, दूसरें को ''याँग'' याँग के तीन नंबर होते है, यन के दो। यदि तीनों याँग के सिक्के गिरते है तो उनके नौ नंबर बनते है और तीनों यंग के गिरते है तो छह नंबर। इन्हें हेड और टेल भी कहा जा सकता है।

इस प्रकार छह बार सिक्के फेंकने पर एक कागज पर छह लाइनें बनायी जा सकती है जिसे हैक्साग्रास कहते है।

मान लिए यह चित्र बना तो किताब के चौंसठ रेखाचित्रों में से किस नंबर के रेखाचित्र में यह संरचना है इसे ढूंढ निकालें। यह चित्र पांचवें सूत्र का है। जिसका नाम है, प्रतीक्षा। अब इस सूत्र को पढ़ें। इसमे प्रतीक्षा के विभिन्न पहलू दिखायें गये है। साथ ही इस क्षण में आपको क्या करना है इसका सुझाव भी है। यह सुझाव इस तरह है जैसे कोई प्रत्यक्ष आपके साथ बात कर रहा हो।

''अपने मन को शांति से इस क्षण पर केंद्रित करो, जब तक कि संकट के पदचाप सुनाई दे रहे है। जो आनेवाला है उस पर तुम्हारा कोई नियंत्रण नहीं है, तुम्हारा नियंत्रण अगर है तो इस क्षण पर। उसी पर ध्यान केंद्रित करो। लेकिन जो आयेगा उसका सामना करने के लिए तैयार हो जाओ।

अब ये शब्द समय से बंधे नहीं है। किसी भी समय, किसी भी व्यक्ति को ये कहे जा सकते है। अगर इन शब्दों पर अमल किया तो ये शब्द उसके गुरु बन सकते है।

इस समय ''इ चिंग'' इंटरनेट पर अवतरित हुआ है। हर दुकानदार, व्यापारी, व्यवस्थापक, राजनेता या कोई भी जिसके पास अपना कंप्यूटर है, कोई महत्वपूर्ण काम करने से पहले अपने दफ्तर में बैठकर, तीन सिक्के फेंककर ''इ चिंग'' से सलाह ले लेता है। 1960-70 के दशक में, पश्चिम में ''न्यू एज'' और होलिस्टिक, संपूर्ण जीवन के दृष्टिकोण का एक नया आंदोलन छिड़ा, जिसमें ''इ चिंग'' को घर-घर पहुंचा दिया। जब बुद्धि ओ तर्क से जीवन को उलझनों को सुलझाया नहीं जा सकता तब परामानवीय, अंत: प्रज्ञा और ह्रदय के चक्षुओं के द्वारा मन की बेबूझ पहेलियों को हल करने का प्रयास किया जाता है।

''इ चिंग'' जैसे साधन जीवन की गहराई में डुबकी लगाने के द्वार बन सकते है—नहीं, अब कहना होगा, बन सकते है। क्योंकि ओशो इस तरह के जंतर-मंतर को मन के खेल कहा है। जहां तक इन्हें खेल मानकर खेला जाए वहां तक ठीक है। लेकिन बड़ी जल्दी ये सहारा बन जाते है। इनकी लत लगती है। आत्मविश्वास कम होने लगता है। ''इ चिंग'' ''टैरो'' ''ज्योतिष'', भारत में लोकप्रिय ''भृगु संहिता'', जैसी किताबें व्यक्ति को पंगु बना देते है। अंत: ओशो इसके अधीन होने के पक्ष में नहीं है। फिर भी उन्होंने अपनी मनपसंद किताबों में ''इ चिंग'' ''दि बुक आफ चेंजेस'' को सम्मिलित किया।

ओशो

बुक्स आई हैव लव्ड

2/ दि मिथ ऑफ सिसिफस

'दि मिथ ऑफ सिसिफस''

The Myth of Sisyphus-Alberd Camus

मानव जीवन की एक गहरी समस्या, आत्महत्या को कामू ने जिस सौंदर्य बोध के साथ और नाजुकता से प्रगट किया है शायद ही किसी लेखक या दार्शनिक ने किया हो।

इस बार हम जिस किताब का परिचय आपको दे रहे है वह किताब नहीं, एक निबंध मात्र है। यह निबंध प्रसिद्ध अस्तित्ववादी लेखक आल्बेर कामू की पुस्तक ''दि मिथ ऑफ सिसिफस'' में संग्रहीत है। यह किताब कामू ने एब्सर्डिटी, तर्कातीत या जीवन का जो अतर्क्य घटना हे जो सिर्फ मनुष्य के साथ घटती है। पूरी सृष्टि में मनुष्य अकेला प्राणी है जो अपने आपको मारता है। बाकी सारे प्राणी या तो अपने आप मर जाते है या दूसरों को मारते है। निश्चित ही यह घटना एब्सर्ड जो है और इस पर विचारशील लोगों को चिंतन करना चाहिए।

''मिथ ऑफ सिसिफस'' की भूमिका में कामू लिखता है: ''यह स्वाभाविक और आवश्यक है कि हम जीवन के अर्थ पर चिंतन करें। इसलिए आत्महत्या के प्रश्न का सामना करना जरूरी है। हम ईश्वर में विश्वास करें या न करें, आत्महत्या योग्य नहीं है। जीवन एक निमंत्रण है जीने का, सृजन का।''

इस किताब को अपनी मनपसंद किताबों में शामिल करते हुए ओशो केवल सिसिफस की कहानी कहते है।

यह स्पष्ट नहीं है कि वे केवल सिसिफस के निबंध को शामिल करना चाहते है या कामू की पूरी किताब को। जो भी हो, हम एक निबंध के बहाने किताब के रत्न भंडार में प्रवेश कर ही चूके है। तो इसमे छपे हुए कामू के अन्य निबंधों का जायजा लेने से क्यों चूकें। आल्बेर कामू एक उत्कृष्ट लेखक है। वह विचारक है इसलिए उसका लेखन अर्थगर्भित होता है। उसकी लेखन शैली का सौंदर्य उसे विचारों के आभूषण बनाकर पाठकों का मन मोह लेती है।

मानव जीवन की एक गहरी समस्या आत्महत्या को कामू ने जिस सौंदर्य बोध के साथ और नाजुकता से प्रगट किया है शायद ही किसी लेखक या दार्शनिक ने किया हो।

सबसे पहला निबंध है, ''अतर्क्य तर्क, ऐन एब्सर्ड रीज़निंग'' वह कहता है, आत्महत्या एक सामाजिक और कानूनी दुर्घटना बन जाती है। लेकिन आत्महत्या बहुत ही निजी व्यक्तिगत मामला है। आदमी जितनी त्वरा और तीव्रता से जीना चाहता है उतनी ही तीव्रता से मरना चाहता है। यह उसके जीवन के प्रति प्यार का ही एक रूप है। आत्महत्या का ख्याल तो ह्रदय की गहन खामोशी में जन्मता है। जीना मनुष्य की एक आदत बन गई है। इस आदत को तोड़ने के लिए एक ख्याल उसके भीतर आता है आत्म हत्या का। यहीं उसने उठाया हुआ एक सजग, सचेत कदम है। आत्महत्या करने का निर्णय यहीं दर्शाता है कि आपने उस आदत को तोड़ने का निर्णय लिया, क्योंकि जीने के लिए आपके पास कोई ठोस वजह नहीं है। आत्महत्या करने का मतलब यह है कि आपने स्वीकार कर लिया कि जीवन बोझिल हो गया है। या आप उसे समझ नहीं पा रहे है। लेकिन अपने जीवन को समाप्त करना सिर्फ मन का निर्णय नहीं हो सकता। उसमें शरीर भी शामिल है। शरीर से पूँछें तो प्रत्येक शरीर जीना चाहता है। जिंदगी जो कि सतत मौत की और भाग रही है। उसमे शरीर अपनी जड़ें जमाकर जीवन का उत्सव मना रहा है।

दस निबंधों का संग्रह है और ये सभी निबंध एब्सर्डिटी को उजागर करते है। कामू का निबंध पढ़ने के बाद पाठक आत्महत्या और अतर्क्य पर सोचने के लिए विवश हो जाता है। और यहीं उसके विचार है। ये निबंध 1938-40 में लिख गये है। इसलिए तत्कालीन समय दार्शनिक गंभीरता और अस्तित्ववादी चिंतन इनमें भरपूर

प्रतिबिंबित होता है। नीत्से, सार्त्र, शॉपेन हॉर, काफ्का, कामू इन सबके प्रखर बुद्धिवाद का साक्षात होने के बाद पता चलता है कि ईश्वर को क्यों मरना पडा। कामू से सहमत हुए बिना हम नहीं रह सकते कि ईश्वर का होना मानवीय बुद्धि का अपमान है।

किताब की एक झलक–

में सिसिफस को पहाड़ की तलहटी में छोड़ देता हूं। आदमी अपना बोझ फिर खोज लेता है। लेकिन सिसिफस श्रेष्ठ दरजे की निष्ठा सिखाता है जो देवताओं को नकारती है और पत्थरों को प्रतिष्ठा देती है।

देवताओं ने सिसिफस को पहाड़ की चोटी पर एक चट्टान को ले जाने की सज़ा दी थी। उसमें खूबी यह थी कि जब भी वह चट्टान शिखर पर ले जाता, तब वह अपने ही वज़न से नीचे लुढ़क जाती। देवताओं ने सोचा होगा कि किसी कारणवश व्यर्थ और निष्फल परिश्रम से बढ़कर कोई सज़ा नहीं हो सकती।

यदि हम होमर (महान ग्रीक लेखक) में विश्वास करना चाहते है तो सिसिफस मर्त्य मानवों के बीच सबसे समझदार और विवेकशील इंसान था। एक अन्य परंपरा के अनुसार उसे राहजनी का धंधा करने के लिए कहा गया था। मुझे इसमें कोई विरोधाभास नजर नहीं आता। वह पाताल में एक निष्फल मजदूर क्यों हुआ इस पर कई मत हो सकते है। लेकिन देवताओं के हिसाब से उस पर ये इल्जाम था कि वह बड़ा हल्का-फुलका है। वह उनके रहस्य चुराता था। इसोपस की कन्या एजिना को जुपिटर भगाकर ले गया था। उसके पिता को गहरा सदमा लगा और उसने सिसिफस से शिकायत की।

उसने एक शर्त पर यह बात प्रकट करने का वादा किया कि इसोपस कोरित की नगरी को जल स्त्रोत उपलब्ध करवाएगा। उसके लिए उसको सज़ा दी गई। होमर कहता है कि सिसिफस ने मृत्यु को ज़ंजीरों में जकड़ दिया था। जो कि प्लूटो को साम्राज्य था और प्लूटो अपने सुनसान और वीरान साम्राज्य के दृश्य को बरदाश्त नहीं कर सका और उसने युद्ध के देवता को भेज कर मृत्यु देवता को सिसिफस के हाथों से मुक्त करवाया। ऐसा कहा जाता है कि सिसिफस जो कि मौत के करीब था, अपने पत्नी के प्रेम को अनुभव करना चाहता था।

उसने पत्नी को आदेश दिया कि उसकी लाश को सार्वजनिक चौराहे पर फेंक दे। सिसिफस की आँख खुली तब वह पाताल में था। वहां पर जो अनुशासन था वह मनुष्य लोक से इतना भिन्न था कि उससे झुंझला कर सिसिफस ने प्लूटो से इजाजत ली कि वह धरती पर आकर जब उसने सूरज और पानी, पत्थरों की ऊष्मा और समुंदर को अनुभव किया तो वह फिर से अंतहीन अंधकार में जाना नहीं चाहता था। पाताल से आये हुए बुलावे, क्रोध के इशारे, चेतावनी—सब बेकार साबित हुआ। कई साल तक वह समुंदर का किनारा और समुंदर के पानी की चमक और धरती की मुसकानों का आनंद लेता रहा। अब देवताओं को फतवा जरूरी था। बुध (मरक्यूरी) आया और इस उदंड शख्स का कॉलर पकड़कर घसीटता हुआ उसे पुन: पाताल में ले गया, जहां चट्टान उसका इंतजार कर रही थी।

आप समझ ही गये है कि सिसिफस एक एब्सर्ड, अतर्क्य हीरो है। यह सही है—अपनी वासनाओं की वजह से और यातनाऔ की वजह से। देवताओं का तिरस्कार, मृत्यु से द्वेष से और जीवन से लगाव—इन सबकी अमानवीय सज़ा मिली जिसमे उसका पूरा अंतरतम एक निष्फल प्रयास में लगा रहता है।

धरती के प्रेम में जो पागल है उसे अपने प्रेम की यह कीमत चुकानी पड़ती है। पाताल लोक में सिसिफस क्या करता रहा इसके बारे में कोई जानकारी नहीं है। खैर, मिथक बनते ही इसलिए है कि हमारी कल्पनाएं, उनमें प्राण फूंक दें।

जहां तक इस मिथक का संबंध है हम इतना ही देखते है कि एक थका-मांदा शरीर एक चट्टान को लुढ़काते हुए पहाड़ पर ले जा रहा है—हजार बार। चेहरा खिंचा हुआ, गाल चट्टान के करीब तने हुए, कंधे मिट्टी

से सने हुए उस सघनता को ठेलते हुए, पैर जोर लगाते हुए, हाथ फैले हुए—मिट्टी से भरे हुए उन दो हाथों की मानवीय सुरक्षा। उसके प्रदीर्घ प्रयास के अंत में उसके लिए मौजूद है बिना आकाश का अवकाश और बिना गहराई का समय। वहां से सिसिफस उस चट्टान को लुढ़काते हुए खाई में गिरता देखता है, जहां से उसे फिर ऊपर ले आना है। वह घाटी में उतर जाता है।

इस वापसी में, इस अंतराल में मुझे सिसिफस बहुत आकर्षित करता है। जो चेहरा पत्थरों के साथ इतनी घनिष्ठता से काम करता है वह खुद पत्थर ही हो जाता है। मैं उस आदमी को बोझिल और नपे हुए डग भरते हुए, उस यातना तक पहुंचते हुए देखता हूं, जिसका कोई अंत नहीं होगा। वह समय जो सांस के अंतराल की तरह है। उसकी पीड़ा लौट आती है। वह चेतना का समय है। उन क्षणों में जब वह ऊँचाइयों को छोड़कर धीरे-धीरे देवताओं के विश्राम गृह की तरफ बढ़ता है तब वह अपनी तकदीर से श्रेष्ठतर होता है; वह उस चट्टान से अधिक शक्तिशाली होता है।

अगर यह मिथक दुखांत है तो वह इसलिए कि उसका नायक सजग है। अगर हर कदम पर सफलता की आशा उसकी रीढ़ में जागती है तो उसकी यातना कहां तक बचेगी। आज का मजदूर अपने क्षेत्र में जिंदगी भर वहीं-वहीं काम करता रहता है, और उसकी तकदीर उससे तकदीर इससे कम बेतुकी नहीं है। लेकिन वह उन विरल क्षणों में दुखद होती है। जब वह सजग होता है। सिसिफस देवताओं का मजदूर, शक्तिहीन और विद्रोही, अपनी दयनीय हालत का पूरा लेखाजोखा जानता है। शिखर से उतरते समय वह यही सोचता रहता है। जो तरलता उसकी यातना का हिस्सा है, उन क्षणों में विजय का सरताज बनता है। ऐसी कोई किस्मत नहीं है जिसके आसपास तिरस्कार नहीं हो सकता।

अगर नीचे उतरना दुखभरा होता है तो कभी-कभी सुखद भी हो सकता है। मैं फिर कल्पना करता हूं कि सिसिफस अपनी चट्टान के पास लौट आया। और शुरू में वह दुःखी था, लेकिन जब धरती के चित्र स्मृति को जकड़ लेते है, जब सुख की पुकार अत्यधिक प्रबल होती है। तब मनुष्य के ह्रदय में उदासी होती है। यही चट्टान की विजय है, तब मनुष्य के ह्रदय में उदासी होती है—यही चट्टान की विजय है। यही चट्टान है। असीम दुःख को सहना दूभर है। टुकड़े-टुकड़े हुए सत्यों को देखते ही वे नष्ट हो जाते है। इसी तरह ईडीपस प्रारंभ में अपनी किस्मत को स्वीकार कर लेता है। बिना यह जाने की यह क्या है और जैसे ही वह जानता है, उसकी शोकान्तिका शुरू हो जाती है। साथ ही अंधा और हताश, वह जानता है कि उसे और संसार से जोड़ने वाला जो एक सुत्र है वह है, एक स्त्री का हाथ।

अगर एब्सर्ड अतर्क्य को खोजना हो तो सुख पर ग्रंथ लिखे बिना नहीं हो सकता। आखिर विश्व एक ही है। सुख और अतर्क्य एक ही पृथ्वी के पुत्र है, उन्हें अलग नहीं क्या जा सकता। यह कहना गलत होगा कि सुख अतर्क्य की खोज से पैदा होता है।

ऐसा भी होता है कि अतर्क्य का भाव सुख से पैदा होता है। ईडीपस कहता है, ''मैं निष्कर्ष निकालता हूं कि सब कुछ ठीक है।'' और यह वक्तव्य पवित्र है। वह मनुष्य के अनिर्बन्ध और सीमित ब्रह्मांड में गूंजता है। वह लिखता है कि सब कुछ समाप्त नहीं हुआ। इस विश्व के बाहर वह एक देवता को खदेड़ता है जो उसमे एक असंतोष लेकिर आया था। और व्यर्थ की यातना भुगतना चाहता था। वह वाक्य किस्मत को एक मानवीय मामला बनाता है जिसे मनुष्यों के बीच निपटारा करना चाहिए।

सिसिफस की सारी खामोश खुशी इसी में निहित है। उसकी किस्मत उसी का हिस्सा है। उसकी चट्टान भी उसकी है। उसी तरह अतर्क्य मनुष्य जब अपने संत्रास पर चिंतन करता है तब सभी प्रतिमाओं को चुप करा देता है। और विश्व जब अपनी मूल खामोशी को उपलब्ध होता है तब पृथ्वी के असंख्य स्वर बोल उठते है। अवचेतन,

रहस्यम पुकार, सभी चेहरों से निकलते हुए निमंत्रण एक आवश्यक पिछड़ना है और विजय की कीमत है। ऐसा कोई सूरज नहीं है जिसकी छाया न पड़ती हो। और रात को जानना भी जरूरी है। अतर्क्य मनुष्य, ''हां'' कहता है, और उसके प्रयत्न अबाध रहेंगे। यदि व्यक्तिगत किस्मत है, तो फिर कोई उच्चतर किस्मत भी है। या हो भी, तो ऐसी जिसे वह अटल और तिरस्कार योग्य समझता है। बाकी समय के लिए वह स्वयं को अपने दिनों का स्वामी जानता है। उस महीने क्षण में जब इन्सान पीछे मुड़कर अपनी जिंदगी पर नजर डालता है, उस महीन क्षण में, जब इंसान पीछे मुड़कर कर अपनी जिंदगी पर नजर डालता है। सिसिफस अपनी चट्टान की और लौटता हुआ सोचता है उन सारे बिखरे-बिखरे कृत्यों के बारे में जो उसकी किस्मत बन गये। उसकी स्मृति की आँख उन सबको जोड़ती है और जल्दी ही उसकी मृत्यु उसको सील कर देगी। चट्टान फिसलती ही रहती है।

मैं सिसिफस को पहाड़ की तलहटी में छोड़ देता हूं। आदमी अपना बोझ फिर खोज लेता है। लेकिन सिसिफस श्रेष्ठ दरजे की निष्ठा सिखाता है। जो देवताओं को नकारती है और पत्थरों को प्रतिष्ठा देती है। वह भी यही मानता है कि सब कुछ ठीक है। उसे यह विश्व न तो मुर्दा प्रतीत होता है। न निरर्थक। उस चट्टान का प्रत्येक अणु, अंधकार भरे पर्वत का एक-एक कतरा एक विश्व है। ऊँचाइयों पर चढ़ने के लिए किया जानेवाला संघर्ष ही मनुष्य के ह्रदय को आपूर करने के लिए काफी है। हम कल्पना कर सकते है। कि सिसिफस खुश है।

ओशो का नजरिया:–

आठवीं किताब है, कामू की ''दि मिथ ऑफ सिसिफस'' मैं तथाकथित अर्थ में कोई धार्मिक व्यक्ति नहीं हूं, मैं अपने ढंग का धार्मिक व्यक्ति हूं। इस कारण लोग आश्चर्य करते है कि मैं क्यों उन किताबों की बात कर रहा हूं, जो धार्मिक नहीं है। वे धार्मिक है, परन्तु तुम्हें इन किताबों में गहरे उतरना होगा तब तुम उनमें धार्मिकता पाओगे। ''दि मिथ ऑफ सिसिफस'' एक पौराणिक कथा है। कामू ने इसका अपनी पुस्तक के लिए उपयोग किया है। मैं तुम्हें इसके बारे में बताता हूं।

सिसिफस जो कि एक देवता था उसे स्वर्ग से निष्कासित कर दिया गया था। क्योंकि उसने परमात्मा का कहना मानने से इनकार कर दिया। उसे दंड दिया कि उसे एक बड़ी चट्टान घाटी से उठाकर शिखर पर पहुंचना है और शिखर इतना संकरा था कि जब भी वह चोटी पर पहुंचकर चट्टान को नीचे रखता, वह फिर नीचे लुढक जाती। सिसिफस वापस हांफता-कांपता पसीने से तरबतर घाटी में जाता है और फिर चट्टान उठाता है, यह जानते हुए की चट्टान फिर लुढ़क जायेगी। परन्तु वह क्या कर सकता था?

यह आदमी की पूरी कथा है। इसलिए मैने कहा कि जरा तुम गहरे उतरोगे तो इसमे तुम धर्म पाओगे। यह हालत है आदमी की और हमेशा से ऐसी ही रही है। तुम क्या कर रहे हो? और सभी क्या कर रहे है? एक चट्टान को उठा रहे हो, उसे बिन्दु तक जहां से वह पुन: उसी घाटी में लुढ़क जाएगी। संभवतया हर बार ओर ज्यादा गहरे में, और हर सुबह नाश्ता करने के बाद तुम फिर उठाना शुरू कर दोगे, वह जानते हुए भी कि यह पुन: लुढक जाएगी।

यह पौराणिक कथा बहुत प्यारी है। कामू ने इससे पुन: परिचित कराया है। वह एक धार्मिक व्यक्ति था, सच तो यह है कि वह असली यथार्थ वादी था। जां पाल सार्त्र नहीं था परन्तु वह प्रसिद्धि के पीछे भाग नहीं रहा था, इस कारण वह कभी सामने नहीं आया।

वह चुप रहा, चुपचाप लिखता रहा। और चुपचाप मर गया। बहुत से लोग यह नहीं जानते है कि वह मर गया। वह इतना शांत व्यक्ति था—परन्तु जो उसने लिखा है, ''दि मिथ ऑफ सिसिफस'' वह बहुत ही भावपूर्ण है। ''दि मिथ ऑफ सिसिफस'' एक महानतम कलात्मक कार्य है।

ओशो

3/ दि बॉलड् गार्डन ऑफ ट्रूथ

दि बॉलड् गार्डन ऑफ ट्रूथं(हदीक़त-अल-हक़ीकत)-हकिम सनाई

यूनो मिस्टिका-ओशो-(Hakim Sanai Ghazani)

हकीम सनाई के बारे में जो थोड़ी सी जानकारी है वह किंवदंती अधिक है। ऐतिहासिक तथ्य कम है। गझाना में, सन 1118-1152 के दौरान बहरा शाह राज करता था। उसी दौर में हकीम सनाई पनापा। उसकी इंतकाल सन 1150 में बताया जाता है। पैदा कब हुआ इसका कोई लेखा-जोखा नहीं है। उसके संबंध में एक ही किस्सा पाया जाता है।

हकीम सनाई ने गझाना के सुलतान इब्राहिम की तारीफ में एक कविता लिखी थी और वह सुलतान को सुनाने के लिए उसके दरबार की और चल पडा। सुलतान इब्राहिम हिंदुस्तान पर एक और हमला करने की तैयारी कर रहा था। हिंदुस्तान की और जाते हुए रास्ते में एक खुशबूदार हदीक़ा, (बग़ीचा) पडा। बग़ीचे से गाने के पुख्ता सुर लहराते हुए आये। सुलतान उन्हें सुनने की खातिर रुका। गानेवाला शख्स आइ-खुर था—एक पियक्कड़ और पागल आदमी। लेकिन उसके ढीठ उदगारों के भीतर सचाई धधकती थी।

लाई-खुर कह रहा था, शराब ले आओ और पियो एक जाम अंधे सुलतान के नाम।

''यह क्या कह रहे हो?'' लोगों न पूछा

''अंधा नहीं तो क्या।'' वह खिल खिलाकर बोला, यहां घर में उसकी जरूरत है और वह जा रहा है इस पागल जंग के लिए।''

दूसरा जाम लाई-खुर ने भरा ''हकीम सनाई के अंधेपन के लिए।''

इस पर लोगों ने और भी एतराज किया क्योंकि सनाई तब तक एक अज़ीज शायर बन चुका था। लेकिन लाई-खुर ने कहां यह और भी सही है, क्योंकि सनाई को इसका ख्याल ही नहीं है कि वह किस काम के लिए पैदा हुआ है। जब खुदा के सामने उसकी सुनवाई होगी तो उसे दिखाने के लिए उसके पास सुलतान की तारीफ़ में बनाए गये गीतों के अलावा कुछ न होगा। सुलतान—जो कि उसके जैसा ही मिट्टी का पुतला है।''

यह सुनकर हकीम सनाई की जड़ें हिल गई। वह सब कुछ छोड़कर सूफी मुर्शिद युसूफ़ हमदानी की शरण में गया। बाद में वह मक्का गया। और लौटने के बाद उसने ''हदीक़त'' लिखना शुरू किया जो कि सन 1130 में पूरा हुआ। इस किताब का पूरा नाम ''हदीक़त-उल-हक़ीकत।''

इस किताब ने इतनी बुलंदी पाई कि सूफी सद गुरूओं को जो त्रिकोण है: जलालुद्दीन रूमी, अत्तार और हकीम सनाई उसमें सनाई को एक दीप स्तंभ का दर्जा मिला। ''हदीक़त'' के बारे में खुद सनाई ने लिखा है: ''जब तक आदमी की जबान है तब तक इसे पढ़ा जाएगा।'' पिछले आठ सौ सालों में हदीक़त सूफी पाठय पुस्तक की तरह पढ़ी जाती है।

''हदीक़त'' पर्सियन भाषा में लिखा गया, 12,000 दोहों का एक बहुत बड़ा ग्रंथ है। जिसमे से कुछ गीतों का अनुवाद डी.एल.पेंडलवरी ने अंग्रेजी में किया है। ''दि बॉलड् ऑफ ट्रूथं'' के नाम से, इसे प्रकाशित किया है। लंदन के औक्टेगन प्रेस ने। संपूर्ण हदीक़त का अनुवाद मेजर स्टीफेन सन ने अंग्रेजी में किया था।

हदीक़त के सही अनुवाद करने में काफी मुश्किलें है। एक मुश्किल यह है कि हदीक़त के पाँच अलग-अलग संस्करण है। हदीक़त एक विशाल दिया है जिसमें सनाई के दोहे बेतरतीब भरे हुए है। इन पाँच संस्करणों में से असली संस्करण कौन सा है, है भी कि नहीं, इसका अंदाजा लगाना मुश्किल है।

दूसरे, पर्सियन भाषा बहुत ही गहरी और मुहावरेदार है। सूफियों का बात कहने का अंदाज रहस्यमय है। एक शब्द के कई अर्थ हो सकते है। उनका एक कोड लेंग्वेज है। सतह पर कुछ अर्थ होते है, गहराई में कुछ और। अरेबिक शब्दों के विशिष्ट अंक होते है। जैसे:-

य=10, स=60, क=20, न=50

य स=10+60=70

क न=20+50=70

बहरहाल, जो अलफ़ाज़ हमें जिबरिश मालूम होते है। उनमें अर्थों के खजानें छिपे है।

सनाई के कुछ शब्द ऐसी कुंजियों भी हैं जिनसे उसने कुरान के गहरे ताले खोले है। अरेबिक, पर्सियन इत्यादि मध्य पूर्व की भाषाएं शब्दों के संग खेलती है। इस कारण कि वे भाषाएं बहुत अमीर है।

इस किताब का लेखक पेंडलबरी पूरब और पश्चिम की भाषाओं का फर्क समझाते हुए बड़ी गहरी बात कहता है: ''हमारे (पाश्चात्य) चिंतक शब्द लिखते और बोलते है। लेकिन उन शब्दों से वेजो संप्रेषित कर पाते है वह चिंतक नहीं बल्कि कोरे शब्द। हमारी भाषा पानी जैसी हो गई है; एक रंगहीन, गंधहीन, बेस्वाद माध्यम। और हमें मछली की मानिंद, उसका अहसास तभी होता है जब हम उससे वंचित हो जाते है। हम शब्दों के प्रति मूर्च्छित है और इसीलिए, उनसे अधिक बंधे हुए है जितने कि पूरे इतिहास में कोई तहजीब बंधी हुई नहीं था।''

आज की तहजीब में सबसे अधिक कोई शब्द परेशान हुआ है तो ''अल्लाह'' या ''ईश्वर''। इसका जिक्र करते हुए आधुनिक आदमी एक अपराध भाव सा महसूस करता है। लेकिन सनाई के लिए अल्लाह एक हक़ीकत है, हक़ है।

सनाई ने कहा है: जब तुम बेबस होकर पुकारते हो, ''या अल्लाह।''

उसके जवाब में दोस्त कहता है, ''मैं यहां हूं।''

सनाई, अत्तार, रूमी के त्रिकोण में सनाई अव्वल है—तारीख़ी तौर पर और बुलंदी के तौर पर भी। सनाई का अहसान मानते हुए ही अत्तार और रूमी आगे बढ़ते है।

जलालुद्दीन रूमी ने लिखा है:

अत्तार रूह थी और सनाई, आंखे

हम सनाई और अत्तार के साये में चलते है।

किताब की एक झलक:–

1- हमने अपना तरीका उसे

जताने की खूब कोशिश की

लेकिन सफल नहीं हुए

जब हमने छोड़ दिया–

तब कोई अवरोध ही नहीं बचा

2- उसने अपना परिचय आप दिया—

करूणावशा

अन्यथा हम उसे कैसे जान पाते?

बुद्धि हमें उसके द्वार तक ले गई,

लेकिन वह उसकी मौजूदगी थी

जिसने हमें भीतर प्रवेश दिया

3- लेेकिन तुम उसे कैसे जान पाओगे?
जब तक कि तुम खुद को नहीं जानते?
4- सथान का अपना कोई स्थान नहीं है
जिसने स्थान बनाया उसका
स्थान कैसे होगा?
जिसने स्वर्ग बनाया
उसका स्वर्ग कहां से होगा?

5-उसने कहा, मैं एक गड़ा हुआ खजाना था
सृष्टि का निर्माण हुआ
ताकि तुम मुझे जान सको
मुझे क्यों बताते हो
जब कि तुम जिसे खोज रहे हो
वह है ही नहीं?
क्या तुम वहां पैदल जाना चाहते हो?
तुम जिस राह पर चलना चाहते हो
वह है ह्रदय के दर्पण को चमकाना
6- अगर तुम अपनी कीमत जानो
तो क्यों फिक्र करते हो
लोग तुम्हें स्वीकार करें या इंकार?
7- तुुम्हें समझ लेना चाहिए
कि यह उसकी रहनुमाई है जो
तुम्हें तुम्हारी राह पर चलाती है,
न की तुम्हारी ताकत
8- मेरे दोस्त, जो भी है, उसी से है
तुम्हारी अपनी हस्ती एक दिखावा है
बंद करो यह बकवास, मिटा दो खुद को–
और तुम्हारे दिल का जहन्नुम जन्नत बन जाता है
खुद को मिटा दो, और कुछ भी पा लो।
तुम्हारा स्वार्थ जंगली बछड़े की तरह है
9-
इस दरवाजे पर, क्या फर्क है
मुसलमान और ईसाई में?
सज्जन और दुर्जन में?
इस दरवाजे पर सभी खोजी है
और वह मंजिल है

10- क्या सूरज इसलिए है
कि मुर्गा उसे देखते ही बांग दे?
तुम हो या न हो, उसे क्या फर्क पड़ता है?
तुम्हारे जैसे कई उसके दर पर आये है
11- तुम जो हो , हो:
इसलिए तुम्हारे प्यार और नफ़रतें
तुम जो हो, हो:
इस लिए तुम्हारे विश्वास और अविश्वास
12- ईश्वर अकारण है:
तुम क्यों कारणों को खोज रहे हो?
सत्य का सूरज अपने आप उगता है
और उसके साथ ही डूबता है
ज्ञान का चाँद
13- अपने इर्दगिर्द जाला बुनना बंद करो
पिंजरे के बाहर कूद पड़ो—शेर की तरह
14- प्यार को वही जीतता है
जिसे प्यार जीतता है
15- उसकी खोज में दिल-ऑ-जान से निकल पड़ो।
लेकिन जब समुंदर तक पहुंचो
तो नदी की बात करनी छोड़ दो

ओशो का नजरिया:–

मेरे लिए हकीम सनाई ऐसा नाम है जैसे मीठी शहद या अमृत। हकीम सनाई विरले है, सूफियों की दुनिया में अनूठे। और कोई सूफी अभिव्यक्ति की इस ऊँचाई या इस गहराई तक नहीं पहुंचा है। हकीम सनाई ने लगभग असंभव को संभव कर दिया है।

अगर रहस्यदर्शीयों की दुनिया में मुझे सिर्फ दो किताबें चुनने के लिए कहा जाए तो एक होगी झेन जगत से—जो कि होश का मार्ग है—सोझान की ''सिन सिन मिंग'' मैंने उस पर प्रवचन किये है। उसमें होश और ध्यान का मार्ग है। अर्थात झेन का सार-निचोड़ है। दूसरी किताब होगी, हकीम सनाई की ''हदीक़त-उल-हक़ीकत'' संक्षेप में कहा जाए तो ''सत्य का बंध हुआ बगीचा।''

हदीक़त प्रेम-मार्ग की मूलभूत सुगंध है जैसे सोझान ने झेन की आत्मा को पकड़ लिया वैसे हकीम सनाई ने सूफीवाद की आत्मा को पकड़ लिया है।

ऐसी किताबें लिखी नहीं जाती—जन्मती है। उन्हें कोई लिख नहीं सकता है मस्तिष्क में नहीं बनती। वे उस पार से आती है। वे उपहार है वे वैसे ही रहस्यपूर्ण ढंग से आती है जैसे बच्चा पैदा होता है या पक्षी जन्मता है या गुलाब का फूल खिलता है। वे हम तक आते है—उपहार स्वरूप।

ओशो
युनियो मिस्टिका

4/ हजरत इनायत खान

हज़रत इनायत खान

(The Mysticism Of Sound And Music)

अपनी मनपसंद किताबों के खुशबूदार गुलशन से हुए कभी तो ओशो उन किताबों का ज़िक्र करते है जो उन्हें कीमती मालूम हुई और कभी उन लेखकों को अपने काफिले में शरीक करना चाहते है जिनकी किताबें उन्हें सार्थक लगी हों। खलील जिब्रान जैसे लेखकों का तो समूचा साहित्य ही अपना लिया।

हज़रत इनायत खान का जन्म सन 1882 के जुलाई महीने में बड़ौदा में हुआ। उनके खानदान में संगीत और सूफीवाद हाथ से हाथ मिला कर चलते थे। इनायत खान के दादा मौला बख्श, वालिद रहमत खान धुपद गाते और वीणा बजाते थे। स्वभावत: इन दोनों धाराओं का संगम इनायत खान में भी हुआ। बड़ौदा के महाराज संगीत और अन्य कलाओं के बड़े कद्रदान थे। उनके संरक्षण में वहां संगीत खूब पल्लवित और कुसुमित हुआ।

इनायत खान बचपन में ही संगीत में दीक्षित हुए लेकिन उनका संगीत सिर्फ साज तक ही सीमित नहीं था। एक और रूहानी संगीत जो पूरे ब्रह्मांड में झंकारित होता रहता है, उसकी उन्हें तलाश थी। उन्हें अस्तित्व का अनुभव भी संगीत की तरंगों के मानिंद होता था। पूरा विश्व उनके लिए परम तत्व की एक झनकार था। उनके प्रवचनों में वे संगीत के उदाहरण देकर अस्तित्व के रहस्यों को समझाते थे।

सूफी फकीर अपनी साधना में ध्वनियों का इस्तेमाल बहुत करते है। इसके पीछे कुरान की एक मीठी कहानी है। कहते है, अल्लाह ने रूहें बनाईं और उनके लिए मिट्टी के पुतले बनाये। लेकिन वह परवाज रूहें इन मिट्टी के पुतलों में कैद होने के लिए तैयार न थी। तो अल्लाह ने संगीत पैदा किया जिसे सुनने के लालच में रूहें मिट्टी की मूर्तियों में प्रवेश कर गई।

इस कहानी के सीने में सच्चाई भरी हुई है। मनुष्य के भाव, मन, विचार सब कुछ अलग-अलग गति से थिरकती हुई तरंगों के सिवाय और कुछ भी नहीं। इनायत खान कहते थे, किसी तंतु वाद्य के या ढोल के चमड़े में भी प्राण उर्जा होती है। वादक अगर अपनी प्राण ऊर्जा वादन में उँड़ेलता है तो वह संगीत श्रोताओं के प्राण झंकृत करता है।

यद्यपि इनायत खान का पेशा संगीतकार का था, भीतर से उनकी चेतना विकास के ऊंचे से ऊंचे सोपान चढ़ रही थी। कई सूफी फकीर और मुर्शिद उनकी आध्यात्मिक तैयारी करवा रहे थे। किस्मत ने उनके लिए एक खास काम लिख रख था: उन्हें पश्चिम जाकर सूफी विचार का प्रसार करना था। सो सन 1910 में वे न्यूयॉर्क के लिए रवाना हुए। उनके लिए वह पूरी तरह अज्ञात में छलांग थी। बड़ौदा की रियासत में खानदानी गवैयों और रईसों के बीच पले इस सूफी फकीर के लिए अमेरिका की अजनबी तहजीब में जाकर काम करना कितना कठिन था इसे वे खुद बयान करते है।

''पश्चिम में काम करना मेरे लिए इतना मुश्किल था कि मैंने कभी इसके बारे में सोचा भी नहीं था। मैं कई मिशनरी नहीं था। जिसके पीछे चर्च के सारे सदस्य हों। न ही मुझे किसी संप्रदाय का प्रचार करने के लिए किसी महाराजा ने भेजा था। मैं सिर्फ मेरी अंदर की आवाज सुनकर पश्चिम आया था और इस अजनबी धरती पर मेरे काम को सहारा दे सके ऐसा कोई भी न था। इस नई भूमि में न तो मेरी कोई जान-पहचान थी, न किसी के लिए मेरे पास कोई सिफारिशी खत थे। न तो मुझे अंग्रेजी आती थी। न मैं यह जानता था कि मैं क्या सिखाऊंगा, किसको सिखाऊंगा।''

शुरू-शुरू में तो इनायत खान एक हिंदुस्तानी संगीतकार बनकर न्यूयॉर्क में रहे। संगीत ही उनकी रोजी रोटी का जरिया था। धीरे-धीरे संगीत पेश करने से पहले उन्होंने संगीत के बारे में बोलना शुरू किया। उस दौरान वे उस संगीत की बात करते जो गाने-बजाने से निर्मित नहीं होता, जो अनहत है। यह उनकी शख्सियत का असर जानिये कि जो इनायत खान के प्रशंसक और मुरीद बढ़ते चले गये। यहां तक कि हेनरी फोर्ड भी उनसे प्रभावित था। वह कहता था, ''मैं जिस बात को खोज रहा था उसे इनायत खान ने पा लिया।''

पूर्णतया भौतिकवादी, वैज्ञानिक बुद्धि के पाश्चात्य मनुष्य को पूरब की प्रज्ञा से अवगत कराने का कठिन काम हज़रत इनायत खान ने अपने जीवन के अंत तक—1927 तक किया। उनके रोम-रोम में बसा हुआ संगीत स्त्री-पुरूषों से संबंधित होने में बहुत मदद गार साबित हुआ। उनके लिए हर व्यक्ति एक सुर था। और हर समाज इन सुरों को स्वर मेल, एक सिंफनी। वे बड़ी संवेदनशीलता के साथ व्यक्तियों से संबंध बनाते थे। सूफी जिसे ''मुरव्वत'' कहते है, ''उस गुण का प्रयोग वे अपने शिष्यों को सिखाते। बोलने-चालने के शिष्टाचार का आडंबर करने वाले पश्चिम के मनुष्य को उन्होंने असली शिष्ट–आचरण सिखाया। वे कहते, आपसे मिलकर बहुत खुशी हुई, इसे यंत्रवत कहने से कहीं अच्छा होगा यदि आप उस व्यक्ति की पसंदगी-नापसंदगी का सम्मान करें। उसे सिगरेट पसंद नहीं है तो उसके सामने न पिये। उसे जो व्यक्ति प्रिय है उसकी बुराई न करें। उसकी पसंद का संगीत बजाये। शिष्टाचार संवेदनशील आचरण में है, न कि चिकने-चुपड़े शब्दों में।

सत्रह साल तक वे अमेरिका और इंग्लैड में काम करते रहे। उनके प्रवचनों और लेखों को उनके शिष्यों ने संकलित किया। यह संकलन 12 किताबों में, ''दि सूफी मैसेज ऑफ हज़रत इनायत खान'' शीर्षक से प्रकाशित हुए।

लंदन में इनायत खान की भेंट रवीन्द्र नाथ टैगोर से हुई। टैगोर ने उन्हें अपने मित्रों से मिलने के लिए आमंत्रित किया। उस मित्र मंडली में एक हिंदुस्तानी बैरिस्टर भी था जो आगे चल कर महात्मा गांधी के नाम से विख्यात हुआ। टैगोर और इनायत खान कई बार मिले। उन दोनों की छवि बहुत कुछ एक दूसरे से मिलती थी।

अमेरिका और यूरोप में इनायत खान को जो सफलता मिली उसकी वजह यही है कि अध्यात्मिक ज्ञान को वे रोजमर्रा की जिंदगी में उतारने के गुर सिखाते थे। पूरी तरह काम करो, और जब सफलता हासिल हो तब फल का त्याग करो। ऐसा करने से तुम अपने ही बनाये हुए रेकार्ड को तोड़ देते हो, प्रतिपल खुद से आगे बढ़ जाते हो। शायद इसीलिए हेनरी फोर्ड जैसे सफल उद्योगपति उनकी और आकर्षित हुए।

5 फरवरी, 1927 को मुर्शिद इनायत खान शरीर छोड़ दिये। उससे पहले वे हिंदुस्तान लौट आये थे। शरीर छोड़ने से पहले उन्होंने अजमेर जाकर ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती के दरगाह पर हाज़िरी लगाई जो तेरहवी शताब्दी में सूफीवाद को हिंदुस्तान लाये थे। वे मुरशिदों के मुर्शिद कहलाते थे। उन्होंने इनायत खान के मुर्शिद ख्वाजा अबू हाशिम मदानी को आदेश दिया था कि वे इनायत खान को सूफी संदेश लेकर पश्चिम भेजे। मरने से पूर्व हर सूफी मुर्शिद अपने मुरीदों(शिष्यों) से माफी मांगता है। जाने अनजाने किसी को दिल दु:खाया हो तो वे माफ कर दें। इनायत खान ने भी वह रिवाज निभाया। पूरी पृथ्वी पर फैले हुए शिष्यों के लिए इनायत खान का अंतिम संदेश यह था:

तुम्हारे मस्तिष्क की भूमि में मैंने अपने विचारों के बीज बोये है
मेरा प्यार तुम्हारे दिलों को भेद चुका है
मेरे लफ्ज तुम्हारी जबान पर है
मेरी रोशनी तुम्हारी रूह को रोशन कर गई है
मेरा काम मैंने तुम्हारे हाथों में सौंपा है।

—हजरत इनायत खान

किताब की एक झलक:–

लोकतंत्र:

लोकतंत्र की धारणा को बहुत समझा जाता है। लोकतंत्र का सिद्धांत: ''दो व्यक्ति एक जैसे है।'' बहुत गलत सिद्धांत है। उससे विनम्रता, सौम्यता, और ऊंचे आदर्श बिलकुल विदा हो जाते है। यह सोच कितनी बचकानी है कि कपूर और हड्डी, खड़िया और शक्कर, एक जैसे हे। यह ख्याल कि सब एक समान है, बड़ा सहृदय लगता है। लेकिन अगर पियानो की सभी पट्टियों को एक ही स्वर में मिलाया जाये तो संगीत पैदा नहीं होगा। लोकतंत्र की गलत धारणा पियानो में एक ही स्वर रखने जैसी है। ऐसा करने से रूहानी संगीत बेजान हो जाता है। यह धारणा लोकतंत्र की हवस अधिक है। लोकतंत्र कम। वास्तविक लोकतंत्र है खुद को ऊपर उठाना और उस उठने में जो आदर्श नजर आते है उनका सम्मान करना।

आनंद की अल्केमी:

संस्कृत में रूह को आत्मा कहते है। जिसका अर्थ है: आनंद। ऐसा नहीं है कि आनंद आत्मा का गुण है, वरन आनंद ही आत्मा है। आज कल हम सुख को आनंद समझ लेते है। लेकिन सुख आभास मात्र है। वह सुख को ढूँढता रहेगा और कभी भी संतुष्ट नहीं होगा। हिंदू कहावत है कि इंसान सुख को खोजता रहता है और बदले में दुःख पाता है। प्रत्येक सुख बहार से आनंद दिखाई देता है। वह आनंद का आश्वासन देता है क्योंकि वह आनंद की छाया है; लेकिन जिस तरह व्यक्ति की छाया खुद व्यक्ति नहीं है उसी तरह सुख आनंद का प्रतिनिधित्व तो करता है लेकिन आनंद नहीं है।

इस दृष्टि के अनुसार इस दुनिया में मुश्किल से ऐसी आत्मा होंगी जो जानती होंगी कि आनंद क्या है—लोग निरंतर एक के बाद एक निराशा ही अनुभव करते रहते है। यहीं संसारी जीवन है। यह ऐसी भटकन है कि इंसान हजारों बार निराश होने के बावजूद फिर उसी रास्ते से जायेगा क्योंकि उसे दूसरा रास्ता ही मालूम नहीं है।

जो आदमी आनंद का राज नहीं जानता वह अक्सर लोभ से भर जाता है। उसे हजारों रूपए चाहिए, लेकिन जब वे मिल जाते है तब फिर उसे लाखों चाहिए होते है। लाखों मिलने के बाद भी उसकी संतुष्टि नहीं होती। तुम अपना सब कुछ लुटा दो उन पर लेकिन वे संतुष्ट नहीं होते। क्योंकि वे गलत दिशा में खोज रहे है।

आनंद न तो खरीदा जाता है न बेचा जाता है; न किसी को दान दिया जा सकता है। आनंद है तुम्हारा अंतरतम, तुम्हारी आत्मा। वह जीवन में सबसे बहुमूल्य चीज है। सारे धर्म, सारी दार्शनिक प्रणालियां, इंसान को भिन्न-भिन्न मार्गों से यही सिखाती है कि इस आनंद को कैसे पा ले।

रहस्यदर्शी और ऋषि इस प्रक्रिया को अल्केमी, रसायन शास्त्र कहते है।

व्यक्तित्व की कला:

कुछ लोग सोचते है कि कला कुदरत से निकृष्ट है लेकिन ऐसा नहीं है। कला कुदरत को संपूर्णता देती है। कला में कुछ दिव्य है, क्योंकि स्वयं परमात्मा मनुष्य के माध्यम से कुदरत के सौंदर्य को पूर्णता देता है—और उसे ही कला कहते है। दूसरे शब्दों में, कला कुदरत की नकल नहीं है, कला कुदरत को बेहतर बनाती है। फिर चित्रकला हो, कविता हो या संगीत है। लेकिन सभी कलाओं में श्रेष्ठतम है व्यक्तित्व की कला। उसे सीखना जरूरी है, ताकि जीवन के हर क्षेत्र में उसका उपयोग किया जा सके।

जरूरी नहीं है कि हर आदमी संगीतज्ञ या चित्रकार बने, लेकिन हर आदमी के लिए व्यक्तित्व ओर निजता में फर्क कर पाते है। निजता वह है जो हम जन्म के साथ ले कर आते है। हम एक अलग हस्ती की तरह पैदा होते है। निजता का अर्थ है आत्मा को अपने होने का अहसास।

व्यक्तित्व निजता का निखार है। व्यक्ति बनने से भीतर पडा हुआ सौंदर्य विकसित होता है। निजता के इस विकास को व्यक्तित्व कहते है। निजता कुदरती हे, जबकि व्यक्तित्व एक कला है। उसे पाना होता है। निर्मित करना होता है। हम उसे लेकर नहीं आते।

प्राचीन समय में व्यक्तित्व की कला बच्चों की शिक्षा का हिस्सा थी। आज विद्यार्थी परीक्षा पास कर लेते है और सोचते है कि अब वे दुनिया का सामना करने के लिए तैयार है। लेकिन इतनी बहारी गुणवत्ता काफी नहीं है। आंतरिक विकास, भीतरी संस्कृति असली है और जो व्यक्तित्व का विकास करने से आती है।

व्यक्तित्व के चार वर्ग है: खजूर, अखरोट, अनार, अंगूर।

खजूर जैसा व्यक्तित्व बाहर मुलायम होता है और भीतर कठोर। खजूर को जैसे ही मुंह में डाला जाये, उसकी गुठली अटक जाती है।

अखरोट जैसे व्यक्तित्व के बाहर सख्त पर्त होती है, लेकिन जब तुम उसे तोड़ते हो तब भीतर गुदा पाते हो।

तीसरा व्यक्तित्व अनार नुमा। बाहर से सख्त और भीतर से भी कठिन—बीज ही बीज।

चौथा अंगूर की मानिंद व्यक्तित्व बाहर से भी नर्म, और भीतर से भी नर्म—रस भर मधुर।

यह चौथा व्यक्तित्व बहुत चुंबकीय होता है। आध्यात्मिक व्यक्ति का व्यक्तित्व ऐसा ही होता है।

ओशो का नजरिया:

सातवां रिंझाई जैसा बुद्ध पुरूष नहीं है। लेकिन बहुत करीब है—हजरत इनायत खान। वह आदमी जिसने पश्चिम को सूफीवाद से परिचित कराया। उसने काई किताब नहीं लिखी लेकिन उसके सभी व्याख्यान 12 भागों में संकलित किये गये है। कहीं-कहीं वे सुंदर है। क्षमा करें, मैं यह नहीं कह सकता कि वे सभी अच्छे है, लेकिन इधर-उधर, कहीं-कहीं.....खास कर जब वे सूफी कहानी कहते है तब वे बेजोड़ है।

वे संगीतज्ञ भी थे। उस विधा में वे उस्ताद थे। वे आध्यात्मिक जगत में पहुंचे हुए पीर नहीं थे। लेकिन संगीत के क्षेत्र में निःसंदेह थे। कभी-कभी वे आध्यात्मिक ऊँचाई छू लेते—बादलों के पार।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

5/ तंत्र-आर्ट: अजित मुखर्जी

तंत्र-आर्ट: इट्स फिलॉसफी एंड फिजिक्स (अजित मुखर्जी)

Tantra Art: Its Philosophy & Physics -Ajit Mukerji

एक अत्यंत दर्शनीय किताब की झलक हम प्रस्तुत करने जा रहे है। तंत्र कला: दर्शन और भौतिक तंत्र का दर्शन तो समझ में आता है लेकिन भौतिकी.....? इस के लेखक अजित मुखर्जी ने आधुनिक फ़िज़िक्स के ज़रिये तंत्र के प्रतीकों की व्याख्या कर तंत्र को एकदम बीसवीं सदी में ला खड़ा कर दिया है। तंत्र उसकी दुरूह संज्ञाओं और रेखा-कृतियों के कारण मनुष्य चेतना की मूल धारा से हटकर एकांत कोठरी में बंदी हो गया था। उसे भौतिकी के वैज्ञानिक नियमों की रोशनी में लाकर उन्होंने दिखा दिया है कि तंत्र जितना पुराना है उतना नया। या कहें, न नया, न पुराना; वह नित्य नूतन है।

155 पन्नों की इस लावण्यमयी किताब में कुल 55 पन्ने शब्दों के लिए है। बाकी सारे पन्ने चित्रों के लिए आरक्षित है। ये चित्र तांत्रिकों की पूजा स्थानों से, मठों और संग्रहालयों से उठाये गये है। इनका सृजन काल है दसवीं शताब्दी से अठारहवीं शताब्दी तक। इसके लेखक अजित मुखर्जी परंपरागत कला और कारीगरी के काविद है। कलकत्ता विश्वविद्यालय से प्राचीन भारत के इतिहास और संस्कृति में एम. ए. की उपाधि लेने के बाद वे लंदन गये और वहां उन्होंने ''हिस्ट्री आफ आर्ट'' विषय में पुन: एम. ए. किया। 1945 से लेकर आज तक वे भारत, योरोप और अमेरिका में भ्रमण कर अपनी किताबों की सामग्री जुटाते रहे।

तंत्र की रहस्यमयता किताब के प्रारंभ से ही प्रतीक होती है। पहले पृष्ठ पर लिख है: In Search of divine Life, ''दिव्य जीवन की खोज'' दूसरे पृष्ठ पर किताब समर्पित की गई है(To her) स्त्री तत्व को। क्योंकि उसके बिना तंत्र अधूरा है।

यह आलेख मूलत: तांत्रिक कला के संबंध में है, अंत: उसमें तांत्रिक उपासना या ध्यान की विधियों का कोई खास विवेचन नहीं है। तांत्रिक उपासना के अंग है: यंत्र, मंत्र और चित्र। इन तीनों अंगों का भौतिकी के नियमों के अनुसार वैज्ञानिक विश्लेषण किया गया है जो बहुत रोचक और क्रांतिकारी है। उन नियमों को पढ़कर तंत्र की और देखने की दृष्टि आमूल रूपांतरित हो जाती है।

तांत्रिक कला कोई बौद्धिक सृजन नहीं है; वह एक योग साधना है। इसलिए तंत्र के प्रतीकों के चित्र बनाने से पहले तांत्रिकों को बाकायदा ध्यान योग करना पड़ता है। ऐसे तांत्रिक शिल्पी योगी कहलाते है। स्वयं को शुद्ध और निर्मल बनाकर वे आराध्य देवता या प्रतीक का प्रतिबिंब बनाने में उद्युत होते है। इसलिए तांत्रिक चित्रों पर ध्यान करके विशिष्ट सिद्धियां प्राप्त की जा सकती है।

मंत्र का विवेचन करते हुए अजित मुखर्जी कहते है कि सारे मंत्र सारे संस्कृत के अक्षरों से बने है। और प्रत्येक अक्षर मूलत: ध्वनि है, और प्रत्येक ध्वनि एक तरंग है। भौतिक मानती है कि आस्तित्व तरंगों से बना हुआ है। ध्वनि दो प्रकार की होती है। आहत और अनाहत। मन से जैसे ही विचार उठा, कल्पना उभरी, वैसे ही ध्वनि पैदा होती है: लेकिन यह ध्वनि सुनाई नहीं देती।

दूसरी ध्वनि है जो दो वस्तुओं के आघात से उत्पन्न होती है। यह ध्वनि आहत है, श्रवणीय है। सूक्ष्म तल पर ध्वनि आहत है, श्रवणीय है। सूक्ष्म तल पर ध्वनि प्रकाश बन जाती है। इसलिए उसे पश्यन्ती कहते है।

तंत्र कहता है, प्रत्येक वस्तु गहरे में ध्वनि तरंग है। इस लिए पूरी साकार सृष्टि ध्वनियों के विभिन्न मिश्रणों का परिणाम है। ध्वनि के इस सिद्धांत से ही मंत्र शास्त्र पैदा हुआ है। मंत्र की शक्ति उसके शब्दों के अर्थ में नहीं है।

उसकी तरंगों की सघनता में है। ध्वनि सूक्ष्म तल पन प्रकाशबन जाती है। और उसके रंग भी होते है। जो सामान्य चक्षु को नहीं दिखाई देते।

तांत्रिक यंत्र ऊपर से देखने पर ज्यामिति की भिन्न-भिन्न आकृतियां दिखाई देती है। लेकिन यंत्र का रहस्य समझने के लिए ज्यामिति की रेखाओं के पार जाना पड़ेगा। यंत्र एक शक्ति का रेखांकन है। वह विशिष्ट वैशिवक शक्ति का एक प्रकटीकरण है।

यंत्र की रेखाएं, कोण, बिंदु और इनका आपसी संबंध, इनका राग-रागिनियों से गहरा रिश्ता है। जैसे हर राम के सुनिश्चित सुर होते है, उनका परस्पर मेल होता है वैसे यंत्र की रेखाओं का आपसी स्वमेल होता है।

तंत्र और सारे आध्यात्मिक शास्त्र आस्तित्व के मूल में निहित एक अद्वैत तत्व की बात करते है। आधुनिक विज्ञान भी पदार्थों के केंद्र में बसी हुए एक ऊर्जा की बात करता है। विज्ञान की इस एकात्मता ने पदार्थ को अपार्थिव बना दिया है। वर्तमान कला भी इसी तत्व को अभिव्यक्त करती है। उसकी शैलियाँ भिन्न-भिन्न हो सकती है। लेकिन कोई भी महान रचना उसके रचेता से बड़ी हो जाती है। वह रचना सबकी होती है। और किसी की भी नहीं होती।

शिल्पी योगी का ध्यान आकार पर नहीं होता, उस निराकार शक्ति पर होता है जो आकार को जन्म देती है। वह उस संवेदना को प्रकट करता है जो विश्व में सर्वत्र मौजूद होता है। अपनी अंत: दृष्टि से वह उसे अनुभव करता है और अभिव्यक्त करता है। इस तरह की कला की जड़ें आध्यात्मिक मूल्यों में गहरी होती है। कलाकार खोज की अनंत यात्रा पर चलता है—स्वयं की नहीं, अस्तित्व के मूल स्त्रोत की खोज। और यह स्त्रोत उसे स्वयं के भीतर ही मिलता है।

तंत्र में विज्ञान, कला और धर्म का समन्वय है। उसके आधार दर्शन और भौतिकी में है। तंत्र मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। देखने का साधना है आँख, लेकिन तीन आयामों के अलावा आँख कुछ भी नहीं देख पाती है। और त्रिमिति को भी यह आंशिक रूप से देखती है। उसका एक हिस्सा हमेशा आँख से ओझल ही रहता है। यदि हम चार आयाम को देख सकें तो विश्व अलग ही नजर आयेगा। फिर पत्थर के सीने में थिरकते हुए अणुओं को हम देख सकेंगे, सुन सकेंगे। तंत्र संपूर्ण दृष्टि की और ले जाता है। इसलिए आश्चर्य नहीं कि तांत्रिक कलाकार अंतत: संत बन जाते है।

तंत्र की इस अभिनव और मौलिक व्याख्या के बाद तंत्र के एक से बढ़कर एक चित्र तथा यंत्र प्रस्तुत किये गये है। विदेशी आर्ट पेपर पर इन चित्रों की खूबसूरती चकाचौंध कर देती है। प्रत्येक चित्र के साथ उसका इतिहास और चित्र की व्याख्या भी है। इन चित्रों को प्रथम परिचय पढने के बाद उसकी और देखने का दृष्टि कोण बदल जाता है। निगाहें बरबस रेखाओं और बिंदुओं के पार कुछ खोजने का प्रयास करती है। चित्रों की गहराई बढ़ाने के लिए प्रत्येक परिच्छेद के पूर्व उपनिषदों के सार गर्भित वचन है। जैसे आठवें परिच्छेद से पहले चार वाक्य है:

मैं कौन हूं?

मैं कहां से आया हूं?

मैं कहां जा रहा हूं?

तंत्र कहता है: ये सब मैं हूं।

तंत्र कला की साज सज्जा अद्वितीय है। अत्यंत सुरुचिपूर्ण है। कलाकार है, पेरिस के रवि कुमार। पुस्तक के सह प्रकाशक भी वहीं है। खुशी की बात है कि दिल्ली के रूपा प्रकाशन ने यह किताब छाप कर भारत प्रेमियों के लिए उपलब्ध की है। तंत्र के रहस्य में जिन्हें डुबकी लगानी हो उसके लिए पता है।

रूपा एंड कंपनी

7116-अन्सारी रोड, दरियागंज,

नई दिल्ली

किताब की झलक:

"साSहम'' या ''सोSहम'' एक ही है। क्योंकि मुझमें और तुम में कोई फर्क नहीं है। तंत्र ने इस तरह का विचार और विधि विकसित की है जिससे हम ब्रह्मांड को इस भांति देख सकेत है मानो वह हमारे भीतर है और हम ब्रह्मांड के भीतर है। हमारी कल्पना जिस आकार को निर्मित करती है वह हमारे निराकार तत्व को अभिव्यक्त करती है।

तंत्र जीवन का अनुभव है और वैज्ञानिक प्रणाली भी, जिससे मनुष्य अपने भी निहित आध्यात्मिक शक्ति को प्रकट कर सके। इस दृष्टि से तांत्रिक क्रिया कांड अनेक दर्शनों के आधार स्तंभ हे जैसे शिव, शक्ति, जैन, बौद्ध या वैष्णव। उदाहरण के लिए, जैनों ने बहुत श्रेष्ठ कोटि का आणविक सिद्धांत, समय और स्थान का संबंध, खगोल विज्ञान के निरीक्षण और ब्रह्मांड के गणित जन्य धारण को विकसित किया है। वस्तुत: तंत्र का साधना पथ वैदिक समय से प्रचलित रहा है।

तंत्र संस्कृत धातु ''तन'' से बना है जिसका अर्थ है विस्तार करना। अंत: तंत्र ज्ञान के विस्तार की और इंगित करता है। मनुष्य के शरीर में जो चक्र है उनकी खोज के लिए मानवीय अनुभव को तंत्र का अनुगृहीत होना पड़ेगा। तंत्र कहता है, प्रत्येक व्यक्ति उस ऊर्जा का प्रकट रूप है। और हमारे आसपास जो वस्तुएं है वह उसी चेतना का परिणाम है जो भिन्न-भिन्न रूपों में अपने आपको प्रकट करती रहती है।

मनुष्य सब वस्तुओं का मापदंड नहीं हो सकता। सभी व्यक्ति वस्तुओं के जीवन से वह आंतरिक रूप से बंधा है और जब भी वह किसी वस्तु के अंतर्निहित सार तत्व को खोजता है तब वह ब्रह्मांड के जीवन व्यापी सत्य को ही खोज रहा है। चेतना के इस तल पर विश्व को जो रूप गोचर हाता है उसे तंत्र शास्त्र सूक्ष्म जगत कहते है।

इस तरह आंतरिक ध्यान से मनुष्य स्वयं के संबंध और विश्व के संबंध में अपनी दृष्टि को बदल सकता है। इस बोध का अर्थ क्या है? उसे हम तब तक नहीं समझ सकते जब तक उसे प्रत्यक्ष बनाने का रास्ता नहीं खोज लेते। यह रास्ता तंत्र योग है। श्रेष्ठतर मानसिक एकाग्रता के लिए योग आवश्यक है। योग के द्वारा ही अवचेतन में प्रस्तुत तत्वों के विकसित किया जा सकता है। आध्यात्मिक अवस्था में जो देखा गया है उसे योग वास्तविक जीवन में उतारता है। हम उसे जीकर सीखते है। यह निर्णायक अनुभव हमारे आध्यात्मिक इतिहास का महत्वपूर्ण क्षण है।

जिन्हें हम ''रहस्य'' कहकर अलग कर देते थे उन पर उच्चतर भौतिकी की नई खोजों ने नई रोशनी डाली है। इसके लिए तांत्रिक का वैज्ञानिक विश्लेषण होना जरूरी है। इतना ही नहीं, अमूर्त कला में जहां हम अभी भी समय और कला के बारे में सोचते है, तंत्र उससे आगे जाकर प्रकाश और ध्वनि की कल्पनाओं को ले आया है। ऐसा उदाहरण और कहीं भी नहीं है। आध्यात्मिक प्रक्रिया के दौरान मानव और विश्व के रिश्ते के प्रतीक एक नई चिह्न भाषा का अविष्कार और उपयोग किया गया है। इस प्रकार कला में योग पद्धति की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका रही है। तांत्रिक कला को योग का सारभूत रूप कहा जा सकता है। ब्रह्मांड के रहस्य को, उसके बेबूझ सन्नाटे को भेदने के लिए शिल्पी-योगियों ने यौगिक प्रक्रिया का इस्तेमाल किया है। तांत्रिक प्रतीक और आकृतियों के मूल-स्त्रोत के बारे में अधिक जानकारी नहीं है। लेकिन यह बात स्पष्ट है कि यह शिल्पी योगी के आंतरिक आध्यात्मिक विकास से संबंधित होती है।

तांत्रिक योगी स्वयं को चारों और परि वेष्टित रहस्य का अंश बनाते है। तांत्रिक कलाकार के लिए आंतरिक और बह्म साधनाएं करना आवश्यक है क्योंकि वे उससे सत्य उद् धटित करते है जो संसार की शक्तियों को नये सिरे से समझने में उसकी मदद करे। आधुनिक कलाकार इन्ही को व्याख्यायित करने का प्रयत्न कर रह है।

श्री अरविंद कहते है, ''सत्य का दर्शन इस पर निर्भर नहीं करता कि तुम्हारी बुद्धि बड़ी है या छोटी। वह निर्भर करता है कि तुम्हारे पास सत्य का संस्पर्श करने की क्षमता और उसे ग्रहण करने के लिए शांत, स्तब्ध मन है कि नहीं।''

सत्य केवल तीव्रता में अनुभूत किया जा सकता है। तांत्रिक कलाकार अपनी दृष्टि को एकाग्र करने की साधना में संलग्न होते है। भारत में ये साधनाएं योग की शाखा में अंतर्भूत थी, और इसके अंतर्गत कलाकार योगिक अनुशासन और क्रिया कांड करते थे। ताकि उसके सृजनात्मक स्त्रोत कार्यरत हों।

एक बौद्ध विधि का उदाहरण लें: साधना या मांत्रिक या योगी शुद्धीकरण की विधि करने के पश्चात एकांत स्थान में जाए। वहां उसे सप्त भंगी प्रक्रिया से गुजरना होगा। पहले कई बुद्धों और बोधिसत्वों का आवाहन करना होगा। उन्हें वास्तविक या काल्पनिक पुष्प अर्पित करने होंगे। फिर वह मैत्री, करूणा, सहानुभूति, और निष्पक्षता इन चार भंगिमाओं को अपने विचारों में आश्रय दे। उसके बाद वह समस्त वस्तुओं के न होने पर अर्थात शून्यता पर ध्यान करे। क्योंकि शून्यता की धारण से जो अग्नि पैदा होती हे उससे अहंकार जल जाता है।

उसके बाद ही वह समुचित बीज मंत्र का जाप कर वांछित देवता का आवाहन करे। स्वयं को उस देवता के साथ पूरी तरह से तादात्म्य करे। उसके उपरांत वह ध्यान मंत्र का जाप करता है और उसके मनस पटल पर प्रतिबिंब की तरह या स्वप्न की तरह वह देवता प्रकट होता है। और वह दैदीप्यमान प्रतिमा कलाकार का मॉडल या विषय होती है।

हो सकता है यह विधि कुछ ज्यादा ही विस्तार से कही गई हो, लेकिन मूलत: वह कल्पना के मनोविज्ञान की सही समझ दर्शाती है। इन विशिष्ट विधियों से, सतत विचार करनेवाले मस्तिष्क को किनारे किया जाता है। कला के विषय से तादात्म्य किया जाता है ओर अंतिम प्रतिमा की स्पष्टता होती है।

कला एक व्यवसाय नहीं है, वरन सत्य का, आत्म–बोध का मार्ग है—स्वयं कलाकार के लिए और दर्शक के लिए भी। इस सजगता को सक्रिय करने में तंत्र बहुत बड़ा पथ प्रदर्शक है।

अजीत मुखर्जी

तंत्र आर्ट

ओशो का नज़रिया:

...अजित मुखर्जी। उसने तंत्र के लिए बहुत बड़ा काम किया है। मैं उसकी दो किताबों को सम्मिलित कर रहा हूं। ''दि आर्ट ऑफ तंत्र और दि पेंटिग्ज ऑफ तंत्र।''

यह आदमी अभी जीवित है। और इन दो किताबों के लिए वह मुझे हमेशा अच्छा लगा है। क्योंकि ये मास्टर पीस, सर्वोत्कृष्ट कृतियां है। वे चित्र, वह कला और उसकी अजित मुखर्जी ने की हुई व्याख्या। उनके परिचय में लिखा हुई भूमिका अपरिसीम रूप से बहुमूल्य है।

लेकिन वह आदमी एक बेचारा बंगाली मालूम होता है। अभी कुछ दिनों पहले वह दिल्ली में लक्ष्मी से मिला। वह उससे मिलने आया और बोला ''मैं अपना पूरा तंत्र का संग्रह भगवान को भेंट करना चाहता हूं।'' उसके पास तंत्र के चित्रों और कलाकृतियों का बहुत समृद्ध संग्रह रहा होगा। उसने कहा, ''मैं उसे भगवान को

देना चाहता था क्योंकि वहीं एक व्यक्ति है जो उसे समझ पायेंगे और उसका अर्थ जान पायेंगे। लेकिन मैं बहुत भयभीत था। भगवान से किसी प्रकार से संबंधित होना मेरे लिए मुशिकल खड़ी कर सकता था। अंतत: मैंने मेरा पूरा संग्रह भारत सरकार को दे दिया।''

ये दो किताबें मुझे बहुत प्रिय रही है। लेकिन इस आदमी के बारे में क्या कहो? अजित मुखर्जी या अजित माउस (चूहा) इतना भय। और इतना भय लेकिर क्या तंत्र को समझा जा सकता है? असंभव उसने जो लिखा है वह सिर्फ बौद्धिक है। वह हार्दिक हो नहीं सकता। और है भी नहीं। उसके पास ह्रदय ही नहीं है। ह्रदय सिर्फ निर्भयता के वातावरण में, प्रेम में साहस में विकसित होता है। कितना दीन आदमी है। लेकिन मैं उसकी किताबों की प्रशंसा करता हूं। चूहे ने गजब का काम किया है। ये दो किताबें तंत्र के लिए और सत्य के खोजियों के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण रहेंगी।

अजित मुखर्जी कृपा करके ध्यान रखना, मैं तुम्हारे खिलाफ नहीं हूं, या किसी और के भी नहीं। इस संसार में मैं किसी का भी दुश्मन नहीं हूं, हालांकि लाखों लोग मुझे अपना दुश्मन मानते है। यह उनकी समस्या है। मुझे उससे कोई लेना-देना नहीं है। अजित मुखर्जी तुमने तंत्र की सेवा की है। इसलिए तुम मुझे प्यारे लगते हो। तंत्र को बहुत से विद्यावानों, दार्शनिकों, लेखकों, चित्रकारों, कवियों की जरूरत है ताकि वह प्राचीन प्रज्ञा फिर जीवंत हो उठे। और उसमें तुमने थोड़ी सी मदद की है।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

6/ सिद्धार्थ-(हरमन हेस)

सिद्धार्थ—हरमन हेस

Siddhartha – Hermann Hes

हरमन हेस की सिद्धार्थ बहुत ही विरल पुस्तकों में से एक है। वह पुस्तक उसकी अंतर्तम गहराई से आयी है। हरमन हेस सिद्धार्थ से ज्यादा सुंदर और मूल्यवान रत्न कभी नहीं खोज पाया। जैसे वह रत्न तो उसमें विकसित ही हो रहा था। वह इससे ऊँचा नहीं जा सका। सिद्धार्थ हेस की पराकाष्ठा है।

सिद्धार्थ बुद्ध भगवान से कहता है, आप जो कुछ कहते है सच है। इससे विपरीत हो ही कैसे सकता है। आपने वह सब समझा दिया है। जिसे पहले कभी नहीं समझाया गया था। आपने सभी कुछ स्पष्ट कर दिया है। आप बड़े से बड़े सदगुरू है। लेकिन आपने संबोधि स्वयं के असाध्य श्रम से ही उपलब्ध की है। आप कभी किसी के शिष्य नहीं बने। आपने किसी का अनुसरण नहीं किया; आपने अकेले ही खोज की। आपने अकेले ही यात्रा करके संबोधि उपलब्ध की है। आपने किसी का अनुसरण नहीं किया।

मुझे आपके पास चले जाना चाहिए। सिद्धार्थ गौतम बुद्ध से कहता है, आप से ज्यादा बड़े सदगुरू को खोजने के लिए नहीं, क्योंकि आपसे बड़ा सदगुरू तो कोई है ही नहीं। बल्कि इसलिए कि सत्य की खोज मुझे स्वयं ही करनी है। केवल आपकी इस देशना के साथ मैं सहमत हूं.....

सिद्धार्थ उदास है बुद्ध को छोड़ कर जाना उसके लिए बड़ा कठिन रहा होगा; लेकिन उसे जाना ही होगा —क्योंकि उसे सत्य को खोजना है, सत्य को जानना है, या फिर मर जाना है। उसे अपना मार्ग खोजना है।

इसीलिए तो मुझे अपने ही ढंग से चलते जाना है—किसी दूसरे और बेहतर सदगुरू की तलाश नहीं करनी। क्योंकि कोई और बेहतर है ही नहीं....

फिर वह आगे कहता है, आप उपलब्ध हो चुके है। मैं आप से दूर इसलिए नहीं जा रहा हूं कि आपके प्रति मुझे कुछ संदेह है। नहीं मुझे आपके प्रति बिलकुल संदेह नहीं है। मेरी आप पर श्रद्धा है। मैंने आपके सान्निध्य में, आपके चरणों में कुछ अज्ञात की झलक मिली है। आपके माध्यम से मैनें यथार्थ को देखा है। सचाई का साक्षात्कार किया है। मैं आपके प्रति अनुगृहीत हूं, लेकिन फिर भी मुझे जाना होगा।

सिद्धार्थ का व्यक्तित्व ही ऐसा नहीं है जो शिष्यत्व ग्रहण कर सकता हो। इसके बाद वह संसार में वापस चला जाता है। और वह संसार में जीने लगता है। कुछ समय तक सिद्धार्थ एक वेश्या के साथ रहता है। उसके साथ रहकर वह यह जानने समझने की कोशिश करता है कि भोग का आसक्ति का, मोह का, बंधन का रंग-ढंग और रूप क्या होता है। उसके साथ रहकर वह संसार के रंग-ढंग और पाप-पुण्य की प्रक्रिया को जानता है। समझता है, जीता है। इस तरह से संसार को भोगते हुए, बहुत सी पीड़ाओं, निराशाओं, हताशाओं से गुजरकर उसमें बोध का उदय होता है। उसका मार्ग लंबा है, लेकिन वह बिना किसी भय के निर्भीकता पूर्वक , थिर मन से आग बढ़ता चला जाता है। इसके लिए चाहे उसे कोई भी कीमत क्यों ने चुकानी पड़े। वह तैयार है। या तो मरना है या पाना है। सिद्धार्थ ने अपने स्वभाव को पहचान लिया है और वह उसी के अनुरूप चल पड़ता है।

अपने सहज-स्वभाव को पहचान लेना आध्यात्मिक खोज में सर्वाधिक आधारभूत और महत्वपूर्ण बात है। अगर व्यक्ति इस बात को लेकर दुविधा में है कि उसका स्वभाव या स्वरूप किस प्रकार का है–

''ओ श्रेष्ठतम, असीम प्रतिष्ठा के स्वामी, निस्संदिग्ध रूप से में आपकी देशनाओं पर श्रद्धा करता हूं। आपके द्वारा बताई हुई हर बात एकदम स्पष्ट और स्वयं सिद्ध है। आप संसार को समग्र अटूट शृंखला के रूप में बताते है। जो पूर्णरूपेण सुसंगत है। और बड़े और छोटे, सभी को एक ही धारा-प्रवाह में आबद्ध किए हुए है। एक क्षण को

भी मुझे आपके बुद्ध होने के प्रति संदेह नहीं है। आप उस परम अवस्था को उपलब्ध हो चुके है। जहां पहुंचने के लिए न जाने कितने लोग प्रयासरत है। आपने स्वयं के असाध्य श्रम और खोज से बुद्धत्व को हासिल किया है। आपके किन्हीं भी धर्म-देशनाओं द्वारा कुछ भी नहीं सीखा है। और इसीलिए मैं सोचता हूं, ओ श्रेष्ठतम, असीम, प्रतिष्ठा के स्वामी, कि कोई भी व्यक्ति धर्म देशनाओं द्वारा मुक्ति नहीं पा सकता है। आप अपनी देशनाओं के माध्यम से किसी को यह नहीं बता सकते कि आपको संबोधि के क्षण में क्या धटित हुआ—वह रूपांतरण जिसे बुद्ध ने स्वयं अनुभव किया। वह गुह्मातम रहस्य क्या है—जिसे लाखों-लाखों में सिर्फ बुद्ध ने अनुभव किया।''

सिद्धार्थ का बुद्ध से मिलना हुआ। उसने बुद्ध को सुना। जो कुछ बुद्ध कह रहे थे उस सौंदर्य को उसने अनुभव किया।

उसकी उपलब्धि उनकी संबोधि को सिद्धार्थ ने महसूस किया। बुद्ध की ध्यान की उर्जा ने सिद्धार्थ के ह्रदय को छुआ।

वह बुद्ध को छोड़ कर अपने किसी अहंकार के कारण नहीं जा रहा। वह किसी और बड़े गुरु में नहीं जा रहा। बाद में सिद्धार्थ एक नाविक बन जाता है। लोगों को नदी पर करते-करते वह नदी के भावों में बह जाता है। कब नदी उदास होती है, कब नदी शांत होती है, कब उसमें उत्तेजना आती है, कब वह प्रसन्न होती है। कब वह क्रोध में उफनती है। ये सारे बोध वह पीता रहता है आपने अंतस में। वह अपने उद्वेग भी देखता रहता है। धीरे-धीरे वह शांत हो जाता है। और वह उस सब को पा लेता है। जिस के लिए उसने जीवन दाव पर लगया था। उसकी सुवास, उसकी सुगंध नदी पार जाने वाले महसूस करने लगते है। उसकी आंखे नदी की गहराई से भी गहरी और शांत हो जाती है।

हरमन हेस ने सिद्धार्थ लिखा नहीं है....वह एक जर्मन लेखक था। वह भारत के धर्म संप्रदाय के विषय में भी ज्यादा नहीं जान पाया। पर उसका पात्र जो उसने अपनी कलम से पैदा किया सच में जीवित हो उठा है। उपन्यास के खत्म होते-होते आदमी उसमें खो जाता है।

ओशो

पतंजलि का योग सूत्र—4

7/ मिटिंग्ज़ विद रिमार्केबल मैन-(गुरूजिएफ)

असाधारण लोगो से मुलाक़ातें-(जार्ज गुरजिएफ)

Meetings with Remarkable-G. I. Gurdjieff

(एक आसाधारण इंसान द्वारा लिखी गई असाधारण किताब। बीसवीं सदी का रहस्यदर्शी जार्ज गुरजिएफ कॉकेशन में पैदा हुआ और उसने मूलत: योरोप और अमेरिका में अपना आध्यात्मिक संदेश फैलाया। यह किताब उसके जीवन के कुछ प्रसंगों का, उन प्रसंगों की प्रमुख भूमिका निभाने वाले कुछ अद्‌भुत व्यक्तियों का चित्रण है जिन्होंने गुरजिएफ की चेतना को प्रभावित और शिल्पित किया।)

गुरजिएफ सत्य का खोजी था। उसे कुदरत ने कुछ अतींद्रिय शक्तियां दे रखी थी। उनका विकास और उनका उपयोग कर जीवन के कुछ गहन रहस्यों को खोजने में और बाद में उन्हें अपने शिष्यों को बांटने में गुरूजिएफ का जीवन व्यतीत हुआ।

गुरजिएफ को जीवन के सफर में जो लोग मिले उनमें नौ लोगों को चुन कर उनका अनूठापन उसने इस किताब में सशक्त रूप से चित्रित किया है। ये दस लोग है: उसके पिता, पिता का जिगरी दोस्त, और गुरजिएफ के पहले शिक्षक डीन बॉर्श।

तीसरा चरित्र हे, बोगेचेस्की या फादर एवलिसी। यह व्यक्ति श्वेत ब्रदरहुड का सदस्य था जो कि ''डेड सी' ' के किनारे बसा हुआ था। यह ब्रदरहुड ईसा के जन्म के बारह सौ वर्ष पूर्व बना था। और कहा जाता है कि इस ब्रदरहुड में ईसा की प्रथम दीक्षा हुई थी।

गुरजिएफ लिखता है: ''बोगेचेस्की ने जब मुझे पढ़ाना शुरू किया तब वे फादर बनने ही बाले थे। वे बहुत ही मिलनसार आदमी थे इसलिए उनके पास कार्स शहर के बुद्धिमान लोगों का जमघट बना रहता था। वे लोग जीवन की गहन बातों पर चर्चा करते जिसे मैं बहुत ध्यान से सुनता था। वे लो प्ले चेट, आत्माओं के साथ वार्तालाप, सम्मोहन, इत्यादि के प्रयोग करते थे। मुझे उनमें बहुत रस था। अतींद्रिय घटनाओं का रहस्य खोजना मेरे जीवन का मकसद था।

नैतिकता:

नैतिकता के बारे में बोगेचेस्की के बहुत मौलिक विचार थे। उन्होंने मुझे सिखाया कि नीति दो तरह की होती है: वस्तुगत और व्यक्तिगत, वस्तुगत नीति जीवन में अंतर्निहित है; वह हर देश-काल में समान है लेकिन व्यक्तिगत नीति अनेक प्रकार के संस्कार, धारणाएं डालते है जब वे बहुत कोमल होते है। उनकी अंतरात्मा, जो कि प्रकृति से मिली हुई है, विकसित नहीं होने दी जाती। इसलिए बड़े होने पर वे दूसरे लोग को उन्हीं धारणाओं के माध्यम से परखते है। लेकिन तुम इस तरह मत बनना। अपनी अंतरात्मा की शुद्धता को बनाये रखना।

कैप्टन पोगोसिन या मिस्टर एक्स एक ऐसा खोजी है जो गुरजिएफ को उसकी अंतर जगत की खोज के दौरान मिला। ये दोनों एक पुराने असीरियन रहस्य विद्यालय को खोजने चल पड़े। इस विद्यालय का नक्शा उन्हें अलेक्झांड्रिया के पास, पुराने खंडहरों का उत्खनन करते हुए मिला। यह रहस्य विद्यालय बैबिलॉन में कोई 2500 बी. सी. (ईसा पूर्व) था। गुरूजिएफ के लेखन की खूबी यह है कि वह अपनी खोज के उतने ही पहलू को उभारता हे जिससे पढ़ने वाले की उत्सुकता जगह। जैसे ही पाठक उसके वर्णन में डूबने लगता है वैसे ही वह अपना रूख बदल देता है और कहानी को एक रहस्यमय मोड़ पर अधूरी छोड़ देता है।

रहस्य:

रहस्य की खोज में उसे एक और हमसफर मिला, प्रिंस यूरी ल्युबोवेडस्की। वह शख्स एक खूबसूरत, रहस्यवादी राजकुमार था। अपनी समूची राज संपत्ति को ठुकरा कर वह गुरजिएफ जैसे खोजियों के साथ रहस्य विद्यालयों और गुप्त मठों, आश्रमों के साथ गोबी के रेगिस्तान में खोये हुए शहरों की खोज करने के लिए यात्रा करता रहा। गोबी रेगिस्तान हिंदु कुश और हिमालय पर्वत की उत्तर दिशा में बना है और इसकी रेत बहुत प्राचीन है। या तो वह एक विशाल समुंदरी भूमि था, या हिमालय की पर्वत श्रेणियों के पत्थर-कणों से बना था। जिन्हें तेज आंधियां उड़ा कर ले गई थी। जो भी हो, गोबी रेगिस्तान अपने सीने में कई रहस्य विद्यालय और गुह्म रहस्य छुपाए हुए है। जो केवल सुपात्र साधकों के लिए ही प्रकट होते है। इस अभियान के बीच एक आश्रम में यूरी ल्युबोवेडस्की का निधन हो जाता है।

डॉ एकिम बे एक महान जादूगर था जिसके साथ गुरजिएफ ने एशिया और अफ्रिका की यात्रा की। गुरजिएफ की लेखन-शैली का एक और मजेदार पहलू इस किताब में उभरता है। और वह यह कि इन असाधारण पुरूषों का वर्णन करने के बहाने वह अपनी यात्राओं के दौरान घटित अनेक असाधारण घटनाओं का बयान करता जाता है।

जैसे आमेंनिया में येजिदि जमात में प्रचलित परंपरागत संस्कार का चित्रण करते हुए गुरजिएफ ने एक बेबूझ घटना का जिक्र किया है। येजिदि बच्चे के चारों और अगर चॉक से एक वर्तुल खींच जाये तो वह बच्चा उस वर्तुल से बाहर नहीं आ सकता। आप लाख कोशिश करें, उस बच्चे को बाहर नहीं ला सकते। वह रोता-चीखता भीतर खड़ा रहता है। ऐसी घटनाओं को देखकर गुरजिएफ के मस्तिष्क में विचार-मंथन शुरू हो जाता है और वह मनुष्य के मन की जटिलता में उतर जाता है।

डॉ एकिम बे के साथ पर्शिया में भ्रमण करते हुए तेईस लोगों का समूह टेब्रिज शहर पहुंचता है। वहां वे एक पर्सियन दरवेश के बारे में सुनते है। वह उस क्षेत्र में मशहूर है। तेरह दिन की लंबी यात्रा करके वे लोग उस दरवेश के पास पहुंचते है। दरवेश के पास पहुंचकर एक मजेदार वाकया होता है। उन दिनों गुरजिएफ भारतीय योगियों से हठयोग सीख कर रोज उसका अभ्यास करता था। उसमें एक बात यह भी होती है कि भोजन को बहुत बारीक चबाया जाये। ताकि पेट की अंतड़ियों को पचाने में सुविधा हो। सब लोग खा चूकते है और गुरजिएफ चबाता ही रहता है। यह देखकर दरवेश उससे पूछता है: ''तू इस तरह क्यों खा रहा है?''

गुरजिएफ कहता है यह मैंने भारतीय योगियों से सिखा है। इससे पेट की मांसपेशियों पर जोर नहीं पड़ता। दरवेश उसके सामने बिलकुल दूसरा पहलू रखता है: ''इस तरह तू अपनी अंतड़ियों को आलसी बना रहा है। उन्हें काम करने की आदत ही नहीं रहेगी। युवावस्था में तो भोजन बिना चबाये खाना चाहिए ताकि, अंतड़ियों की मांसपेशियों का व्यायाम होता रहे।

एक ही चीज को देखने का बिलकुल अलग पहलू गुरजिएफ को आश्चर्य चकित कर गया और वह दरवेश के सामने नतमस्तक हो गया।

अन्य दो असाधारण व्यक्ति है: प्योत्र कार्पेन्को और प्रोफेसर स्क्रिदलोव।

ये दोनों व्यक्ति गुरजिएफ की मंडली के सदस्य थे। जिसका नाम था ''Seekers of Truth'' सत्य के खोजी। प्रोफेसर स्क्रिदलोव गुरजिएफ से बहुत बुजुर्ग थे। वे गुरजिएफ के उस अभियान में शामिल हुए जिसमें गुरजिएफ, इस्लाम के रहस्यों को जानने के लिए बुखारा की यात्रा पर चल पडा। इन दोनों ने फ़क़ीरों का भेस धारण किया इस्लाम के कलाम और आयतें सीखी ताकि बुखारा में आजाद घूम सके। क्योंकि ये दोनों ईसाई थे। और ईसाई यानि काफ़िर। काफ़िरों को इस्लामिक देशों में रहने की इजाजत नहीं थी।

वहां उन्हें एक गुप्त ब्रदरहुड का वरिष्ठ सदस्य मिलता है। फादर जियोवानी, जो उन्हें उसके रहस्य विद्यालय में ले जाता है। फादर जियोवानी एक गहरा रहस्यदर्शी है। उसके अंतरतम में उठती हुई तरंगों और उसकी प्रज्ञा पूर्ण बातों से गुरजिएफ और उसके मित्र का अंतर जगत बहुत समृद्ध होता है।

अनेक असाधारण लोगों की रोमांचकारी दास्तानों से गुजरते हुए अंतत: पाठक के मनस पटल पर जो सर्वाधिक असाधारण व्यक्ति का चित्र अंकित होता है, वह स्वयं गुरजिएफ। गुरजिएफ सत्य के सागर की खोज में बहती हुई एक नदी है जिसके किनारे समय-समय पर कुछ असाधारण व्यक्तियों ने घाट बना दिये है। लेकिन सबसे प्रबल है गुरजिएफ की अदम्य अभीप्सा और अथक परिश्रम। उसके हाथों में इतने तरह के हुनर थे कि वह लगभग हर तरह की कला और कौशल जानता था। अंत: जब भी उसे पैसे की कमी महसूस होती वह सिलाई, कढ़ाई, बढ़ई का काम, मशीनों को दूरस्थ करना। सम्मोहन विद्या, और अन्य न जाने जमाने भर के काम कर के वह पैसा कमा लेता। और पर्याप्त धन इकट्ठ होने पर कामकाज बंद करके ये अभियान पर निकल पड़ता। वह अनेक बार भारत भी आया और वहां के रहस्य विद्यालयों में उसके गुह्म विद्या का प्रशिक्षण लिया।

पुस्तक की भूमिका में गुरजिएफ खुद ही असाधारण आदमी की परिभाषा देता है:

''मेरी दृष्टि में वह आदमी आसाधारण है जो अपने मस्तिष्क की सर्जनशील शक्ति के द्वारा अपने आसपास के व्यक्तियों से अलग दिखाई देता है। उसके अंतरतम से प्रतिभा की जो अभिव्यक्ति होती है। उसके बारे में वह संयमित होता है। साथ ही साथ दूसरों की कमज़ोरियों के विषय में विसहिष्णु और न्याय पूर्ण होता है।

गुरजिएफ की लेखन शैली के बारे में दो शब्द कहने जरूरी है। उसकी लेखन शैली प्राचीन ग्रंथों जैसी है। जो क़िस्सों और कहानियों से बनी होती है। भारतीय ग्रंथ हितोपदेश या पंच तंत्र की भांति गुरजिएफ एक कहानी से दूसरी कहानी निकालता है और बात को आगे बढ़ाता है।

उसकी अपनी शिक्षा अनूठे ढंग से हुई है। जो कि हर व्यक्ति की होनी चाहिए। उस शिक्षा ने उसके मन और भावों को विकसित कर उसे एक सुगठित निजता दी है। इसे वह ''मनुष्य का सुरीला विकास'' कहता है। लेखन के दौरान वह आधुनिक सभ्यता संस्कृति, साहित्य, व्यक्तित्व इन सब पर कटाक्ष करता जाता है। और उनके विकल्प भी सुझाता है।

समस्त खोजियों के लिए यह पुस्तक पठनीय ही नहीं बल्कि चिंतनीय और माननीय भी है। पेंग्विन बुक्स द्वारा इंग्लैड में प्रकाशित यह पुस्तक भारत के बड़े पुस्तकों की दुकानों में सहज मिल जाती है।

ओशो की दृष्टि में:

यह अद्‌भुत रचना है। गुरजिएफ ने पूरे संसार में भ्रमण किया—खास कर मध्य पूर्व और भारत में। वह तिब्बत गय; इतना ही नहीं वह दलाई लामा का शिक्षक रहा—वर्तमान नहीं, इससे पहले जो था उसका। तिब्बती भाषा में गुरजिएफ का नाम ''दोरजेब'' लिखा है। कई लोग सोचते है कि दोरजेब कोई और है। लेकिन वह जार्ज गुरजिएफ ही है। अंग्रेजी सरकार को यह बात मालूम थी कि गुरजिएफ कई साल तिब्बत रहा था। बल्कि वह ल्हासा के महल में कई साल रहा। उन्होंने उसे इंग्लैड नहीं रहने दिया। वह असल में इंग्लैड रहना चाहता था लेकिन उसे इजाजत नहीं मिली।

''मिटिंग्ज़ विद रिमार्केबल मैन'' गुरजिएफ के संस्मरण है। इसमे उन सब विलक्षण लोगों की आदरणीय स्मृतियां है जिन्हें वह अपने जीवन में मिला था—सूफी, भारतीय रहस्यदर्शी, तिब्बती लामा, जापानी ज़ेन साधु ....मैं कहना चाहूंगा कि उसने सभी के बारे में नहीं लिखा। उसके कईयों को इस दस्तावेज से बहार रखा। क्योंकि वह किताब बाजार में बिकने वाली थी। और उसे बाजार की मांग को पूरा करना था। मुझे किसी की

मांग पूरी नहीं करनी। में वह आदमी नहीं हूं जो बाजार की कीमत करे। इसलिए मैं कह सकता हूं कि उसने सबसे अर्थपूर्ण लोगों को छोड़ दिया। लेकिन उसने जो भी लिखा है वह बहुत सुंदर लिखा है। उससे मेरी आंखों में आंसू आ जाते है। जब कुछ सुंदर होता है तब मेरी आँखो में आंसू आ जाते है। किसी का सम्मान करने का इससे अलावा और कोई उपाय नहीं है।

यह ऐसी किताब है जिसका पाठ होना चाहिए। उसे केवल पढ़ना ठीक नहीं है, अंग्रेजी में ''पाठ'' के लिए कोई शब्द नहीं है। पाठ का अर्थ है, पढ़ना। एक चीज को रोज-रोज जीवन भर पढ़ना। उसका अनुवाद ''पढ़ना'' नहीं हो सकता। पश्चिम में तुम एक पॉकेट बुक पढ़ते हो और उसे एक बार पढ़कर फेंक देते हो। यह अध्ययन भी नहीं है। क्योंकि अध्ययन एकाग्र होकर शब्दों के अर्थों को समझने का प्रयास है। पाठ न तो पढ़ना है, न अध्ययन कना है; वह कुछ और है। आनंदपूर्वक दोहराना—इतने आनंदपूर्वक कि वि तुम्हारे ह्रदय को छेदता है। तुम्हारी सांस बन जाता है। इस प्रकिया में पूरा जीवन लग जाता है। अगर तुम्हें असली किताबें पढ़नी हो तो यह जरूरी है।

जैसी कि, गुरजिएफ की मिटिंग्ज़ विद रिमार्केबल मैन'' है।

यह ''डॉन जुआन'' जैसा उपन्यास नहीं है। वह एक अमरीकी व्यक्ति कार्लोस कैस्टेनडा द्वारा निर्मित किया गया काल्पनिक चरित्र था। इस आदमी ने मनुष्य जाति का बड़ा नुकसान किया है। अध्यात्मिक उपन्यास नहीं लिखने चाहिए। क्योंकि फिर लोग सोचने लगते है कि अध्यात्मिक उपन्यास के अलाव कुछ भी नहीं है।

''मिटिंग्ज़ विद रिमार्केबल मैन'' असली किताब है। गुरजिएफ ने जिन लोगों की चर्चा की है वे अभी जिंदा है। उनमें से कुछ एक से मैं खुद मिला हूं। मैं इस बात का गवाह हूं कि वे लोग काल्पनिक नहीं है। हालांकि मैं गुरजिएफ को भी माफ नहीं कर सकता क्योंकि उसने कुछ बहुत असाधारण लोगों का उल्लेख नहीं किया।

बाजार से समझौता करने की कोई जरूरत नहीं थी। कोई भी जरूरत नहीं थी। वह इतना ताकतवर आदमी था, मुझे अचरज होता है, उसने समझौता क्यों किया। उसने असली महत्वपूर्ण लोगों को क्यों छोड़ दिया। मैं उन लोगों से मिला हूं, और उन्होंने मुझे बताया कि गुरजिएफ उनके पास गया था। अब वे बहुत बूढे हो चुके है। फिर भी किताब अच्छी है; अधूरी है, आधी है लेकिन कीमती है।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

8/ थियोलॉजिया मिस्टिका-(डियोनोसियस)

थियोलॉजिया मिस्टिका—(एलन वॉटस)

Woody Allen Whats- New Pussycat Stock

अगर ''गागर में सागर'' इस मुहावरे का सही इस्तेमाल करना हो तो वह इस छोटी सी पुस्तिका के लिए किया जा सकता है। इतने थोड़े से शब्दों में इतना गहरा आशय भर देना, जैसे एक-एक शब्द अणु बम हो, एक रहस्यदर्शी ही कर सकता है।

ग्रीक रहस्यदर्शी डियोनोसियस के वचनों ने यही कमाल कर दिखाया है। इसीलिए ओशो न उन वचनों के अपने प्रवचनों के काबिल समझा। डियोनोसियस पर दिये गये ओशो के प्रवचनों की किताब उसी नाम से प्रकाशित है। और डियोनोसियस को उन्होंने अपनी मनपसंद किताबों में भी सम्मिलित किया है।

पूरी किताब कुल 20 पन्नों की है। उसमें दस पन्नों में सुप्रसिद्ध अमरीकी लेखक एलन वॉटस की पठनीय भूमिका है। और दस पन्नों में डियोनोसियस के पाँच संक्षिप्त आलेख है। यह किताब इतनी दुर्लभ है कि आम दुकानों में मिलनी मुश्किल है। अंत: मैंने ओशो के निजी पुस्तकालय की शरण ली। और जो हाथ में आया वह अद्‌भुत था। किताब के आखिरी पृष्ठ पर ओशो ने अपने हाथों से बनायी हुई उनके प्रवचनों की रूपरेखा है। वह इस प्रकार है:

डियोनोसियस: संत डियोनोसियस और टिमोथी के वचनों पर।

पाँच सूत्र। हर सूत्र के बाद दो दिन प्रश्न-उत्तर। कुल पंद्रह प्रवचन।

दिनांक: 11 अगस्त से 25 अगस्त, 1980।

इससे हमें यह पता चलता है कि ओशो अपनी किताबें किस प्रकार संयोजित करते थे।

एलन वॉटस अपनी भूमिका में लिखता है कि ईसाइयत की धारा में रहस्यवाद का खिलना एक विरोधी स्वर की भांति देखा जात था। जबकि विरोधाभास यह है कि स्वयं जीसस एक रहस्यदर्शी थे, उन्होंने परमात्मा के साथ मिलन को अनुभव किया था। लेकिन उनके आसपास उनके बाद जो धर्म बना वह रहस्यवाद का घोर विरोधी था।

चर्च के धर्मगुरू जीसस के जीवन के करिश्मे बताकर लोगों को प्रभावित तो करते रहे लेकिन वे करिश्मे चेतना के जिस तल से प्रगट हुए वहां तक पहुंचने के लिए लोगों को इजाजत नहीं थी।

ईसाइयत उसके मूल स्त्रोत: जीसस से बिछुड़ गई। ओर एक नैतिक संगठन बन गई जो अपराध भाव पर खड़ा था—जीसस को सूली देने का, उस जैसे, महान न बनने का अपराध भाव। तथापि ईसाई जगत में जो रहस्यवाद फला फूला, वह ग्रीक भाषा से अनुवादित डियोनोसियस के चंद पन्नों के कारण जो ''थियोलॉजिया मिस्टिका'' नाम सक प्रसिद्ध हुए। वह संभवत: एथेन्स का पहला विशप था जिसका वजू—(बायबल) में उल्लेख किया गया। यही उल्लेख था जिसकी वजह से मध्ययुगीन धर्म वैज्ञानिकों की नजरों में डियोनोसियस की महिमा बढ़ गई। सेंट थॉमस के वचनों में ही इन वक्तव्यों को सम्मिलित किया गया था।

जहां ईश्वर को लकड़ी और पत्थर की मूर्तियों की शक्ल में पूजा जाता था वहां उसे महज एक निराकार शून्य बताना धार्मिक अपराध ही था। लेकिन अब, बीसवीं सदी में, डियोनोसियस जैसों के रहस्यवाद को समझने का माहौल बन गया। उसकी एक वजह यह भी है कि पश्चिम अब एशियाई संस्कृति और अध्यात्म से परिचित होने लगा है।

डियोनोसियस की तह में उतरना हो तो हमें समझना चाहिए कि वह दो तरह की धार्मिक भाषा का प्रयोग करता है। एक ईश्वर के संबंध में—जैसे, ईश्वर प्रकाश है, आनंद है। शक्ति है इत्यादि। लेकिन ये सब उपमाएं है। सीधे ''ईश्वर क्या है'' इसे कहा नहीं जा सकता। ठीक उसी तरह जैसे संगीत क्या है इसका वर्णन किया नहीं जा सकता। दूसरा प्रयोग है, ''नेति-नेति'' जो उपनिषदों ने क्या है। ईश्वर क्या नहीं है। यह कहना अधिक सरल है। बजाय उसके कि वह क्या है।

फिर डियोनोसियस, और उसके पश्चात सेंट थॉमस, स्पष्ट करते है: ''हमें नकारात्मक ढंग से ही चलना चाहिए क्योंकि ईश्वर इतनी विराट सत्ता है कि हमारी बुद्धि की एक भी धारणा उससे मेल नहीं खा सकती। जैसे पत्थर में छिपी हुई मूर्ति को प्रगट करने के लिए अनावश्यक पर्तों को हटाना पड़ता है। फिर मूर्ति अपने आप प्रगट हो जाती है। वैसे ही ईश्वर के आसपास की कल्पनाओं को हटाना पड़ता है। फिर वह तो है ही—लेकिन सोच-विचार का विषय नहीं, अनुभव का विषय है।

डियोनोसियस के वक्तव्य कुछ इस गुणवत्ता के है कि लगता है, भारतीय अध्यात्म से उनका परिचय रहा होगा। ''प्लॉटिनस (इ.स.242) पंजाब आया था। सीरिया और भारत के बीच व्यापार संबंध थे। भारतीय साधु अलेक्झांड्रिया और रोम जाते थे। ''थियोलॉजिया मिस्टिका'' के अंतिम परिच्छेद में मांडूक्य उपनिषाद प्रतिध्वनित होता है।

ब्रह्म का वर्णन करते हुए डियोनोसियस कहता है: ''जो उसे समझ नहीं पाते वे ही समझ सकते है। जो समझते है, वे जानते ही नहीं।''

जो कल्पना करते है वह उसकी कल्पना नहीं कर सकते। जो उसे नहीं समझते वे ही जान सकते है।''

रहस्यवाद हमें इसलिए बेबूझ लगता है क्योंकि पश्चिम से प्रभावित तार्किक बुद्धि, ''मौन, शून्यता, नकारात्मक कथन अक्रिया।'' इस सब से भयभीत है। आधुनिक आदमी निरंतर शोरगुल करता रहता है। संसार में तो करता ही है लेकिन आस्तित्व के करीब जाकर भी उसे चुप रहना नहीं आता।

इसलिए डियोनोसियस जब कहता है: ''उसे न देखते हुए, न जानते हुए हम देख और जान सकते है। जो दृष्टि और ज्ञान के पास है।'' तो आधुनिक मनुष्य उसे समझ नहीं पाता। यह विरोधाभास ही अस्तित्व ही बुनियाद है।

किताब की एक झलक:

यह आलेख संत डियोनोसियस ने टिमोथी को संबोधित किया है।

हे अस्तित्व के पार की त्रिमूर्ति, ईसाइयों की परिपूर्ण प्रज्ञा के रक्षक और उनके पालक देवताओं, हमें रहस्यपूर्ण साक्षात्कार की ऊँचाइयों पर ले जाओं। जो समस्त विचार और प्रकाश से ऊपर है: जिस मौन के चमकीले अंधकार में, जो एकांत में प्रकट होता है। दिव्य सत्य के सरल, आत्यंतिक और अपरिवर्तनशील रहस्य छिपे हुए रहते है।

यह अंधकार यद्यपि गहन रूप से दुर्भेद्य है, दैदीरूयमान रूप से स्पष्ट है। और यद्यपि वह स्पर्श और दृष्टि के परे है, वह हमारे अंधे मस्तिष्कों को भावतित सौंदर्य से भर देता है।

यह मेरी प्रार्थना है। और तुम्हारे लिए, प्यारे टिमोथी—तुम रहस्यमय ध्यान में श्रम करते हुए, इंद्रियों का त्याग करो। बुद्धि की गतिविधि को, जो भी महसूस किया जाता है और जाना जाता है, और जो नहीं है, और है, उसे भी छोड़ दो। इस तरह तुम अनजाने में उसकी अखंडता को उपलब्ध होओगे जो सभी अस्तित्व और ज्ञान के पार है। इस तरह, सब चीजों से अदम्य, परम और विशुद्ध विराग पाकर तुम दिव्य अंधकार की उस उज्जवलता तक उठोगे जो अस्तित्व के पार है और सबसे श्रेष्ठ और स्वतंत्र है।

ओशो का नजरिया:

ईसाइयत ने रहस्यवाद की सारी संभावनाएं नष्ट कर दीं। उसकी यातनाऔ से बचने के दो ही उपाय थे: एक था, या तो भूमिगत हो जाओ या किसी रेगिस्तान या पहाड़ों में चले जाओ; या फिर दूसरी संभवना यह थी कि बाहर से औपचारिक ईसाई बने रहो, ईसाई भाषा का उपयोग करो और तुम्हारा आंतरिक काम चुपचाप करते रहो।

डियोनोसियस ने ही किया। तुम्हें सुनकर आश्चर्य होगा कि वह एथिक्स का पहला बिशप था। अद्‌भुत बुद्धिमान आदमी रहा होगा वह। एथिक्स का बिशप बने रहना, और फिर भी बुद्ध, लाओत्से और जुरतुस्त्र की भांति जीवन के गहनत्म रहस्यों को भेदना.....उसकी बुद्धिमता विरली होगी। वह मुखौटा ओढने में सफल रहा। उसने ईसाई संगठन को धोखा दिया।

उसके वचन तब तक प्रकाशित नहीं हुए जब तक वह जिंदा था। उसने इस तरह चाल चली कि उसके मरने के बाद ही उसका लेखन प्रकाशित हुआ। ऐसा न होता तो वह चर्च के द्वारा सताया जाता और उस पर मुकदमा चलाया जाता। और जो समझदार है, आत्मघाती नहीं है, वह अकारण यंत्रणा सहन नहीं करेगा। यदि जरूरी हो तो वह चुनौती स्वीकार करेगा, लेकिन वह उसकी तलाश नहीं कर रहा है।

डियोनोसियस विरल आदमी है। मूढ़ ईसाइयत और उसके कठोर संगठन के साथ रहकर बिशप होकर भी चेतना के अंतिम शिखर को छूना क़ाबिले तारीफ है। इससे पहले कि हम इन सूत्रों में प्रवेश करें कुछ बातें समझ लेने जैसी है।

एक: ये सूत्र डियोनोसियस के एक शिष्य टिमोथी को लिखे गये पत्र है। जो भी श्रेष्ठ है, परवर्ती है, वह सिर्फ शिष्यों से कहा जाता है—उनसे जिनके साथ तुम्हारा ह्रदय धड़कता है, जो तुमसे प्रेम धागे से बंधे है।

दूसरी: सत्य का अनुभव संगीत जैसा है। तुम संगीत का आनंद ले सकते हो। लेकिन दूसरे से उस अनुभव को बांट नहीं सकते।

आध्यात्मिक अनुभव भी इसी प्रकार का है। इसीलिए प्रामाणिक धर्‌म सदा रहस्यपूर्ण होता है। रहस्य से मेरा मतलब है, जो महसूस किया जा सकता है, अनुभव किया जा सकता है। लेकिन जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

डियोनोसियस ने उसे खास नाम दिया है: एग्नोसिया।

तुमने शब्द एग्नोस्टिस सुना होगा। बर्ट्रेंड रसेल ने खुद के लिए यह विशेषण चूना है। नास्तिक बहता है: ''ईश्वर नहीं है''—लेकिन वह इस तरह कहता है मानों वह जानता हो। मानो उसने सत्य की पूरी खोज कर ली और जान लिया कि ईश्वर नहीं है। यह घोषणा करके वह अपने ज्ञान की घोषणा कर रहा है। वह गनॉस्टिक है, ज्ञान वादी है, वह जानता है। ''ग्नोसिस'' याने ज्ञान। आस्तिक कहता है, ईश्वर है—मानो वह जानता है, उसने पा लिया है। वह भी गनॉस्टिक है, ज्ञान वादी है।

गनॉस्टिक का अर्थ है जो कहता है: ''मैं नहीं जानता—न इस प्रकार, न उस प्रकार। मैं निपट आज्ञानी हूं।'' इसलिए बर्ट्रेंड रसेल ने कहा है: ''मैं अज्ञान वादी हूं।'' निश्चित ही, रसे ने यह शब्द डियोनोसियस से चुना होगा।

डियोनोसियस—मैं उनके वक्तव्यों वर बोला हूं। वे सिर्फ टुकड़े है जो उसके शिष्य ने लिखे है। लेकिन मैं उस पर इसलिए बोला हूं ताकि दुनिया को खबर हो कि डियोनोसियस जैसे व्यक्तियों का विस्मरण न हो जाए। वे असली लोग है।

असली लोग तो उंगलियों पर गिने जायेंगे। असली व्यक्ति वह है जिसने असल का (सत्य का) दरस-परस किया है। सिर्फ बाहर से एक विषय की भांति नहीं बल्कि भीतर से, उसकी अपनी सत्ता की तरह। डियोनोसियस बुद्धों के महिमाशाली जगत का हिस्सा हे। मैं उसके कुछ वक्तव्यों का उल्लेख कर रहा हूं....मैं उसे किताब नहीं कह सकता; किताब टुकड़ों से कुछ ज्यादा होनी चाहिए।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

9/ दि मैडमैन:(खलील जिब्रान)

दि मैडमैन: (खलील जिब्रान)

The Madman -Khalil Gibran

मैडमैन खलील जिब्रान की प्रतीक कथाएं है। उसने एक पागल आदमी के ज़रिये कहलवायी है। यह पागल वस्तुत: एक रहस्यदर्शी फकीर है और वह दुनियां की नजरों में पागल है। दूसरी तरफ से देखा जाये तो वह वास्तव में समझदार है क्योंकि उसकी आँख खुल गई है। इस छोटी सी किताब में कुछ 34 प्रतीक कथाएं है जो ईसप की कहानियों की याद दिलाती है।

किताब की शुरूआत पागल की जबानी से होती है। वह कहता है, ''तुम मुझे पूछते हो मैं कैसे पागल हुआ। वह ऐसे हुआ, एक दिन बहुत से देवताओं के जन्मनें के पहले मैं गहरी नींद से जागा और मैंने पाया कि मेरे मुखौटे चोरी हो गये है। वे सात मुखौटे जिन्हें मैंने सात जन्मों से गढ़ा और पहना था। मैं भीड़ भरे रास्तों पर यह चिल्लाता दौड़ा, चौर-चौर। बदमाश चौर। स्त्री-पुरूषों ने मेरी हंसी उड़ाई। उनमें से कुछ डर कर अपने घर में छुप गये। और जब मैं बाजार मैं पहुंचा तो छत पर खड़ा एक युवक चिल्लाया, ''यह आदमी पागल है।'' उसे देखने के लिए मैंने अपना चेहरा ऊपर किया ओर सूरज ने मेरे नग्न चेहरे को पहली बार चूमा। और मेरी रूह सूरज के प्यार से प्रज्वलित हो उठी। अब मेरी मुखौटों की चाह गिर गई।

मदहोश सा मैं चिल्लाया, ''धन्य है वे चोर जिन्होंने मेरे मुखौटे चुराये।''

इस प्रकार मैं पागल हुआ।

और अपने पागलपन में मुझे सुरक्षा और आजादी, दोनों मिलीं। अकेलेपन की आजादी, और कोई मुझे समझे इससे सुरक्षा। क्योंकि जो हमें समझते है वह हमारे भीतर किसी तत्व को कैद कर लेते है।

लेकिन में अपनी सुरक्षा पर बहुत नाज़ नहीं करना चाहता। कैद खाने में एक चोर भी तो दूसरे से सुरक्षित होता है।

किताब की एक झलक:

घास की पात ने कहा:

पतझड़ में एक पत्ते से घास की पात ने कहा, ''तुम नीचे गिरते हुए कितना शोर मचाते हो। मेरे शिशिर स्वप्नों को बिखेर देते हो।''

पत्ता क्रोधित हो बोला, ''बदज़ात, माटी मिली, बेसुरी, क्षुद्र कहीं की। तू ऊंची हवाओं में नहीं रहती, तू संगीत की ध्वनि को क्या जाने।''

फिर वह पतझड़ का पत्ता जमीन पर गिरा और सो गया। जब बसंत आया वह जागा, और तब वह घास की पात था। फिर पतझड़ आया, और शिशिर की नींद से उसकी पलकें भरी हुई उपर से हवा में से पत्तों की बौछार हो रही थी।

वह बुदबुदायी, उफ़, ये पतझड़ के पत्ते कितना शोर करते है। मेरे शिशिर-स्वप्नों को बिखेर देते है।

बिजूका

मैंने एक बार बिजूके से कहा, ''इस एकाकी खेत में खड़े होने से तुम ऊब गये होओगे।''

उसने कहा, दूसरों को डराने का मजा गहरा है और लंबा टिकता है। में कभी उससे थकता नहीं।''

एक मिनट सोचकर मैंने कहा, सच है, मैने भी यह मजा लिया है।

उसने कहा, ''जिनके अंदर घास भरी होती है वह ही इसे जान सकते है।

फिर मैं वहां से चला आया। पता नहीं उसने मेरी प्रशंसा की थी या मेरा अपमान किया था।

एक साल बीत गया। इस बीच वह बिजूका दार्शनिक हो गया था। और जब में दुबारा वहां से गुजरा तो दो कौवे उसके हैट के अंदर घोंसला बना रहे थे।''

दूसरी भाषा

पैदा होने के तीन दिन बाद, जैसे मैं अपने रेशमी झूले में लेटा हुआ था। अपने आसपास के नए जगत को आश्चर्य चकित नजरों से देखता हुआ—मेरी मां ने मेरी दाई से पूछा, ''मेरा बेटा कैसा है?''

दाई ने कहा, ''बहुत बढ़िया मादाम। मैंने उसे तीन बार दूध पिलाया। इससे पहले मैंने कभी इतने छोटे बच्चे को इतना प्रसन्न नहीं देखा था।

मुझे गुस्सा आया। मैं चीखा, ''यह सच नहीं है मां, मेरा बिस्तर सख्त है। और जो दूध मैने पिया वह कड़वा था। और उस स्तन की बदबू मेरी नाक में आ रही थी। और मैं बहुत दुःखी हूं।

लेकिन मेरी मां नहीं समझी, और न ही मेरी दाई। क्योंकि यह भाषा जो मैं बोल रहा था वह उस जगत की थी जिस जगत से मैं आया था।

मेरे जीवन के इक्कीसवें दिन, जब मेरा बाप्तिस्मा हो रहा था, पादरी ने मेरी मां से कहा, ''आपको प्रसन्न होना चाहिए मादाम, आपका बेटा ईसाई ही पैदा हुआ।''

मुझे आश्चर्य हुआ और मैने फादर से कहा, ''फिर स्वर्ग में तुम्हारी मां को दुखी होना चाहिए, क्योंकि तुम ईसाई नहीं पैदा हुए थे।

लेकिन मेरी भाषा पादरी की भी समझ में नहीं आई।

सात चाँद गुजर जाने के बाद एक दिन एक ज्योतिषी ने मुझे देखकर मेरी मां से कहा, ''आपका बेटा राजनैतिक होगा। और मनुष्य जाति का बड़ा नेता बनेगा।''

मैं चीखा, ''यह भविष्यवाणी गलत है। मैं संगीतज्ञ बनुगां। और संगीतज्ञ के अलावा कुछ भी नहीं बनुगां।''

लेकिन उस उम्र में मेरी भाषा किसी की भी समझ में नहीं आई। इस बात का मुझे बड़ा ही आश्चर्य हुआ।

तैंतीस साल के बाद—इसके दौरान मेरी मां, दाई और पादरी मर चुके थे (ईश्वर उनकी आत्मा को शांति) लेकिन ज्योतिषी अभी तक भी जीवित था। मैं उससे एक मंदिर के पास मिला। बात करते-करते उसने कहा, ''मैं हमेशा जानता था तुम एक दिन बड़े संगीतज्ञ बनोंगे। तुम छोटे थे तभी मैंने इसकी भविष्यवाणी कर दी थी।''

और मैंने उस का विश्वास किया क्योंकि अब मैं भी उस जगत की भाषा भूल गया हूं।

सूली चढ़ा–

मैंने लोगों से कहा, ''तुम मुझे सूली चाढ़ा दो।''

उन्होंने कहा: ''तुम्हारा खून हम अपने माथे पर क्यों ले।''

मैंने कहा: ''पागलों को सूली दिये बगैर तुम श्रेष्ठ कैसे होओगे?''

उन्होंने कबूल किया और मुझे सूली दी। सूली ने मुझे शांत कर दिया। और जब मैं धरती और आसमान के बीच लटका हुआ था, मुझे देखने के लिए उन्होंने अपने सिर ऊपर उठाये। और वे उन्मत्त हुए क्योंकि उनके सिर इससे पहले कभी ऊपर नहीं उठे थे।

जब वे मेरी और देख रहे थे तो एक ने पूछा, ''तुम क्या पाने की चेष्टा कर रहे हो?''

दूसरे ने कहां, ''किस कारण तुम अपनी बलि दे रहे हो?''

किसी तीसरे ने पूछा, ''क्या तुम यह कीमत देकर विश्व ख्याति पाना चाहते हो?''

चौथा बोला, ''देखो, देखो, वह कैसे मुस्कुरा रहा है, क्या इस पीड़ा को माफ किया जा सकता है?''

उन सब को एक साथ जवाब देते हुए मैंने कहा, ''इतना याद रखो कि मैं मुस्कुराया। न मैं कुछ पाने की चेष्टा कर रहा हूं। न अपनी बलि दे रहा हूं, न ख्याति की अभिलाष कर रहा हूं। और मुझे कुछ भी माफ नहीं करना। मुझे प्यास लगी है। और मैंने विनति की थी कि तुम मुझे मेरा खून पिलाओ। पागल की प्यास किस से बूझेगी सिवाय उसके खून से। मैं बुद्धू था और मैंने तुमसे जख्म मांगे। मैं तुम्हारे दिन और रातों में बंद था और मैंने उनसे भी लंबे दिन और रातों में प्रवेश करने का द्वार मांगा।''

और अब मैं जाता हूं, ''जिस तरह बाकी सब सूली-चढ़े हुए गये। यह मत सोचो कि हम सूली से थक गए। क्योंकि हमें बड़ी से बड़ी भीड़ के हाथों सूली मिलनी चाहिए—इससे भी बड़ी धरती और आसमान के बीच।''

ओशो का नजरिया–

खलील जिब्रान की एक और किताब, ''दि मैडमैन'' मैं उसे छोड़ नहीं सकता। हालांकि मैं स्वीकार करता हूं कि मैं उसे छोड़ना चाहता था। क्योंकि मैं ही वह पागल आदमी हूं, जिसके बारे में वह बात कर रहा है। लेकिन मैं उसे छोड़ नहीं सकता। वह मैडमैन के अंतरतम केंद्र के बारे में इतनी प्रामाणिकता से, इतने अर्थपूर्ण रूप से बात करता है। और यह पागल कोई साधारण पागल नहीं है, वरन वह बुद्ध है, रिंझाई है, कबीर है। मैं हमेशा आश्चर्य करता था कि खलील जिब्रान यह कैसे कर सका। वह खुद पागल नहीं था। वह खुद जगा हुआ नहीं था। वह सीरिया में पैदा हुआ लेकिन दुर्भाग्य से अमेरिका में रहा।

लेकिन आश्चर्यों पर आश्चर्य है: प्रश्न है जिनके कोई उत्तर नहीं है। वह कैसे लिख सका? या हो सकता है उसने खुद नहीं लिखा हो—कोई जिसे सूफी कहते है खिद्र या थायोसोफिस्ट के. एच. अर्थात कूठहूमि कहते है। उन्होंने उस को माध्यम बना लिया हो। लिखने के दौरान वह आविष्ट हो जाता था। लेकिन हमेशा नहीं। जब वह नहीं लिख रहा होता तब वह साधारण आदमी होता था—वस्तुत: साधारण आदमी से भी अधिक साधारण : क्रोध, ईर्ष्या, और सब तरह की वासनाओं से भरा। लेकिन कभी-कभी वह आविष्ट हो जाता और तब कुछ उससे बहने लगता....चित्र, कविताएं, कहानियां।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

10/ दि लाइट ऑफ एशिया:(अर्नाल्ड)

दि लाइट ऑफ एशिया: (सर एडविन अर्नाल्ड)

The Light Of Asia–Sir Edwin Arnold

विश्व की महान कृतियों में जो श्रेष्ठ कोटि का साहित्य है उनमें ''लाइट ऑफ एशिया'' का स्थान बहुत ऊँचा है। अंग्रेज पत्रकार और कवि सर एडविन अर्नाड न सन 1879 में इस सुमधुर काव्य सलिला की रचना की। सर अर्नाल्ड का जीवन बहुत अनूठा है। वे सन् 1861 में भारत आये और सीधे पूना आकर बसे। उनकी विद्वता को देखते हुए उन्हें यहां के डेक्कन कॉलेज का प्रिंसिपल बनाया गया। भारत में उन्होंने संस्कृत भाषा सीखी ओर उनके लिए संस्कृत साहित्य के समृद्ध और विस्मयकारी भंडार के द्वार खुल गये। वे भारतीय दर्शन, चिंतन और प्रगल्भता और साहित्य से इतने अभिभूत हुए कि अपने अंग्रेज देशवासियों तक उसका ऐश्वर्य पहुंचाने की अभीप्सा से भर उठे। उनहोंने अनेक संस्कृत ग्रंथों का अनुवाद किया। गौतम बुद्ध के जीवन से वह अत्यंत प्रभावित हुए और उनके कवि ह्रदय ने बुद्ध की जीवनी को काव्य रस में डुबोकर एक अद्‌भुत माला बनाई जिसमें कल्पना विलास और यथार्थ का खूबसूरत संमिश्रण किया।

उन्नीसवीं शताब्दी में बुद्ध का जीवन यूरोप और अमरीका के लिए अपरिचित था। इस किताब ने प्रेम रस आपूरित बुद्ध कथा को पश्चिम की धरती पर पहुंचाया। देखते ही देखते यह किताब अमेरिका और इंगलैंड में आग की तरह फैल गई। यहां तक कि इंग्लैंड में इसके साठ संस्करण और अमरीका में अस्सी संस्करण कुछ ही वर्षों में प्रकाशित हुए और इसकी लाखों प्रतियां बिकी।

''लाइट ऑफ एशिया'' अर्थात एशिया का प्रकाश। प्रश्न उठता है कि इस किताब में ऐसी क्या खास बात है जो पाश्चात्य पाठकों ने इसे सिर पर उठा लिया। एक तो बुद्ध का अद्‌भुत चरित्र और उसके बाद सर अर्नाल्ड की असाधारण काव्य प्रतिभा: इन दोनों के संगम के कारण यह काव्य निरंतर कल्पना और तथ्यों के बीच डोलता रहा। यथार्थ का एक प्रसंग लेकिन कवि उसमें मानवीय संवेदनाओं के रंग भरता है। और पढ़ने वाले को लगता है, हां, बिलकुल यही, ऐसा ही घटा होगा। फिर बुद्ध चरित्र धार्मिक नहीं, बहुत आत्मीय, बहुत मानवीय बन जाता है।

अर्नाल्ड की खूबी यह है कि उन्होंने सिद्धार्थ के जन्म से लेकिर उसके बुद्ध बनकर महल में वापिस आने तक का जीवन ही चितेरा है। बुद्ध के दर्शन या धर्म चक्र प्रवर्तन से उन्हें कोई लेना देना नहीं है। इसलिए बुद्ध की प्रतिमा की प्रतिमा आखिर तक मानवीय बनी रहती है। उसके पारिवारिक संबंध और उन संबंधों की धूप-छांव हमें बहुत अपनी लगती है।

दूसरे परिच्छेद में कथा है कि सिद्धार्थ के अठारह वर्ष पूरे करने के पश्चात महाराज शुद्धोदन उसकी रंगरलियों का इंतजार करते है ताकि उसे संन्यास या तपश्चर्या का ख्याल ही न आये। अपने अमात्यों को बुलाकर वे सिद्धार्थ के लिए तीन विलास महल बनाने का आदेश देते है।

इस घटना को सर अर्नाल्ड ने जिस प्रकार गूंथा है उसका नमूना देखें:–

''अब जबकि हमारे प्रभु अठारह वर्ष के हुए।
राजा ने आदेश दिया कि बनाए जाएं तीन शानदार महल
जिनमें देवदार की हों दीवारें, जो शीतकाल में रहे गर्म
एक हो संगमरमर का जो बचाएँ ग्रीसम की तपीस से
और एक भुनी हुई ईंटों का, जिस पर हों नीले कवेलु

जो चंपक की कलियों के चटकने के समय सुहाने हों
'शुभ' 'सुरम्य' और रम्य थे उनके नाम
मनोहारी वाटिकाएं कुसुमित हुए उनके आसपास
निर्झर बहते उच्छृंखल, और सुगंधित दूब का विशाल कालीन
इन सके बीच सिद्धार्थ टहलता मनमौजी
नई-नई ख़ुशियाँ प्रहर दर प्रहर
सुख में सराबोर घटिकाएं, समृद्ध था जीवन
प्रवल वेग से बहता हुआ यौवन का रक्त
फिर भी उसके ध्यान की छायाएं झाँकती रही
मानों तैरते हुए मेघों से म्लान होता तालाब की चाँदी।''

सिद्धार्थ और उसके पिता शुद्धोदन, इनका जीवन दो समानांतर पटरियों पर चलता रहता है। सिद्धार्थ की कुंडली में बनी हुई संन्यास की प्रखर संभावना छाया की भांति शुद्धोदन का पीछा करती है। अहर्निश। और दूसरी तरफ भोग विलास के समस्त साधनों के बावजूद सिद्धार्थ के आलय विज्ञान में छापा हुआ ध्यान का संचित सिद्धार्थ को त्याग की और खींचता रहता है। पिता-पुत्र के बीच यह निःशब्द रस्सी खेंच सर अर्नाल्ड ने अति सहृदयता से लिखा है।

सभी भोग विलास के साधनों के बावजूद सिद्धार्थ की प्रबल नियति उसे महलों में से निकालकर जंगलों में पहुंचा देती है। वहां भूखा प्यासा, तप से क्षीण काया को लेकिर सत्य की खोज में भटकता हुआ सिद्धार्थ एक रात बोधि वृक्ष के नीचे ध्यान निमज्जित बैठा हुआ था। वह सिद्धार्थ का अंतिम दिन होता है। क्योंकि उसके बाद बुद्ध का जन्म होता है। इस घटना के लिए निमित्त बनती है। सुजाता नामक ग्रामीण स्त्री और उसने श्रद्धा पूर्वक चढ़ायी हुई खीर।

यह सर्वविदित कहानी जब सर अर्नाल्ड के हाथों से गुजरती है तो देखें कितना रसपूर्ण हो उठती है:

उन नदी के किनारे रहता था एक गृहस्थ
पवित्र और संपन्न, कई गोशालाओं का स्वामी
भला नायक, गरीबों का मित्र
प्रसन्न चित, शांति से जीवन बिताता हुआ
सुजाता, उसकी पत्नी सुन्दरत्म
गांव की सभी सुंदरियों में श्रेष्ठ
अपने घर पति के साथ सुख शांति से रहती हुई
लेकिन उनका वैवाहिक प्रेम सुफल नहीं था
अनगिनत बार उसने देवता लक्ष्मी का मनुहार किया
कितने शिवलिंगों को चावल
जवा कुसुम और चंदन-तेल चढ़ाया
पुत्र प्राप्ति की आशा में मन्नत मांगी कि
यदि ऐसा हुआ तो वह वृक्ष देवता को
स्वर्ण पात्र में भोजन अर्पित करेगी।
और सचमुच उसे तीन माह पूर्व पुत्र हुआ था।

मनौती पूर्ण करने के हेतु
गोद में लेकिर कोमल शिशु को, सुजाता
एक हाथ में अपनी लाल साड़ी में नन्हें अंकुर को लपेटे
अपने मांसल वक्ष के पास
और दूसरे हाथ से माथे पर रखे
बर्तन को सम्हालते हुए, अनुगृहीत कदमों से,
वृक्ष देवता की दिशा में चलते हुए..
लेकिन राधा, जिसे वृक्ष का परिसर
साफ करने और वृक्ष को लाल धागा बांधने हेतु भेजा था
दौड़ती हुई आई, ''मालकिन देखो।''
वहां वृक्ष-देवता बैठा है
अपने घुटनों पर हाथ मोड़कर
देखो, उसके माथे पर चमकता प्रकाश
कितना सौम्य, कितना महान, स्वर्गीय आंखे
सुना है, देवताओं से मिलना पर सौभाग्य
यह मानकर कि वह दिव्य पुरूष है,
सुजात ने पृथ्वी को चुमकर, कांपते हुए कहा,
''है पवित्र वृक्ष-निवासी, कल्याणकारी
कृपा कर हम गरीबों की भेंट स्वीकार करें
एक स्वर्ण पात्र में, हस्तिदंत समान शुभ्र दूध को डालकर
उसने बुद्ध को दिया
गुलाबों के हृदय से निकला हुआ इत्र
बुद्ध निःशब्द उस दूध को पीते रहे
और देखते ही देखते बुद्ध की क्षीण काया में
शक्ति प्रविष्ट हुई; वे तेजस्वी व कांतिमान देखने लगे

बुद्ध के जीवन को देखने वाली सर अर्नाल्ड की आँख प्रेम की आँख है। वे बुद्ध के भक्त या शिष्य नहीं है। और न ही उन्हें बौद्ध भिक्षु बनने का शौक है। एक चक्रवर्ती राजकुमार का ऐश्वर्य को त्याग कर राह का भिक्षु बनना इस घटना की नाटकीय संवेदनशीलता से वे आप्लावित हुए। इसीलिए किताब का अंत भी उस घटना से हाता है जहां पर बुद्ध के पारिवारिक जीवन का अंतिम धागा टूटता है।

शुद्धोदन जब खबरें सुनता है कि उसका पुत्र सिद्धार्थ अब बुद्ध बन गया है। और हजारों भिक्षुओं का स्वामी हो गया है। वह गांव-गांव घूमकर, भीख माँगकर भोजन लेता है। तो राजा का पितृ हृदय व्यथित हो उठा। महाराज के आत्म सम्मान को बहुत ठेस लगी। उन्होंने दूतों को भेजकर बुद्ध को महल आने का निमंत्रण दिया। बुद्ध को भी अपना हिसाब पूरा करना था। वे आये।

मुंडा हुआ सिर, पीत वस्त्र, हाथ में भिक्षा पात्र लेकर आनेवाले उस फकीर को देखकर शुद्धोदन की आंखों में आंसू बहने लगे। उसने पूछा, ''यह क्या स्थिति है वत्स?''

बुद्ध ने कहा, ''मेरी जाति का यह चलन है।''

''तुम्हारी जाति,'' यह तो सिंहासनों और राज घरानों की जाति है।''

''नहीं'' शांति में डूबे हुए स्वर में बुद्ध बोले, ''मैं उस अदृश्य परंपरा की बात कर रहा हूं जिसका मैं वंशज हूं। जहां राज वस्त्र पहना हुआ सम्राट अपने पीत वस्त्र धारी भिक्षु राजपुत्र से मिलता है। मेरी संपदा के पहले फल मैं आपको अर्पित करता हूं।''

''कौन सी संपदा?'' राजा अभी भी आश्चर्य चकित था।

बुद्ध राज हस्त को अपने हाथ में थाम भीड़ में उमड़ते रास्ते पर चल पड़े। एक तरफ सम्राट, दूसरी तरफ यशोधरा—बुद्ध बातें करते रहे शांति की, पवित्रता की; उन चार आर्य सत्यों की जो समूची प्रज्ञा को सम्माहित करते है जिसे कि किनारे समुंदर को उन आठ सम्यक नियमों की—जिनका पालन करने पर हर कोई निर्वाण को उपलब्ध हो सकता है।

सारी रात बुद्ध बोलते रहे, धम्म सिखाते रह
अंत में सिंहासन से उठा सम्राट, नंगे पाँव
चूमते हुए उसके चीवर को, कहा उसने
''मुझे ले चल मेरे पुत्र
तेरे संध का सबसे छोटा और कमजोर साधक मैं
और प्यारी यशोधरा अब संतुष्ट, आनंदित बोली
''हे धन्यता प्राप्त, राहुल को उसकी विरासत दें–
आपके ज्ञान साम्राज्य की संपदा।''
इस प्रकार तीनों बुद्ध के मार्ग पर चल पड़े।

यह पर लाइट ऑफ एशिया समाप्त होती है। इसके बाद कुछ पंक्तियों में सर अर्नाल्ड बुद्ध-प्रेम से ओतप्रोत अपने ह्रदय को उँड़ेलता है।

''यहां समाप्त होता है मेरा लेखन
जो गुरु को प्रेम करता है उसके प्रेम के लिए
थोड़ी सी जानकारी, थोड़ा सा मैंने कहा है
शिक्षक को, उसके शांति-पथ को स्पर्श किया
उसके बाद पैंतालीस वर्षा ऋतुऐ
वह आशियाँ के अनेक प्रदेशों में
अनेक लोगों को दिखाता रहा प्रकाश
बुद्ध का निधन हुआ, उस महान तथागत का
मनुष्यों के बीच जो मनुष्य था,
सबको संतुष्ट करते हुए
तब से करोड़ो-करोड़ो उस पथ पर चलते रहे
जो ले जाता है, जहां वह गया—
निर्वाण में, जहां मौन बसता है।

ओशो का नजरिया:

एडविन अर्नाल्ड ने बुद्ध के जीवन पर एक किताब लिखी है। ''दि लाइट ऑफ एशिया'' जो बुद्ध पर लिखी गई सुंदरतम किताबों में से एक है। उसकी कुछ पंक्तियां:

यह शांति
स्व को प्रेम और जीने की तृष्णा को जीतने के लिए
छाती में गहरी जड़ें जमाये बैठी वासना को उखाड़ने
आंतरिक संघर्ष को शांत करने
ताकि प्रेम शाश्वत सौंदर्य का आलिंगन करे
गौरव आत्मा का स्वामी बने
सुख, देवताओं के पार जीयें
असीम धन दूसरों की सेवा करने को
दान में खर्च करे, सौम्य भाषण और निष्कलुष दिन
यह ऐश्वर्य ने तो जीवन में क्षीण होगा,
न मृत्यु उसे छीनेगी
वह शांति है—स्व का प्रेम ओर जीने की तृष्णा पर
विजय पाने के लिए
ओशो
दि डिसिप्लिन ऑफ ट्रांसडेंस

11/ ब्रह्मसूत्र-(बादनारायण)

ब्रह्मसूत्र—(महाऋिषि बादनारायण)

The Brahma Sutra- Badarayana

ब्रह्मसूत्र और आधुनिक मनुष्य के बीच हजारों वर्ष का फासला है। यह फासला सिर्फ समय का नहीं है, मानसिकता का भी है। मनुष्य के अंतरतम पर व्यक्तित्व की इतनी पर्तें चढ़ गई है कि उसका मूल चेहरा खो गया है। अगर कहा जाये कि ब्रह्मसूत्र मुल चेहरे की खोज है। तो गलत नहीं होगा।

भारतीय अध्यात्म के आकाश में कुछ दैदीप्यमान सितारे है, उनमें से एक अनोखा सितारा है: बादरायण व्यास विरचित ब्रह्मसूत्र। ब्रह्मसूत्रों का प्रत्येक पहलू उतना ही रहस्यपूर्ण है,जितना कि स्वयं ब्रह्म। ब्रह्म एक ऐसी अवधारणा है जिसका भारतीय दर्शन में सर्वाधिक उपयोग किया जाता है। हो सकता है ''ब्रह्म'' कुछ ऋषियों की अनुभूति रही हो, लेकिन अधिकांश लोगों के लिए तो यह महज एक शब्द है, जो उनकी सामान्य जिंदगी में जरा भी उपयोगी नहीं है।

ब्रह्मसूत्र सदा ही अंजुरी भर विद्वानों की बपौती रही है। बल्कि यूं कहें कि ब्रह्मसूत्रों का अध्ययन किये बगैर उनकी विद्वता का प्रमाण पत्र नहीं मिलता था। इन गहन गंभीर सूत्रों के रचेता ने बादरायण व्यास। इनके समय या स्थान का कोई ठोस सबूत नहीं है। उस संबंध में जो भी सिद्धांत है वे अनुमान मात्र है।जो भी हो, प्राचीन भारत को ग्रंथकर्ता के नाम से कभी कोई मतलब नहीं रहा। इसलिए लेखक का नाम गौण ही रहा है। आध्यात्मिक ग्रंथ उन ऊंचाइयों पर सर्जित होते है जहां नाम, रूप, समय सब खो जाते है। लेखक के भीतर खिला हुआ शून्य, ज्ञान के प्रकटन का सिर्फ दर्पण बनता है।

भारतीय मनस में ब्रह्मसूत्रों की अपनी खास जगह रही है। वे न तो वेद में शुमार है, न उपनिषदों में। वे वेद अर्थात ज्ञान का अंत है। वे केवल सूत्र है जिनमें सृष्टि का पूरा ज्ञान समया हुआ है। वे ज्ञान के अणुबम है। दो या तीन शब्दों में बहुत विराट बात सहजता से कह देना भारतीय मनीषियों कि विशेषता है। इसमें ब्रह्मसूत्र अद्वितीय हे। कभी-कभी केवल दो शब्द और अव्यय के साथ वे बात कह देते है। उन्हें समझने में पूरी उम्र बीत जाती है। फिर भी कुछ पल्ले नहीं पड़ेगा। ब्रह्मसूत्र वैसे लोकप्रिय नहीं है जैसे कि पंतजलि के योग सूत्र, या नारद और शांडिल्य के भक्ति सूत्र। क्योंकि उन सूत्रों में विधियां बताई गई है। करने के लिए कुछ क्रियाएं है। साधारण आदमी को कृत्य में रस है: कैसे? ज्ञान की कोरी चर्चा पंडितों में लोकप्रिय हो सकती है। क्योंकि उन्हें करना कुछ नहीं है। सिर्फ बोलना है। ब्रह्म सूत्रों में कि गई चर्चा भले ही जन साधारण की समझ से परे हो, लेकिन उनकी उतुंगता मनुष्य के सामूहिक अवचेतन में पीछे कहीं पर अटल खड़ी हुई है। वह समय के लंबे प्रवाह में निरंतर टीकाकारों को आकर्षित करती रही है।

ब्रह्मसूत्रों पर बुद्ध पुरूषों ने जितनी टीकाएं लिखी है उतनी किसी भी शास्त्र पर नहीं लिखी गई। आदि शंकराचार्य, रामनुजाचार्य, बल्लभाचार्य, निम्बार्क, वाचस्पति मिश्र, कितने ही जाग्रत पुरूषों ने ब्रह्म सूत्रों की ऊँचाई और गहराई नापने की कोशिश की है। यह घटना ठीक ऐसी है जैसे माऊंट एवेरस्ट पर लोग लगातार चढ़ने की कोशिश करते है। क्यों? क्योंकि उसकी अजेयता एक चुनौती बनती है। एडमंड हिलैरी ने कहा, क्योंकि वह वहां है। ब्रह्म सूत्रों की टीका लिखने के लिए भी यह कारण पर्याप्त है: क्योंकि वह है—अजेय, अमेय, अलंघ्य।

ब्रह्मसूत्रों को वेदांत दर्शन का अंग बताया जाता है। इसमें ब्रह्म के स्वरूप को सांगोपांग निरूपण है। इन सूत्रों की विशेषता यह है कि प्राय: सभी संप्रदायों के आचार्यों ने इनकी व्याख्या अपने मत के अनुसार की है। यह एक आश्चर्य है कि परस्पर विरोधी दर्शनों को अपने सिद्धांत का प्रतिबिंब इसमें दिखाई दिया। कितना विराट

होगा इसका आशय जो सब विरोधों को अपने आलिंगन में लेकिर भी शेष रहता है। सूत्रकार ने ब्रह्मसूत्रों को चार अध्यायों और सोलह पादों में बांटा है। पहला है, समन्वय अध्याय। इसमें व्यास मुनि विषय वस्तु अर्थात ब्रह्म को, अनेक उदाहरण और तर्क देकर स्थापित करते है। दूसरा है, अविरोध अध्याय। इस अध्याय में सब प्रकार के विरोधाभासों का निराकरण किया गया। तीसरा अध्याय परब्रह्म की प्राप्ति के लिए ब्रह्मविद्या और उपसना पंथों की चर्चा करता है। और चौथे अध्याय में इन उपायों द्वारा मिलने वाले फल का वर्णन है। इसलिए उसे फलाध्याय कहते है।

जैसी कि सनातन भारतीय शास्त्रों की शैली थी, लेखक खूद का सिद्धांत सिद्ध करने से पूर्व सभी मत-मतांतरों की खबर लेता था। व्यास मुनि भी वहीं शैली अपनाते है। यहां पर न जाने कितने प्रचलित मतों को उल्लेख कर उनका खंडन और स्वयं का मंडन कर अबाध बहती हुई सलिला की भांति मस्ती से आगे बढ़ते है। भारत में आध्यात्मिक विचार प्रवाह अनादि काल से बहते हुए चले आ रहे है। वे किसी एक व्यक्ति से प्रगट नहीं हुए। वे तो आकाशस्थ रिकार्ड में थे ही, व्यक्तियों ने उसे सिर्फ वाणी दी। परंपरा का निबाह करते हुए बादरायण व्यास ने भी प्रधान कारणवाद, अणुवाद, विज्ञानवाद, आदि सिद्धांतों की समीक्षा की। लेकिन उनके जनक किसी आचार्य का उल्लेख नहीं किया है। क्योंकि ज्ञान ने कभी पैदा हुआ न कभी मृत होगा। ज्ञान की इस अनादि-अनंतता की प्रतिध्वनि ''ब्रह्मसूत्र'' जैसे ग्रंथों में सुनी जा सकती है।

ब्रह्मसूत्र और आधुनिक मनुष्य के बीच हजारों वर्ष का फासला है। यह फासला सिर्फ सत्य का नहीं है, मानसिकता का भी है, मनुष्य के अंतरतम पर व्यक्तित्व की इतनी पर्तें चढ़ गई है कि उसका मूल चेहरा ही खो गया है। अगर कहां जाये की ब्रह्मसूत्र मूल चेहरे की खोज है। तो गलत न होगा। ब्रह्म की पहचान भले ही खो गई हो ब्रह्म तो वही है; उसका नाम भर बदल गया है। आइंस्टीन ने जब ''expanded universe'' फैलते हुए ब्रह्मांड का अविष्कार किया तो वह ब्रह्म काही अविष्कार था। उसे हम बीसवीं सदी का ब्रह्म कह सकते है। ब्रहम का मूल अर्थ है: ''अपबृंहणात् ब्रह्म।'' जो फैलता जाता है उसे ब्रह्म कहते है। ऐसा नहीं है कि वि विश्व प्राचीन समय में ही फैल रहा था, वह तो आज भी फैल रहा है। वैज्ञानिकों ने धर्म की और पीठ कर ली और पदार्थ में उतर गये। लेकिन जैसे ही पदार्थ की गहराई में पहुंचे, वहां पुन: प्रवेश कर गया है—विज्ञान का हाथ थामकर, अलग नाम से अगल चेहरा लेकर।

ओशो इस पर बोलना चाहते थे, लेकिन यह स्थगित होता गया। उन्होंने ''सत चित आनंद'' में कहा भी है कि ब्रह्मसूत्रों पर बोलने के बाद मैं बोलना बंद कर दूंगा। वे मेरे आखरी प्रवचन होंगे। क्योंकि अंत आ गया, अंतिम की चर्चा हो गई। अब क्या बोलना? ''ब्रह्मसूत्र'' मैंने अपने अंतिम संप्रेषण के लिए रख छोड़े है। वह दीये का अंतिम हस्तांतरण होगा।

ओशो का नज़रिया:

अब बहुत अर्थपूर्ण है। तुम भ्रांतियों का जीवन जी चुके हो, अब परमात्मा की खोज शुरू होती है। तुमने भौतिक सुख-दु:ख, पीड़ा, समस्याएं, झेल लीं, तुम कई दिशाओं में भटक चुके हो और तुमने कुछ नहीं पाया, अब परमात्मा की खोज शुरू करो। तुम अहंकार का जीवन जी लिए। स्वार्थ का जीवन जी लिया। अब तुम थक हार गये हो। अब तुम अंत पर पहुंच चूके हो, और अब जीने के लिए कोई जमीन नहीं बची। अब परमात्मा की खोज शुरू करो। तुमने पैसा जोड़ लिया, पद पा लिया....शोहरत पा ली, लेकिन किसी से तृप्ति नहीं हुई....अब परमात्मा की खोज शुरू करो।

''अब'' बड़ा अर्थ पूर्ण है। इसका यह अर्थ नहीं है कि पुस्तक बीच में ही शुरू हुई। वह कहती है कि परमात्मा की खोज बीच में शुरू होती है। यह बिलकुल प्रांरभ से शुरू नहीं हो सकती। वह असंभव है। बच्चा

परमात्मा की खोज शुरू नहीं कर सकता। उसे पहले जीवन की खोज करनी है। उसे भटकना पड़ेगा। मनुष्य पैदा हुआ हर बच्चे को परमात्मा को खोना पड़ेगा। दूर जाना पड़ेगा। तभी.....जब अँधेरा असहनीय हो जाता है। दुःख बहुत बोझिल और दिल डूबने लगता है। तभी आदमी कुछ बिलकुल अलग करने की सोचता है। जो उसने आज तक कभी नहीं किया—''अब ब्रह्म की जिज्ञासा शुरू होती है।''

ओशो

फार बियॉड दि स्टार्स

पूरब के सभी महान सूत्र एक शब्द से शुरू होते है। अथातो—अब। अथातो याने अब। ब्रह्मसूत्र, पूरब के महानतम सूत्र, इस वचन से शुरू होते है। अथातो ब्रह्म जिज्ञासा। अब परमात्मा की खोज शुरू होती है। ''अब का क्या अर्थ हुआ? सिर्फ इस एक शब्द पर हजारों टिकाएं लिखी जा चुकी है। ''अब क्यों? क्या केवल परमात्मा की खोज लिखना काफी नहीं था? लेकिन अब.. ? उसका क्या अर्थ।

मेरी अपनी व्याख्या है कि जब तक तुम ''अब'' याने इस क्षण का अनुभव नहीं करते, तब तक परमात्मा की खोज शुरू नहीं कर सकते। वस्तुत: इस क्षण में होना ही परमात्मा की खोज शुरू करना है। मन सदा अतीत में होता है या भविष्य में होता है। अतीत अब है नहीं, और भविष्य अभी आया नहीं। और परमात्मा सदा है। परमात्मा सदा इस क्षण है। इस क्षण की खोज ही वास्तव के परमात्मा की खोज है।

लेकिन यह सुत्र इतना संक्षिप्त है कि वह ''अब'' की कोई व्याख्या नहीं करता। ''अब...'' और समाप्त। सूत्र का अर्थ छोटा सा बीज है। जिसमें हजारों फूल छिपे है। लेकिन उसके लिए तुम्हें बोना पड़ेगा। उगाना पड़ेगा, उनकी रक्षा करनी होगा। और वसंत की प्रतीक्षा करनी होगी।

जैसे-जैसे तुम विकसित होते हो, पहले सूत्रमयता आती है। तुम्हारे वक्तव्य सूत्र बन जाते है, उसके बाद आता है परम मौन। एक शब्द भी कहना ऐसा लगता है जैसे कुछ गलत कर रहे हो।

ओशो

थियोलॉजिया मिस्टिका

बादरायण का वक्तव्य ''अथातो ब्रह्म जिज्ञासा'' सर्वाधिक सशक्त वक्तव्य है, जो आज तक किसी ने नहीं दिया है। अब परम की खोज शुरू होती है। यह विश्व की सर्वाधिक रहस्यमय किताब है। आज तक जो किताबें लिखी गई उनमें सर्वाधिक महत्वूर्ण।

मैं उसे विचित्र कहता हूं क्योंकि बादरायण संसार में बहुत प्रसिद्ध नहीं है। यद्यपि भारत में वे एकमात्र रहस्यदर्शी है जिनकी किताब पर हजारों टीकाएं लिखी गई है। उनका प्रत्येक वक्तव्य इतना अर्थ गर्भित है कह उस पर हजारों प्रकार से टीका लिखी जा सकती है। फिर भी लगता है कि कुछ पीछे शेष रह गया जो चुक नहीं सकता। यह एकमात्र किताब है जिस पर टीकाएं, और फिर उन टीकाओं पर टीकाएं लिखी गई है। हजार साल तक इस देश के प्रतिभाशाली लोग बादरायण से जुड़े रहे है। और फिर भी लोग उनके नाम से परिचित नहीं है। उसका यह कारण हो सकता है, कि उनके व्यक्तित्व जीवन के बारे में कोई जानकारी नहीं है। सिवाय इस किताब के। वह ऐतिहासिक व्यक्ति था या नहीं, कहना मुश्किल है। लेकिन एक बात पक्की है, जिसने भी यह किताब लिखी, उसका नाम जो भी हो, वह व्यक्ति निश्चित ही बहुत बड़ा रहस्यदर्शी था। फिर बादरायण कहने में क्या हर्ज है?

ओशो

सत् चित् आनंद

12/ विमल कीर्ति निर्देश-सूत्र

विमल कीर्ति निर्देश सूत्र—(सार बॉयन

Vimalakirti Sutra-Saar Baryan

विमल कीर्ति बुद्ध के वरिष्ठ शिष्य थे और स्वयं बुद्धत्व को उपलब्ध हो चूके थे। उनके द्वारा कथित निर्देश सूत्र महायान बौद्धो के साहित्य के कोहिनूर हे। लेकिन इन बहुमूल्य सूत्रों की मूल संहिता कहीं भी उपलब्ध नहीं है। विमल कीर्ति बुद्ध के समय थे (500-600 ईसा पूर्व) लेकिन लगभग पाँच सौ वर्षों तक उनके सूत्रों का कोई अता-पता नहीं था। वह तो नागार्जुन ने ईसा पूर्व पहली सदी या पहली शताब्दी ईसवी के बीच महायान परंपरा के ग्रंथ खोज निकाले। उन्हीं में से एक थे विमल कीर्ति निर्देश सूत्र। ये सूत्र सात बार चीनी भाषा में अनुवादित हुए, फिर तिब्बती भाषा में अनुवादित हुए लेकिन मूल संस्कृत सूत्र खो गये। हमारे हाथों में उनका सिर्फ अनुवाद आया है।

विमल कीर्ति एक अद्‌भुत प्रबुद्ध पुरूष थे। वे लिच्छवी वंश में पैदा हुए और वैशाली नगरी के पास आम्रपाली वन में रहते थे। वे बहुत धनवान थे और कई दासियां थी। विमल कीर्ति की विशेषता यह थी की वह संसारी जीवन जीते हुए उससे बिलकुल अछूते थे। वे बाजार में जाते, विद्यालयों और मद्यालयों में प्रविष्ट होते, खेलकूद के मैदानों और जुआघरों में भी दिखाई देते थे। भीड़ के बीच सामान्य होकर विचरते लेकिन उनका बुद्धत्व निष्कलुष रहता है। इन साधारण जनों को वे धर्म की शिक्षा देने के हेतु उनके बीच जाते।

फिर आयु समाप्त होने पर जब उनका शरीर प्रकृति के नियम के अधीन होकर बीमार हुआ तो बिस्तर पर पीड़ा झेलते हुए उनके मन में हुआ, ''यहां मैं इतना अस्वस्थ हूं, फिर भी तथागत ने मेरा हाल पूछने के लिए किसी को नहीं भेजा।''

जेतवन में बैठे हुए बुद्ध ने उसका भाव पकड़ लिया और अपने पास बैठे हुए शिष्यों में से दस प्रमुख शिष्यों को विमल कीर्ति के पास जाने के लिए कहा, लेकिन दसों ने कोई न कोई कारण बताकर जाने से इंकार कर दिया। असली कारण यह था कि विमल कीर्ति बहुत मेधावी और वाक्पटु थे उनकी प्रखरता के आगे कोई टिक नहीं पाता । इन शिष्यों में से प्रत्येक शिष्य एक बार उनसे हार चुका था।

बुद्ध का अपने शिष्यों से पूछना और उन सबका विमल कीर्ति के पास जाने से इंकार करना, इस पूरे संवाद से एक परिच्छेद बना है। वस्तुत: विमल कीर्ति की महानता का बखान करने की यह एक तरकीब है। प्रत्येक शिष्य उसके और विमल कीर्ति के बीच हुए संवाद को जस का तस बयान करता है। इन शिष्यों में सारे मुख्य शिष्य है जो बाद में बुद्धत्व को उपलब्ध हुए। महाकाश्ययप, मौदग्लायन, आनंद, सारिपुत्र, इत्यादि और उनका बेटा राहुल भी।

आनंद से जब कहते है कि वह विमल कीर्ति के पास जाये। तो आनंद एक घटना सुनाते है।

''हे तथागत, एक दिन जब आपकी देह ग्लानि में थी और उसे दूध की आवश्यकता थी तो मैं पूर्वाह्न में अपना भिक्षा पात्र और चीवर धारण कर वैशाली में एक ब्राह्मण कुल के घर में गया। वहां पर आँगन में खड़े में खड़े होकर मैंने दूध की भिक्षा मांगी। तो लिच्छवी विमल कीर्ति ने मेरे पाँवों पर मस्तक रखकर मेरा अभिवादन किया और पूछा, ''भदन्त आनंद, आप प्रात: काल से ही पात्र लेकर यहां क्यों खड़े है?''

मैंने कहा: ''तथागत की देह ग्लानि से ग्रसित है, उन्हें दूध की आवश्यकता है अंत: मैं आया हूं।''

विमल कीर्ति बोले: ''भदन्त आनंद ऐसा न कहें। तथागत की देह वज्र समान कठिन है। उससे समूची अकुशल धर्म वासना को नष्ट किया है और कुशल धर्म वासना को अंगभूत किया है। फिर उसे दुःख और कष्ट कैसे होगा?''

''भदन्त आनंद, बिना कुछ कहं मौन ही वापिस चले जाएं। आपके निकृष्ट शब्दों को कोई और न सुने। एक चक्रवर्ती राजा, जिसकी जड़ें, भलाई में बहुत कम है वह भी रोग से मुक्त होता है, फिर तथागत जिनके अनंत कुशल मूल है, अनंत पुण्य और ज्ञान है, उन्हें रोग कैसे हो सकता है?''

''भदन्त आनंद, शीध्र ही मौन वापस जाओ ताकि हम लज्जा से झुक न जाएं। अन्य तीर्थक, चरक, परिव्राजक, निर्ग्रंथ और जीवन आपके निकृष्ट शब्दों को न सुनें। वे कहेंगे, अहो वत। इन लोगों का शास्ता कैसा है, यदि वह अपने रोग को निरोग नहीं कर सकता तो हमारे रोग कैसे दूर करेगा?'' चुपचाप चलते बनो, ताकि आपको काई सुन न ले।

''भदन्त आनंद तथागत धर्मकाय है: उनकी काया मल से दूषित नहीं है। वह काया आहार से स्वस्थ नहीं की जा सकती। तथागत की काया लोकोत्तर काया है। वह सर्व लोक धर्म का अतिक्रमण करती है। उसमें कोई आश्रव अर्थात अशुद्धि नहीं है। तथागत की काया असंस्कृत काया है, वह नित्य शांत है। भदन्त आनंद, ऐसी काया को रूग्ण कहना असंभव तथा मूर्खतापूर्ण है।''

''जब मैंने इन शब्दों को सुना तो मुझे लगा, बुद्ध के इतने निकट रहते हुए भी क्या मैंने उन्हें गलत सुना और समझा? और मैं बहुत लज्जित हुआ।

''उस क्षण मैंने एक अंतरिक्ष से आया हुआ निर्घोष सूना: आनंद, गृहपति ने तुझे जो कहा वह सत्य है। तथागत की असली काया वस्तुत: रोग विहीन है। तथापि तथागत पंच कषाय काल में अवतरित हुए है इसलिए वे यह सब अभिनय जो लोग दुःखी है, दरिद्र है और दुराचारी है उन्हें अनुशासन देने के लिए करते है। इसलिए आनंद, लज्जित न होओ, तुम दूध लेकर वापिस चले जाओ।''

''हे तथागत, विमल कीर्ति प्रश्नों के उत्तर बहुत कुशलता से देता है। उनके उत्तर सुनने के पश्चात मैं अवाक हो गया। इस कारण में उनका हाल पूछने नहीं जाऊँगा।''

अंतत: बुद्ध ने मंजुश्री से पूछा तो मंजुश्री जाने के लिए तैयार हुआ। यह किताब मंजुश्री और विमल कीर्ति के संवाद से बनी है। मंजुश्री ने भले ही निवेदन किया था कि विमल कीर्ति की तेजस्विता के सामने मैं बिलकुल छोटे से जुगनू की तरह हूं, लेकिन आपके आशीष के सहारे मैं उनके पास जाकर वार्तालाप करूंगा।

कहानी इस तरह है कि बुद्ध के संध में बैठे आठ हजार बोधिसत्व, पाँच सौ लोकपाल और सैंकड़ों देवी-देवता राजकुमार मंजुश्री के साथ विमल कीर्ति के घर गये क्योंकि उन्होंने सोचा, इन दोनों के संवाद में बड़ी गहन चर्चा होगी। उसे सुनने से हम क्यों वंचित रहे? और उन सबको वास्तव में निराश नहीं होना पडा। मंजुश्री और उसके दृश्य-अदृष्य कारवां को देख कर विमल कीर्ति बोल उठे स्वागत है। तुम यहाँ बिना आये हुए आये हो। तुम प्रतीत होते हो लेकिन तुम्हें देखा नहीं जा सकता। तुम सुनाई देते हो बिना सुने हुए।

मंजुश्री ने कहा: ''गृहपति, जैसा आपने कहा वैसा ही है। जो आता है वह नहीं आता। क्यो? जो आता है वह वस्तुत: आता नहीं। जो जाता है वह वस्तुत: जाता नहीं।''

इन दोनों का संवाद इसी प्रकार दार्शनिक और रहस्य का पुट लिये आगे बढ़ता है। विमल कीर्ति के स्वास्थ्य के संबंध में पूछने पर वे कहते है–

मंजुश्री: ''आपकी व्याधि कहां से आयी? वह कब तक रहेगी? उसका मूल क्या है? और वह कब ठीक होगी?''

विमल कीर्ति: ''मंजुश्री, मेरी व्याधि तब तक रहेगी जब तक प्राणियों में अविद्या है और भव तृष्णा है। मेरी व्याधि दूर से आती है, जन्म–जन्मांतर से। जब तक प्राणी अविद्या ग्रस्त है तब तक मैं भी अस्वस्थ रहूंगा। बोधिसत्व के लिए, जन्म-मृत्यु का चक्र व्याधि का उत्पती स्थान है। जब सब प्राणी इस पीड़ा के पार हो जायेंगे तब बोधिसत्व भी स्वस्थ हो जायेंगे।

''हे मंजुश्री, जैसे श्रेष्ठ का एकमात्र पुत्र अस्वस्थ हो जाए तो उसके माता-पिता भी बीमार हो जाते है। उसी प्रकार बोधिसत्व, जो प्राणियों को पुत्रवत् प्रेम करता है। व्याधि ग्रस्त होता है व जब प्राणी अस्वस्थ हो जाते है, और वह ठीक होता है वब वे स्वस्थ हो जाते है। मंजुश्री, तुम मुझे पूछते हो, आपकी व्याधि कहां से आती है। बोधिसत्व के शरीर में व्याधि उसकी महा करूणा से पैदा होती है।''

मंजुश्री और विमल कीर्ति के बीच एक और अर्थपूर्ण संवाद है: जिसका शीर्षक है, ''सर्वत्र छायी हुई शून्यता।''

मंजुश्री : ''गृहपति, आपका गृह शून्य क्यों है? और आपका परिवार क्यों नहीं है।''

विमल कीर्ति : ''मंजुश्री, सभी बुद्ध क्षेत्र शून्य होते है।''

मंजुश्री : ''वे किस बात से शुन्य होते है।''

विमल कीर्ति : ''वे शून्यता-शून्य होते है।''

मंजुश्री : ''शून्यता-शून्य क्या है?''

विमल कीर्ति : ''संकल्प शून्यता-शून्य है।

मंजुश्री : ''क्या शून्यता की कल्पना की जा सकती है?''

विमल कीर्ति : ''परिकल्प अपने आप में शून्य है, और शून्यता-शून्यता की कल्पना नहीं कर सकती।''

मंजुश्री : ''गृहपति, शून्यता कहां मिलती है।''

विमल कीर्ति : ''शून्यता बासठ असत्य दृष्टियों में मिलती है''

विमल कीर्ति के आलीशान भवन में केवल मनुष्यों की भीड़ नहीं वरन देवी-देवता भी आये हुए थे। सारिपुत्र का एक देवी से हुआ संवाद अद्‌भुत है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस युग में अशरीरी आत्माओं का अनायास शरीर धारण करना आम बात थी। सारिपुत्र उस समूह में सबसे वृद्ध थे अंत: उन्हें लोग, ''स्थविर'' कहते थे। सारिपुत्र और देवी के संवाद में देवी अधिक ज्ञानी मालूम होती है। इससे यही परिलक्षित होता है कि ज्ञानी स्त्रियों की प्रतिष्ठा थी। और वे वार्तालाप में पुरूष को हरा सकती थी। कहानी प्यारी है, कि विमल कीर्ति के घर बैठे हुए विशाल समूह पर देवी ने दिव्य पुष्प वृष्टि की, तो हुआ यह कि जो अभी तक वासना से ग्रसित थे उनके शरीर से फिसल कर फूल नीचे गिर गये। और निर्वासना थे उन पर चिपके रहे।

विमल कीर्ति का भवन बुद्ध क्षेत्र बन गया था। महायान बौद्धो का मानना है कि बुद्ध क्षेत्र शून्य होते है। वे यदि दिखाई देते है तो उनका दिखाई देना किसी खास उद्देश्य से होता है। अन्यथा सब कुछ शुन्य है और अद्वैत है।

इस किताब की संरचना, इसका वातावरण, संकल्पना, सब कुछ एक दम निराला है। इस तरह तीन-चार योनियों की आत्माएं एक साथ धुल-मिलकर अब रहती नहीं। पहले भी वस्तुत: रहती थी या केवल कल्पना थी, कहा नहीं जा सकता। संवादों के माध्यम से आध्यात्मिक ज्ञान को उंडेला गया है। एक-एक संवाद ऐसा है जैसा धार पर रखी तलवार। बुद्ध के शिष्य एक से बढ़कर विद्वान, महा पंडित थे। दुर्भाग्य से मूल संहिता अब उपलब्ध नहीं है। जो है वह तिब्बती या चीनी अनुवाद से पुनश्च संस्कृत में रूपांतरित करने का उल्टा प्रयास है। फिर भी जो संस्कृत शब्द है वह बहुत सुंदर और सुगंधित है। जैसे खुशबूदार बग़ीचे की उपेक्षा कर गुजर जाना असंभव है

वैसे ही इन शब्दों को नजर अंदाज कर आगे बढ़ा नहीं जा सकता है। एक-एक शब्द इतना गहन आशय लिए हुए है कि निगाह को रोक लेता है। मन उसमें डूबने लगता है।

इन निर्देश सूत्रों का नेपथ्य भी मजेदार है। विमल कीर्ति संसारी पुरूष है, बाहर से देखने पर राग-विलास में आकंठ डूबे हुए मालूम होते है। लेकिन बुद्ध के सभी संन्यासी जो परिव्राजक है,

श्रेष्ठ है, उनके आगे स्वयं को हीन अनुभव करते है। और सभी भिक्षु उन्हें ''गृहपति'' कहते है। राहुल के अहंकार पर अच्छी खासी चोट कर विमल कीर्ति उसे प्रव्रज्या (त्याग) का अर्थ समझाते है। विमल कीर्ति उसे दो टूक कहते है, ''राज्य छोड़ने से प्रव्रज्या नहीं होती। जिस प्रव्रज्या की पंडितों ने प्रशंसा की है और आर्यों ने परिग्रहण किया है, वह वस्तुत: मार (कामदेव) के ऊपर विजय है, पंचगति और पाँच चक्षुओं के व्यवधानों की मुक्ति है। वह काम-पंक (काम की कीचड़) के ऊपर बनाया गया सेतु है। वह स्वचित का नियमन करता है। और परिचित की रक्षा करता है। जिन्होंने इस तरह से संसार को छोड़ा है वे ही वास्तविक संन्यासी है।''

इस बात को नकारा नहीं जा सकता कि इन सूत्रों को महायान बौद्धों ने बुद्ध के निर्वाण के बाद किसी समय रचा है। स्वभावत: उनके लिए विमल कीर्ति को सर्वश्रेष्ठ बताना परम आवश्यक था। शायद गृहस्थ जीवन को संन्यास से अधिक बेहतर साबित करना भी। जो भी हो विमल कीर्ति के माध्यम से जो ज्ञान प्रकट हुआ वह वस्तुत: अद्‌भुत है; इसमे कोई दो राय नहीं: सत्य और सौंदर्य, दोनों का रमणीय संगम इन सूत्रों में झलकता है।

ओशो का नज़रिया:

अब मैं उस आदमी के बारे में बात कर रहा हूं जो सभी आंकड़ों के पार है। उसका नाम है विमल कीर्ति। इस किताब का नाम है निर्देश सूत्र। उसके वक्तव्य है ''विमल कीर्ति'' निर्देश सूत्र–

विमल कीर्ति सबसे अद्‌भुत लोगों में से एक था। इतना कि बुद्ध भी उसकी ईर्ष्या से भर उठे। वह बुद्ध का शिष्य था लेकिन बुद्ध ने कभी औपचारिक रूप से उसे दीक्षित नहीं किया। इसलिए बहार से उसे बुद्ध का शिष्य कहा नहीं जा सकता था। और वह इतना खतरनाक व्यक्ति था कि बुद्ध के शिष्य उससे डरते थे। वे चाहते थे कि वह शिष्य न बने तो ही अच्छा है। उससे महज राह चलते मिलना या उसका अभिवादन करना काफी था, वह फौरन कोई न कोई पुख्ता बात कह देता। चोट करना उसकी विधि थी। गुरजिएफ उसे पसंद करता; या कौन जाने, गुरजिएफ को भी धक्का लगता। वह आदमी सचमुच खतरनाक था, असली आदमी था।

कहते है वह बीमार था और बुद्ध ने सारिपुत्र से कहा कि वह जाकर उसका हाल पूछ ले। सारिपुत्र ने कहा : ''मैंने आपको कभी इंकार नहीं किया लेकिन इस बर मैं सीधे साफ़ कह रहा हूं। किसी और को भेजें। वह आदमी भयंकर है। मरण शय्या पर भी वह मेरी खटिया खड़ी कर देगा। मैं नहीं जाना चाहता।'' मैं नहीं जाना चाहता।

बुद्ध ने हर एक पूछा और काई भी जाने को तैयार नहीं था सिवाय मंजुश्री के। और मंजुश्री बुद्ध का पहला शिष्य था जो बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ। वह गया, और इस तरह यह किताब बनी। वह संवाद है। मंजुश्री प्रश्न पूछता और विमल कीर्ति उत्तर देता, या कहें उसके प्रश्नों के उत्तर देता। इस प्रकार विमल कीर्ति निर्देश सूत्र तैयार हुआ—एक महान रचना है।

कोई इसकी बात नहीं करता क्योंकि यह किसी एक धर्म की किताब नहीं है। यह बौद्धों की किताब भी नहीं है। क्योंकि वह बुद्ध का औपचारिक शिष्य नहीं था। लोग बाह्य रूप को इतना महत्व देते है कि आत्मा को भूल जाते है। मैं सभी सच्चे साधकों से कहता हूं कि इसे पढ़े। उन्हें इससे हीरों की खदान मिलेगी।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

13/ दि प्रॉफेट-(खलिल जिब्रान)

दि गार्डन ऑफ दि प्रॉफेट—(खलिल जिब्रान)

The Prophe-Kahlil Gibran

यह छोटी सी खूबसूरत किताब अधिकत: गद्य में लिखी गई है। लेकिन इसके ह्रदय में कविता बह रही है। खलिल जिब्रान का अंतस् उस सौंदर्य लोक में प्रविष्ट हुआ है। जहां गद्य और पद्य में बहुत फर्क नहीं होता और विचार भी एक तरह का संगीत हो जाता है।

यह किताब भी जिब्रान ने उसी अंदाज में लिखी है जैसे उसकी अन्य किताबें। अल मुस्तफा, एक प्रबुद्ध रहस्यदर्शी बहुत यात्राएं कर उसके अपने द्वीप में वापस लौटता है जहां उसका अपना बग़ीचा है। उस बग़ीचे में उसके मां-बाप दफनाये गये है। इसी बग़ीचे में वह पला, बड़ा हुआ।

''तिचरीन'' के महीने में अल मुस्तफा अपने द्वीप वापस लौटता है। यह महीना स्मरण करने का महीना है। अंत: अपने मां-बाप और मातृभूमि का स्मरण करने अल मुस्तफा आ रहा है। जैसे उसका जहाज किनारे से गुफ्तगू करने लगता है। जहाज का नाविक देखते है कि किनारे पर गांव वालों की भीड़ खड़ी अल मुस्तफा के स्वागत का इंतजार कर रही है। अल मुस्तफा के ह्रदय में समुंदर लहरा रहा है। लेकिन उसके होंठ चुप है। वह गांव वालों की पीड़ा को अपने भीतर महसूस कर रहा है।

तभी भीड़ में से करीमा आगे आती है। करीमा उसकी बचपन की दोस्त है। वह सबकी जबान बनती है—'' बारह साल तक तुम हमसे मुंह छिपाये रहे। बारह साल तक तुम्हारी आवाज सुनने के लिए हमारे कान तरसते रहे।

वह निहायत कोमलता से उसे देखता है। वह करीमा ही थी जिसने उसकी मां की आंखे बंद की थी जब मौत के सफेद पंखों ने उसे अपनी बांहों में समेट लिया था।

''बाहर साल।'' उसने कहा, ''मैंने कभी सितारों के डंडे से अपने विरह को नापा नहीं। प्रेम जब घर की याद करता है तो वक्त का लेखा-जोखा समाप्त हो जाता है। कुछ पल ऐसे भी होते है जो विरह के युगों को अपने से संजोते है। फिर भी विरह मन की थकान के अलावा और कुछ नहीं है। हो सकता है हम कभी बिछुड़े ही न हो। ''

फिर उसने भीड़ पर नजर डाली। हर तरह के लोग थे वहां। और उनके चेहरे पर भी विरह और प्रश्नों की रोशनी थी।

एक ने कहा, ''मास्टर जिंदगी ने हमारी आशाओं और इच्छाओं के साथ बड़ा बुरा सलूक किया है। हमारे दिल परेशान है और हमारी समझ को साहिल नहीं मिल रहा। मेहरबानी करके हमारे इन दुखों का मतलब हमें समझायें।

और अल मुस्तफा का हृरदय करूणा से पसीज जाता है। उसने कहा, ''जीवन सारी जिंदा चीजों से भी पुराना है। जब जमीन पर सुंदरता पैदा नहीं हुई थी। तब भी सौंदर्य के पंख थे। जीवन हमारी खामोशियों में गाता है और हमारी नींदों में ख्वाब देखता है। जब हम कुटे-पीटे होते है तब भी जीवन बुलंदी को छू रहा होता है। और जब हम आंसुओं में डूबे होते है तब वह हंसता रहता है।

इसके बाद अकेला अल मुस्तफा अपने बग़ीचे में जाता है। लोग भी उसके पीछे जाना चाहते है लेकिन वे अपनी चाहत के पाँवों में ज़ंजीरें बाँध लेते है।

चालीस दिन और चालीस रातें अल मुस्तफा एकांत में बिताता है। चालीस दिनों के बाद वि द्वार खोलता है ताकि लोग अंदर आ सकें। नौ लोग अंदर आते है। जो कि उसके शिष्य होते है। उन शिष्यों में से एक-एक करके अल मुस्तफा से अलग-अलग विषयों पर प्रश्न पूछते है और वह उसका जवाब देता है।

यह शैली खलील जिब्रान के ''प्रॉफेट'' जैसी है। वहां भी लोग उसे जीवन के सभी पहलुओं पर प्रश्न पूछते है। और अल मुस्तफा उनके प्रज्ञा पूर्ण उत्तर देता है।

फिर एक दिन करीमा द्वार पर आ कर खड़ी होती है। अल मुस्तफा उसके लिए द्वार खोल देता है। करीमा का उस पर खास हक बनता है। बचपन में उनका भाई-बहन का सा प्यार था।

उस हक को अदा करते हुए करीमा पूछती है। ''आपने खुद को हमसे कहां छुपा लिया है?इतने साल हम आपके लिए तरसते रहे, आपने सलामत लौटने की दुआ करते रहे। ओर अब लोग आपकी मांग कर रहे है, आपसे बातें करना चाहते है, मैं उनका पैगाम ले कर आई हूं। उनके टूटे हुए दिलों को दिलासा दो, हमारी बेवकूफी को अपनी समझ का किनारा दो।''

उसकी और देखकर अल मुस्तफा ने कहा, ''मुझे समझदार मत कहो जब तक कि तुम सभी को समझदार न कहो। मैं एक कच्चा फल हूं, अभी तक डाली को पकड़े हुए हूं। कल तक तो मैं फूल ही था।

और तुम लोगों में से किसी को बेवकूफ न कहो क्योंकि हकीकत में न तो हम बेवकूफ है न समझदार। हम जीवन के दरख़्त पर उगे हरे पत्ते है। और जीवन समझ और नासमझी के पार है।

उसके बाद अल मुस्तफा करीमा के साथ बजार गया। लोग उससे भिन्न-भिन्न विषयों पर उनकी शंकाएं पूछते गये और वह अपनी आवाज में समुंदर की गहराई भरकर उनका समाधान करता रहा।

एक शिष्य ने पूछा, ''होने का अर्थ क्या है? अल मुस्तफा ने का, ''होने का अर्थ है उन उंगलियों से बुनना जो देखती है, ऐसा वस्तु विशारद होना जिसे प्रकाश और अवकाश का बोध हो, ऐसा किसान जो हर बीज बोते वक्त जानता है कि तुम एक खजानें को मिट्टी में छिपा रहे हो। ऐसा मछुआरा और शिकारी होना जिसके दिन में मछली और जानवर के लिए दया हो, और उससे भी ज्यादा आदमी की भूख और जरूरत का अहसास हो।''

''मेरे साथियों, मेरे प्यारों, हिम्मतवर होओ, कमजोर नहीं; विशाल होओ, सीमित नहीं। और जब तक मेरी और तुम्हारी आखिरी घड़ी न आये तब तक श्रेष्ठता को उपलब्ध रहा।''

बोलते-बोलते वह रूक गया और नौ शिष्यों पर गहरी उदासी छा गई। उनके ह्रदय उससे दूर चले गये क्योंकि उसके शब्द उनके पल्ले नहीं पड़ रहे थे। जो तीन नाविक थे। वे सागर पर सवार होने के लिए व्याकुल हो उठे। जो मंदिर के पुजारी थे वे पूजा घर की सांत्वना के लिए आतुर हो गये, और जो बचपन के दोस्त थे वे बाजार की चाह से भर उठे। वे सब उसके शब्दों के लिए बहरे हो गये थे इसलिए अल मुस्तफा के शब्दों की ध्वनि थके हुए बेघर पंछियों की तरह उसके पास लोट आई।

अल मुस्तफा उनकी तरफ से पीठ कर के अपने बग़ीचे में लोट आया। और वे लोग जाने के लिए बहाने ढूँढ़ते हुए, आपस में चर्चा करते हुए अपनी-अपनी जगह लौट गये। अल मुस्तफा विशिष्ट और प्रेम से भरा, बिलकुल अकेला रहा गया।

फिर सात दिन और सात रातें गुजरी जिनके दरमियान बग़ीचे में कोई नहीं आया। लेकिन आठवें दिन वे नौ शिष्य और करीमा फिर आ पहुंचे। करीमा अपने साथ ब्रेड और शराब लायी थी। वे अब एक साथ बैठकर खाने लगे। अल मुस्तफा ने प्रेमपूर्ण उन पर एक साथ निगाह डाली—उसकी निगाह में यात्रा थी और था एक सुदूर देश।

उसने उनसे कहा, ''इसके पहले कि हम अपने-अपने रास्ते जाएं, मैं तुम्हें अपने ह्रदय की फसल और रोशनी देना चाहता हूं। तुम अपने रास्ते गाते हुए जाओं लेकिर हर गीत छोटा रहे। क्योंकि जो गीत तुम्हारे होंठों पर जवान मरते है वे आदमी के ह्रदयो में जीते है। खूबसूरत सत्य को थोड़े से शब्दों में कहना लेकिन बदसूरत सत्य को एक भी शब्द में न कहना। बांसुरी वादक को इस तरह सुनना जैसे अप्रैल के महीने को सुनते हो और आलोचक और नुक्ताचीं आदमी को ऐसे सुनो जैसे बहरे हो और तुम्हारी कल्पनाओं की मानिंद दूर हो।

मैं तुम्हें मौन नहीं, धीमा-धीमा संगीत सिखाता हूं। मैं तुम्हें विशाल आत्मा की सिखावन देता हूं, जिसमे सारे मनुष्य समाहित है।''

वह उठा और साइप्रस वृक्षों के लंबे सायों से गुजरता हुआ उसी जहाज पर पहुंचा जिससे आया था। वे उसके पीछे, कुछ दूरी पर, बाअदब, भारी ह्रदय से चल रहे थे। वहां पहुंच कर उसने कहा, ''मैं जा रहा हूं, लेकिन अगर मैं सत्य को बिना कहे जाऊँगा तो वह सत्य मेरा पीछा करेगा। और मुझे वापस बूलायेगा। और फिर मुझे तुम्हारे सामने आकर उस नई आवाज में बात करनी पड़ेगी जो ह्रदय की असीम खामोशियों में पैदा होती है।

''मैं मृत्यु के पार जीऊंगा और तुम्हारे कानों में गुनगुनाऊंगा।

जब मुझे समुंदर की विशाल लहर उसकी गहराई में ले जायेगी तब भी मैं तुम्हारे करीब बैठूंगा—बिना शरीर के।

मैं तुम्हारे खेतों में जाउँगा—अदृश्य आत्मा बनकर।

मैं तुम्हारी आग के पास आउंगा—अदृश्य अतिथि बनकर।

मृत्यु कुछ भी नहीं बदलती। सिवाय उन मुखौटों के जो तुम्हारे चेहरों को ढाँकते है।

जैसे ही जहाज गहरे समुंदर की और चल पड़ता है, कोई धुंध सी अल मुस्तफा को घेर लेती है। यह धुंध जिब्रान का प्रतीक है निर्वाण का, परम प्रकाश का या रहस्य का। इसमें धीरे-धीरे अल मुस्तफा विलीन हो जाता है। उसके आखिरी शब्द धुंध को संबोधित है:

इस किताब में खलील जिब्रान के खुद बनाये हुए पाँच चित्र है। जिब्रान के चित्रों में वहीं रहस्य का आभास है जो उसे शब्दों में है। उसके साथ ही, दो पन्नों पर जिब्रान के हाथ के लिखी पंक्तियां भी है। हस्ताक्षर विशेषज्ञों के लिए जिब्रान के व्यक्तित्व को आंकने का यह सुनहरा मौका है।

किताब की झलक :

और एक सुबह जब आसमान ऊषा के स्पर्श से पीला ही था, वे सब मिलकर बग़ीचे में घूमते हुए पूरब को निहारने लगे। ऊगते हुए सूरज की मौजूदगी में वे मौन रहे।

कुछ समय बाद, सूरज की और इशारा करते हुए अल मुस्तफा ने कहा, ''ओस कण में उतरी हुई सूरज की छवि सूरज से किसी तरह कम नहीं है। तुम्हारी आत्मा में हुआ जीवन का प्रतिबिंब किसी तरह जीवन से कम नहीं है।

''ओस कण प्रकाश को प्रतिफलित करता है क्योंकि वह प्रकाश के साथ एक है। और तुम जीवन को प्रतिबिंबित करते हो क्योंकि तुम जीवन के साथ ऐ हो।''

''जब अँधेरा उतरे तो कहो: यह अँधेरा अजन्मी भोर है; और हालांकि रात के तेवर अपने निखार पर है, सुबह मेरे ऊपर उतनी ही उतरेगी जितनी कि पहाड़ियों पर।

''सांझ को लिली के फूल में अपने आपको समेटता हुआ ओस कण तुम्हारी तरह है—अपनी आत्मा को परमात्मा के ह्रदय में संजो रहा।''

क्या ओस कण ऐसा कहे कि ''हजार साल में सिर्फ एक बार मैं ओस कण बनता हूं।'' तुम उससे कहोगे कि सभी वर्षों का प्रकाश तुम्हारे घेरे में चमक रहा है।''

फिर वह उन नौ लोगों और एक स्त्री के साथ बाजार गया और उसने लोगों के साथ बात की जिनमें उसके दोस्त, उसके पड़ोसी शामिल थे। उनके दिलों में और पलकों पर खुशी थी।

उसने कहा, ''तुम नींद में बढ़ते हो और ख़्वाबों में भरपूर जीवन जीते हो। रात की स्तब्धता में तुमने जो पाया है उसका धन्यवाद करने में तुम्हारा दिन बीतता है।

''अक्सर तुम रात के बारे में इस तरह बात करते हो जैसे वह विश्राम का समय हो। लेकिन हकीकत में रात खोजने का, ढूढ़ने का मौसम है।

''दिन तुम्हें ज्ञान की ताकत सिखाता है और तुम्हारी उंगलियों को ग्रहण करने की कला सिखाता है। लेकिन वह रात है जो तुम्हें जीवन के खजानें की और ले जाती है।

''सूरज उन सब चीजों को सिखाता है जो प्रकाश के लिए अभीप्सा रखते है, लेकिन वह रात है जो उन्हें सितारों तक ऊपर उठाती है।

''वि रात की स्तब्धता ही जो है जो जंगल के वृक्षों के ऊपर और बग़ीचे के फूलों वर विवाह का घूँघट डालती है फिर वह मिष्ठान भोज तैयार कर सुहागरात का कक्ष तैयार करती है। और उस पवित्र सन्नाटे में समय के गर्भ में ''कल'' का बीज पड़ता है।''

ओशो का नज़रिया :

खलील जिब्रान ने अपनी मातृभाषा में कई किताबें लिखीं। जो उसने अंग्रेजी में लिखीं वे बहुत प्रसिद्ध हुई। जिनमे सबसे अधिक ख्याति नाम है ''दि प्रॉफेट'' और ''मैडमैन''...ओर भी कई है। लेकिन उसने बहुत सी अपनी भाषा में लिखी है। उनमें कुछ अनुवादित हुई। हालांकि अनुवाद मूल की तरह नहीं हो सकता। लेकिन खलील जिब्रान इतना महान है कि अनुवाद में भी कुछ न कुछ बहुमूल्य मिल जाता है। आज मैं कुछ अनुवादों का जिक्र करने वाला हूं।

तीसरी किताब है, खलील की ''दि गार्डन ऑफ प्रॉफेट'' यह अनुवाद है लेकिन यह मुझे महान इपिक्युरस की याद दिलाता है। मेरी जानकारी में नहीं है कि मेरे सिवाय किसी और ने इपिक्युरस को महान कहा हो। सदियों से उसकी निंदा ही की गई है। लेकिन मैं जानता हूं कि जब भीड़ किसी की निंदा करती है तब उसमे कोई श्रेष्ठता होती है।

खलील जिब्रान की किताब ''दि गार्डन आफ प्रॉफेट'' मुझे इपिक्युरस की याद इस लिए दिलाती है क्योंकि वह अपने कम्यून को ''गार्डन'' कहता था। व्यक्ति जो भी कहता है उसमे उसकी छवि झलकती है। प्लेटों अपने कम्यून को ''एकेडमी'' कहता था। स्वभावत: क्योंकि वह महान शिक्षाशास्त्री था, बड़ा बौद्धिक दार्शनिक।

इपिक्युरस अपने कम्यून को गार्डन कहता था। वे लोग वृक्षों के नीचे, सितारों तले रहते थे। एक बार राजा इपिक्युरस को देखने आया क्योंकि उसने सुना था कि कैसे ये लोग बहुत ही आनंदित रहते है। वह जानना चाहता था, उसको जिज्ञासा थी कि ये लोग इतने प्रसन्न क्यों है : क्या कारण हो सकता है—क्योंकि उनके पास कुछ भी नहीं है। वह परेशान था, क्योंकि वे सचमुच प्रसन्न थे, वे नाच और गा रहे थे।

राजा ने कहा, ''इपिक्युरस, मैं आप और आपके लोगों के साथ बहुत खुश हूं। क्या आप मुझसे उपहार लेंगे?''

इपिक्युरस ने राजा से कहा, ''यदि आप वापस आते है, आप कुछ मक्खन ला सकते है। क्योंकि कई सालों से मेरे लोगों ने मक्खन नहीं देखा है। वे ब्रेड बिना मक्खन के खाते है। और एक बात और : यदि आप फिर आते है

तो कृपया बाहरी व्यक्ति की तरह खड़े न रहे। जब तक आप यहां है हमारे हिस्से बन जाएं। हिस्सा लें, हमारे साथ एक हो जाएं। नाचे गायें। हमारे पास आपको देने के लिए और कुछ भी नहीं है।''

खलील जिब्रान की किताब मुझे इपिक्युरस की याद दिलाती है। मैं क्षमा चाहता हूं कि मैंने इपिक्युरस का जिक्र नहीं किया, परन्तु इसके लिए मैं जिम्मेदार नहीं हूं। उसकी किताबें जला दी गई। ईसाइयों द्वारा नष्ट कर दी गई। जितनी भी किताबें थी सैकड़ों सालों पहले नष्ट कर दी गई। इसलिए मैं उसकी किताबों का जिक्र नहीं कर सकता, परंतु मैं खलील जिब्रान और उसकी किताब ''दि गार्डन ऑफ प्रॉफेट'' के द्वारा उसको ले आया हूं।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

14/ ताओ तेह किंग-(लाओत्से)

ताओ तेह किंग—(लाओत्से)

Tao Teh King-Lao Tzu

लाओत्से ने जो कहा : वह पच्चीस सौ साल पुराना जरूर है। लेकिन, एक अर्थ में यह इतना ही नया है। जितनी सुबह की ओस की बुंदे नयी होती है। नया इसलिए है कि उस पर अब तक प्रयोग नहीं हुआ। नया इसलिए है कि मनुष्य की आत्मा उस रास्ते पर एक कदम भी नहीं चली। रास्ता बिलकुल अछूता और कुंआरा है।

भारत की तरह चीन ने भी धरती पर सबसे पुरानी वह समृद्ध सभ्यता की विरासत पायी है। कोई छह हजार वर्षों का उसका ज्ञात इतिहास है—अर्जनों और उपलब्धियों से लदा हुआ। यदि पूछा जाए कि चीन के इस लंबे और शानदार इतिहास में सबसे उजागर व्यक्तित्व, एक ही व्यक्तित्व कौन हुआ, तो आज का प्रबुद्ध जगत बिना हिचकिचाहट के लाओत्से का नाम लेगा। कुछ समय पूर्व इस प्रश्न के उत्तर में शायद कंफ्यूशियस का नाम लिया जाता। कंफ्यूशियस लाओत्से का समकालीन था। और यह भी सच है कि बीते समय में चीनी समाज पर लाओत्से की जीवन दृष्टि के बजाय कंफ्यूशियस के नीतिवादी विचार अधिक प्रभावी सिद्ध हुए।

समय के थोड़े से अंतर के साथ भारत के बुद्ध और महावीर तथा यूनान के सुकरात भी लाओत्से के समकालीन थे।

अचरज की बात है कि चीन इतिहास को अपने सर्वाधिक मूल्यवान महापुरुष के जीवन वृत के संबंध में सबसे कम तथ्य मालूम है। लेकिन यह दुर्घटना लाओत्से की असाधारण दृष्टि के बिलकुल अनुकूल पड़ती है। उनका ही यह वचन है : ''इसलिए संत अपने व्यक्तित्व को सदा पीछे रखते है।''

प्रसिद्ध चीनी विद्वान लिन यूतांग ने अपनी पुस्तक ''दि विजडम आफ लाओत्से'' में लिखा है : ''लाओत्से के बारे में हम अत्यंत कम जानते है। इतना ही जानते है कि उनका जन्म 571 ई. पू. हुआ था। वे कंफ्यूशियस के समकालीन थे। और एक पुराने, सुसंस्कृत घराने से आते थे। राजधानी में सम्राट के अभिलेखागार के संरक्षक के पर लाओत्से कभी काम भी करते थे। मध्य जीवन में ही उन्होंने अवकाश ले लिया और गायब हो गये। संभवत: वे नब्बे वर्षों से अधिक दिनों तक जीए और पोते-पोतियों की संतति छोड़ कर मरे। उनमें से एक शासनधिकारी भी बना।

यह भी आश्चर्य की बात है कि इतनी लंबी उम्र रही हो जिनकी और इतनी गहरी प्रज्ञा को जो उपलब्ध हुआ हो, उनके वचनों की मात्र छोटी सी पुस्तिका मनुष्य जाति को प्राप्त हुई। ''ताओ तेह किंग'' या दि बुक आफ ताओ। ताओ उपनिषद उस का ही नाम है। इसमें लगभग इक्यासी छोटे-छोटे अध्याय है। जिन्हें सूत्र कहना अधिक उचित होगा। वर्तमान पुस्तक के आकार के पच्चीस-तीस पन्नों में वे पूरे वचन समा सकते है।

और यह छोटासा धर्म ग्रंथ गीता और उपनिषाद, धम्म पद या महावीर वाणी, बाइबिल या कुरान या झेन्दावेस्ता की ही कोटि में आता है। किसी से जरा भी कम हैसियत नहीं है इसकी। और कुछ अर्थों में तो यह बिलकुल ही अनूठा और अतुलनीय है।

यह प्रज्ञा-पुस्तक कैसे प्रणीत हुई, इसकी भी रोचक कथा है। जब लाओत्से की ख्याति बहुत बढ़ गई, तब उनके शिष्यों ने यहां तक की राज ने बहुत आग्रह किया कि उन्होंने जो जाना है, जो अनुभव किया है। उसे वे कहीं अभिलिखित कर दें। लेकिन ताओ के ऋषि लाओत्से सदा ही इनकार करते रहे। ओर`जब आग्रह का जोर बहुत बढ़ा, तब इससे बचने के लिए एक रात चुपके से अपनी कुटिया छोड़कर, कुटिया क्या देश छोड़ कर भाग निकले। लेकिन देश की सीमा पर सम्राट ने उन्हें पकड़वा लिया और कहलवा भेजा कि बिना चुंगी कर चुकाए

आप सरहद के पार नहीं जा सकते। सो, चुंगी नाके पर ही चुंगी के रूप में यह अद्‌भुत उपनिषाद उद्‌भूत हुआ। जिसका आरंभ ही इन शब्दों के साथ होता है: सत्य कहा नहीं जा सकता। और जो कहा जा सकता है, वह सत्य नहीं है।

और यह चुंगी चुका कर फिर ताओ तेह किंग के ऋषि कहां अंतर्धान हो गए, उसकी भी कोई खबर इतिहास में नहीं है। और यह भी उस संत के सर्वथा अनुरूप ही हुआ। कथा, कहती है, लाओत्से सशरीर अनंत शून्य में लीन हो गए।

यह ग्रंथ गागर में सागर भरने की अपूर्व और सफल चेष्टा है। प्राचीन समय के ज्ञानी अपनी बात, अपना दर्शन सूत्र रूप में या बीज-मंत्रों की तरह अभिव्यक्त करते थे। ताओ उपनिषाद इस दृष्टि में भी अप्रतिम है। उसकी वाणी पाठकों को हमारे देश के संत कबीर की उलटवांसियों की याद दिलाती है। जीवन की आदिम सहजता और स्वभाविक की, निर्दोषिता और रहस्यमयता की जैसी हिमायत की है लाओत्से ने, यह कबीर के अत्यंत निकट पड़ती है।

किताब की एक झलक:

1-इसलिए यदि जीवन के रहस्य की अतुल गहराइयां
को मापना हो तो निष्काम जीवन
ही उपयोगी है। कामयुक्त मन को
इसकी बह्म परिधि ही दिखती है
2-यदि योग्यता को पद-मर्यादा न मिले,
तो न तो विग्रह हो और न संघर्ष
यदि दुर्लभ पदार्थों को महत्व नहीं दिया जाए,
तो लोग दस्यु-वृति से भी मुक्त रहें
यदि उसकी और, जो स्पृहणीय है
उनका ध्यान आकर्षित न किया जाए
तो उनके ह्रदय अनुद्विग्न रहें।
3-घाटी की आत्मा कभी नहीं मरती
इसे हम स्त्रैण रहस्य,
ऐसा नाम देते है।
इस स्त्रैण रहस्यमयी का द्वार
स्वर्ग और पृथ्वी का मुल स्त्रोत है।
4-यह सर्वथा अविच्छिन्न है
इसकी शक्ति अखंड है,
ओर इसकी सेवा सहज उपलब्ध होती है।
5-सर्वोत्कृष्टता जल के सदृश होती है
जल की महानता पर हितैषणा में निहित होता है
और उस विनम्रता में हाथी है
जिसके कारण यह अनायास ही
ऐसे निम्नतम स्थान ग्रहण करती है

जिनकी हम निंदा करते है।

इसीलिए तो जल का स्वभाव ताओ के निकट हे।

6- आवास की श्रेष्ठता स्थान की उपयुक्तता में होती है

मन की श्रेष्ठता उसकी अतल निस्तब्धता में,

संसर्ग की श्रेष्ठता पुण्यात्माओं के साथ रहने में

शासन की श्रेष्ठता अमन-चैन की स्थापना में

कार्य-पद्धति की श्रेष्ठता कर्म की कुशलता में

और किसी आंदोलन के सूत्रपात की श्रेष्ठता उसकी सामयिकता में है।

और जब तक कोई श्रेष्ठ व्यक्ति

अपनी निम्न स्थिति के संबंध में कोई

वितंडा खड़ा नहीं करता,

तब तक वि समादृत होता है।

ओशो का नज़रिया :

लाओत्से ने ये अकेली एक ही किताब लिखी है। और यह उसने लिखी जिंदगी के आखिरी हिस्से में। उसने कोई किताब कभी नहीं लिखी। और जिंदगी भर लोग उसके पीछे पड़े थे। साधारण से आदमी से लेकर सम्राट तक ने उससे प्रार्थना की थी कि लाओत्से, आपने अनुभव को लिख जाओ। लाओत्से हंसता और टाल देता। और लाओत्से कहता, कौन कब लिख पाया है? मुझे उस नासमझी में मत डालों। पहले भी लोगों ने कोशिश की है। और जो जानते है उनकी कोशिश पर हंसते है। क्योंकि वे असफल हुए है। और जो नहीं जानते, वे उनकी असफलता को सत्य समझ कर पकड़ लेते है। मुझसे यह भूल मत करवाएं। जो जानते है, वे मुझ पर हंसेंगे की देखो, लाओत्से भी वहीं कर रहा है। जो नहीं कहा जा सकता, उसे कह रहा है। जो नहीं लिखा जा सकता उसको लिख रहा है। नहीं, ये मैं नहीं करूंगा।

लाओत्से जिंदगी भर टालता रहा, टालता रहा। मौत करीब आने लगी; तो मित्रों का दबाब और शिष्यों का आग्रह भारी पड़ने लगा। लाओत्से के पास सच में संपदा तो बहुत थी। बहुत कम लोगों के पास इतनी संपदा होती है। बहुत कम लोगों ने इतना गहरा जाना और देखा है। तो स्वभाविक था, आस-पास के लोगों का आग्रह भी उचित और ठीक ही था। लाओत्से लिख जाओ, लिख जाओ।

जब आग्रह बहुत बढ़ गया और मौत दिखाई देने लगी आते हुए। और लाओत्से मुश्किल में पड़ गया, तो एक रात निकल भागा। निकल भागा। उन लोगों की वजह से, जो पीछे पड़े थे। कि लिखो, बोलों, कहो, सुबह शिष्यों ने देखा कि लाओत्से की कुटिया खाली है। पक्षी उड़ गया। पिंजड़ा खाली पडा है। वे बड़ी मुश्किल में पड़ गए। सम्राट को खबर की गई और लाओत्से को देश की सीमा पर पकड़ा गया। सम्राट के अधिकारी भेजे और लाओत्से को रूकवाया, चुंगी पर देश की, जहां चीन समाप्त होता था। और लाओत्से से कहा कि सम्राट ने कहा है कि चुंगी दिये बीन तुम जा न सकोगे। तो लाओत्से ने कहा की मैं तो कुछ भी साथ नहीं लिए जा रहा हूं। जिससे की मुझे चुंगी देनी पड़े। सम्राट ने कहलवा भेजा की तुमसे ज्यादा संपत्ति इस मुल्क के बाहर कभी कोई आदमी लेकर नहीं भागा। रुको चुंगी नाके पर और जो भी तुमने जाना है, लिख जाओ।

यह किताब उस चुंगी नाके पर लिखी गई थी। वह लिख जाओ, तो मुल्क के बाहर निकल सकोगे। अन्यथा मुल्क के बाहर नहीं जा सकोगे। मजबूरी में, पुलिस के पहरे में, यह किताब लिखी गई थी। लाओत्से ने कहा, ठीक है, मुझे जाना ही है बाहर, तो मैं कुछ लिख जाता हूं।

यह ताओ तेह किंग अनूठी किताब है। इस तरह कभी नहीं लिखी गई कोई किताब। भाग रहा था लाओत्से इसी किताब को लिखने से बचने के लिए। निश्चित कठोरता लगती है, सम्राट ने जो किया। लेकिन दया भी लगती है। यह किताब न होती, तो लाओत्से जैसे और लोग भी हुए है। जो नहीं लिख गए है। लेकिन जो नहीं लिख जाते उन से भी तो क्या फायदा होता है। जो नहीं लिख जाते, उन पर कम से कम विवाद नहीं होता। जो लिख जाते है, उन पर विवाद होता है। जो लिख जाते है उनके एक-एक शब्द पर हम विचार करते है। कि इसका क्या मतलब है। और मतलब शब्दों के बाहर रह जाता है। कभी अगर मनुष्य जाति का अंतिम लेखा-जोखा होगा, तो कहना मुश्किल है कि जो लिख गए है वे बुद्धिमान समझे जायेगे कि जो नहीं लिख गए है वे बुद्धिमान समझे जाएंगे। वैसे दो में एक कुछ भी चुनो, द्वैत का ही चुनाव है। कोई लिखने के खिलाफ चुप रहने को चुन लेता है; बाकी द्वैत से बचने का उपाय नहीं है।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

15/ दि तवासिन-(मंसूर)

तवासिन—(मंसूर मस्ताना)

Tawanish-Mansoor Mastana

कभी-कभी इंसान की मौत इतनी जिंदा हो जाती है कि उसकी जिंदगी को भी अपनी रोशनी से पुनरुज्जीवित कर देती है। पर्शियन सूफी औलिया अल-हृल्लास मंसूर का नाम दो चीजों के लिए इन्सानियत के ज़ेहन में खुद गया है : एक उसकी रूबाइयात और दूसरा उसकी मौत। ''अनलहक़'' का निडर ऐलान करने वाले कई औलिया होंगे लेकिन इस क्रूफ्र के लिए अपने जिस्म की बोटी-बोट कटवाने वाला एक ही था: ''मंसूर'' इस खौफनाक, अमानुष मौत की वजह से उसका प्यारा वचन ''अनलहक़'' भी दसों दिशाओं में अब तक गूंज रहा है। आदि शंकराचार्य ने भी ''अहं ब्रह्मास्मि'' के महावाक्य का उद्घोष किया था लेकिन सहनशील, उदारमना हिंदू धर्म ने उन्हें इतनी कठोर सज़ा नहीं दी।

मंसूर अल हल्लाज पर्शिया में मुसलमान मां-बाप से पैदा हुआ। वह सन था ईसवी 857। फारसी और तुर्की किताबों में उसका जिक्र पाया जाता है। वह अरेबिक भाषा में लिखता था। हल्लाज का मतलब है, ऊन निकालने वाला। मंसूर के पिता का यह पेशा था, और मंसूर ने भी यही पेशा अपनाया। जन्म से सुन्नी होने के नाते मंसूर बहुत पाक दिल था। वह रमज़ान में रोज़े रखता था और हज़ की यात्रा में वि पूरा मौन रहता था ताकि उसे अंदर से अल्लाह की आवाज़ सुनाई पड़े।

मंसूर बसरा के शहर में बस गया जहां उसे सूफी चोगा ''खिरक़ा'' मिला। लेकिन वहां से तस्तर शहर में आकर वह साधारण जनों और संदेह से भरे पंडितों के बीज अल्लाह का पैगाम फैलाना चाहता था। इसलिए उसने सूफी ''खिरक़ा'' उतार फेंक दिया। उसके सुनने वालों में से कुछ बंदे उसके दोस्त बने तो कुछ दुश्मन।

मंसूर तस्तर, बगदाद और बसरा में घूमता हुआ अपने बगावती ख्यालात फैलाता रहा। बगदाद वापिस आने पर उसने एक अजीबो-गरीब रवैया शुरू किया। वह बगदाद की सड़कों पर घूमता रहता और कहता, ''मैं हक़ की खातिर कानून के हाथों मरना चाहता हूं।'' इस अजीब कथन के लिए एक दफा उसे फतवा भी दिया गया लेकिन दूसरे वकीलों ने बात टाल दी यह कह कर कि ऐसी ऊटपटांग बातें करना औलियाओं का अंदाज होता है। लेकिन एक दिन अल-हल्लाज ''अनलहक़'' कहते हुए घूमने लगा। तब वकीलों ने कहा ''कुफ्र'' बगदाद के खलीफा ने हल्लाज पर मुकदमा दाया किया। लेकिन वहां के वजीर की मेहरबानी से मंसूर को राजमहल में सिर्फ नजरकैद किया गया। तकरीबन आठ साल और आठ महीनों तक वह महल में कैद रहा। बहरहाल, फिर एक बार दरबार में शिया वकीलों ने मुकदमे को खोला। इस बार मंसूर पर इल्जाम था कि वह काबा और मक्का का खात्मा करने की नसीहत देता है। यह सच है कि मंसूर ने अपने शागिर्द शाकिर को लिखा था: ''तुम्हारे काबा को खत्म कर दो।'' जिसका छुपा हुआ मतलब यह था कि ''इसलाम के लिए अपनी जिंदगी को कुर्बानी कर दो, जैसे मैंने की है।'' लेकिन काज़ी ने इन शब्दों को शब्दशः: लिया और मंसूर को 26 मार्च 922 के रोज ''मसलूब'' करने का फत्वा दे दिया याने कि बोटी-बोटी काटकर उसे मारा गया।

सुन्नी पंथ के लोग इस घटना को मंसूर की आध्यात्मिकता की मीराज़ अंतिम शिखर के रूप में देखते है। सूली पर चढ़े हुए मंसूर के मुंह से एक से एक दिव्य गीत निकले। मंसूर की शहादत के बाद उसकी शोहरत की खुशबू दूर-दूर तक फैली। सूफियों ने अपनी किताबों में मंसूर की कुर्बानी सूफीवाद की बुलंदी की मानिंद दर्ज की है।

फिर भी सूफी विद्वान यह भी मानते है कि अपनी अंतिम अवस्था ''बका'' को मंसूर छुपा नहीं सका। वह पूरी दीवानगी और जुनून के साथ खुदा के साथ अपनी तौहीद (तल्लीनता) को गाता रहा। अन्य पहुंचे हुए सूफी पीर—मसलन उसका अपना गुरु जुन्नैद अपनी मस्ती को दिल में छुपा कर अपनी रोशनी बांटने में सफल रहा। सूफी फकीर अपनी साधना के दौरान मन की एक से एक उच्चतर अवस्थाओं से गुजरते है जिन्हें ''औल'' कहते है। लेकिन अपनी मस्ती को दुनिया की नापाक निगाहों से छिपाकर वे ''मजदूब'' (मस्त फकीर) बाहर से साधारण होने का स्वांग रचते है ताकि वे सूफी गुरूओं के वचन एक खास माहौल में, एक खास मनोदशा में पढ़े जाते है। तो ही उनका सही आशय समझ में आता है। मंसूर के वचन भी इसी जात के है। ये वचन जिस किताब में इकट्ठे किये गये है उसे ''तवासिन'' कहते है क्योंकि वे खुदा के साथ उसके मिलन की मदहोशी के, तौहीद, के अनुभव का प्रति फलन है। इस करके उन्हें सुनकर हैरत होती है। यह हैरत भी पढ़ने वाले को उस पार की झलक दे सकती है। ये वचन मूल फारसी में दर्ज है। उनके अंग्रेजी अनुवाद का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत है।

है तो यह शोरबे के शोरबे का शोरबा, लेकिन यह भी कम ज़ायकेदार नहीं है।

किताब की झलक: ''तवासिन''

1-परवाना सारी रात शमा के इर्दगिर्द घूमता रहता है। फिर वह सुबह अपने साथियों के पास अपनी रूहानी दशा बड़ी लफ्फाजी के साथ उन पर प्रगट करता है। उसके बाद, पूरे मिलन की चाह में वह शमा की लहराती हुई लपट में खो जाता है।

2-शमा की रोशनी सच का इलहाम है। उसकी गर्मी सच की हकीकत है। और उसे साथ मिलन सचाई का सच है।

3-वह उसकी रोशनी से खुश नहीं था, और न ही उसकी गर्मी से इसलिए वह उसमे पूरी तरह कूद पडा। इधर उसके साथी उसका इंतजार कर रहे थे कि वह लौटकर आयेगा और अपनी सीधा तजुर्बा उन्हें बातयेगा। क्योंकि वह सुनी-सुनाई बातों पर भरोसा करने वालों में से नहीं था। लेकिन उस पल वह पूरी तरह झुलस रहा था। टुकड़-टुकड़े हो रहा था। और वह किसी भी शकल, सूरत या जिस्म में नहीं था। फिर वह अपने साथियों के पास किस कदर जाये। किस रूप में जाये? जिसे खुद की नजर मिल गई वह अफ़वाहों पर ध्यान क्यों देगा? जिसे अपनी नजर की चीज का दीदा हुआ वह नजर की भी फिक्र क्यों करेगा?

4-ये अर्थ उस आदमी के मतलब के नहीं है जो असावधान है, चंचल है, गलत काम करता है, या सनकी है।

5-तुम, जो डांवाडोल हो, ''मैं हूं'' के ''मैं'' को खुदा का ''मैं'' मत समझ लेना—न अभी, न फिर कभी, न पहले कभी। अगरचे, ''मैं' एक पका हुआ इल्मदां होता, या यह मेरा ''औल'' होता, तब भी मेरे देखे ये आखिरी हद नहीं थी। माना कि मैं उसका हूं, लेकिन ये ''मैं'' वह ''मैं'' नहीं है।

6-अगर तुमने इतना समझ लिया है तो फिर यह भी समझ लो कि ये मतलब मुहम्मद के अलावा और किसी के लिए सच नहीं है। और मुहम्मद तुममें से किसी भी आदमी के वालिद नहीं है, बल्कि अल्लाह के पैगंबर है। और मसीहों की मुहर है। उन्होंने खुद को इंसानों और जिन से जुदा कर लिया है। उन्होंने ''कहां?'' के लिए अपनी आंखे बंद कर लीं, और तब, उनके दिल पर न कोई पर्दा बचा, न कोई झूठ।

ओशो का नज़रिया:

एक बहुत खूबसूरत आदमी को मैंने देखा। मैंने उसका ज़िक्र किया है लेकिन इन पचास किताबों की सूची में उसका नाम नहीं लिया। वह आदमी है, अल हल्लाज मंसूर। अल हल्लाज ने किताबें नहीं लिखीं लेकिन उसके

कुछ वचन उपलब्ध है—या कहें उद्घोष। अल हल्लाज जैसे लोग सिर्फ उदधोष करते है। अहंकार से नहीं: उनका तो अहंकार होता ही नहीं। इसलिए वह कहता है : ''अनलहक़''

''अनलहक़'' उसका उदधोष है, और उसका मतलब है, ''मैं अल्लाह हूं'' और दूसरा कोई खुदा नहीं है। मुसलमान उसे माफ़ नहीं कर सके। उन्होंने उसे मार डाला। लेकिन क्या तुम अल हल्लाज को मार सकते हो? असंभव, जब वे उसे मार रहे थे तब भी वह हंस रहा था।

लोगों ने पूछा: ''तुम सिर्फ हंस रहे हो?'' वह बोला: '' क्योंकि तुम मुझे नहीं मार रहे हो। तुम सिर्फ शरीर को नष्ट कर रहे हो। और मैंने बार-बार कहा है कि मैं शरीर नहीं हूं, मैं खुदा हूं।''

अब ये लोग पृथ्वी के नमक है। अल हल्लाज मंसूर ने कोई किताब नहीं लिखी, लेकिन उसके कुछ वचनों को उसके दोस्तों और प्रेमियों ने इकट्ठा कर लिया है। मैं उन्हें शिष्य भी नहीं कहूंगा। क्योंकि मंसूर जैसे लोग शिष्यों को, नकलचियों को स्वीकार नहीं करते।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

16/ दि सांग ऑफ सांगस्–(सालोमन)

सोलोमन का गीत—(विच इज़ सोलोमनस्)

गीतों का गीत जो कि सोलोमन का है।

यहूदियों के धर्मग्रंथ "दि ओल्ड टैस्टामैंट" या बाइबिल के कुछ विवादास्पद पन्ने "सोलोमन का गीत" बनकर आज भी यहूदी आरे ईसाई धर्म गुरूओं के लिए शर्म और संकोच की वजह बने हुए है।

गुरु गंभीर धार्मिक संहिता के बीच अचानक लगभग छह गीत ऐसे उभरे है जैसे मजबूत पुराने किले की दीवारों में कहीं लिली का नाजुक गुलाबी ह्रदय खिल उठा हो।

इन गीतों में पैलेस्टाइन का सम्राट सोलोमन और उसकी प्रेमिका के बीच हुए प्रणय प्रसंग का कामुक वर्णन है। काम के उठते हुए ज्वार को इन गीतों में बेपर्दा होकर मुखरित किया है। रबाइयों के लिए ये गीत कांटे बनकर चुभते है। इजरायल में पहली ईसवी में हुई धर्म परिषद ने पवित्र बाइबिल के दामन पर लगे हुए इस दाग को मिटा देने की भरसक कोशिश की। लेकिन रबाई आकिब ने पूरी शक्ति लगाकर इन्हें धर्म ग्रंथ में स्थापित किया। उसने कहा, "जिस दिन यह किताब इजरायल को दी गई उस दिन की गरिमा के सामने पूरा ब्रह्मांड फीका है। सभी धर्मग्रंथ पवित्र होते है लेकिन यह किताब पवित्रतम है।" यह प्रेम गीत इतना हर-दिल-अजीज हुआ कि बावजूद सारे रबाइयों के विरोध के, बस्ती-बस्ती, पर्वत-पर्वत, गांव-गांव, गली-गली स्त्री और पुरूष इसे गाते रहे; शादियों और उत्सवों में इसे अभिनीत करते रहे और धर्मगुरू इसे धर्मग्रंथ में छिपाते रहे।

सोलोमन का गीत जिंदा रहा जन साधारण के दिलों में, आम आदमी के होठों पर। पुरोहित तो इसे कब का मार डालते, लेकिन इस गीत की शक्ति महज लोग शक्ति नहीं है। इसकी अपनी आत्मा शक्ति भी है।

यह गीत अपने सीने में काबला पंथ का गहरा रहस्य छिपाये हुए है। काबला अर्थात यहूदी रहस्यवाद। इस गीत में आनंद की फुहार है ओर ज्ञान की गहराई भी। यह गीत मूलत: हिब्रू में कहा गया है। और हिब्रू भाषा की लिपि चित्रमय है। इसके एक-एक शब्द में ज्ञान का सागर छिपा हुआ है। यदि कोई उस का रहस्य खोलने में सक्षम हो तो। उपर से देखने में यह वैभव शाली सोलोमन और उसकी प्रेमिका की कामुक प्रेम कहानी है जिसकी वजह से गीत आम स्त्री-पुरूष की जिंदगी में प्रविष्ट हुआ। इस बहाने गीत को जिंदगी मिली। जिसे पीढ़ी दर पीढ़ी सड़क का हर आदमी गाये जा रहा हो उसे कौन मिटा सकता है। रबाई लाख छिपाते रहें बाइबिल को, इस गीत की धड़कन को किसी किताब का सहारा दरकार ही नहीं।

"दि सांग ऑफ सांगस्" का गहरा अर्थ : "सारो का सार" या इत्रों का इत्र। रहस्यदर्शीयों का कहना है कि मनुष्य की भाषा सत्य का वहन नहीं कर सकती क्योंकि वह इंद्रियों में बसी है। वासना की पूर्ति के लिए पैदा हुई है। इसलिए ज्ञानियों को दुरूह शब्दों का आश्रय लेना पडा ताकि सत्य को अक्षर के अंतस में संजोया जाये। और जो इसे लेने के लिए तैयार नहीं है, उनके हाथ में पड़ कर भ्रष्ट न हो जाये।

इस प्रेम गीत के तीन तल है—एक तो वह जो सतह पर जान पड़ता है।

दूसरा, काबला पंथ का प्रतीकात्मक तल।

और तीसरा, सूक्ष्म, दुर्बोध तल—नि:शब्द मनन का, जिसे केवल मस्तिष्क नहीं समझ सकता।

इस रहस्यदर्शी गीत का कर्तव्य सम्राट सोलोमन को कैसे मिला यह भी एक बेबूझ बात है। हो सकता है जिस वक्त यह गीत प्रगट हुआ तब सोलोमन चरम ऐश्वर्य में जी रहा था। उसके रंगरलियों के किस्से इजिप्त ओर इजरायल में गूंज रहे थे। इसलिए वही इसकी रचना के लिए सुपात्र जान पडा होगा।

इस गीत के साथ एक और असंगति जुड़ी है। कि वह यहूदी धर्म का अंग है और ईसाइयत का भी। प्राचीन परंपरा में चला आया ओल्ड टैस्टामैंट ईसा की सूली के बाद ईसाइयत का हिस्सा बना। इस गीत के एक अंग्रेज प्रकाशक माइकेल अडम का मानना है कि ईसा के पूर्व यहूदी लोग शरीर और आत्मा में विरोध नहीं देखते थे। अंत: प्रबल कामुक वासना का जश्न मनाने में उन्हें कोई शर्म महसूस नहीं होती थी।

आखिर वासना भी एक उद्वेलित ऊर्जा है जो उत्तुंग होने पर परमात्मा को छू सकती है। हो सकता है, सोलोमन परमात्मा का प्रतीक हो, और प्रेमिका मनुष्य ह्रदय की भक्ति का, आराधना का।

जो भी हो, इस श्रृंगारिक प्रीति काव्य के आसपास उठे झंझावात से एक बात साफ उभरती है कि अभी मनुष्य इतना प्रौढ़ नहीं हुआ है कि अपने आपको, अपनी नैसर्गिक निर्वस्त्र वासनाओं को स्वीकार करे। उन्हें कोई न कोई रंग, रोगन लगाकर ही वह प्रस्तुत कर सकता है।

कौन जाने, यह अबूझ गीत बाइबिल के लिए शर्मनाक दाग है या बाईबिल की शान। हो सकता है, समूची बाइबिल का सार निचोड़ इसी अमर गान में हो।

दुलहन:
मैं सोलोमन के लिए अपने गीतों का गीत गाऊंगी
जब तक कि वह अपने होंठों से मेरा मुंह बंद नहीं कर देता
मदिरा की मानिंद, लेकिन उससे भी अधिक मधुर
तुम्हारी सांस की नाजुक सुगंध है...
स्वामी, तुम्हारा नाम ही स्निग्ध भाषा की तरह बहता है
विश्व भर की युवतियां तुमसे इश्क करती है
राजाधिराज, तुम्हारे महल में तुम मुझे लाये हो
ख़ुशियाँ लूटने के लिए
आओ, शराब के साथ हम इश्क का जश्न मनाए
तुम्हें प्यार करने का मेरा हक बनता है
दूल्हा
और मेरी जानम, और दिलरुबा,
तेरे जिस्म की नफीस रेखाएं
क्या ये उस अश्विनी की है जो फेरोह के रथ को खिचती है।
तेरे गालों की गोलाई चमकते हुए स्वर्ण के लॉकट के बीच रोशन है
तेरी गर्दन से लिपटी हुई रत्नों की माला...
मैं तेरे लिए स्वर्ण के कुंडल बनाऊंगा
जिसमें चाँदी के बुंदके होगें
तुम कितनी खूबसूरत हो मेरी जान
कितनी हसीन....
महीन बुरके के पीछे छिपी तुम्हारी आंखे मानों कबूतर
सैलानी हवाओं में लहराते हुए तेरे बाल मानों
पहाड़ी भेड़ों के केश....
गिलीड (एक पहाड़ी) पर मचलती हुई ऊषा जिन्हें सहलाती है।

तेरे होंठ जुदा होते है
और तेरे दाँत शुभ्र तराशी हुई भेड़ की भांति
तेरे होठ एक लाल लकीर
लेकिन तेरी मुखरित आवाज को सुन
महबूबा, परदे की ओट में छिपे तेरे बालों को देखने दे
मानो अनार के दो टुकड़े कर रखे हो
शर्माते हुए स्वर्ण को याद कर
तेरी गर्दन उभरती है डेविड की मीनार की मानिंद
लेकिन तेरे स्तन
मुलायम स्तन दो छोटे हिरनों की भांति
जैसे हिरन के जोड़े
जो सिर्फ लिली खाकर पुष्ट हुए
इससे पहले कि हवा भोर की विचलित करे
और रात के साये बिखर जाएं
मैं इस खुशबूदार पहाड़ियों की गोलाई में डूब जाऊँगा
बेदाग इश्क बेहिसाब खूबसूरत
प्यार कर मेरी जान
लेबनान की ऊँचाइयों से नीचे उतर आ
मेरी दुलहन, अपने वादे के अनुसार नीचे आ
इस ठंडी नदी से, सेनिर और हारमोन कि बरफ से
बहकर प्यार में पिघल जा
–जहां शेर ओर चीते
जिन शिखरों पर बोलते है
ओशो का नजरिया:

सोलोमन के गीतों पर ध्यान करो। यह सबसे सुंदर गीत है। जो पहले कभी भी नहीं गाये गये। और यह यहूदी और ईसाईयों द्वारा नहीं समझे गये। वास्तव में वे थोड़ी झिझक महसूस करते है। क्योंकि ये कामुक लगते है। निश्चित ही ये कामुक लगते है। क्योंकि काम ही संभावित भाषा है जो अध्यात्म के निकटतम है। यह काम ऊर्जा है जो आध्यात्मिक ऊर्जा बनती है। इसलिए यह एकदम ठीक है कि गीतों के गीत, सोलोमन के गीतों के इर्द-गर्द इतनी उत्तेजना प्रतीत होती है। यह इतने उतेजक है, यह अतुलनीय उत्तेजना पूर्ण है। कभी भी ऐसा नहीं लिख गया। न गया गया। इतनी उद्दाम उत्तेजना के साथ। लेकिन तथा कथित धार्मिक व्यक्ति सोचता है कि एक धार्मिक व्यक्ति को बिलकुल ही इन्द्रियों के खिलाफ, काम के खिलाफ होना चाहिए। वह संवेदी नहीं हो सकता और वह सुखवादी नहीं हो सकता। यह पूर्णतया गलत है। धार्मिक व्यक्ति किसी अन्य से अधिक संवेदी होता है। क्योंकि वह अधिक जीवंत है। और जब तुम चरम को अभिव्यक्त करना चाहते हो तो केवल संभावित रास्ता यह है कि उसे मनुष्य के गहनत्म अनुभव के ज़रिये अभिव्यक्त किया जाये—वह है कामोन्माद। (सेक्सुअल ऑर्गेज़म) आनंदातिरेक को किसी तरीके से अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता है।

ओशो

धम्म पद द वे ऑफ द बुद्धा, भाग—4

यह उसी तरह है जैसे यहूदी और ईसाई सोलोमन के गीतों के बारे में बहुत चिंतित है जो कि ओल्ड-टैस्टामैंट में है। उन्होंने इनका वहां न होना पसंद किया होता। लेकिन वे क्या कर सकेत थे? ये गीत वहां थे, और अब बहुत दे हो चुकी है उनको बाहर निकालने में। और ये वास्तव में शार्मिंदा है। कोई भी रबी इनमें टिप्पणी नहीं करता। कोई ईसाई पादरी इसमे टिप्पणी नहीं करता। और यही सुंदर भाग है पूरी बाइबिल में। क्योंकि ये प्रेम का गीत है और सोलोमन इसे अपनी प्रियतमा की प्रशंसा में गा रहा है। ये बहुत ही उत्तेजनापूर्ण है। मैं नहीं सोचता कि कोई भी अन्य कवि इतने नजदीक आया होगा तुम्हारे डी. एच. लॉरेन्स, हेनरी मिलर, और अन्य, इनको सोलोमन के गीतों से अभी बहुत कुछ सीखना है।

लेकिन यहूदी इसको छिपाते रहते है, ईसाई इसे छिपाते रहते है। अगर तुम चर्च जाओ, तुम कभी भी नहीं जानोंगे कि यहां कुछ सोलोमन के गीतों जैसा है। कोई रबाई इस पर उपदेश नहीं देता, वह शर्मिंदा अनुभव करेगा। सोलोमन अपने अनुभव के बारे में, अपनी भावना के बारे में और अपनी संवेदना के बारे में इतना प्रमाणिक है कि लगता है वह सिगमंड फ्रायड को अच्छी तरह से जानता है। और शायद सिगमंड फ्रायड को सोलोमन से कुछ सीखने कि जरूरत है। सोलोमन को सिगमंड फ्रायड से कुछ नहीं सीखना।

तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि सोलोमन के गीत यहूदी और ईसाई घटनाक्रम है, लेकिन भारत में सोलोमन को सुलेमान कहा जाता है। यह सोलोमन का भारतीय उच्चारण है। भारत में कहावत है: यदि कोई बुद्धिमान बनने की कोशिश करता है , उससे कहा जाता है, 'सुलेमान बनने की कोशिश मत कर।'—सोलोमन बनने का दिखाव मत कर। सोलोमन की तरह बुद्धिमान बनने का ढोंग मत करो। अब भारत में ये कहावत बहुत पुरानी है। लेकिन भारत सोलोमन को स्वीकार कर सका क्योंकि यह खजुराहो का स्वीकार कर सका।

सोलोमन के गीत खजुराहो के मंदिरों में उकेरे जाने चाहिए—वहीं वह शोभा देते है, जहां पत्थरों को मादक सौंदर्य में परिवर्तित कर दिया गया है। हजारों पुरूषों और स्त्रियों को इस प्रकार उकेरा गया है कि वे वास्तविक लगते है। तुम उन्हें गले लगाना चाहोगे। तुम लज्जित अनुभव करोगे: तुम इतने सुंदर क्यों नहीं हो, इतने संतुलित क्यों नहीं हो, सोलोमन के गीत एकदम सही पुस्तक होगी खजुराहो के लिए, कोणार्क (पुरी के लिए) और भारत में यह प्राचीनतम कहावत है: सुलेमान बनने की कोशिश मत कर। लेकिन यहूदी और ईसाई इसे स्वीकार नहीं करते कि सोलोमन वास्तव में एक बुद्धिमान पुरूष था। वह पूरी बाइबिल में ''अन्यथा ज्ञानी'' पुरूष प्रतीत होता है।

ओशो

फ्रॉम अनकॉन्शसनैस टु कॉन्शसनैस

17/ दि सॉंग्ज ऑफ मारपा-(तिलोपा)

महामुद्रा का उत्सव-(तिलोपा)

Song of Marpa-Khenpo Tsultrim

तिब्बत में काग्यु गुरूओं की एक लंबी परंपरा थी। जो सदियों-सदियों से चली आ रही थी: रहस्यदर्शी गुरु अपनी गहरी आध्यात्मिक अनुभूति को अभिव्यक्त करने के हेतु सहजस्फूर्त गीत रचते थे। तिब्बती साहित्य में इन बौद्ध शिक्षकों को गीत बहुत प्रसिद्ध है। इन गीतों में सत्य की अभीप्सा, ह्रार्दिक भक्ति और विनोद बुद्धि भी झलकती है।

काग्यु गुरूओं की परंपरा चर्च की तरह बहुत संगठित धर्म नहीं थी। इस परंपरा को तिलोपा ने स्थापित किया था। या कहें, उसके बाद काग्यु गुरूओं की परंपरा बनी। तिलोपा गुरूओं की शरण में गांव-गांव भटका, और उसने उनसे ध्यान के प्रयोग सीखें। अंतत: गंगा किनारे एक घास की झोंपड़ी बनाई और वहां रहने लगा। जो उसके पास आते उनको ध्यान सिखाता। उनमें एक था पंडित नारोपा। प्रसिद्ध नालंदा विद्यापीठ का कुलपति नारोपा आखिर सांसारिक सफलताओं के पीछे छुपा हुआ ह्रदय का खालीपन सह न सका। एक झटके में सब कुछ छोड़कर वह वास्तविक गुरु की तलाश में घूमने लगा। तिलोपा में उसे ऐसे गुरु के दर्शन हुए और वह वहीं टिक गया। बारह साल तक उसने ध्यान और योग किया और उसे महामुद्रा का बोध हुआ।

तिब्बत की धारा में महामुद्रा का असाधारण महत्व है। महामुद्रा का अर्थ है भौतिक जगत की दिव्यता के प्रति जागना। यह आध्यात्मिकता का चरम अनुभव है।

पीढ़ी दर पीढ़ी, आज तक काग्यु गुरूओं की परंपरा चली आयी है। इस समय में भी इसके जीवित रहने का राज एक ही है, हर पीढ़ी में कोई न कोई जाग्रत पुरूष होता है। अपने गुरु से दीक्षा लेकिर हर नया शिष्य अपने जीवन के अनुभवों से उसे गहराता है। हर पीढ़ी में महामुद्रा नवजात, सद्यस्नात होती है। इन तिब्बती गुरूओं के गीत उनके आंतरिक अनुभवों का उत्सव मनाते है।

इस अंक में हम दो तिब्बती रहस्यदर्शीयों को प्रस्तुत कर रहे है। जिनके गीतों को ओशो ने अपनी मनपसंद किताबों में शामिल किया है।

दि सॉंग्ज ऑफ मारपा—

मारपा तिब्बती था लेकिन उसने बारह साल नेपाल और भारत में गुज़ारे। भारत में आने की वजह थी, बहुत से गुरूओं से मिलना। उसमें सबसे बड़ा गुरु था नारोपा। बौद्ध परंपरा में विसित शिष्य को अभिषेक करने का रिवाज है। मारपा ने गौरवशाली नरोपा से कहा, ''मैं चक्र संवर का अभिषेक और तंत्र के भाष्य की दीक्षा चाहता हूं।''

नरोपा ने उसे संपूर्ण अभिषेक दिया और तंत्र-भाष्य को पढ़ने की जानकारी भी। और कहा, ''इन सूत्रों का अभ्यास करना अति महत्वपूर्ण है।''

मारपा दीक्षित होकर उसे प्राप्त हुई विद्या पर वर्षों ध्यान करता रहा। फलत: उसको भीतर बहुत से असाधारण अनुभव हुए। और रहस्यपूर्ण मंत्रों का ज्ञान हुआ। फिर मारपा ने सोचा, ''मैंने बारह साल भारत और नेपाल में बीताये। मुझे उन गहन विद्याओं और विज्ञान का पता चला, मंत्र दीक्षा मिली। अब मेरा स्वर्ण समाप्त हो गया है। मैं तिब्बत जाकर पुन: स्वर्ण ले आता हूं और मेरे गुरूओं को देता हूं।

तिब्बत लौटने से पहले उसने नरोपा के सम्मान में बहुत बड़ा उत्सव और प्रीतिभोज आयोजित किया। इस उत्सव को धन्यवाद का गण चक्र कहा जाता है।

मारपा ने मन ही मन सोचा, "भारत और नेपाल आने का मेरा उद्देश्य पूरा हुआ। मुझे ऐसे विद्वान गुरु मिले जिन्होंने महान सिद्धियां प्राप्त की है। मैंने उनके द्वारा भाष्य लिखे हुए अनेक तंत्रों को पढ़ा है। मैं एक आदर्श अनुवाद बन गया हूं। जो बहुत सी भाषाएं जानता है। विशुद्ध अनुभव और बोध मेरे भीतर उदित हुए है। अब मैं बिना किन्हीं कठिनाइयों के तिब्बत लौट रहा हूं। मेरे लिए इससे बढ़कर खुशी का दिन नहीं हो सकता।"

फिर मारपा ने महापंडित नरोपा में गीत गाया। वह गीत उसने तानपूरे के गुंजन की मानिंद गाया–

है प्रामाणिक, बहुमूल्य गुरु,
चूंकि पहले किये अभ्यास के कारण
आपने योग्यता अर्जित की
आप निर्माण काय तिलोपा से प्रत्यक्ष मिले
होने का दुःख, जिसे छोड़ना कठिन है,
आपने आपके बारह परीक्षाओं के दौरान छोड़ दिया
आपके तप-अभ्यास की वजह से
आपने एक क्षण में सत्य को जान लिया
श्री ज्ञान सिद्धि, मैं आपके चरणों को वंदन करता हूं।
मैं, एक अनुवादक, तिब्बत का नौसिखिया
पिछले कर्मों के कारण आप,
महापंडित नरोपा मिले
मैंने हेवज़ तंत्र पढ़ा, जो कि गहनता के प्रसिद्ध है,
आपने मुझे सार दिया : महामाया
मैंने चक्र संवर आंतरिक सार पाया
तंत्र के चार प्रणालियों का सार मैंने निचोड़ा
जो कि माता सुभागिनी ने दिया था
जिसके आशीषों की धारा अक्षुण्ण है
आपने मुझे चार अभिषेक हस्तांतरित किये
मैंने निष्कलुष समाधि को जनम दिया
और सात दिन तक उसमे विश्वास को दृढ़ किया
स्थिर अवकाश के घर में
सूर्य-चंद्र, जीवन ऊर्जा और क्षय बंदी थे
आनंद, आलोक, और निर्विचार का युगपात अनुभव
मेरे ह्रदय में उदित हुआ
बह्म-दृश्य, संभ्रम का भ्रांतिपूर्ण चक्र
अजन्मी महामुद्रा की भांति प्रतीत हुआ
भीतर के बंधन, मन के अहसास ने
अपने स्वभाव को ऐसे जान लिया जैसे
पुराने मित्र से मिल रहे हो
एक अकथ अनुभव ऐसे प्रगट हुआ

जैसे गुँगे के द्वारा देखा गया सपना
एक अवर्णनीय अर्थ ऐसा जाना गया
जैसे युवती ने जानी हुई मस्ती
भगवान नरोपा, आप बहुत दयालु है
आपने मुझे आशीष और अभिषेक दिया
कृपया अपनी दया से मुझे स्वीकार करते रहे
यह सून कर महापंडित नरोपा ने मस्तक पर हाथ रखे और मौखिक आदेश गाया :
तिब्बत के अनुवादक मारपा
आठ सांसारिक लक्ष्यों को अपनी लक्ष्य मत बनाना
शत्रु या मित्र की निंदा मत करना
दूसरों के तरीकों को भ्रष्ट मत करना
सीखना और ध्यान मशालें है
जो अँधेरा दूर करती है
मोक्ष के परम पथ पर लुट मत जाना
पहले हम गुरु और शिष्य थे
भविष्य में इसे ध्यान रखना, भूलना मत
मन का यह कीमती रत्न–
इसे मूढ़ की तरह नदी में फेंक मत देना
अचल ध्यान के साथ इसकी रक्षा करना
और तुम सारी जरूरतें,
इच्छाएं और उद्देश्य को पा लोगे

मारपा ने आनंदित होकर सौगंध ली कि वह नरोपा के दर्शन करने वापिस आयेगा। फिर वह तिब्बत चला गया।

तिब्बत जाते हुए नेपाल और तिब्बत सीमा पर लिशोकर गांव में चुंगी नाके के अधिकारी ने मारपा को रोक लिया। कुछ दिन मारपा को वहां रहना पडा। आखिरी दिन मारपा को एक सपना आया। सपने में दो डाकिनियां मारपा को उठाकर श्री पर्वत ले गई। वहां मारपा को महाब्रह्मण सरहा मिला। सरहा ने मारपा की काय-वाणी और मन को आशीर्वाद दिये, और महामुद्रा के चिन्ह और उसके अर्थ बताये। मारपा का शरीर विशुद्ध आनंद से ओतप्रोत हुआ और उसके मन में अविकृत बोध जागा। उसका सपना खुशी से आपूरित हुआ।

मारपा तीन बार भारत गया। तीसरी बार जब वह जाने को हुआ तो उसके शिष्यों और परिजनों ने बहुत विनती की, ''आप न जायें। आपकी काया वृद्ध हो चुकी है। आपने बहुत ज्ञान ग्रहण कर लिया है, अब क्या आवश्यकता है?

लेकिन मारपा ने नारोपा का वचन दिया था कि मैं एक बार जरूर आऊँगा। इसलिए मारपा फिर एक बार नरोपा से मिलने गया। उन दोनों के बीच विलक्षण गहन प्रेम था। इतना कि अंतिम बार नरोपा ने मारपा से मस्तक पर हाथ रखकर कहा, ''हमारे बीच जो प्रेम, विरह और आत्मीय ता है उस वजह से प्रकाश लोक में हम मिलन और विरह के पार है। अगले जन्म में मैं तुझे शुद्ध स्वर्णीय जगत में मिलूगा, और हम अटूट साथी होंगे।''

मारपा के सात पुत्र थे, लेकिन नरोपा न उससे कहा कि ''तेरा वंश यही समाप्त होगा, और तेरा धर्म वंश लंबे समय तक चलेगा। तेरे सात पुत्र हों या सात हजार, वंश आगे नहीं बढ़ सकता। इसलिए तुम पिता पुत्र बिना किसी शोक के धर्म साधना में जीवन बिताओ।''

''पिछले जन्मों में तेरे कर्मों की शृंखला बहुत शुभ रही है। तू जमीन पर बसने वाला महासत्व है और तेरे द्वारा बहुत से जीवों का कल्याण होगा। इसलिए तिब्बत के बर्फ़ीले देश के शिष्यों को विनम्र बनाने की खातिर मैं तुझे अपना संदेश वाहन होने की शक्ति प्रदान करता हूं।''

दि सॉंग ऑफ तिलोपा–

पश्चिम दिशा में सोम पुरी मंदिर में योगियों के सिरताज तिलोपा ने लोगों से अनुरोध किया कि उसके पैरों में लोहे की जंजीर डाल दी जायें। फिर बारह साल उसने योग अभ्यास किया। इस प्रकार यिदम देवता के दर्शन करने की साधारण सिद्धि उसे प्राप्त हुई। आयतनों के स्थूल तल पर प्रवीणता पाने के बाद वह उसका प्रयोग करना चाहता था। लेकिन गुरूओं से इजाजत न मिलने के कारण वह उसका प्रयोग करना चाहता था। लेकिन गुरूओं से इजाजत न मिलने के कारण वह ऐसा न कर सका। लेकिन एक बार उसने मछली की चेतना को अवकाश में बदल कर दिखाया तब सब लोग मान गये कि उसे सिद्धि मिली है। उन्होंने उसे जहां मर्जी जाने की इजाजत दी।

तिलोपा आचार्य नागार्जुन की खोज में दक्षिण भारत चल पडा। वहां महेश्वर के एक मंदिर में उसे आचार्य मातंगी मिले। उन्होंने कहा, ''आचार्य नागार्जुन गंधर्वी के सम्राट को धर्म ज्ञान देने गये है। लेकिन उन्होंने तुम्हें, एक खानदानी व्यक्ति को, मेरा शिष्य बनाने का आदेश दिया है।''

तिलोपा ने बिना झिझक मातंगी को मंडल अर्पित किया। उस पर मातंगी ने तिलोपा को अभिषेक किया और उसे मौखिक दीक्षा दी: ''मन की तथाता ऐसी है, इधर-उधर भटक बगैर उस पर ध्यान कर।''

इस तरह तिलोपा का उच्च खानदान का घमंड चूर हुआ। उसके बाद मातंगी ने तिलोपा को बंगाल जाने के लिए कहा। वहां हरिकिला शहर में एक बाजार में जिसे पंचपण कहते है। वहां एक वेश्या रहती है। जिसका नाम है दारिमा। उसकी सेवा कर और आत्म ज्ञान के पथ पर गति कर। शीध्र ही तुझे महामुद्रा की सिद्धि प्राप्त होगी। और तू अनेक जीवों को मुक्त करेगा।

योगी राज तिलोपा अपने गुरु के आदेश का पालन करता रहा। रात को वह पुरूषों को घर के अंदर-बाहर ले जाकर वेश्या की मदद करता और दिन में तिल कूटनें का काम करता। इस विधि से उसने वस्तु स्वभाव को जान लिया। जब उसे महामुद्रा की परम सिद्धि प्राप्त हुई तब शहर के लोगों को उसमे दिव्य दर्शन होने लगे। किसी को उसकी जगह जलती हुई आग नजर आती, किसी को चौदह दीये जलते दिखाई देते। किसी को प्रकाश पुंज में बैठा हुआ भिक्षु नजर आता। कुछ एक ने देखा कि रत्न आभूषणों से युक्त योगी बैठा हुआ है। और बहुत सी युवतियां उसे दंडवत कर रही है।

लोग दारिमा के पास गये और उसे यह बात बताई। तभी उसके सामने एक दृश्य प्रगट हुआ : तिलोपा आकाश में प्रकाश के विशाल विस्तर में सम्राट की तरह बैठा हुआ था। और दाहिने हाथ में वि तिल कूट रहा था।

दारिमा को बहुत पश्चाताप हुआ। और उसका मन तड़पने लगा। उसने तिलोपा को साष्टांग दंडवत किया, उसकी परिक्रमा की और उसके लिए मंडल बनाया। फिर उसने तिलोपा के चरणों को अपने माथे पर रखकर कहा, ''हे भगवान, है जेट सन, मैंने तुझे नहीं पहचाना। आप सिद्ध है। मेरे दुष्कर्मों को माफ कर दें। आज के बाद कृपया मुझे स्वीकार करें।''

योगी ने कहा, '' चूंकि मुझे काम देते समय तुम नहीं जानती थी की में साधु हूं, तुम्हें कोई दोष नहीं लगेगा। इस काम के द्वारा मैंने तपस्या की। अब यह सर्वव्यापी प्रज्ञा, सब धर्मों का अंतस्थ अजन्मा स्वभाव मेरे अंतस में प्रकट हुआ है। मैं चाहता हूं यह तुम्हारे अंतर में भी प्रविष्ट हो।''

इतना कह कर तिलोपा ने सिर्फ एक फूल दारिमा के मस्तक पर रखा, और वह मुक्त हो गई, योगिनी बन गई।

जब सम्राट ने सुना कि एक योगी के माध्यम से दारिमा योगिनी बन गई तो हाथी पर सवार होकर, विशाल काफिला लेकिर वह उसे देखने पहुंचा। योगी और दारिमा बाजार के चौरास्ते पर बैठे हुए थे और केले के सात पेड़ों की ऊँचाई तक ऊपर आकाश में उठ गये।

तब तिलोपा ने गूँजती हुई, महा ब्रह्म की सुरीली आवाज में वज्र दोहा गाया–

तिल का तेल अर्क है
यद्यपि अज्ञानी जानते है
कि वे तिल में है,
वे कारण, कार्य और रूपांतरण का परिणाम
नहीं जानते है
अंत: अर्क अर्थात तेल को निचोड़ नहीं सकते
यद्यपि जन्मजात स्वयंभू प्रज्ञा
हर ह्रदय में विराजमान है,
जब तक गुरु उसे नहीं दिखाता तब तक
प्रगट नहीं हो सकती–
तिल में छुपे हुए तेल की तरह
तिल को कूटकर भूसे को हटाना पड़ता है।
–और फिर तेल अर्थात अर्क प्रकट होता है,
उसी भांति गुरु तथाता का सत्य दिखाता है
और सभी घटनाएं एक ही तत्व में मिल जाती है
क्या हो,
दूरगामी, अथाह अर्थ इस क्षण में प्रगट है
अद्‌भुत।।

ओशो का नज़रिया:—

आज मैं एक विचित्र किताब का उल्लेख करना चाहता हूं—साधारण: कोई नहीं सोचेगा कि मैं अपनी मनपसंद किताबों में उसे सम्मिलित करूंगा, तिब्बती रहस्यदर्शी मारपा की अद्‌भुत किताब है यह। उसके शिष्य भी उसे नहीं पढ़ते, वह पढ़ने के लिए नहीं है, वह एक पहेली है। उस पर ध्यान करना है। उसे देखते रहो, और अचानक किताब खो जाती है—उसके शब्द खो जाते है। और चेतना रह जाती है।

तिलोपा , और उसके गीतों के कुछ स्वर जो शिष्यों ने पीछे छोड़े है। मुझे आश्चर्य होता है, इन शिष्यों के बगैर हम कितना कुछ चूक जाते। ये लोग वह सब लिखते रहे जो गुरु कहता, बगैर फिक्र किये कि सही है कि गलत। और फिर भी जहां तक बन सके। सही शब्दों में उसे पकड़ते रहे। यह बहुत कठिन है। गुरु तो पागल है:

वह कुछ भी कह सकता है। कुछ भी गा सकता है। कुछ कर सकता है। या मौन रह सकता है। हाथ से कुछ इशारे कर सकता है। और वे इशारे समझने होते है।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

18/ टर्शियम ऑर्गेनम—(डी.पी. ऑस्पेन्सकी)

Tertium Organum-P.D. Ouspensky

इस पूस्तक का लेखक पी.डी ऑस्पेन्सकी गणितज्ञ ओर तर्कशास्त्री, दोनों था। ओर इन दोनों विषयों में उसकी जो पैठ थी उसका इत्र निचोड़कर उसने एक दर्शन खड़ा किया जिसका लोकप्रिय नाम था: चौथा आयाम। उसकेआधार पर उसने पश्चिमी तर्कसरणी तथा रहस्यवाद के बीच सेतू बनाया।

ऑस्पेन्सकी कहता है: आकाश का आयाम चेतना के विकास से तालमेल रखता है। वहकहता है कि चौथा आयाम, चेतना की अभिव्यक्ति है। ओर वह चौथा आयाम; अंत:प्रज्ञा। आज मनुष्यजाति चेतना के जिस उच्चतर स्तर पर खड़ी है, विश्व चेतना का उदय हो रहा है। उसके लिएएक नये किस्म की तर्कसारणी की आवश्यकत होगी—ऐसी तर्कसरणी जो अरस्तु ओर बेकन के पार है। इसीलिए वह शीषक दिया गया है: दर्शियम आर्गोनम विचार का नवीन सिद्धांत। नवीन गणित और सापेक्षता के सिद्धांत का ऊहापोह करने वाला हये पहला महत्वपूर्ण ग्रंथ है।

अपने ग्रंथ को ऑस्पेन्सकी किस प्रकार देखता है।

''उच्चतर तर्क शास्त्र को मैंने ''टर्शियम ऑर्गेनम'' इसलिए कहा है क्योंकि अरस्तु और बेकर के बाद हमारे पास उपलब्ध यह विचार का तीसरा साधन है। पहला था: ऑर्गेनम, दूसरा था: नोवम ऑर्गेनम ओर लेकिन तीसरा पहले सक पूर्व मौजूद था।''

ऑस्पेन्सकी के इस गुह्म तथा विशुद्ध विज्ञान-निष्ठ किताब के परिचय में उपरोक्त पंक्तियां लिखी गई है। तार्किक बुद्धि के लिए हय वक्तव्य तर्क संगत नही है लेकिन ऑस्पेन्सकी ने यह किताब तर्क की चौखट में बंद लोगों के लिए लिखी भी नहीं। यह उनके लिए प्रस्तुत की गई है जो ज्ञात के पर के आयामों की खोज कर रहे है। इस वक्तव्य मे अतीत-वर्तमान-भविष्य की धारा को उलटाकर वह समय की छलांग लेता है। लेकिन इसे समझा जा सकता है। अगरचे हम अपनी समय की धारणा को बदल लें।

इमेन्युएल कांट समय की कल्पना इस प्रकार करता है जैसे वह भविष्य से अनंत अतीत की और जाने वाली रेखा हो। और हम सदा इस रेखा के एक बिंदु के प्रति सजग होते है—सिर्फ एक ही बिंदु। और इस बिंदु का कोई आयाम नहीं है। क्योंकि जिसे हम सामान्यतया वर्तमान कहते है वह अभी-अभी गुजरा अतीत होता है या फिर निकट भविष्य। हम वर्तमान क्षण को कभी नहीं पकड़ सकते, वह हमेशा बच निकलता है, हमेशा हमारी पहुंच के बाहर होता है।

फिर अनंतता क्या है?

ऑस्पेन्सकी कहता है कि हकीकत में अनंतता, समय का समयातित आयाम नहीं है। बल्कि समय की रेखा के ऊर्ध्व दिशा की और गया हुआ आयाम है। अगर अनंतता है तो फिर हर क्षण अनंत होगा।

विषय और वस्तु के संबंध में जो भी स्थापित ज्ञान और चिंतन है उसे यह पुस्तक चुनौती देती है। यहां गणित अपनी सीमा से निकल कर दर्शन में प्रविष्ट होता है। और उसे घेर लेता है। इतने अहिस्ता-अहिस्ता कि पता भी नहीं चलता कि यह है। एक तरह से यह किताब एक प्रश्न उपनिषद है। लेखक स्वयं को और पाठक को, प्रश्न पर प्रश्न पुछता चला जाता है। समय, आकाश, समय का चौथा आयाम। प्रेम और मृत्यु, संवेदना और प्रतीति, इत्यादि अनेक विषय पर प्रश्न करता है। उसकी खोज की विधि गणित की है।

समय क्या है?

अवकाश क्या है?

सतह क्या होती है?

इस तरह के बुनियादी प्रश्न के उत्तर देने का दिखावा ऑस्पेन्सकी नहीं करता। उलटे उसकी खोज का अंदाज कुछ ऐसा है कि वह पाठक को अंतहीन खाई में ले जाता है। उसके भीतर का रहस्यदर्शी विराट ब्रह्मांड के सम्मुख अवाक खड़ा रहता है। क्योंकि ब्रह्मांड की गहराई नापना उतना ही मुश्किल मालूम होता है जितना कि पहले था। वह कहता है कि हमारी इंद्रियाँ सिर्फ ''संवेदक'' है जो विश्व को टटोल सकती है। लेकिन उस टटोलने से उन्हें जो प्रतीत होता है वह जरूरी नहीं की यथार्थ हो। वह बहुआयामी अस्तित्व का मात्र त्रि-आयामी नजरिया है।

फिर अस्तित्व क्या है?

ऑस्पेन्सकी के अनुसार अस्तित्व के दो तल है: भौतिक और आध्यात्मिक। जैसे एक मकान ''है'' और शुभ-अशुभ भी है। लेकिन मकान का होना और शुभ-अशुभ का होना, अस्तित्व के सर्वथा भिन्न तल है। पहला तल विषयगत है और दूसरा विषयीगत....।

इस प्रज्ञापूर्ण ग्रंथ के तेईस परिच्छेदों में ऑस्पेन्सकी मानव मन के उन सभी पहलुओं का मौलिक अन्वेषण करता है जो बह्म जगत से जुड़ते है। वह कहता है कि ''समय'' सर्वाधिक कठिन और दुर्जेय समस्या है। जिसका मनुष्य जाति को सामना करना पड़ता है।

उसके कांट के विवेचन का प्रचुर मात्रा में उपयोग किया है। कांट ने कहा है: समय को हम निर्मित करते है। बह्म जगत को सुविधापूर्ण रूप से जानने के लिए हमने जो ग्रहणशील साधन खोजा है वह है समय।

ऑस्पेन्सकी का तर्क है: समय होता ही नहीं। समय का अहसास होने के लिए हमें उसे तीन अंशों में बांटना पड़ता है। और त्रि-आयामी समय तीन में बंट जाता है। अगर अतीत-वर्तमान-भविष्य न हों, तो क्या हम समय को पकड़ पायेंगे। फिर समय हमारी कल्पना मात्र रह जायेगा।

दूसरे समय का अहसास गति के कारण होता है। चीजें अवकाश में गतिमान होती है। और एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए उन्हें समय की आवश्यकता होती है। उनकी गति की अवधि समय कहलाती है?

मनुष्य ब्रह्मा जगत में ज्ञान कैसे ग्रहण करता है। ऑस्पेन्सकी कहता है ज्ञान ग्रहण करने का जो मानवीय साधन है उसके तीन अंग है; संवेदना, प्रतीति और कल्पना। ग्रहणशीलता का बुनियादी अंग है, संवेदना। संवेदना का मतलब है मस्तिष्क में पैदा हुआ प्राथमिक परिर्वतन। यह संवेदना हमारी स्मृति में एक छाप छोड़ जाती है। और समय-समय पर हुई भिन्न-भिन्न संवेदनाएं कल्पना बन जाती है। जैसे एक बच्चा वृक्ष को देखना है। ऐसे कई वृक्ष देखने के बाद उसके मस्तिष्क में वृक्ष की एक छवि उभरती है। प्रतीतियों से शब्द बनते है और उससे वाणी पैदा होती है।

ऑस्पेन्सकी कुछ संगत मुद्दे उठाता है: जैसे, विज्ञान अज्ञात और अन्वेषण होना चाहिए। उसे दुख होता है कि शैक्षिक विज्ञान केवल वह सिखाता है जो स्वतंत्र चिंतकों ने प्राचीन और व्यर्थ समझ कर इनकार कर दिया है।

ऑस्पेन्सकी जब प्रेम और मृत्यु को एक ही सिक्के के दो पहलुओं की तरह प्रस्तुत करता है और दोनों को एक इकाई जानकर उनकी खोज करता है तब वह अस्तित्व की गहरी पर्त को छू लेता है।

''जीवन का ऐसा कोई पहलू नहीं है जो हमें अनपेक्षित और अभिनव तत्व की अनंतता नहीं दिखा सकता। यदि हम अपना दृश्य ज्ञान लेकिर उसे परखें तो उसके पीछे एक समूचा अदृश्य जगत है—नये और अज्ञेय शक्तियों और संबंधों का। इस अदृश्य जगत के होने का अहसास पहली कुंजी है।

''अस्तित्व के अत्यंत रहस्यपूर्ण पक्ष से मुखातिब हो तो हमारे सम्मुख नये पन का ऐश्वर प्रगट होता है वे है। जिसे दो पहलुओं में हम अनंतता का संस्पर्श करते है वे है: प्रेम और मृत्यु, एक ही देवता के दो चेहरे। शिव के। प्रकृति की सृजनात्मक शक्ति का जो देवता है वहीं एक साथ हिंसक मृत्यु का भी है। हत्या और विनाश का। उसकी अर्धांगिनी पार्वती सौंदर्य, प्रेम और खुशी की प्रतीक है; लेकिन वह काली या दुर्गा अर्थात अशुभ और विध्वंस की, मृत्यु की भी प्रतीक है।

...विज्ञान के लिए जो कि जीवन का इस छोर से अध्यन करता है, प्रेम का उद्देश्य जीवन की निरंतरता है। ठीक से कहें तो, जीवन की निरंतरता बनाए रखने में जो तत्व सहयोगी होता है उसमे प्रेम एक कड़ी है। दो विपरीत लिंगों को जो शक्ति एक-दूसरे के पास खींचती है वहीं शक्ति जातियों को बरकरार रखने में जीवन की मदद कर रही है। यदि हम प्रेम को इस दृष्टि से देखते है तो इस तथ्य को स्वीकारना असंभव होगा कि यह शक्ति आवश्यकता से अधिक मात्रा में उपलब्ध है। इसी में प्रेम का मुल स्वभाव जानने की कुंजी छुपी है। यह शक्ति जरूरत से ज्यादा उपलब्ध है। कहीं ज्यादा। हकीकत में प्रेम का एक छोटा सा हिस्सा मनुष्य जाति के लिए उपलब्ध है। और इसका भी उपयोग संतान उत्पती के लिए होता है। लेकिन इस शक्ति का अधिकांश हिस्सा कहां जाता है।

इस अद्‌भुत प्रस्तुति को पढ़ना रहस्यपूर्ण अस्तित्व की यात्रा करने जैसा है। उसकी पहेली सुलझती तो नहीं वरन अस्तित्व की महीन अंतर्जाल और विराटता देखकर मन मंत्रमुग्ध हो जाता है। अंत में पाठक को बरबस न्यूटन का विमोहित वक्तव्य स्मरण हो जाता है। ''विज्ञान के द्वार से अस्तित्‌व की गहराइयों में उतर कर मुझे लगा कि मैं सिर्फ एक छोटा बच्चा हूं, जो समुंदर किनारे कंकड़-पत्थरों से खोल रहा हूं।''

एक सच्चे अज्ञेय वादी की मानिंद ऑस्पेन्सकी हमें बिना किसी उत्तर के छोड़ देता है—पहले से अधिक किंकर्तव्यविमूढ़, अधिक अज्ञानी, लेकिन अस्तित्व में अधिक जड़ें जमाये हुए। क्योंकि वह हमारे भीतर जिज्ञासा प्रज्वलित करने में सफल हुआ है।

उसके शब्दों में ही समाप्त करें तो—''जीवन का अर्थ क्या है? मनुष्य शाश्वत रूप से इसका चिंतन कर रहा है। सारे दर्शन शास्त्र, सारी धर्म देशनाएं इसे खोजने के लिए प्रयेत्नरत है। अर्थ जीवन के बाहर नहीं, भीतर है। मनुष्य के अंतस में धधकती हुई सबसे शक्तिशाली भावना है: अज्ञात की अभीप्सा। सत्य को असत्य से हर कोई अलग नहीं कर सकता, लेकिन श्रम, अपरिसीम संघर्ष करना होगा जिसके लिए आवश्यक साधन हैं—विचारों की निर्भीकता और भावों की बुलंदी।''

ओशो का नज़रिया:

जार्ज गुरूजिएफ के बहुत बड़े शिष्य, पी. डी. ऑस्पेन्सकी ने एक किताब लिखी है। मैंने हजारों किताबें देखी होंगी—और शायद पूरे संसार में मेरे अलावा ऐसा कोई आदमी नहीं होगा जो किताबों की जानकारी रखने का दावा कर सके। लेकिन हजारों किताबों के इस अनुभव के दौरान मुझे ऐसी एक किताब नहीं दिखाई दी जो ऑस्पेन्सकी के टर्शियम ऑर्गेनम की बराबरी कर सके।

टर्शियम ऑर्गेनम का मतलब है: विचार का तीसरा सिद्धांत। ऑस्पेन्सकी ने इस अद्‌भुत और अतुलनीय किताब का नाम ऐसा रखा है क्योंकि इससे पहले और दो किताबें लिखी गई है। पहली लिखी थी एरिस्टोटल ने; उसने उसे ऑर्गेनम कहा: विचार का पहला सिद्धांत, और दूसरी बेकन ने लिखी थी। उसने उसे नाम दिया: नोवम ऑर्गेनम, विचार का नवीन सिद्धांत।

फिर ऑस्पेन्सकी ने विचार का तीसर सिद्धांत लिखा। और उसने शुरूआत में दर्ज किया: तीसरा पहले से पूर्व मौजूद था।

इस किताब में इतने रहस्य भरे पड़े है कि हर पन्ना, हर परिच्छेद, हर पंक्ति अर्थगर्भित है।

मैं अपनी किताबों को अधोरेखांकित करना पसंद करता था। इसलिए मुझे कभी किसी लाइब्रेरी से किताब लाकर पढ़ना अच्छा नहीं लगता था। लाइब्रेरी की किताबों में मैं रेखाएं नहीं खींच सकता हूं। मैं उस पर मेरी मुहर नहीं लगा सकता। और किसी और द्वारा रेखांकित किताबें पढ़ नहीं सकता क्योंकि वे रेखाएं उभरकर मेरी अपनी धारणों में, मेरी अपनी धारा में व्यवधान डालती है।

यह एकमात्र किताब है जिसमें मैंने रेखाएं खींचना शुरू किया तो कुछ पृष्ठों बाद मुझे पता चला कि हार वाक्य के नीचे रेख खींचनी होगी। लेकिन मैं किताब के साथ नाइंसाफी नहीं कर सका। इस किताब में इतनी सारी बातें है....

पी. डी. ऑस्पेन्सकी अपने समय के बहुत बड़े गणितज्ञों में से एक था। वह भलीभाँति जानता है कि वह क्या लिख रहा है। ओ वह कहता है कि गणित में अंश पूर्ण से कभी बड़ा नहीं हो सकता। जाहिर है अंश पूर्ण से बडा नहीं होगा। लेकिन आगे वह कहता है कि गणित सब कुछ नहीं है।

मैंने अपने गुरु गुरूजिएफ के साथ रहस्य को अनुभव किया है। और अब मैं कह सकता हूं कि श्रेष्ठतर गणित है, रहस्यपूर्ण गणित है जहां अंश ने केवल पूर्ण के समान होता है, बल्कि पूर्ण से बड़ा भी हो सकता है।

अब तुम अद्‌भुत लोक में प्रवेश कर रहे हो। यहां अंश पूर्ण के समान ही नहीं होता बल्कि पूर्ण से बड़ा होता है। तर्क की दृष्टि में यह बिलकुल बेतुकी बात है। और एक गणितज्ञ के मुंह से तो यह बिलकुल असंगत जान पड़ता है। वह कहता है, ''यह वक्तव्य देते हुए मुझे झिझक होती है। लेकिन मैं क्या करू? यह अस्तित्वगत अनुभव है। जब अनुभव की बता आती है तब गणित हो या और कुछ, मुझे वैसा ही कहना है जैसा है।''

ओशो

सत्यं शिवं सुंदरम्

19/ श्री भाष्य-(रामानुज)

श्री भाष्य-रामानुज आचार्य

Shri Sutra-Rama Nujama

रामानुज लिखित श्री भाष्य उस युग का प्रतिनिधित्व करता है जिस युग में भारत चित पर पांडित्य राज करता था। बुद्धत्व की अनुभूति तो बहुत तो बहुत संक्षिप्त सुत्रों में लिखी जाती है। ठीक वैसे जैसे विज्ञान के सूत्र होते है। तीन या चार सुगठित शब्दों में समुंदर जैसा अनुभव भर देना प्रबुद्ध पुरूषों की प्रिय क्रीड़ा थी। लेकिन इन आणविक सूत्रों पर लंबी-लंबी दार्शनिक टीकाएं लिखना पंडितों का मनपसंद खेल था। इन टीकाओं का जंगल इतना घना होता कि उसमें से रास्ता खोजते हुए मूल सूत्रों तक पहुंचना माउंट एवरेस्ट पर चढ़ने से कम दूभर नहीं था। पढ़ने वाले भी दार्शनिकों के वाग वैभव का खूब आनंद लेते थे।

रामनुजाचार्य का श्री भाष्य भी इसी परंपरा का वहन करता है। बादरायण ने लिखे हुए ब्रह्मसूत्र विश्व विख्यात है। वे इतने गुह्म है कि आदि शंकराचार्य जैसे परम स्थिति को उपलब्ध महापुरुष भी उसकी टीका लिखे बगैर नहीं रह सके। इन्हीं ब्रह्मसूत्रों पर टीका लिखी है रामानुज ने। शंकराचार्य अद्वैत वादी थे। तो रामानुज ने विशिष्टाद्वैत को स्थापित किया। अद्वैत को मानने वाले विशुद्ध ज्ञान के पक्ष में थे। रामानुज भक्ति की राह चले थे और फिर भी भक्ति को ज्ञान के साथ जोड़ सके। एकदम रूखे-सूखे ब्रह्मसूत्रों में उन्हें भक्ति का रस कैसे दिखाई दिया यही ऐ चमत्कार है।वे कहते है, भक्ति और ज्ञान, दोनों एक साथ हो सकते है, क्योंकि ह्रदय और मस्तिष्क, इनमें कोई विरोध नहीं है। दोनों एक ही मनुष्य के दो पहलू है। विशिष्टाद्वैत वेदांतियों की ही धारा रही है। जो शंकराचार्य से भी प्राचीन समय से बह रही है।

रामानुज की विशिष्टता श्री भाष्य ग्रंथ के मंगलाचरण में ही स्पष्ट हो जाती है। ''मेरी प्रज्ञा भक्तिरूपा हो'' यह कहकर बड़ी खूबसूरती से रामानुज ज्ञान के मरुस्थल को भक्ति के रसभीने मरूद्यान से जोड़ देते है। प्रारंभ तो रसपूर्ण हुआ लेकिन इसके बाद यह धारा उसी प्राचीन शैली में प्रविष्ट हो जाती है जो खंडन-मंडन के टेढ़े-मेढ़े-रास्ते से गुजरती है। तर्क की बारीक युक्तियों के द्वारा लेखक अपना सिद्धांत मजबूत करता जाता है। अपने सिद्धांत के खिलाफ जो भी दलीलें दी जा सकती थी। वे सब खुद लेखक खुद ही खड़ी कर देता है। ओशो कहते है, बुद्धि की यह विशालता उस युग का खास अंदाज था। मंडन मिश्र, बल्लभाचार्य, निंबार्क, शंकराचार्य इत्यादि एक से एक मेधावी पूरे देश में भ्रमण करते शास्त्री पंडितों की विद्वता को चुनौती देते थे। विराट सभाओं में शास्त्रार्थ होते थे और बुद्धिमान श्रोता अवाक होकर इस विचार-उन्मेष को सुनते और देखते थे। प्रतिपल को पूरी स्वतंत्रता देकर सारे विपरीत पहलूओं को एक साथ देखने की उदारता थी। रामानुज जैसे आचार्यों की रचना उसी युग के अमृत मंथन से निकला हुआ नवनीत है।

यदि यह प्रश्न उठे कि इन प्राचीन रचनाओं को हम आज क्यों पढ़ें? उनके संदर्भ पुराने हो गए है—पूर्व मीमांसा, उत्तर मीमांसा, अंजान उपनिषद, इन सबका आज के युग से क्या संबंध? सच है, पुरानी हो गई है इन महान ग्रंथों की भाषा और शैली, जिन्हें पढ़ते हुए बुद्धि जागती नहीं, उबासियां देने लगती है। तो इतना कहा जा सकता है कि प्रतिद्वंद्वी के प्रति सहिष्णुता, विचारों की विभिन्नता और पराजय के प्रति सहज स्वीकार भा देखना हो तो ये ग्रंथ पथ प्रदर्शक हो सकते है।

मेरे मन में कौतूहल था कि ब्रह्म सूत्र जैसे नितांत सूखे पन में रामानुज भक्ति का भीगापन कैसे खोजा होगा। उनका समन्वय बड़ा मजेदार है। मुलाहज़ा फरमाईये–

''वेदन अर्थात ज्ञान का अर्थ उपासना मानना चाहिए। क्योंकि शास्त्रों में विद् और उपनिषाद ये शब्द पर्यायवाची है। अपने वक्तव्य के सबूत में वे उपनिषदों के वचन उद्धृत करते है। जिसमे ब्रह्म को जानना या उसकी उपासना करना एक समान माना हुआ है। इसलिए परम मुक्ति के लिए परमात्मा की उपासना या भक्ति की जा सकती है या उसका ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। ध्यान है चित की अबाध धारा—ठीक वैसे ही जैसे तेल की धार होती है। जब ध्यान की धार सुदृढ़ होती है तो सुरति जगती है। सुरति है स्मृति का अविच्छिन्न प्रवाह। सुरति ही भक्ति है जो भगवान को पाने का द्वार बनती है। श्रुति और स्मृति में कहा गया है, ''जो ''उसे'' जानता है वह मृत्यु के पार जाता है।'' ध्यान का प्रतिदिन अभ्यास करने से वह प्रगाढ़ होती है। और साधक के भीतर ऊर्जा का स्तंभ बनता है। अंतत: देह त्यागने के समय यही ऊर्जा ब्रह्म में विलीन हो जाती है।

प्राचीन युग की एक और खूबी इस ग्रंथ में झलकती है, और वह है, अपने एक वक्तव्य को सिद्ध करने के लिए सैकड़ों शास्त्रों का आधार लेना। रामानुज या शंकराचार्य जैसे ब्रह्मज्ञानी स्वतःप्रमाण थे। उन्हें दूसरों का आधार लेने की जरूरत नहीं थी। लेकिन उन्होंने भी जनरीति का पालन किया। हर कदम पर शास्त्रों के सहारे वे अपने अनुभव को खड़ा करते रहे। बीसवीं सदी के रहस्यदर्शी जे. कृष्णामूर्ति ने इससे ठीक उल्टा किया। उन्होंने एक भी शास्त्र को स्वीकार नहीं किया। अपने अनुभव को उन्होंने सीधा, क्राँरा ही प्रगट किया।

इन प्राचीन बुद्धों की तुलना में ओशो की अद्वितीयता प्रखरता से दिखाई देती है। वे किसी परंपरा के अंश नहीं है। समूचे अतीत को नकार कर वे पृथक अकेले खड़े है। उनके लिए समय को करवट बदलकर नए सिरे से शुरूआत करनी होगी। उन्होंने भी अपने सत्य को कहने के लिए प्रमाण लेकिन प्राचीन ऋषियों के नहीं, वेद-उपनिषदों के नहीं बल्कि आधुनिक वैज्ञानिकों और मनोवैज्ञानिकों के। प्राचीन ग्रंथों पर उन्होंने प्रवचन किये लेकिन उनकी बैसाखियां लेने के लिए नहीं, उन पर अपनी प्राणों की संजीवनी छिड़क कर उन्हें पुनरुज्जीवित करने के लिए। रामानुज उनके प्रिय आचार्य है। उनके संबंध में एक कहानी ओशो कई बार कहते है। वह कहानी रामानुज को समझने में उपयोगी होगी।

''एक बार ऐसा हुआ, एक आदमी रामानुज के पास आया। रामानुज रहस्यदर्शी थे, एक भक्त रहस्यदर्शी। अनूठे व्यक्ति थे। दार्शनिक और फिर भी प्रेम, भक्ति। यह मुश्किल से होता है—पैनी बुद्धि, बहुत प्रखर बुद्धि और ओतप्रोत छलकता हुआ ह्रदय।

एक आदमी रामानुज के पास आया और उसने पूछा, मैं परमात्मा को कैसे पा सकता हूं?

रामानुज ने कहा, मैं एक प्रश्न पूछता चाहता हूं। तुमने कभी किसी से प्रेम किया है?

वह आदमी सचमुच धार्मिक किस्म का रहा होगा। उसने कहा, क्या बात कर रहे है? प्रेम? मैं ब्रह्मचारी हूं। मैं स्त्रियों से इस तरह बचता हूं जैसे कोई रोग से बचे।''

रामानुज ने कहा, ''फिर भी, जरा सोचो। अतीत में उतरो, खोजों। तुम्हारे ह्रदय में कही कोई प्रेम की तरंग उठी हो? वह आदमी बोला, लेकिन यहां मैं प्रार्थना सीखने आया हूं, प्रेम नहीं। मुझे प्रार्थना सिखाएं। आप संसार की बातें कर रहे है। और मैंने सुना था आप महान रहस्यदर्शी हे। मैं यहां परमात्मा में प्रवेश करने आया हूं। सांसारिक बातें करने के लिए नहीं।

रामानुज उदास हुए। उन्होंने कहा, ''फिर मैं तुम्हारी मदद नहीं कर सकता। यदि तुम्हें प्रेम का कोई अनुभव नहीं है तो प्रार्थना का भी अनुभव नहीं हो सकता। पहले संसार में जाओं और प्रेम करो। एक बार प्रेम करोगे, उसके अनुभव से समृद्ध होओगे तब मेरे पास आना। क्योंकि सिर्फ प्रेमी ही जान सकता है कि प्रार्थना क्या है। यदि तुमने तर्क के पार कुछ न जाना हो तो नहीं समझोगे। प्रेम ही प्रार्थना है जो प्रकृति से तुम्हें सहज मिली है।''

ओशो

(वेदांत: सेवन स्टैप टू समाधि)

ओशो का नजरिया:

जिस किताब के बारे में मैं बोलने जा रहा हूं। वह एक हिंदू रहस्यदर्शी रामानुज ने लिखी है। उसका नाम ''श्री भाष्य'' है। वह ब्रह्मसूत्र पर लिखा गया भाष्य है। ब्रह्मसूत्र पर कई भाष्य लिखे गये है। बादरायण के ब्रह्मसूत्र के बारे में बोल ही चूका हूं। रामानुज ने उस पर जो टीका लिखी है वह एक तरह से अनूठी है।

मूल ग्रंथ बहुत रूखा-सूखा है, बिलकुल रेगिस्तान जैसा। हां, रेगिस्तान का भी अपना सौंदर्य है, अपना यथार्थ है। लेकिन ''श्री भाष्य'' में रामानुज उसे एक मरूद्यान बना देते है। उसमे रस उंडेल देते है। रामानुज की किताब मुझे बहुत पसंद है। यद्यपि स्वयं रामानुज मुझे पंसद नहीं है क्योंकि वे परंपरावादी थे। परंपरावादी रूढ़िवादी मुझे कतई अच्छे नहीं लगते। मैं उन्हें कट्टर धार्मिक समझता हूं। लेकिन मैं क्या करूं। यह किताब अत्यंत सुंदर है। कभी-कभी कट्टरपंथी भी कुछ सुंदर रच सकते है। अंत: किताब को शामिल करने के लिए मुझे क्षमा करें।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

20/ मैन एंड सुपरमैन -(बर्नार्ड शॉ)

मैक्ज़िम्स फॉर रिवोल्युशनिस्ट-(जॉर्ज बर्नार्ड शॉ)

Man and Superman by Georj Barnad Shaw

जॉर्ज बर्नार्ड शॉ इस सदी का अद्‌भुत मेधावी और मजाकिया लेखक था। उसका व्यक्तित्व उतना ही रंगबिरंगा था जितनी कि उसकी साहित्य-संपदा। उसकी रोजी रोटी कमाने का मूल व्यवसाय था। ''नाटकों को लेखन।'' बर्नार्ड शॉ एक साथ कई चीजें था। उसको किसी एक श्रेणी में रखना संभव नहीं था। उसको किसी एक श्रेणी में रखना संभव नहीं था। वह बहुमुखी प्रतिभा का धनी था। वह परिष्कृत कलाओं का—साहित्य, संगीत, चित्र, नाटक—समीक्षक था। वह अर्थशास्त्री और जैविकीतज्ञ था। वह अपना धर्म ''क्रिएटिव इवोल्युशनिस्ट, सृजनात्मक, विकासवादी बताता था।

उपन्यास लिखते समय वह इन्सेनवादी था, शेलीवादी नास्तिक भी था। शाकाहारी, चाय और शराब से दूर रहनेवाले, खतरनाक आदमी, मसखरा, असुरक्षित साईकिल चलाने वाला और भगवान जाने क्या-क्या था। अपने शिखर पर रहते हुए उसने अपने आसपास के सभी लोगों को संभ्रमित कर रख था। उसके व्यक्ति के इतने अधिक और विरोधाभासी आयाम थे कि यह मानना कठिन था कि वह एक ही आदमी के विभिन्न चेहरे है।

आयरलैंड के प्रसिद्ध डब्लिन शहर में, सन 1856 में बर्नार्ड शॉ पैदा हुआ। लेकिन बाद में वह लंदन जा बसा क्योंकि लंदन का वातावरण साहित्यिक विकास के लिए पोषक था। बर्नार्ड शॉ दीर्घायु था, अपनी शताब्दी पूरी करने से कुछ वर्ष पूर्व, सन 1950 में उसका निधन हुआ। उस समय वह 94 वर्ष का था।

किताब की एक झलक–

यह छोटी सी पुस्तिका बर्नाड शॉ के सुप्रसिद्ध नाटक '' मैन एंड सुपरमैन'' के अंत में जोड़ा गया सूत्रों का संकलन है।

इन सूत्रों में शॉ का पूरा व्यंग और नुकीला पैनापन सारगर्भित रूप से प्रकट होता है।

तेहर पृष्ठों के भीतर अड़तीस विषयों पर शॉ ने खास अपने निराले अंदाज में कुछ बेबाक कुछ व्यंग्यपूर्ण सूत्र लिखे है।

मिसाल के तौर पर कुछ विषय है:

स्वर्णिम नियम

दूसरों के साथ मत करो जो तुम नहीं चाहते कि वे तुम्हारे साथ करें। हो सकता है उनकी पसंद तुम्हारे जैसी न हो।

अपने पड़ोसी से अपनी तरह प्रेम मत करो। यदि तुम अपने आपको पसंद करते हो तो वह बेअदबी होगी, यदि नहीं करते हो तो चोट होगी।

स्वर्णिम नियम यहीं है कि कोई स्वर्णिम नियम नहीं है।

मूर्तिपूजा

मूर्तिपूजा को संगठित करना प्रशासन की कुल कला है।

अफसरशाही में अधिकारी होते है; सामंतशाही में मूर्तियां होती है, और लोक तंत्र में मूर्ति पूजक।

वहशी आदमी लकड़ी और पत्थर की मूर्ति के आगे झुकता है; सभ्य आदमी रक्त-मास की मूर्ति को प्रणाम करता है।

जनता अफसरशाही को समझ नहीं सकती; वह सिर्फ राष्ट्रीय मूर्तियों को पूजती है।

लोकतंत्र

अगर कनिष्ठ मस्तिष्क, श्रेष्ठ मस्तिष्क को उस तरह नाप सके जैसे फीट की पट्टी पिरामिड को नाम सके तो वैश्विक मतदान अंतिम रूप से निर्णायक होगा। फिलहाल तो राजनैतिक समस्या सुलझायी नहीं जा सकती।

लोकतंत्र अकार्य क्षम बहुजनों के द्वारा थोड़े से भ्रष्ट लोगों को चुनाव द्वारा नियुक्त करने का उपाय है।

स्वतंत्रता और समानता

जो राजनैतिक स्वतंत्रता को मुक्ति के साथ और राजनैतिक समता को समानता के साथ मिलाता है

उसने कभी पाँच मिनट भी इनके बारे में नहीं सोचा है।

कुछ भी बिना शर्त नहीं है, इस कारण कुछ भी मुफ्त नहीं हो सकता।

स्वतंत्रता याने दायित्व; इसीलिए अधिकांश लोग उससे डरते है।

समानता सामाजिक संगठन के हर विभाग में मूलभूत है।

शिक्षा

जब एक आदमी दूसरे आदमी को बह सिखाता है, जिसके बारे में वह खुद नहीं जानता, और सीखने वाले के पास उसे सीखने का कोई रुझान नहीं होता, और फिर भी वह उसे कुशलता का प्रमाणपत्र देता है। तो कहना चाहिए कि पहले आदमी ने एक सभ्य आदमी को शिक्षित कर दिया है।

मूर्ख का मस्तिष्क दर्शन को भूल में, विज्ञान को अंध विश्वास में और कला को पांडित्य में हजम कर लेना है विश्वविद्यालय की शिक्षा का यही मकसद है।

अच्छी तरह पले हुए बच्चे वही है जिन्होंने अपने माता-पिता को यथावत देखा है। पाखंड माता-पिता का पहला कर्तव्य है।

जो कर सकता है वह करता है। जो नहीं कर सकता वह सिखाता है।

विद्वान वह है जो पढ़ाई करके समय काटता है। उसके नकली ज्ञान से सावधान। वह अज्ञान से अधिक खतरनाक है।

सबसे जहरीला गर्भपात करने वाला वह है जो बच्चे के चरित्र को ढालने की कोशिश करता है।

विवाह

विवाह इसलिए लोकप्रिय है क्योंकि वह अधिकतम प्रलोभन का अधिकतम अवसर के साथ मेल करता है

विवाह का मूलभूत कार्य है जाति को बनाये रखना—(ऐसा सर्व सामान्य कि किताब में लिखा है)

विवाह का सांयोगिक कार्य है: मनुष्य जाति की कामुक भावनाओं की तृप्ति।

विवाह की कृत्रिम बिन-उत्पादकता से विवाह का सांयोगिक कार्य तो सिद्ध होता है लेकिन मूलभूत कार्य सफल नहीं हो पाता।

बहुगामिता (अनेक स्त्री-पुरूषों के साथ यौन आचरण) जब आधुनिक लोकतांत्रिक परिस्थतियों में की जाती है तो घटिया पुरूषों की बगावत से नष्ट हो जाती है। जिन्हें उस कारण ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता है। क्योंकि स्त्री में जो मातृत्व की प्रवृति है, वह श्रेष्ठ पुरूष के दसवें हिस्से की भागीदार बनना पसंद करती है। बजाएं निकृष्ट पुरूष पर पूर्ण मलकियत पाने के। बहुगामिता का, इन स्थितियों में पालन नहीं किया गया है।

राष्ट्रीय न्यून तम ब्रह्मचर्य के लिए आधुनिक संज्ञा है: पवित्रता।

विवाह, या अन्य किसी प्रकार का स्वैर आचार युक्त कामुक, एक पत्नी व्रत, बड़े राज्यों के लिए घातक है क्योंकि उससे राजनैतिक प्राणी की तरह मनुष्य की नस्ल पैदा होने पर प्रतिबंध लग जाता है।

अपराध और दंड

अपराधी कानून के हाथों नहीं मरते। वे दूसरे आदमियों के हाथों मरते है।

मंच पर किसी की हत्या करना हत्या का सबसे बुरा तरीका है, क्योंकि उसमें सामाजिक सहमति है।

कृत्य सिखाता है, वह नाम नहीं सिखाता जो हम उसे देते है। हत्या और देहांत शासक विपरीत नहीं है। जो एक दूसरे को नकारते है, वरन समान धर्मा है जो एक दूसरे को निर्मित करते है।

जब आदमी शेर का शिकार करता है तो उसे ''खेल'' कहते है और जब शेर आदमी का शिकार करना चाहता है तो उसे क्रूरता कहते है। अपराध और न्याय में इससे बड़ा फर्क नहीं है।

जब तक कारागृह है, इस बात से बहुत फर्क नहीं पड़ता कि कोठरियों में कौन बंद है।

जेल खाने में सबसे तनावपूर्ण आदमी जेलर होता है।

अपराध उस प्रणाली का चिल्लर विभाग है जिसे हम थोक में धारा कानून कहते है।

गुण और अवगुण

गुण है, अवगुणों की इच्छा न करना; न की उससे बचना।

मितव्ययता जीवन का अधिक से अधिक उपयोग करना है

आज्ञाकारिता से गुलामी आती है। जैसे पुलिस के भय से ईमानदारी पैदा होत है। अवगुण जीवन को व्यर्थ गंवाना है। गरीबी, आज्ञाकारिता और ब्रह्मचर्य धर्मग्रंथों में ग्रंथित अवगुण है।

महानता

महानता, लघुता की महज एक संवेदना है।

यदि महान आदमी हमारी समण् में आ सके तो हम उसे मार डालेंगे।

मूढ़ देश में प्रतिभाशाली व्यक्ति भगवान हो जाता है; व लोग उसे पूजते है, और काई उसकी सुनता नहीं।

सौंदर्य और सुख, कला और संपति

सौंदर्य और सुख उप-उत्पादन है।

जो सुंदर स्त्री के साथ आजीवन सुखी होना चाहता है, वह शराब को सदा मुंह में रख कर उसका आनंद लेना चाहता है।

कुरूप और दुःखी संसार में, धनी से धनी आदमी भी कुरूपता और दुःख के अलावा और कुछ खरीद नहीं सकता।

अवचेतन आत्मा

सच्चा प्रतिभाशाली है, अवचेतन आत्मा। जैसे ही तुम्हारा चेतन अहंकार तुम्हारी सांस में दखल देता है, वह गलत हो जाता है।

मुक्त सूत्र

चालीस के बाद हर पुरूष बदमाश हो जाता है।

जो आदमी तुम्हारे घूंसे का लौटाता नहीं उससे सावधान रहना; वह न तुम्हें माफ करता है, न तुम्हें स्वयं को माफ करने देता है।

दो भूखे आदमी एक आदमी से दुगुने भूखे नहीं होते; लेकिन दो बदमाश आदमी एक आदमी से दस गुणा खतरनाक हो सकते है।

तुम्हें जो पसंद है उसे पाओ, नहीं तो तुमने जो पाया है उसे पसंद करने के लिए तुम मजबूर हो जाओगे। जहां झरोखे ने हों वहां ताजा हवा को हानिकारक घोषित किया जाता है। जहां धर्म न हो , वहां पाखंड सुरुचिपूर्ण हो जाता है। जहां ज्ञान न हो वहां अज्ञान स्वयं को विज्ञान कहता है।

उस आदमी से बचना जिसका ईश्वर आकाश में हो।

ओशो का नजरिया

आठवीं किताब एक दम अज्ञात किताब है। वैसे यह अज्ञात होनी नहीं चाहिए क्योंकि जार्ज बर्नार्ड शॉ ने लिखी है। किताब का नाम है: ''मैक्ज़िम्स फॉर रिवोल्युशनिस्ट'' उसकी बाकी सारी किताबें बहुत प्रसिद्ध है। सिवाय इस किताब के। सिर्फ मेरे जैसा पागल आदमी ही उसका चुनाव कर सकता है। उसका लिखा हुआ बाकी सब कुछ मैं भूल गया हूं। वह बिलकुल कचरा है।

जॉर्ज शॉ की यह छोटी सी किताब ''मैक्ज़िम्स फॉर रिवोल्युशनिस्ट'' मुझे बेहद पसंद है। इसे सब लोग भूल गये है लेकिन मैं नहीं भूला। मैं अजीब चीजों को चुनता हूं, अजीब लोगों को, अजीब स्थानों को। ऐसा लगता है जैसे ''मैक्ज़िम्स फॉर रिवोल्युशनिस्ट'' बर्नार्ड शॉ पर उतरी हो। क्योंकि ऐसे तो वह संदेह वादी था। वह संत भी नहीं था, बुद्ध भी नहीं था, बुद्धत्व के संबंध में सोच भी नहीं रहा था। उसने यह शब्द भी नहीं सुना होगा। वह अलग ही दुनियां में जी रहा था।

बहरहाल, मैं तुम्हें एक बात बता सकता हूं कि उसे एक युवती से प्रेम था। वह उससे शादी करना चाहता था। लेकिन वह युवती ज्ञान को उपलब्ध होना चाहती था। सत्य की खोजी थी। इसलिए वह भारत गई। वह युवती और कोई नहीं थी, ऐनि बेसंट थी। खैरियत है कि बर्नार्ड शॉ उसे अपनी पत्नी बनने के लिए राज़ी नहीं कर सका। अन्यथा हम एक शक्तिशाली स्त्री से वंचित रह जाते। उसकी अंतर्दृष्टि, उसका प्रेम, उसकी प्रज्ञा.....हां, वह एक स्त्री शक्ति थी। अंग्रेजी का शब्द ''विच'' बहुत सुंदर है। उसका अर्थ है, ''वाइज़'' समझदार।

यह पुरूष की दुनियां है, जब पुरूष समझदार होता है तो उसे बुद्ध, क्राइस्ट, मसीहा कहा जाता है। जब स्त्री समझदार होती है तो उसे ''विच'' जादूगरनी कहा जाता है। इसके अन्याय को देखो। लेकिन ''विच'' शब्द का मूल अर्थ बहुत सुंदर है।

''मैक्ज़िम्स फॉर रिवोल्युशनिस्ट'' शुरू हाता है,....स्वर्णिम नियम यह कहता है कोई स्वर्णिम नियम नहीं है।

अब यह छोटा सा वाक्य भी असीम सौंदर्य से भरा है। कोई स्वर्णिम नियम नहीं है.....हां, कोई नहीं है। यही एक मात्र स्वर्णिम नियम है।

बाकी नियमों के लिए तुम्हें किताब का अध्ययन करना होगा। ध्यान रहे, जब भी मैं कहता हूं ''अध्ययन'' मेरा मतलब होता है, ''उस पर ध्यान करो।'' जब मैं कहता हूं, पढ़ो, तब ध्यान करने की जरूरत नहीं है। सिर्फ भावों के साथ परिचित होना काफी है।

ओशो

बुक्स आइ हैव लव्ड

21/ दि फीनिक्स-(लॉरन्स)

दि फीनिक्स—(डी. एच. लॉरेन्स)

The Phoenix and the Flame- D. H. Lawrence

लॉरेन्स इंग्लैण्ड में 1885 में पैदा हुआ। दुर्भाग्य से इस प्रतिभाशाली लेखक को बड़ी छोटी सी जिंदगी मिली। केवल पैंतालीस वर्ष—लेकिन उम्र के इस छोटे से सफर में उसकी सर्जनशीलता जलप्रपात की तरह धुंआधार बहती रही। उसने चालीस से अधिक किताबें लिखी। वह पूर्णतया नैसर्गिक जीवन के हक में था। कारख़ानों और मशीनों के आक्रमण से विकृत हुई इंग्लैण्ड की संस्कृति से वह बेहद दुःखी था। वह स्वस्थ जीवन, प्रेम और मानवीयता का आलम चाहता था। उसका लेखन अत्यंत संवेदनशील, सौंदर्य पूर्ण और नजाकत से भरा हुआ था। सेक्स और प्रेम के विषय में उसकी कोई कुंठाएं नहीं थी।

वह स्त्री-पुरूष प्रेम संबंध पर बेझिझक और बेबाक लिखता था। इसीलिए संभ्रांत समाज उससे डरता था। 1930 में फ्रांस के एक रुग्णालय में उसकी बीमार हालत में मृत्यु हुई। उसकी असमय मृत्यु के जिम्मेदार कौन थे? उसकी अविश्वसनीय गरीबी, उसकी देह और जर्जर बनाने वाला टी. बी. या वे सारे प्रकाशक जो उसकी सत्यवादिता से भयभीत थे?

लॉरेन्स का मस्तिष्क एक बेहद उर्वरा भूमि था। वह जो भी अनुभव करता था वह बीज बनकर उसकी मनो भूमि में पडा रहता था। और ऋतु आने पर अंकुरित हो कर फूल बन कर कागज पर उतर जाता था। यों भी लॉरेन्स कहता था कि स्मृतियां फूल के मानिंद है। कोई भी अनुभव जब स्मृति बनता है तो मन ही मन महकता रहता है।

उपन्यासों के अलावा लॉरेन्स ने सैकड़ों लेख लिखे जिनमें से कुछ पत्रिकाओं में छपे और कुछ उसके मित्रों के पास, कुछ निजी संग्रह में बिखरे पड़े थे। उन सबको संकलित कर एडवर्ड मैक डॉनल्ड ने संपादित किये और इस किताब के रूप में 1936 में प्रकाशित किये। इस किताब का नाम फीनिक्स बड़ा सटीक है। ग्रीक मिथक में फीनिक्स नाम का पक्षी वर्णित है, जो जलकर मरता है। और फिर अपनी ही राख से पुन: नया शरीर धारण कर लेता है।

इस किताब के द्वारा डी. एच. लॉरेन्स भी अपनी ही राख से फिर एक बार उठा है ओर उड़ने के लिए पंख फड़फड़ा रहा है।

लॉरेन्स के शब्द अर्थ वाही और लेखन शैली रमणीय पर्वत शिखरों और सघन वृक्षों के बीच कलकल करती हुई नदी जैसी है—प्रसन्न, शीतल, ह्रदयस्पर्शी। उसकी संवेदना असाधारण रूप से पैनी और सूक्ष्म थी। पांचों इंद्रियों का उपयोग और उपभोग वह इस समग्रता से करता था कि उसकी अभिव्यक्ति पढ़कर लगता है उसकी इंद्रियों में कुछ अतिरिक्त शक्ति बसी हुई थी। सौंदर्य को पीने और पिलाने की लॉरेन्स की क्षमता अद्‌भुत थी।

किसी भी अनुभूति के लिए सही शब्द ढूंढना उसके लिए इतना ही सरल था जैसे फूलों से लदे वृक्ष से फूल तोड़ना। वह नफासत लॉरेन्स को जन्म से भेंट मिली थी। उसकी प्रशंसा में, विख्यात अमरीकी लेखक अल्डुअस हक्सले लॉरेन्स के इस गुण की, ''Superior otherness'' कहता था। भावना की हर छोटी मोटी तरंग को पकड़कर उसे व्यक्त करना लॉरेन्स की खूबी थी।

''दि फीनिक्स'' इन अर्थों में अनूठी है कि इसमे भिन्न-भिन्न विषयों पर लिखें गये लॉरेन्स के लेख एक ही किताब में मिल जाते है। विषयों के अनुसार ये लेख मैकडानल्ड ने सात हिस्सों में बांटे है।

1—प्राकृतिक और काव्यात्म लेखन

2—लोग, देश और जातियां

3—प्रेम, सेक्स, पुरूष और स्त्रियां

4—साहित्य और कला

5—शिक्षा

6—नीति शास्त्र, मनोविज्ञान, दर्शन

7—व्यक्तित्व और अन्य लेख

सन 1919 के दौरान हताश लॉरेन्स इंग्लैण्ड छोड़कर इटली जा बसा। वह जान गया कि उसकी जन्म भूमि में उसकी कद्र होने वाली नहीं है। इसके बाद उसका विश्व भ्रमण शुरू हुआ। पूरे योरोप की यात्रा करने के बाद वह अमेरिका और न्यू मेक्सिको गया। ये यात्राएं उसके अनुभव जगत को समृद्ध कर रही थी।

लेकिन स्वास्थ के लिए ठीक नहीं थी। उसकी यात्राओं का विश्लेषण हक्सले ने इस प्रकार किया है: ''मुझे लगता है। लॉरेन्स की अंतहीन यात्राएं इसलिए हो रही थी। क्योंकि वह अपने परिवेश से, जीवन से कट गया था। उसकी यात्राएं पलायन और खोज दोनों ही थी। खोज उस समाज की जिसके साथ वह कोई रिश्ता बना सकें; और उस जगत की जिसमे ज्ञान ने जीवन को भ्रष्ट नहीं किया था। पलायन उसे समाज की पीड़ाओं और अशुभ से जिसमें वह जन्मा था। और एक कलाकार के जन्मजात अलगाव के बावजूद वह इस सबके लिए गहरे में खूद को जिम्मेदार मानता था।''

ने केवल हक्सले बल्कि लॉरेन्स के सभी समीक्षक यही मानते थे। कि इंग्लैण्ड छोड़कर उसके विपदाओं को ही न्योता दिया। लॉरेन्स क्या खोज रहा था, और अंतत: वह उसे मिला कि नहीं यह तो वह खुद ही जानता है, लेकिन उसके रंगबिरंगे अनुभवों से मनुष्य जाति को जो मिला है वह अकूत है। वरना इतने मौलिक विचार इतनी सुगंधित भाषा में हमें कहां से मिलते? यहां लॉरेन्स के सभी लेखों की झलक देना नामुमकिन है, फिर भी कुछ लेखों के अंश पेश है—ज़ायक़े की खातिर।

फूलों भरा टस्कनी

(टस्कनी इटली का एक प्रांत है जो प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर है)

टस्कनी विशेष रूप से फूलों भरा है। क्योंकि वह सिसिली से अधिक भीगा हुआ और रोमन पहाड़ियों से अधिक आत्मीय है। टस्कनी इस कदर दूर बना रह सका। वह अपनी कई आस्तीनों के बीच मुस्कराता रहता है। इतनी सारी पहाड़ियां सर उठाती रहती है लेकिन वे एक-दूसरे की और ध्यान नहीं देती। यहां इतनी सारी गहरी घाटियाँ है ओर उन पर इठलाते हुए झरने जो अपनी ही मस्ती में बहे हुए जाते है। बिना नदी और समुंदर की फ्रिक किये बगैर। यहां हजारों-लाखों कंदराएं है। जबकि इन हजारों सालों से इस जमीन पर खेती की जा रही है। झरने छुपी हुई खाई खड्डों पर और उन्मत्त चट्टानों पर नाचते, दौड़ते जाते है। और कांटों की झाड़ियों के बीच से बुदबुदाते हुए गुजरते है। वहां पर सभी नाइटिंगेल पक्षी एक साथ बेझिझक, बेखटके गाते है।

आश्चर्य है कि टस्कनी जैसा कृषि प्रधान देश, जहां पर पाँच एकड़ जमीन पर होने वाली आधी पैदाइश आदमी के दस पेट भरता है। जंगली फूलों और नाइटिंगेल को भी जगह देता है। जब नन्हीं-नन्हीं पहाडियाँ सीना तान कर खड़ी होती है। अपने पड़ोसियों से आजाद, तो इंसान को उसका बग़ीचा, बेलों की क्यारियां बनाकर उस परिवेश को तराशना पड़ता है। बैबिलोन झूलते हुए बग़ीचों के लिए मशहूर था। लेकिन पूरा इटली एक झूलता हुआ बग़ीचा है। इटली की हजारों वर्ग मील जमीन मानव के हाथों द्वारा ऊपर उठाई गई है। उसके ढेर बनाकर फिर उसे सपाट बनाया गया है। यह अनेक-अनेक सदियों का काम है। पूरी भूमि को संवेदनशीलता से,

नजाकत से शिल्पित किया गया है। और यह इटालियन सौंदर्य की उपलब्धि है जो कि परम नैसर्गिक है। यहां मनुष्य ने धरती की सुफलता की कद्र करते हुए मृदुता से जमीन को अपनी जरूरतों के अनुकूल ढाला है। लेकिन उसका निरादर नहीं क्या।

इसका मतलब है ऐसा किया जा सकता है। मनुष्य धरती पर, धरती के ज़रिये, उसे बदसूरत किये बगैर रह सकता है।

लोगों की शिक्षा

शिक्षा किसी चिड़िया का नाम है? उसका परिणाम क्या है? क्या कोई जानता है? अमीर लोगों के लिए इससे खास फर्क नहीं पड़ता। उनके लिए सामाजिक संबंध अपने आप में पर्याप्त है। एक मधुर क्रीड़ा, जिसके लिए उन्हें कुछ उपलब्धियां, कुछ शिष्टाचार, थोड़ा बहुत सामाजिक अदब कायदा जानना काफी है। मान लें कि वे जीवन को गंभीरता से लेते है, तो अधिक से अधिक वे राष्ट्र की सेवा में जीवन बिताना चाहते है।

और राष्ट्र क्या है? बहुत आदर्शवादी परिभाषा न करें तो राष्ट्र याने जनता। और जनता कौन? निश्चित ही मजदूर और कौन? आज के लोकतांत्रिक आदर्शों के मुताबिक उच्चवर्णीय लोग जनकल्याण करने में जीवन बिताते है। ऐसा कोई आदर्शवादी नहीं होगा जो हमारे पोप की तरह हाथ में एक तौलिया और पानी की बालटी लेकर गरीबों के पैर धोने की नहीं सोच रहा होगा।

जब हम लोगों को शिक्षित करने के बारे में सोचते है तो पहले जान लें कि ये लोग कौन है? ये लोग, सर्वहारा मजदूर, हमारे कारख़ानों और उद्योगों के पुर्ज़े है। पोप इनके पैर इसलिए नहीं धो रहे है कि वे पैर बोरिया ढोते हुए धूल से गंदे हो गए है। वह इसलिए पैर धो रहा है ताकि अदने से अदने आदमी के भीतर की दिव्यता का स्मरण हो। वह मजदूर यूनियन को नेताओं के पेर नहीं धोएगा....।

तो जनता को शिक्षित करने का पहला कदम है: अपनी रोजी-रोटी न कमा सकने के भय से उन्हें मुक्त करना। यह आसान नहीं होगा। इस भयभीत युग में यक भय बहुत गहरे पैठ गया है। पुरूष युद्ध की सारी यातनाऔ से गुजरेंगे और उसके बाद अपनी रोजी रोटी ने कमा पाने के डर से आविष्ट रहेंगे। न जाने कैसा रहस्य है। वे बंदूकें और बम आराम से झेल सकते है। लेकिन अपनी रोजी न काम पाने को नहीं झेल सकते। आखिर वह मौत है, कोई जिंदगी नहीं। जिंदगी से डरना चाहिए। पूरी मनुष्य जाति की इस समस्या को सुलझाने के लिए उसे भीतर से इस भय से मुक्त करना जरूरी है। और हमारी नई शिक्षा का यह फर्ज है। अभी तो ऊपर से नीचे तक सभी इस भय से ग्रसित है।

...हर शिक्षक जानता है कि पचास प्रतिशत विद्यार्थी ऐसे है जिन्हें शिक्षित करना बेकार है। बेकार ही नहीं खतरनाक है। उसका नतीजा क्या होता है? ऐसे लड़के को शिक्षा की समूची प्रक्रिया से गूजरें जिसमें सीखने समझने की क्षमता ही न हो, तो अंतत: आप उससे क्या पैदा करते है? शिक्षा (और सारे शिक्षित लोगों) के प्रति गहरा तिरस्कार। उसके लिए वह खीज और नफ़रत के आलावा कुछ नहीं है। और पूरे देश को हम इस स्थिति में ला रहे है। हर कोई शिक्षित है, और शिक्षा क्या है? अमानवीयता। जनता के ह्रदय और उपहास में गहरे झांक कर देखें, वहां आप एक व्यंग और उपहास से भरी राय पायेंगे। कि हर शिक्षित आदमी अमानवीय होता है बनिस्बत अशिक्षित आदमी है।

हमें एक दूसरें की जरूरत है:

हमें स्वीकारना पड़ेगा कि स्त्री और पुरूष को एक दूसरे की जरूरत है। हम अपने पौरुष पर कितना ही गर्व करें, विद्रोह करें और उदास हों, लेकिन हमें गरिमा के साथ समर्पण करना चाहिए। हम सब व्यक्ति वादी है, अहंकारी है। हम तीव्रता से स्वतंत्रता चाहते है—स्वयं की तो निश्चित ही। हम सभी आत्म निर्भर होना चाहते है।

इसलिए हमारे आत्म सम्मान पर यह गहरी चोट है कि हमें दूसरे व्यक्ति की जरूरत पड़ती है। मौज-मस्ती में स्त्री या पुरूष के साथ खिलवाड़ करने में हमें कोई एतराज नहीं होता, लेकिन जब नग्न सत्य स्वीकार करने की नौबत आती है, ''हे भगवान, मैं मेरी उस कर्कश स्त्री के बिना नहीं रह सकता।'' वब हमारे सुगठित एकाकी अहम् को बड़ी चोट लगती है।

और जब मैं कहता हूं, मेरी उस स्त्री के बिना तो मेरा मतलब रखैल से नहीं है, मैं फ्रैंच लोगों की तरह कामुक अर्थ में नहीं कह रहा हूं। मेरा मतलब है स्त्री—स्त्री मात्र से मेरा रिश्ता। ऐसा शायद ही कोई पुरूष होगा जो किसी खास स्त्री के साथ रिश्ता बनाये बगैर खुशी से जी सकता है, अगर वह किसी पुरूष को ही स्त्री की भूमिका निभाने को नहीं कहता। और यही बात स्त्री पर भी लागू होती है।

तो बात ऐसी है। और तीन हजार साल तक स्त्री और पुरूष इस हकीकत के खिलाफ लड़ रहे थे।

...जब तुम पुरूष को सबसे तोड़कर उसे अपनी ही विशुद्ध निजता में अकेला छोड़ देते हो तब मनुष्य बचता ही नहीं; तब तुम्हें उसका एक रूखा सा आखिरी टुकडा, मिलता है। नेपोलियन को अलग कर दो, और वह कुछ भी नहीं है। मैन्युअल कांट को अलग कर दो, और उसकी बुलंद धारणाएं तब भी उसके मस्तिष्क में टिक-टॉक, टिक-टॉक करती रहेंगी। जब तक वह उन्हें लिखकर दूसरों के साथ बाँटता नहीं तब तक वे उसकी घड़ी में मुर्दा पड़ी रहेंगी। या बुद्ध को ही लें—अगर उसे कहीं दूर ले जाकर किसी बोधि वृक्ष के नीचे पद्मासन में बिठाया जाता, और उसे न कोई देखता, न उसके निर्वाण के प्रवचनों को सुनता, तो वह एक अजीब शख्स बना रहता।

...तो सब कुछ, निजता भी, संबंध पर निर्भर करती है। स्त्री-पुरूष के साथ भी ऐसा ही है। एक-दूसरे के साथ के रिश्ते में ही उनकी सही निजता, और उनका स्पष्ट अंतरतम है—संबंध में, संबंध के बगैर नहीं। चाहें तो इसे ही सेक्स कहें। लेकिन यह उतना ही सेक्स है जितनी की घास पर चमकती हुई धूप। यह एक जीवंत संपर्क है, लेन-देन; स्त्रियों और पुरूषों के बीच का और एक स्त्री और एक पुरूष के बीच की संबंध। इसमें, और इससे एक पुरूष के बीच का संबंध। इसमें और इससे, हम वास्तविक व्यक्ति बनते है। उसके बगैर, वास्तविक संपर्क के बगैर, वास्तविक संपर्क के बगैर हम ना कुछ हो जाते है।

निश्चित ही इस संपर्क को जीवंत और बेहतर बनाना जरूरी है। यह ऐसी बात नहीं है। कि स्त्री से विवाह कर लो और बात खतम हो गई। वह तो संपर्क से बचने का, उसे मार डालने का नुस्खा है। वास्तविक संपर्क से बचने के कई लोकप्रिय तरीके है। जैसे स्त्री को सिंहासन पर बिठा दो, या उससे उल्टा, उसकी पूरी तरह उपेक्षा करो। या उसे आदर्श गृहिणी, आदर्श माता या सहयोगी बना दो। सारे उससे संपर्क बनाने से बचने के तरीके। स्त्री कोई ''आदर्श'' चीज नहीं है। वह एक स्पष्ट सुनिश्चित व्यक्तित्व भी नहीं है।

स्त्री एक जीवंत फव्वारा है जिसकी फुहार उस पर पड़ती है जो भी उसके करीब आता है। स्त्री, हवा में उठने वाली एक अनोखी कोमल तरंग है अज्ञात, अंजान बहती हुई। यह फिर स्त्री एक कर्कश, दुखद, बेसुरी तरंग है जो बहते-बहते उसके पास आनेवाले हर किसी को चोट पहुँचती है। पुरूष जीता है, काम करता है तब वह जीवन का फव्वारा होता है; उसमें एक थिरकन है जो किसी की और बहती है। ऐसा कुछ जो अपना प्रवाह प्रतिसंवेदित करेगा। ताकि एक सर्किट पूरा हो और एक तरह की शांति छायी रहे। अन्यथा वह झुंझलाहट, बेसुरापन और पीड़ा का स्त्रोत बनता है और अपने आसपास के हर व्यक्ति को चोट पहुँचाता है।

सम्यक अध्ययन:

अगर कोई भी आदमी सदा नहीं रहता, तो कोई सिद्धांत भी सदा नहीं रहता। और जिस तरह थकी हुई नदी समुंदर में सुरक्षित विलीन हो जाती है उसी तरह थका हुआ ज्ञान भी। और वहां जाकर वह खो जाता है।

ज्ञान का झरना भी अब बहुत थक गया है। वह प्रसन्न धार की भांति चला था और अब इस कदर कीचड़ भरी सूखी रेखा बन गया है। उसे हजम करने के लिए समूचा सागर चाहिए।

''स्वयं को जानों''—ठीक है, पूरी कोशिश करूंगा। ईमानदारी से, स्वयं को जानने की कोशिश करूंगा। चूंकि लंबे समय से वह चेतना का आदर्श का आदर्श रहा है, मर्दों की तरह हमें उसका पालन करना चाहिए।

''स्वयं को जानो''—मतलब है, स्वयं के अंजान हिस्सों को जानो। जिसे जानते ही हो उसे जानना ठीक नहीं है न, हम दो एक उपन्यास लिखते है और हमें कामुक या मुर्ख या उबाऊ कहा जाता है। क्या फर्क पड़ता है? हम अपने रास्ते जा ही रहे है।

...हर प्रकार के ज्ञान के बारे में यही सच है। तुम पानी की एक बूंद की रासायनिक बनावट जानना शुरू करते हो, और इससे पहले कि तुम्हें पता चले कि तुम कहां हो, तुम्हारे ज्ञान की नदी असंतुष्ट रूप से किसी अदृश्य सागर में खो जाती है। जिसे ईथर कहते है, तुम विद्युत को जानना शुरू करते हो और तुम उस बला को किसी सूत्र में बिठाते हो और कोई ऊर्जा स्त्रोत खड़ा हो कर तुम्हारे मुंह पर थप्पड़ मारता है। और तुम्हारे हाथ में विद्युत नाम का मुर्दा शब्द रह जाता है।

अब सभी विज्ञान हर्षोल्लास के साथ ''मैं नहीं जानता'' के द्वीप से शुरू होता है। वह खुशी से कहता है, मैं नहीं जानता लेकिन मैं जान जाऊँगा। ठीक ऐसे ही जैसे छोटी सी नदिया यह ठान कर उछलती-कूदती है कि पूरे विश्व को अपनी लहरों में समा लुंगी। विज्ञान इस छोटी नदिया जैसा, हैरान होकर अंतत: ''मैं नहीं जानता'' के समुंदर में खो जाता है।

ओशो का नज़रिया:

''फीनिक्स....अदभुत किताब है यह; ऐसी जो कभी-कभार लिखी जाती है। कई दशकों में या सदियों में भी। डी. एच. लॉरेन्स सचमुच क्रांतिकारी था, विद्रोही था। वह फ्रायड से ज्यादा क्रांतिकारी था। सिगमंड फ्रायड तो मध्यवर्गीय था। ''मध्यवर्गीय'' कहकर मैंने वह सब कुछ कह दिया जो सामान्य है। मध्यवर्गीय याने मध्य में। सिगमंड फ्रायड सही अर्थों में विद्रोही नहीं है; लॉरेन्स है।''

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

22/ दि डेस्टिनी ऑफ दि माइंड-(हास)

दि डेस्टिनी ऑफ दि माइंड—(विलियम हास)

The Destiny of the Mind. East and West by William S. Has

बीसवीं सदी के प्रारंभ में अनेक जर्मन तथा यूरोपियन विद्वान पूरब की प्रज्ञा की और आकर्षित हुए। यूरोप में बुद्धिवाद का उत्कर्ष चरम शिखर पर था लेकिन यह बुद्धिवाद तर्क पर आधारित था। वह बुद्धि की संतुष्टि तो कर सकता था लेकिन हृदय की प्यास बुझाने में असमर्थ था। इसीलिए विशेष रूप से जर्मन विद्वान भारत की वैदिक प्रज्ञा को समझने के लिए उत्सुक हुए।

विलियम हास भी उनमें से एक था।

जर्मनी के एक छोटे से शहर में पला, बड़ा हुआ हास भारतीय आध्यात्मिक ग्रंथों का थोड़ा-बहुत अध्यन कर रहा था। एक दिन अपने गांव के रमणीय निसर्ग के सान्निध्य में बने हुए मकान की छत पर बैठा हुआ हास एक भारतीय अतिथि के साथ दार्शनिक चर्चा कर रहा था। विषय था, तर्क पर खड़ी हुई बौद्धिक समझ की सीमाएं। अचानक उस भारतीय व्यक्ति ने सामने खिले हुए फूलों की और इशारा कर पूछा, ''इन फूलों को आप किस पृष्ठभूमि से देखते है?''

उन पौधों की पृष्ठभूमि में, हास न कहां।

और उन पौधों को किस पृष्ठ भूमि में देखते है?

उन वृक्ष की पृष्ठभूमि में।

इस तरह पीछे हटते-हटते बादलों तक पहुंचे।

और उन बादलों की पृष्ठभूमि क्या है?

''आकाश''

और आकाश की..... ?''

अब हास निरूतर हुआ। लेकिन भारतीय व्यक्ति के पास इसका उत्तर था। उसने कहा, यह आकाश चेतना की पृष्ठभूमि में स्थित है।

हास ने मन में बिजली सी कौंध गई, और इसी क्षण इस किताब का बीज बोया गया। पश्चिम और पूरब की मनीषा का फर्क साफ हो गया। और जर्मन प्राध्यापक विलियम हास ने अपनी जिंदगी पूरब की मनीषा का फर्क साफ हो गया। और जर्मन प्राध्यापक विलियम हास ने अपनी जिंदगी पूरब और पश्चिम के दर्शन और मस्तिष्क को समझने में लगा दी। उसके गहरे अध्ययन का निष्कर्ष है: '' दि डेस्टिनी ऑफ दि माइंड''—मन की नियति। उपशीर्षक है: पूरब और पश्चिम।

पूरब और पश्चिम में जो फर्क है वह सिर्फ उनकी भिन्न-भिन्न अभिव्यक्तियों का नहीं है। वरन उससे भी गहरा है। उनकी चेतना की संरचना में ही फर्क है। पूरब और पश्चिम की सभ्यताओं में जो प्रकट हुआ है वह तो है ही, लेकिन ये दो चेतनाएं भी अलग-अलग तत्वों से बनी है। अब तक इस किताब में जो लिखा गया है वह मूलत: इन दो चेतनाओं का वर्णन है।

बहरहाल, किताब का समापन अधिक एकात्म तल पर होता है। हास कबूल करता है कि ''इस किताब में कथित धारणाएं इतिहास का दर्शन शास्त्र है। एक और पूरब और पश्चिम की भिन्नता को विभिन्न पहलुओं से दिखाया है, लेकिन दूसरी और इतिहास के दर्शन में उसकी संभावना है कि मनुष्य जाति का, नए आधारों पर नया प्रारंभ हो सके।

ध्यान रहे, यह किताब पिछली सदी के पूर्वार्ध में लिखी गई अंत: विचारों के साथ उसकी भाषा शैली में भी उसी समय की झलक है। लंबी-लंबी वाक्य रचना, क्लिष्ट संरचना और पुराने पड़ गये विचार, हो सकता है आज के पाठक को हतोत्साहित करें। फिर भी यह जानने के लिए कि आज हम जिस गली के मोड़ पर खड़े है वह गली कहां-कहां से गुजरी है, इस किताब को पढ़ना उपयोगी होगा। शायद इसीलिए ओशो ने इसे अपनी मनपसंद किताबों में शामिल किया है।

ओशो का नजरिया:

आज की पहली किताब है; ''दि डेस्टिनी ऑफ दि माइंड'' यह किताब बहुत प्रसिद्ध नहीं है। क्योंकि यह बहुत गहरी है। मुझे लगता है यह आदमी हास जर्मन होना चाहिए। और फिर भी उसने अत्यंत अर्थपूर्ण किताब लिखी है। वह कवि नहीं है, वह गणितज्ञ की भांति लिखता है। यह वह व्यक्ति है जिसने मुझे शब्द ''फिलोसिया'' दिया।

अंग्रेजी शब्द फिलॉसॉफी का अर्थ है, ज्ञान का प्रेम। फिलो यान प्रेम, सोफिया याने ज्ञान। लेकिन हिंदी दर्शन पर यह लागू नहीं होता। वह पूर्ण को देखने का पूर्वीय ढंग है। फिलॉसॉफी कर्कश है।

हास उसकी किताब ''दि डेस्टिनी ऑफ दि माइंड'' में दर्शन के लिए ''फिलोसिया'' शब्द का प्रयोग करता है। ''फिलो'' का अर्थ वही है, प्रेम, लेकिन ओसिया याने सत्य, यर्थाथ, आत्यंतिक रूप से यर्थाथ। ज्ञान का प्रज्ञा का प्रेम नहीं बल्कि सत्य के प्रति प्रेम, फिर वह कड़वा हो या न हो, उससे फर्क नहीं पड़ता।

यह उन किताबों में से है जिसने पूरब और पश्चिम को करीब लाया। लेकिन केवल करीब, किताबें इससे ज्यादा कुछ कर नहीं सकती। उनका मिलन होने के लिए किसी आदमी की जरूरत है, किताब की नहीं। और हास वह आदमी नहीं था। उसकी किताब सुंदर है लेकिन वि बिलकुल साधारण था। वास्तविक मिलन के लिए कोई बुद्ध चाहिए। और मैं नहीं सोचता कि इस आदमी ने कभी ध्यान किया हो। उसके एकाग्रता साधी होगी। जर्मन लोगों को एकाग्रता की जानकारी है। एकाग्रता जर्मन है, ध्यान नहीं। हां कभी-कभार जर्मनी में भी ध्यान पैदा हुआ है, लेकिन वह नियम नहीं है।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

23/ मदर-(गोर्की)

मदर—(मैक्सिम गोर्की)

Mother– Maxim Gorky

(विख्यात रशियन लेखक मैक्सिम गोर्की उपन्यास मदर पहली रशियन क्रांति के पहले लिखा गया था जब ज़ार शाही के खिलाफ मजदूरों को उत्थान शुरू हुआ। रशिया में नया-नया औधोगिकीकरण हुआ था। शहरों में कारखाने खड़े हुए और उनमें काम करने के लिए मजदूरों की जरूरत पड़ने लगी। कारख़ानों के मालिक मजदूरों का शोषण ठीक उसी तरह करने लगे जैसे ज़ार किसानों का करते थे। मजदूरों की हालत में कोई सुधार नहीं हुआ।)

यह उपन्यास भी एक कारखाने की पृष्ठभूमि में लिखा गया। एक अर्थ में उपन्यास की नायिका मदर है, मदर अर्थात मां, पावेल की मां—लेकिन सच देखा जाये तो मजदूरों की बदतर हालत, उनका असंतोष और असंतोष जन्य बगावत इस उपन्यास के मुख्य चरित्र है। सारे मजदूर यहां एक सामूहिक चेहरा बनकर उभरते है। मदर है उन मजदूरों के नेता पावेल की मां। वह अप्रयोजन, परिस्थितिवश उनके आंदोलन में खिंच जाती है।

विरोधाभास देखिये, मैक्सिम गोर्की ने यह उपन्यास एक मां पर लिखा है। लेकिन उसका अपनी मां से कोई संबंध नहीं है। गोर्की अपनी नानी के पास तला। जिंदगी के भीषण अनुभवों ने उसके भीतर इतनी कड़वाहट भर दी कि उसने अपने नाम में ही कड़वाहट को अंगीकार कर लिया। ''गोर्की'' का अर्थ है, कड़वा। वह उसका असली नाम नहीं है, उसका असली नाम था। अलेक्सी मैक्सिमाविच पैश्कोव। वह 1868 में पैदा हुआ और 1936 में मरा। गोर्की सर्वहारा वर्ग से जरूर था लेकिन उसका वजूद बहुत बड़ा था। उसके कभी हुकूमत के आगे हार नहीं मानी। उसमे विद्रोह की आग थी। और यह आग सिर्फ उसकी कलम में ही नहीं, उसके जीवन में हर वक्त जलती थी। इसीलिए वह मज़दूरों को क्रांति के लिए उकसाता रहा और उनके साथ खुद भी जेल जाता था।

मज़े की बात, गोर्की खुद कभी स्कूल नहीं गया लेकिन उसका साहित्य इतना प्रभाव शाली था कि ज़ार जिसके खिलाफ गोर्की उमर भ जंग छेड़ता रहा। रशियन चिन्तन और रसिअन साहित्य को गोर्की ने इस हद तक प्रभावित किया कि उनके चिन्तन की पूरी धारा बादल गई। ''मदर'' गोर्की का अजर उपन्यास है। पूरी दूनिया में इस उपन्यास के 28 भाषाओं में 106 संस्करण छपे।

उपन्यास में मां का नाम है निवलोन पेलाग्वेया वलासोवा। एक अधेड़ उम्र की अनपढ़ स्त्री। उसका जीवन अन्य मजदूर पत्नियों से भिन्न न था—दिन भर गधे की तरह काम करना और रात शराबी पति के हाथों पिटना। उसका एक ही बेटा था। पावेल। बेतहाशा पी गई शराब ने उसके पति को निगल लिया और पति की मृत्यु के बाद वह पावेल के साथ रहने लगी।

धीरे-धीरे मां को पावेल में कुछ परिवर्तन-सा दिखाई देने लगा। वह देर तक घर से बाहर रहने लगा। जब घर आता तो उसके हाथ में कुछ किताबें होती। पावेल उन्हें पढ़ता रहता और पढ़ने के बाद छुपा देता। उसकी बातचीत में कुछ नये शब्द प्रवेश कर गया थे। जिन्हें निवलोना ने पहले कभी नहीं सुना था। ''विद्रोह'' ''स्वतंत्रता '' ''शोषण'' ''अन्याय'' इस तरह के शब्द मजबूर इस्तेमाल नहीं करते।

पावेल गुमसुम रहने लगा, और जब बोलता तो आग उगलता। फिर उसके नये-नये युवा मित्र सांझ को घर आने लगे। उसकी आपस में मीटिंग चलती। निवलोना का काम था उनको चाय बनाकर देना।

निवलोना का आँचल ममता से भीगा हुआ था। वह उस युवा मंडली की पूछताछ करती, देखभाल करती। वह मंडली कहीं से पर्चे और पत्रिकाएँ लाकर कारखाने में बाँटती थी। उनमें क्या लिखा था वह तो मां समझ

नहीं पाती थी। लेकिन वह इतना जरूर जानती थी के उन पर्चों का पढ़ने वालो पर जबरदस्त असर होता है। पावेल एक लिहाज से इस गुप्त आंदोलन का नेता था। वह देखने में सुंदर था, बोलने में कुशल, और स्वभाव में निडर। स्वभावत: एक दिन पुलिस आई और उसे और उसके मित्रों को पकड़ कर ले गई। यहां से मां का रूपांतरण होता है। बाद में मां काम करने लगती है। वह पढ़ना लिखना तो नहीं जानती लेकिन वे पर्चें कारखाने में बांटने का काम करने लगती है। मजदूरों के लिए खाने की सामग्री बेचने के बहाने वह रो कारखाने जाती है और सब जगह पर्चें छोड़कर आती है।

सात हफ्तों बाद पावेल जेल से रिहा कर दिया जाता है लेकिन बाहर आते ही दुगुने जोश से मजदूरों को उकसाने की तैयारी करने लगता है। एक मई को सब लोग मई दिवस मनाने की तैयारियाँ करने लगते है। मई दिवस अर्थात मजदूर दिवस। पावेल और उसके दोस्त मजदूरों को इकट्ठे कर उनके आगे प्रक्षुब्ध वाले भाषण देते है। बहरहाल वे फिर से गिरफ्तार कर लिये जाते है। यह उसकी मां के जीवन में क्रांतिकारी क्षण होता है। वह अचानक बेटे के काम की बागडोर सम्हाल लेती है। जैसे ही पुलिस पावेल और उसके गुट को ले जाती है। मां भीड़ को संबोधित कर पहला भाषण करती है। वस्तुत: वह नहीं बोलती, वे बोल उससे फट पड़ते है। गोर्की की सशक्त कलम ने इस घटना को जीवंतता से चितेरा है:

''दोस्तों, मां चीख पड़ी। भीड़ को चीरती हुई वह आगे बढ़ी। लोगों ने आदरपूर्वक रास्ता बनाया। कोई हंस पडा और बोला, ''देखो, उसके हाथ में झंडा है।'' मां ने अपने हाथ फैलाकर कहा, ''सुनो ईश्वर के लिए सुनो। लोगों, प्यारे लोगो, निर्भयता से देखो क्या हुआ है। हमारे अपने बच्चे हमारे खून का खून, न्याय मांगने के लिए दुनिया में गए है—हम सबकी खातिर। तुम सबकी खातिर और तुम्हारे बच्चों की खातिर जो अभी पैदा भी नहीं हुए है। उन्होंने यह सलीब उठा लिया है। ताकि तुम्हारा भविष्य उज्जवल हो सके। वे एक नई जिंदगी चाहते है—एक सचाई और न्याय की जिंदगी। वे सभी लोगों की भलाई चाहते है।

''उसके सीने में उसका दिल विस्फोटित हो रहा है। उसका गला सूख रहा था, तप रहा था। उसकी गहराइयों से नये बुलंद शब्द उमग रहे थे। शब्द जो सबको अपने अंक में समेटने वाले प्रेम की स्फुरणा से भरे हुए थे। वे शब्द उसकी जबान को ताकत के साथ अभिव्यक्त करने के लिए प्रेरित कर रहे थे।

उसने देखा कि सभी लोग उसे शांति से सुन रहे है। उसके भीतर एक तीव्र इच्छा जागी कि मैं किसी तरह इन्हें प्रेरित करूं कि वे मेरे बेटे और उसके दोस्तों के पीछे चलें; उन सभी के पीछे जो सिपाहियों के हाथ पड़ गये; जिन्हें उन्होंने उनकी तकदीर के हवाले कर दिया।

उसके शब्द बीच में ही लडखड़ाये, वह कमजोरी महसूस करने लगी। वह गिरने को थी कि किसी ने उसे थाम लिया।

वह ईश्वर का सत्य बोल रही थी। किसी ने उत्तेजना से कहा ''ईश्वर का सत्य''। भले मानसों सुनो।

दूसरे ने हमदर्दी से कहा, ''देखो, वह खुद को कितना तकलीफ दे रही है।

कोई और बोला, ''वह खुद को नहीं सता रही है, हम अपने आपको सता रहे है। हमारी मूर्खता का भी जवाब नहीं।''

ये शब्द सुनकर मां कांपने लगी, उसके गालों पर खामोश आंसू ढुलकने लगे।

सिज़ोव ने कहा, ''घर जाओ, पेलाजिया। जाओं मां, आज का दिन तुम पर भारी पडा है।''

धीमे कदमों से मां घर की और चल पड़ी। उसके पीछे लोग खिंच चले जा रहे थे। जब घर के द्वार पर पहुंची तो मुड़कर उसने लोगों को देखा, और झुककर बोली, धन्यवाद। और पुनश्च वह ख्याल जो उसके भीतर मंडरा रहा था, उसके प्रगट किया। ''यदि लोग अपनी जिंदगी कुर्बानी न करते तो जीसस क्राइस्ट नहीं होते।''

''हां पर उपन्यास का पहला भाग समाप्त होता है। इसके बाद मां सिर्फ पावेल की मां नहीं रहती। वह उन सभी क्रांतिकारियों की मा बन जाती है। जो छूप-छूप कर बगावत के खिलाफ बगावत कर रहे थे। उसका छोटा सा घर उनके मिलने-झुलने को अड्डा बन जाता है। उनसे जितना बन सके उतने पैसे लाकर वे उसे देते है और उसका चूल्हा जलता रहता है। मां का यह परिवर्तन गोर्की ने बडी खूबसूरती से लिखा है।

मां का जीवन एक अजीब-सी शांति में बह रहा था। कभी-कभी वह शांति खुद उसे हैरान कर देती। उसका बेटा जेल खाने में था। और उसे पता था कि उसे बहुत सख्त सज़ा मिलेगी, लेकिन जब भी वह इसके बारे में सोचती उसके मन में आंद्रे और फियोडोर और बहुत से चेहरे उभरते। उसके बेटे की आकृति बडी होती और उन सभी लोगों में फैल जाती जो उसके समान धर्मा थे। इससे उसके अंतस में एक चिंतन की भाव दशा पैदा होती।

पावेल के बारे में उसके विचार अपने आप कई शाखाओं में फैल जाते। उनकी महीन किरणें टटोलती हुई सी सब तरफ फैलती और सभी वस्तुओं पर रोशनी डालती, सभी वस्तुओं को एक ही आकार में गूँथ देती। इससे वह एक ही चीज वर ध्यान केंद्रित करने से बच जाती; इससे अपने बेटे का विरह या उसके भविष्य की चिंता उससे कोसों दूर भाग जाती।

पावेल और उसके साथियों पर मुकदमा चलता है। वैसे मुकदमा एक दिखावा ही था। क्योंकि फैसला सभी को पहले ही मालूम था—''साइबेरिया में सश्रम कठोर कारावास।'' खचाखच भरी हुई अदालत में पावेल जिस निर्भीकता से, जिस ओजस्विता से भाषण करता है उससे सारे न्यायधीश और जुरी और कानून की व्यवस्था का कद एकदम चूहे जैसा हो जाता है। यह संभ्रम हो जाता है कि मुजरिम कौन है—मजदूर या वे लोग?

अब पावेल उठ खड़ा हुआ। अचानक पूरा कमरा स्तब्ध हो गया। मां के कान खड़े हुए। पावेल बहुत शांति से बोल रहा था।

''पार्टी के सदस्य की हैसियत से मैं सिर्फ मेरी पार्टी का फैसला मानता हूं। इसलिए मैं अपने बचाव में नहीं बोलूंगा। लेकिन मेरे साथियों की गुजारिश पर, जिन्होंने अपना बचाव करने से इन्कार कर दिया है, मैं उन बातों को समझाऊंगा जिन्हें आप नहीं समझें है। सरकारी वकील ने हमारे प्रदर्शनों को, ''सत्ता के खिलाफ बगावत।'' कहा है। और वे सोचते है कि हम ज़ार को अपदस्थ करना चाहते है। मैं यह बात स्पष्ट करना चाहता हूं कि सामंतवाद हमारे देश को बांधने वाली एकमात्र कड़ी नहीं है। वह सबसे पहली, और सबसे उपलब्ध सांकल है जिससे हम लोगों को आजाद करना चाहते है।

पावेल की बुलंद आवाज तले सन्नाटा और गहराया। मानों उसने अदालत की दीवारों को पीछे की और सरका दिया। और पावेल सबसे ऊपर, कहीं दूर खड़ा नजर आ रहा था।

जज अपनी कुर्सियों में सरकने लगे, एक-दूसरे के कानों में खुसुर-फुसुर करने लगे। पावेल का स्वर और ऊपर उठा:

''हम समाजवादी है। इसका मतलब है हम निजी जायदाद के खिलाफ है। यह संस्था समाज को तोड़ती है, लोगों को एक-दूसरे का दुश्मन बनाती है। एक दूसरे के स्वार्थों को लड़वाती है। और अपनी दुश्मनी की खातिर उन्हें झूठ का सहारा लेना पड़ता है। हम हर तरह की शारीरिक और मानसिक गुलामी के खिलाफ लड़ेंगे जो इस तरह का रूग्ण समाज हम पर थोपता है।

हम मजदूर है; वे लो, जिनके श्रम से सारी चीजें बनती है—बच्चों के खिलौनों से लेकर विशाल मशीनों तक। फिर भी हमें अपनी स्वयं की मानवीय कीमत की रक्षा करने को कोई हक़ नहीं है। कोई भी अपने निजी स्वार्थ के लिए हमें इस्तेमाल करता है। अभी हम कुछ हद तक अपने हाथों में सत्ता लेना चाहते है। जिससे अंतत:

हमें पूरी ताकत मिलेगी। हमारी घोषणाएँ सरल सी है। ''निजी संपति का विनाश हो।'' पूरी सत्ता लोगों के हाथ में हो। काम करना प्रत्येक का कर्तव्य है।

हम क्रांतिकारी है, और क्रांतिकारी बने रहेंगे। जब तक कि मुट्ठीभर लोग मालिक है और बाकी सब मजदूर।

न्याय-मंडल में बेचैनी फैलने लगी। बूढे जज ने नाराज होकर पावेल को रूकने का इशारा किया। अंत में पावेल ने कहा, ''मैं अपना भाषण खतम कर रहा हूं, मैं व्यक्तिगत रूप से आपको चोट पहुंचाना नहीं चाहता। उल्टे मैं जो यहां बैठा हूं, मुकदमा नाम के इस तमाशे के एक बेमन दर्शक की तरह, मुझे आप पर दया आती है। आखिर आप लोग मनुष्य है, ऐसे लोगों को देखकर सदा कोफ्त होती है। जो अमानुष ताकत की सेवा में इतने गिर जाते है कि मानवीय गरिमा को मिट्टी में मिला देते है।

न्यायधीशों की और देखे बिना पावेल नीचे बैठ जाता है। जबकि मां सांस रोककर उनकी और टकटकी लगाये देख रही थी। अब क्या होगा?

आंद्रे ने पावेल का हथ दबाया। उसका चेहरा चमक रहा था। अन्य साथी उसकी और झुक गये। अपने साथियों के जोश से पावेल को संकोच सा हो रहा था। उसने अपनी मां की और देखते हुए सिर हिलाया। मानों यह पूछा, ''आप संतुष्ट है?''

मां ने एक प्रसन्न सांस छोड़ी। और चेहरा प्रेम की गर्म लहर से चमक उठा।

अब असली मुकदमा शुरू हुआ, ''सिझोव फुसफुसाया, उसने उनको अच्छा तीर मारा।''

मां न चुपचाप हामी भरी। वह खुश थी कि उसका बेटा इतनी निडरता से बोला। शायद खुशी इस बात की ज्यादा थी कि उसका बोलना बंद हुआ। उसके जेहन में एक ही सवाल लरजता रहा: ''अब वे क्या करेंगे?''

यह उपन्यास अचानक समाप्त होता है—कुछ सिपाही और मां की हाथापाई की घटना से।

यह उपन्यास काल्पनिक होते हुए भी उसकी जड़ें सत्य में गहरी ज़मीं हुई है। यह गोर्की का अपना जलता हुआ अनुभव है। इसलिए उपन्यास के समाप्त होने के बाद भी देर तक वे फटेहाल मजदूर और उस हालत के बीचोबीच खिलता हुआ उनके विद्रोह का अग्नि पुष्प, एक गरीब अनपढ़ मां का उन सबको सहयोग, इन सबका असर मन से मिटाये नहीं मिटता।

ओशो का नज़रिया:

ऐसा लगता है कि आज मैं रशियन लोगों में घिरा हुआ हूं। आज की किताब है मैक्सिम गोर्की की ''मदर'' मुझे गोर्की पसंद नहीं है। यह कम्युनिस्ट है और मुझे कम्युनिस्ट बिलकुल पसंद नहीं है। लेकिन यह किताब ''मदर '' यद्यपि मैक्सिम गोर्की ने लिखी है। मुझे हमेशा अच्छी लगी है। मेरे पास इस किताब की इतनी अधिक प्रतियां थी कि मेरे पिताजी कहते, ''तुम पागल हो गये हो? किताब की एक प्रति काफी होती है; और तुम हो कि लगातार मँगवाते चले जाते हो। जब भी में कोई डाक पार्सल देखता हूं तो वह मैक्सिम गोर्की की ''मदर'' होती है। पागल तो नहीं हो गये हो?

मैं कहता, हां, जहां तक गोर्की की ''मदर'' का सवाल है, मैं पागल हूं एक दम पागल।

जब भी मैं अपनी मां को देखता हूं तो मुझे गोर्की याद आता है। गोर्की की गिनती दुनिया के श्रेष्ठतम रचनाकारों में होनी चाहिए। खास कर ''मदर'' में वह लेखन कला के उच्चतम शिखर को छूता है। ''न भूतो न भविष्याति.....'' वह हिमालय के शिखर जैसा हे।

''मदर'' को गहराई से पढ़ना चाहिए। बार-बार पढ़ना चाहिए, तभी वह तुम्हारे भीतर रिसती है। तब कही धीरे-धीर तुम उसे महसूस करते हो, पढ़ना नहीं, सोचना नहीं महसूस करना। तब तुम उसे स्पर्श करते हो,

वह तुम्हें स्पर्श करती है। वह जीवंत हो उठती है। फिर वह किताब नहीं वरन एक व्यक्ति बन जाती है—एक व्यक्ति।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

24/ सायकोएनेलिसिस एंड दि अनकांशस–(लॉरेन्स)

सायकोएनेलिसिस एंड दि अनकांशस—(डी. एच. लॉरेन्स)

Psychoanalysis and the Unconscious-Lawrence D. H.

बीसवीं सदी के आरंभ में सिगमंड फ्रायड और उसके शिष्योत्तम युग ने पहली बार मनुष्य के मन की गहराई में दबे हुए अवचेतन या अनकांशस का उँहापोह किया। ओशो स्पष्ट कहते है कि लॉरेन्स एक स्थापित मनोवैज्ञानिक न होते हुए भी वह मन की गहराइयों में अधिक कुशलता से पहुंचा है। और उसने बड़ी सुंदरता से अवचेतन की बारीकियां को शब्दांकित किया है।

यह किताब सबसे पहले 1923 में प्रकाशित हुई। इन दो निबंधों में लॉरेन्स का मूल बिंदू यह है कि ''अवचेतन'' जीवन का ही दूसरा नाम है। उसका मानना है कि मानव जीवन में जो भी कहा नहीं जा सकता वह उसकी निजता और भावनाओं का सबसे गहरा स्त्रोत है। फ्रायड ने मनुष के अवचेतन को बड़ा की कुरूप, अंधियारा, और रूग्ण दिखाया है। और इसी कारण लॉरेन्स अवचेतन के संबंध में अपने विचार जाहिर करने के लिए प्रेरित हो उठा। इन निबंधों में वह अवचेतन के जैविक और शारीरिक पहलुओं को उजागर करता है। और कहता है कि समाज और व्यक्ति दोनों ही अवचेतन का उपयोग अपने काम संबंधों में और पारिवारिक रिश्तों में न कर सकें। उसका आग्रह है कि अवचेतन को विकसित करने के लिए वर्तमान शिक्षा पद्धति में आमूल परिवर्तन किये जाये।

इस किताब में लॉरेन्स अपना अनकांशस अर्थात मनोविश्लेषण वह अवचेतन। इस लधु किताब के छह छोटे परिच्छेद है।

मनोविश्लेषण विपरीत नैतिकता

अनैतिक संबंधों का उद्देश्य और आदर्शवाद

चेतना का जन्म

मां-बच्चा

प्रेमी और प्रेमिका

मानवीय संबंध और अवचेतन

इस किताब का जन्म जिस वातावरण में हुआ है उसे ध्यान में लिये बगैर इसे समझा नहीं जा सकता। 1920 में फ्रायड और उसका मनोविश्लेषण धूमकेतु की तरह यूरोप के आकाश में प्रकट हुआ था। और न केवल प्रगट हुआ था बल्कि लोगों के दिनो-दिमाग पर छा गया। मनोविश्लेषण एक फैशन बन गया था।

लॉरेन्स लिखता है:

''मनोविश्लेषण ने हमारे ऊपर बहुत आश्चर्य उछालें है। हम मनश्चिकित्सक नाम के प्राणी से परिचित हुए ही थे जिसने हमारे सारे कृत्यों की जड़ों में कुंडली मारकर बैठे हुए कामवासना के सांप को बलपूर्वक दिखा दिया। हम हमारी छिपी हुई कुंठओं को लेकिर ईमानदारी से बेचैन होना सीख ही रहे थे कि ये मनो विश्लेषक सज्जन विशुद्ध मनोविज्ञान का सिद्धांत लेकर पुन: प्रकट हुए।

मनोविश्लेषण एक सार्वजनिक खतरा बन चुका था। जनता चौकन्नी हो गई थी। ईडिपस-कॉम्पेल्क्स (ग्रीक राजकुमार ईडीपस का अपनी मां के साथ यौन संबंध) घरेलू शब्द हो गया था, बहन-भाई के बीच अनैतिक संबंध की इच्छा एक चाय के टेबल की गपशप हो गई थी। ''तुम्हारा मनोविश्लेषण होने दो, फिर देखना.....लोग एक दूसरे को कहते थे।

मनोविश्लेषण हमारे बीच वैद्य बनकर सवाल बनकर घुस गय थे। दो मिनट और, और वे फ़रिश्ते बनकर प्रकट होंगे।

मनोविश्लेषण एक नैतिक मसला है। सवाल नये नैतिक मूल्यों को लाने का नहीं है। यह नैतिकता के जीवन मरण का सवाल है। मनो विश्लेषकों के नेतागण इस बात से वाकिफ है। उनके शिष्य भले ही न हो, लेकिन चिकित्सा की आड़ में ही सही, मनोविश्लेषण मनुष्य के नैतिक अंग को नेस्तनाबूद करने पर तुला है।

एक अरसा हुआ हम भयभीत पूर्वाभ्यास के साथ देख रहे थे कि किस तरह फ्रायड मानव चेतना के भीतर पैठने के अभियान पर चल पडा था। वह चेतना के उस रहस्यमय प्रवाह को खोजने निकला था। अमर विलियम जेम्स का अमर मुहावरा: चेतना का प्रवाह। वह प्रवाह मेरे मस्तिष्क को भेद कर आरपार निकल गया था।

और फ्रायड अचानक मनुष्य के चेतन मन से अवचेतन में। छलांग लगा गया। नींद की दीवाल को भेद कर सपनों की गुफा में गड़गड़ाते हुए हमने उसे सुना। जो अभेद्य है, वह वस्तुत: अभेद्य नहीं है। मूर्च्छा शून्यता नहीं है, नींद है—वह अंधकार की दीवाल जो हमारे दिन को सीमित कर देती है। दीवाल में टकराओं, और पाओ कि दीवाल है ही नहीं। वह गुफा है मुंह पर फैला विराट अंधकार है। आंतरिक अंधकार की गुफा, जहां से चेतना का प्रवाह निकलता है।''

चेतना का जन्म:

यह तय करना बेकार है कि चेतना क्या है, और ज्ञान क्या है। किसे पड़ी है, जब हम जानते ही है। लेकिन जो हम नहीं जान पाते, फिर भी जो हमें जानना जरूरी है वह है विशुद्ध चेतना जो हर जीवित वस्तु में निहित है और विकसित होती है। मस्तिष्क आदर्श चेतना का सिर्फ मुर्दा छोर है—बुने हुए रेशम की भांति। चेतना का विराट विस्तार मस्तिष्क के पार है। वह हमारे जीवन का, बल्कि सभी जीवन का रस है।

गर्भ में स्थित शिशु को देखें। क्या गर्भ सावचेत है? होना ही चाहिए, क्योंकि वह स्वतंत्र रूप से विकसित होता रहता है। यह चेतना निश्चय ही, आदर्श नहीं होगी। दिमागी नहीं होगी। क्योंकि वह मस्तिष्क के तंतुओं के विकसित होने से पहले होती है। और फिर भी वह अंतरंग, व्यक्तिगत चेतना है जिसका अपना उद्देश्य और विकास है। वह कहां होगी? मज्जा तंतुओं के बनने से पहले वह कैसे कार्यरत होती होगी? वह काम करती तो है—धीरे-धीरे, अनवरत, मकड़ी की मानिंद मज्जा तंतु और मस्तिष्क का जाल बुनती रहती है।

सर्व प्रथम मनुष्य चेतना की मकड़ी कहां रहती होगी? वह कौन सा केंद्र होगा जहां से यह चेतना काम करती है? यदि नन्हें से गर्भ में ही चेतना का केंद्र होगा तो उसे पहले से वहां होना चाहिए।

और विकसित गर्भ में इस सृजनशील चेतना का केंद्र कहां होगा? मस्तिष्क में या ह्रदय में? हमारी अपनी व्यक्तिगत प्रज्ञा कहती है, जिसकी पुष्टि विज्ञान करता है, कि वह केंद्र नाभि के नीचे है। निश्चय ही वह केंद्र जो कि बीजाणु का सबसे पहला केंद्र है, समस्त गर्भ में पैदा होनेवाले जीवों की नाभि के नीचे रहता है। शुरू में वह बाहर के क्रियाशील जगत के साथ संबंध बनाये रखता है।

मां और उसका बच्चा:

स्तनों के भीतर जो केंद्र है वह ह्रदय का मन है। स्तन के मेल पूर्ण केंद्र के द्वार से अवचेतन अपने विषय को खोजता हुआ बहार आता है। जब बच्चा अपनी छाती अपनी मां की छाती से चिपकाता है तब वह उसकी आदिम सत्ता के प्रति जागता है—उससे कुछ पाने की इच्छा से नहीं उसके स्वयं के प्रति, जैसी कि वह अपनी आप में है।

स्तन अपने आप में दो आंखों की भांति है। हम नहीं जानते कि स्तनाग्र—स्त्री और पुरूष दोनों के—कहां तक चेतन प्रवाह के दो बिंदुओं की तरह है। हम नहीं जानते कि क्या स्तनाग्र फ़व्वारे की तरह है जो विश्व में उछलते है, या छोटे से चमकीले दीये है जो खोज में भटकती हुई आत्मा को रोशनी दिखाते है। इतनी बात तय है कि स्तन के केंद्र में स्थित वासना प्रेमी या प्रेमिका की पहली आनंदपूर्ण उपलब्धि है, बह्म विश्व की सर्व प्रथम खोज है।

लॉरेन्स की यह किताब बहुत सूक्ष्म है। यह आम आदमी के लिए नहीं है। उसकी खुद की यह इच्छा है कि हर कोई इस किताब को न पढ़े।

बड़ी अजीब इच्छा जाहिर की है। आम लेखक चाहते है कि अधिक से अधिक लोगों तक उनकी बात पहुंचे। लेकिन लॉरेन्स आम लेखक नहीं है। लॉरेन्स अपनी कोटि आप है। ''सायकोएनेलिसिस एंड अनकांशस'' के आमुख में लॉरेन्स अपनी भूमिका स्पष्ट करता है–

प्रस्तुत किताब ''सायकोएनेलिसिस एंड अनकांशस'' का एक सिलसिला है। सामान्य पाठक इसे अकेला छोड़ दें। और सामान्य आलोचक भी। मैं किसी को प्रभावित करना नहीं चाहता। मेरे स्वभाव के लिए खिलाफ है यह बात। मेरी किताबें सामान्य पाठकों के लिए नहीं है। अपने गलत लोकतंत्र की मैं यह गलती मानता हूं कि हर आदमी जो छपी हुई चीज को पढ़ सकता है उसे हर आदमी जो छपी हुई चीज को पढ़ने की इजाजत दी जाये। यह दुर्भाग्य है कि गहरी किताबें बाजार में सरे आम उघाड़ी जाती है। जैसे गुलामों को नग्न कर बेचने के लिए खड़ा किया जाता है।

सामान्य पाठकों को मैं चेतावनी देना चाहता हूं कि यह किताब उन्हें शब्दों का वितृष्ण दायक अंबार लगेगा। सामान्य आलोचकों को मैं चेतावनी देता हूं कि वे इसे फौरन कचरे के डिब्बे में फेंक दें। और थोड़े से चुनिंदा लोगों को जो उत्तर के प्यासे हैं, मैं सीधे कहना चाहता हूं। कि मैं सोलर फ्लैक्स (ह्रदय चक्र के थोड़ा नीचे) में बसता हूं। यह एकमात्र वक्तव्य पाठकों को नंबर पर्याप्त रूप से कम कर देगा।

ओशो का नज़रिया:

डी. एच. लॉरेन्स की एक और किताब—यह मेरे लिए परम चुनाव है। ''सायकोएनेलिसिस एंड अनकांशस '' यह किताब बहुत कम पढ़ी जाती है। अब कौन पढ़ेगा इसे?

जो उपन्यास पढ़ते है वे इसे पढ़ेगे नहीं, और जो लोग मनोविश्लेषण की किताबें पढ़ते है वे भी नहीं पढ़ेगे, क्योंकि वे लॉरेन्स को मनोवैज्ञानिक नहीं मानते। लेकिन मैं पढ़ता हूं। मैं न तो उपन्यासकारों का प्रशंसक हूं, न मनोविश्लेषकों का दीवाना हूं। मैं दोनों से मुक्त हूं। मैं बिलकुल स्वतंत्र हूं। यह किताब मेरी प्रिय है।

''सायकोएनेलिसिस एंड अनकांशस'' मेरी सर्वाधिक प्रिय और मनपसंद किताबों में एक रही है। और रहेगी। हालांकि अब मैंने पढ़ना बंद कर दिया है लेकिन अगर मैं फिर से पढ़ने लगुंगा तो यह पहली किताब होगी जिसे मैं पढूंगा। न वेद, न बाईबिल लेकिन ''सायकोएनेलिसिस एंड अनकांशस'' और पता है, यह किताब मनोविश्लेषण के खिलाफ है। डी. एच. लॉरेन्स एक क्रांतिकारी था। सिग्मडं फ्रायड तो मध्यवर्गीय था।

ओशो

बुक्स आय हेव लव्ड

25/ लल्लावाख—(लल्ला)

लल्लावाख -(लल्ला की वाणी)

Lalla-Vakyani

योग मार्ग स्त्री-पुरूष, दोनों के लिए समान रूप से उपल्बध है। लेकिन न जाने क्यों स्त्रियां उस मार्ग पर बहुत कम चलीं। और जो चलीं भी, उनमें पहुंचने वाली अत्यंत कम है। कश्मीरी रहस्यदर्शी स्त्री लल्ला ऐसी अद्वितीय स्त्रियों में से एक है। वह योगिनी थी इसलिए उसे नाम मिला, लल्ला योगेश्वरी।

लल्ला की एक और अद्वितीयता यह थी कि वह आजीवन नग्न रही। शायद विश्व में एक मात्र स्त्री होगी जो निर्वस्त्र होकर बीच बाजार रही। पुरूष भी इतनी हिम्मत नहीं कर पाते जो आज से सात सौ साल पहले एक भारतीय स्त्री ने की। स्त्रियों के लिए अपनी देह के पार जाना लगभग असंभव है। एक लल्ला ही अनोखी थी जो विदेही अवस्था में मुक्त मन से विचरती रही। इसलिए कश्मीरी लोग कहते थे, ''हम दो ही नाम जानते है; एक अल्लाह और दूसरा लल्ला।''

चौदहवीं सदी का कश्मीर आज के कश्मीर से बिलकुल अलग था। उस समय हिंदू शासन था। और शिव की उपासना खूब चलती थी। मुसलमान राज की शुरूआत होने के करीब थी। श्रीनगर से नौ-दस किलोमीटर दूर, रसमपूर गांव में, एक शैव ब्राह्मण के घर लल्ला का जन्म हुआ। लड़की बहुत बुद्धिमान थी इसलिए उसने बचपन से ही गीता, वेद, उपनिषद कंठहस्त किये। अपनी पढ़ाई के बारे में लल्ला लिखती है:

''परान-परान ज्यब ताल फजिम''

पढ़ते-पढ़त जीभ और तालू घिस गये।

चुकीं उन दिनों बालविवाह का चलन था, लल्ला का विवाह भी छोटी उम्र में हुआ। उस समय उनका नाम पद्मावती था। सास सौतेली थी। सो उसने और लल्ला के पति ने मिलकर लल्ला पर बेहद अत्याचार किये। वे अत्याचार लल्ला ने अपूर्व धैर्य के साथ सहे। लेकिन उससे वह पागल सी हो गई। और वहीं स्थिति उसकी आत्म खोज का कारण बनी।

लल्ला स्वयं के विषय में लिखती है:

''सम्सारस आयस तपसैइ,

ब्वद्धि प्रकाश लोबुम सहज़।''

''मैं संसार में तपस्विनी की तरह आई और बुद्धि के प्रकाश से मैंने सहज को पा लिया।''

योग साधना करते-करते लल्ला ने सिद्धि पा ली। उसकी वजह थी उसकी पूर्व जन्म तपस्या।

लल्ला के गीतों में चंद्रमा का प्रतीक कई बार आता है। चंद्रमा को वह ''शशि कला'' कहती है। लल्ला का स्त्री हृदय खोज भी करता है तो कसी दूर गगन में बसे हुए परमात्मा की नहीं अपने अंतस में बैठे चंद्रमा की।

''अँद्रिय आयस् च़न्द्रॅरूय गारान्''

अंतर्मन में चन्द्रमा की खोज करते-करते मैं बाहर आई।''

यही लल्ला की अद्वितीयता है। आम तौर पर स्त्रियां गहने, कपड़े, साज-सिंगार, परिवार या ज्यादा से ज्यादा प्रेम को खोजती है; लेकिन लल्ला की खोज ही आलोकिक थी।

लल्ला जो जन्म से पद्मावती थी, लल्ला कैसे हुई? उसकी कहानी इस तरह है:

कश्मीरी भाषा में लल्ला याने पेट का मांस। कहानी है कि वह नंग-धडंग घूमती थी। कुछ लोगों ने उससे कहा, ''एक स्त्री इस तरह घूमे यह अच्छा नहीं लगता। कम से कम पेट के नीचे के अंग तो ढाँक ले।'' उस पर

लल्ला ने पेट का मांस खींचकर अपने गुप्त अंग ढांके और बालों से छाती को छुपा लिया।'' इससे उसका नाम लल्ला पडा।

जैसे संतों के संबंध में जन मानस में कहानियां तैरती रहती है। वैसे लल्ला के संबंध में भी कई कहानियां है। वह उन्मणी दशा में गांव-गांव घूमती रहती थी। बच्चें उसे चिड़ाते हुए उसके पीछे-पीछे भागते। वे उसे पागल ही समझते। एक गांव में एक कपड़े का दुकानदार उसका भक्त था। उसने जब लड़कों को उसे चिढ़ाते हुए देखा तो उन्हें बुलाकर खूब डांट लगाई।

लल्ला उसके पास गई और एक कपड़ा मांगा। दुकानदार ने फौरन एक कपड़ा पेश किया। लल्ला ने उसके दो समान टुकडे कर एक बाँय कंधे पर डाला और एक दाँय कंधे पर। फिर वह बाजार में घूमने लगी। रास्ते में कोई उसे गाली देता, कोई उसे नमस्कार करता। जैसे ही कोई गाली देता वह दाँय कंधे के कपड़े पर एक गांठ लगाती। और जब कोई नमस्कार करता तो वह बाएं कंधे के कपड़े पर गांठ लगाती। शाम होते-होते तक वह लौटकर उस दूकानदार के पास गई और उसे दोनों कपड़ों का वज़न करने को कहा। दोनों बराबर थे। तब लल्ला ने उसे समझाया देख आज मुझे जितनी गाली मिली उतना ही सम्मान मिला है। तो क्या फिक्र करनी। कोई पत्थर फेंके या फूल, हिसाब बराबर है।''

लल्ला कश्मीरी साहित्य की पहली कवयित्री है। उन्होंने संस्कृत जैसी प्रतिष्ठित भाषा को त्यज कर आम लोगों की कश्मीरी भाषा में अपनी अभिव्यक्ति के लिए अपनाया।

कश्मीरी साहित्य के समीक्षक शम्भुनाथ भट्ट ''हलीम'' उसके बारे में लिखते है, ''लल्लेश्वरी की वाणी को लोगों ने इतना पसंद किया कि वह आज तक कश्मीर के हर पढ़े-लिखे और अनपढ़ की जबान पर है। काश्मीर के खेतों में काम करने वाला किसान हो या बोझ ढोने वाला मजदूर, बेलबूटे काढ़ने वाला कारीगर हो या नाव खेने वाला मांझी, सभी में लल्लेश्वरी का कोई न कोई बाख स्वर में गाने की चाह मौजूद है। कश्मीर की संगीत सभाओं का आरंभ लल्ला–वाक्य से किया जाता है। लल्ला-वाक्य कश्मीरी भाषा में मुहावरे और सूक्तियां बने है।

लल्ला के पार्थिव शरीर का अंत कब और कैसे हुआ? इसके गिर्द फिर एक बार अफ़वाहों की धुंध है। हिंदू कहते है, वह आग की लपट बन गई, और मुसलमान कहते है उसे बिजबिहाड़ा मस्जिद के पास दफनाया गया। जो भी हो, कश्मीर के हिंदू और मुसलमान दोनों ही एक दिल से उसके मुरीद है।

काश, कश्मीर के आज के खौफ़नाक दौर में , एक दूसरे के दुश्मन बने हुए वहां बसने वाले लोग लल्ला को याद करें। और उसके साथ उन दिनों को, जब उनका भाईचारा मजहब की हदों को पार कर अनहद में बिसराम कर सकता था। लल्ला की ममतामयी याद कश्मीर के ज़ख़्मों पर मरहम लगा सकती है।

लल्ला—बाख

1– कश्मीरी—

अमि पॅन सोदरस नावि छ्यस लमान।

कति बेजि दय म्योन म्य ति दिये तार।।

आम्यन टाक्यन पौज ज़न शमान,

जुब छुम भ्रमान घरॅ गछॅ हाँ।।

अनुवाद—सागर में कच्चे धागे से मैं नैया खींच रही हूं। काश, दई (ईश्वर) मेरी सुने और मुझे पार लगा दे। मेरी दशा उस कच्चे मिट्टी के बर्तन की सी है जो सदा पानी चूसता रहता है। मेरा जी कर रहा है अपने घर चली जाऊं।

2– कंधों पर पताशो की गठरी है, उसकी रस्सी ढीली पड़ गई। बोझ ढोकर देह कमान जैसी झुक गई। गुरु शिक्षा की ऐसी कड़ी चोट लगी कि जो कुछ था, सब खो गया। मेरी स्थिति ऐसी है कि भेड़ें गडरिया के बगैर रह गइ।

3– पाँच, दस और ग्यारह को क्या करूं? ये सब मेरी हँड़िया खाली कर गये। अगर ये सब रस्सियों को खींचते तो गाय को खो नहीं बैठते। एक गाय के ग्यारह मालिक उसे अपनी-अपनी और खींचते है तो फिर गाय कहीं की नहीं रहती।

(नोट—यह बाख एक प्रतीक रूप है। पाँच तत्व, दस इंद्रियाँ और ग्यारहवां मन—ये सब मिल कर व्यक्ति को सब दिशाओं में खिंचते है। और उसे आत्मा से, अपने केंद्र से अलग करते हे।)

4– दिल के बाग़ से कचरा दूर कर। तब कहीं फूलों का गुलशन खिलेगा। मरने के बाद तुझसे पूछा जायेगा कि तू ने उम्र भर क्या हासिल किया। मौत तहसीलदार की तरह तेरे पीछे पड़ी है।

5– गुरु ने मुझसे एक ही वचन कहा: ''बाहर से भीतर की तरफ जा।'' यही वचन लल्ली को राह दिखाता रहा। तभी से मैं नग्न होकर नाचने लगी।

6– एक गाफिल, तेज कदम बढ़ा। अभी सवेरा है, अपने यार की तलाश कर। पर पैदा कर, तुझे परवाज़ बनना है। अभी भी वक्त है, अपने याद को ढूंढ ले।

7– देह के मकान के सारे द्वार-झरोखे मैंने बंद कर लिए। और प्राण चोर को पकड़कर उसके भागने के सब रास्ते बंद कर दिये। फिर ह्रदय कोठरी में उसे बांधा और ओम् के चाबुक से खूब पीटा।

8– चित के घोड़े को लगाम लगाई। दस नाड़ियों पर नियंत्रण कर श्वासोश्वास को बाँध लिया। तब कहीं शशि कला पिघली और मेरे शरीर में उतर आई। और शून्य में शून्य मिल गया।

9– चित-तुरंग पूरे गगन में भ्रमण करता है। एक निमिष में लाखों योजन पार करता है। जिसने बुद्धि और विवेक की लगाम से इसे थामना सीख लिया उसी के प्राण-अपान वायु नियंत्रित हो जाते है।

10– शिशिर में (छत से चूने वाली) बूँदों को कौन रौंक सकता है? हवा को मुट्ठी में कौन पकड़ सकता है? जो पाँच इंद्रियों को समेट कर उन्हें कूट कर रखे, वही हवा को मुट्ठी में समेट सकता है।

11- मैं एक थी और अनेक हो गई। नजदीक थी और दूर जा पड़ी। भीतर और बाहर उसी शिव को देखा। चौवन चोर (इंद्रियाँ, विषय, मन, बुद्धि इत्यादि) मेरा सब कुछ चुराकर ले गये।

12– हर क्षण मन को ओंकार का पाठ कराया। स्वयं ही पढ़ती रही, स्वयं ही सुनती रही। ''सो हम् पद में मैंने अहं को समाप्त किया तब मैं ''लल्ला'' प्रकाश स्थान तक पहुंची।

ओशो का नजरिया:

काश्मीर के लोग लल्ला से इस कदर प्रेम करते है कि वे आदर वश कहते है, ''हम दो ही शब्द जानते है, एक अल्लाह और दूसरा लल्ला।''

कश्मीर में निन्यानवे प्रतिशत मुसलमान है। फिर भी वे अल्लाह के साथ लल्ला को जोड़ते है। यह महत्वपूर्ण है।

लल्ला ने कभी किताब नहीं लिखी। वह इतनी हिम्मतवर थी कि जीवन भर निर्वस्त्र रही। और ध्यान रहे, यह सैंकड़ों साल पुरानी बात है। और पूरब में घटी हे। लल्ला सुंदर स्त्री थी। कश्मीरी सुंदर होते है। भारत में वही जाति वास्तविक सुंदर होती है।

लल्ला बहुत सुंदर थी। वह नाचती और गाती थी। उसके कुछ गीत बचाये गये है। उन्हें मैं अपनी मनपसंद किताबों में शामिल करता हूं।

मुसलमान लोग किसी को अपनी औरतों का चेहरा भी नहीं देखने देते। तुम मुसलमान औरतों की सिर्फ आंखे ही देख सकते हो, और कुछ भी नहीं। लेकिन वे अल्लाह के बराबर लल्ला की इबादत करते है। इस स्त्री ने पूरे कश्मीर को प्रभावित किया होगा। मैंने पूरे कश्मीर में यात्रा की है और मैंने बार-बार ये दो नाम एक साथ दोहराएं देखा है: अल्लाह और लल्ला।

वह एक महान सदगुरू थी। उसके कई शिष्य थे। उसका बहुत बड़ा गुण था जो मुझे बेहद पसंद है: वह किसी भी संगठित धर्म में शामिल नहीं हुई। वह स्वतंत्र सदगुरू थी। फिर भी अन्य धर्मों के लोग उसे मानते थे—माने बगैर नहीं रह सकते थे।

ओशो

दि स्वार्ड एंड दि लोटस

26/ सरमद :यहूदी संत-(सरमद)

सरमद : भारत का यहूदी संत

(सरमद का कत्ल कर दिया गया मुगल बादशाह औरंगज़ेब के हुक्म से। उसने मुल्लाओं के साथ साजिश की थी। लेकिन सरमद हंसता रहा। उसने कहा, मरने के बाद भी मैं यहीं कहूंगा। दिल्ली की विशाल जामा मस्जिद, जहां सरमद का कत्ल हुआ, इस महान व्यक्ति की समृति लिये खड़ी है। बड़ी बेरहमी से, अमानवीय तरीके से उसका कत्ल हुआ। उसका कटा हुआ सर मस्जिद की सीढ़ियों पर लुढकता हुआ चिल्ला रहा था: ''ला इलाही इल अल्लाह।'' वहां खड़े हजारों लोग इस वाकये को देख रहे थे।

दिल्ली की मशहूर जामा मस्जिद से कुछ ही दूर, बल्कि बहुत करीब, एक मज़ार है जिस पर हजारों मुरीद फूल चढ़ाते, चादर उढ़ाने आते है। इत्र की बोतलों और लोबान की खुशबू से महक उठता है उसका परिवेश। वह मज़ार है हज़रत सईद सरमद की।

आज वे हज़रत कहलाते है लेकिन जब तक जिस्म ओढ़े थे तब तक वह एक नंगा फकीर था। सच पुछें तो मुगल बादशाह औरंगज़ेब की निगाहों में फकीर कम, काफ़िर ज्यादा। सरमद एक यहूदी सौदागर था, जो सत्रहवीं सदी में पैदा हुआ—शायद पैलेस्टाइन में। वह आर्मेनिया, पर्शिया और हिन्दुस्तान के बीच बगीचों और मेवों का व्यापार करता था। हिंदुस्तान में सोने-चाँदी के बर्तन, पीतल और तांबे की चीजों की खरीद-फरोख्त करता था। उस वक्त हिंदुस्तान की हर तरह की कारीगरी में बड़ी साख थी।व्यापार के सिलसिले में सरमद हिंदुस्तान आया और घूमते-घूमते बिहार पहुंचा। वहां उसे एक पहुंचे हुए पीर का दीदार हुआ। उसके नूर से सरमद इतना चुंधिया गया कि उसके होश और हवास खो गये। उसने सोचा, अगर खुदा की बनायी हुई मिट्टी में ऐसा नूर है तो वह खुदा कैसा नूरानी होगा।

एक आग सी लगी सरमद के तन-बदन में, और वह बदहवास सा, खुदा की खोज में पूरे मुल्क के कोने-कोने में घूमने लगा। न जाने कितनी गुफाओं और मठो, साधु संतो, तीर्थ, कितने वेद उपनिषद छान मारे। सभी धर्मों और पंथों के दर पर गया। हवाओं और पेड़-पौधों में, झरनों और पहाड़ों में उसकी खुशबु सूंधने कौशिश की लेकिन उसकी रूह की तल्खी कम न हुई। आखिर उत्तर प्रदेश के गाज़ीपुर शहर में उसे संत भीखा मिले। भीखा क्या मिले, प्यासे को पानी मिल गया। उसे पानी आकंठ पी गया सरमद और उसकी सारी खोज को अंजाम दे दिया।

संत भीखा, गुलाल साहब के शिष्य थे और गृहस्थ जीवन जीते थे। सिर से पैर तक भीगा हुआ सरमद भीखा पर कुरबान हो गया। सारा आना-जाना समाप्त हुआ। इससे पहले ऐयाशी की जिंदगी जी रहे सरमद ने अब फकिराना गिरेबान पहन लिया। अब उसे भीखा के सिवाय कुछ सूझता ही नहीं था। ऐसा क्या जादू किया भीखा ने?

भीखा ने एक ही करिश्मा किया: सरमद का रूख बाहर से भीतर की और मोड़ दिया। बहुत घूम लिये बाजारों और जंगलों में, अब भीतर ठहर जाओं। अपने जिस्म में ही काबा और काशी है, उसे ढूंढो। और सरमद ने वाकई उसे ढूंढ लिया।

दिल्ली में दो मुगल बादशाहों की सल्तनत के दौरों से सरमद गुजरा: शाहजहां और उसका बेटा औरंगज़ेब। शाहजहां ने उसे बहुत इज्जत बख्शी और औरंगज़ेब ने मौत। शाहजहां सरमद के औलियापन और उसकी गहरी समझ का बड़ा कायल था। उसने अपने बेटे दारा शिकोह को सरमद के पास तालीम लेने के लिए भेजा। सरमद ने गीता और उपनिषाद की गहराइयों मैं दारा को डुबो दिया। दारा सरमद से इतना अभिभूत था

कि उसके दिन और रातें भी सरमद के पास गुजरने लगीं। सरमद दारा से इतना खुश था कि उसने कहा, ''तुझे एक दिन जन्नत में बड़ा सिंहासन मिलेगा।'' शाहजहां के दरबार में सरमद का आना-जाना रहता था। और किस्मत से अचानक करवट ली। शाहजहां के तीसरे बेटे औरंगज़ेब ने उसे कैद कर दिया। उसने एक के बाद एक अपने भाईयों और भतीजों का कत्ल करना शुरू कर दिया। उनमें दारा का नंबर सबसे पहला था क्योंकि वह सबसे बड़ा बेटा था। इसलिए तख्त पर बैठने का हक रखता था।

पूरी सियासत के तेवर बदल गये, और उसके साथ सरमद के भी। औरंगज़ेब सरमद को अपने रास्ते का कांटा मानता था। उस वक्त सरमद के मुरीद बहुत बढ़ गये थे। वह सदा लोगों की भीड़ से धीरा रहता। वह लोगों को समझाता, झकझोरता। वह बात तो साधारण आदमी से करता और मुल्ला-मौलवियों की मस्जिद के गुंबद कांप उठते। वह कहता, ''मत जाओ काबा काशी। वहां अंधकार है। और कुछ भी नहीं। मेरे गुलशन में आओं, तब तुम्हें रोशनी को देख पाओंगे। अच्छी तरह से देखो। आशिको, फूल और कांटा एक ही है।''

पहले तो लोग सरमद को पागल समझते थे। इतना पढ़ा-लिखा, अकलमंद आदमी और इस कदर बेहाल रहता है। लोग समझ नहीं पाते। लेकिन सरमद को इलहाम हुआ और पूरी बात ही बदल गई। वह खुद को सम्राटों को सम्राट करने लगा।

मुसलमान उसे बुतपरस्त कहते क्योंकि वह गुरु की तस्वीर के आगे झुकता था। सरमद बेहद बेबाक था। वह मौलवी से कहता।

''तुम्हारे जैसा लंबा चोगा नहीं ओढ़ा है ऐ मुलला,
क्योंकि मेरी रूह तुम्हारे जैसी नंगी नहीं है दोस्त
मैं शहनशाहों का शहनशाह हूं,
सारे जज़्बात, आरमान कलाओं की कद्र,
खयालों के तूफान—मेरे है
लेकिन मैं उनमें परेशां नहीं हूं
मैं बुतपरस्त हूं, बेशक
काफिर, ईमानदार झुंड में से नहीं
लेकिन मैं एक ही बुत को मानता हूं–
मेरे मुर्शिद के.....

दिल्ली के मौलवी सरमद से किसी तरह छुटकारा पाना चाहते थे। लेकिन उन दिनों सरमद का जादू दिल्ली के लोगों पर तारी था। उसे कुछ हो जाता तो बवाल खड़ा हो सकता था। लोगों में यक अफवाह जड़ जमा चुकी थी कि सरमद दारा को एक सिंहासन देना चाहता था। औरंगज़ेब ने सरमद को बुलवा कर इस बारे में सफाई पेश करने के लिए कहा।

सरमद ने बताया कि वह किसी मिट्टी के सिंहसन की बात नहीं कर रहा था, वह तो स्वर्ग के सिंहासन की और इशारा कर रहा था। जब औरंगज़ेब को भरोसा न हुआ तो सरमद ने उसे कहा, ''आंखे बंद करो और खुद देख लो।''

औरंगज़ेब ने आंखे बंद कीं तो उसे यह नज़ारा दिखाई दिया कि दारा स्वर्ग में एक सिंहासन पर बैठा है। और औरंगज़ेब उसके सामने एक भिखारी की तरह खड़ा है। यह देखकर औरंगज़ेब आगबबूला हुआ। और तबसे सरमद उसकी आंखो की किरकिरी हो गया। उसे दहशत पैदा हुई कि यह नज़ारा सरमद कहीं और लोगों को न दिखाये।

दिल्ली के मुल्ला और मौलवी बुरी तरह सरमद को खत्म करना चाहते थे। वे आये दिन औरंगज़ेब के पास उसकी शिकायते लेकर जाते। लेकिन एक भी शिकायत औरंगज़ेब को सरमद को मारने के लायक न लगी। जामा मस्जिद में सरमद अक्सर बैठा रहता था। या कभी उसकी लंबी-चौड़ी सीढ़ियों पर नंगा पडा रहता। औरंगज़ेब जुम्मे के जुम्मे।

(हर शुक्रवार) मस्जिद में नमाज पढ़ने जाता था। एक दिन मुल्लाओं ने साजिश कर मस्जिद की उस बाजू में बादशाह का रथ रूकवाया जहां सिढ़ियों पर सरमद नंगा पडा हुआ था।

सीढ़ियां चढ़ते हुए बादशाह रूका और उसने पूछा, ''सरमद तुम इतने विद्वान और समझदार हो, इतने सारे लोग तुम्हारे पीछे दीवाने है, तुम नंगे क्यों रहते हो? कम से कम तुम्हारे पैरों तले पडा हुआ कंबल ही ओढ़ लेते। तुम ठीक से कपड़े क्यों नहीं पहनते?

सरमद ने कहा, ''अगर आपको इतनी ही फ्रिक है तो आप ही कंबल क्यों नहीं उढ़ा देते?''

जैसे ही औरंगज़ेब ने कंबल उठाया, उसे कंबल में उसके भाइयों और भतीजों के खून से लथपथ सिर दिखाई दिये। सरमद ने औरंगज़ेब से पूछा, ''बादशाह सलामत, ये कंबल में अपने बदन के नंगेपन को ढ़ांकने के लिए इस्तेमाल करूं या आपकी नीयत और ईमान के नंगेपन को छुपाने के लिए?

औरंगज़ेब सर से पेर तक कांप गयो। सरमद की रूबाइयों में यक वाक्यां दर्ज किया गया है।

जिसने ताज का मुर्दा वज़न और सियासत
की फिक्र तुम्हारे नापाक सिर रखी
उसी ने मुझे गरीबी की अमीरी दी
मैंने खुद चुनी है दौलत की सारी
परेशानियों से महरूम
नापाक बंदों से उसने कहा, ''अपनी शर्म
को कपड़ों की कई पर्तों में छुपाओं।''
लेकिन जो पाक रूह है उन्हें उसने बच्चों
की खूबसूरत पोशाक बख्शी
मासूमियत और नंगापन

सरमद के सभी मुरीदों और दार्शनिकों के लिए यह पहेली थी कि वह नंगा क्यों रहा। सरमद का एक ही जवाब था, ''मेरे गुरु का हुक्म है।'' दिल्ली के लाल किले में उस दिन लोगों का समुंदर लहरा रहा था। सरमद, जो कि हजारों लाखों के लिए अल्लाह का पैगंबर था उसे काफिर करार दे दिया गया था। और उसका कुफ्र क्या था?

दिल्ली के प्रधान काजी के मुताबिक सरमद का कुफ्र था: दिल्ली की सड़कों पर ''अनलहक, अनलहक... चिल्लाते हुए गुजरना। यह कुरान की बेइज्जती थी क्योंकि कुरान में लिखा है कि बस एक ही अल्लाह है। और इस नंगे फकीर की जुर्रत कि अपने आपको सरेआम अल्लाह कहता फिरे?

तख़्तनशीन औरंगज़ेब ने सरमद से पूछा, ''तुम्हें अपने बचाव में कुछ कहना है?''

सरमद ने कहा, ''कुछ नहीं, यह सच है।''

फौरन औरंगज़ेब ने हुक्म दिया कि सरमद का सिर कलम कर दिया जाये। बाहर खड़ी भीड़ पर तो जैसे गाज गिर गई। सरमद उनका सब कुछ था, मां-बाप, गुरु, दोस्त, तारनहार। उनकी आंखों के आगे अँधेरा छा गया। धीरे-धीरे उनका दुःख गुस्से में और बगावत में बदल गया। लोग बेकाबू हो रहे थे। और बगावत करने को

बेताब थे। औरंगज़ेब ने दिल्ली की सड़कों पर सेना को बुलाया और दिल्ली के गली-कूचों में फैला दिया ताकि लोगों में दहशत फैल जाये। और दूसरे दिन जामा मस्जिद के पास सरमद के सिर कलम करने की तैयारियाँ कीं।

लेकिन सरमद की मस्ती उन आखिरी घड़ियों में भी उतनी ही थी। अपना सर काटने के लिए करीब आते हुए जल्लाद को देखकर वह बोल उठा, ''या खुदा, आज तू मेरे पास इस शक्ल में आया है।''

जब उसका सर काटा गया तो उसके खून का कतरा-कतरा बोल उठा, ''अनलहक़, अनलहक़...।''

उसके बाद जो हुआ वह चमत्कार था। सरमद के धड़ ने अपने टूटे हुए सिर उठाया और ''अनलहक़'' पुकारता हुआ जामा मस्जिद की सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ चला गया। लोग एक बरगी स्तब्ध रह गये और फिर चीखने-चिल्लाने जयकार करने लगे। तब सरमद का गुरु सूक्ष्म शरीर में प्रगट हुआ और उसने कहा, ''इस शरीर में तुझे जो करना था वह तूने कर लिया, अब कुदरत को अपना काम करने दे।''

तत्क्षण सरमद का शरीर गिर पडा।

सरमद का सिर क्यों कलम किया गया इस पर उसकी जीवनी लिखने वालों में मतभेद है। एक मत के अनुसार सरमद गति कलमा पढ़ता था इसलिए उसे सज़ा-ए-मौत दी गई। ''ला इलाह इल तल्लाह'' की जगह वह सिर्फ ''ला इलाह'' कहता था, जिसका मतलब होता है कोई खुदा नहीं है। लेकिन सवाल यह है कि सरमद मुसलमान नहीं था, यहूदी था। फिर उस पर कुरान की तौहीन करने का इल्जाम कैसे लगाया जा सकता है? इसका जवाब कोई नहीं दे सकता।

औरंगज़ेब 1658 में तख़्तनशीन हुआ और उसने 1659 में सरमद का कांटा हटा दिया। सरमद को मारकर उसे तसल्ली नहीं हुई। उसने सरमद की सारी रूबाइयात जला दी। किसी तरह 321 रूबाइयां औरंगज़ेब के चंगुल से बच गई।

सरमद को किसी तरह अपनी मौत का अंदेशा हो गया था। उसने लिखा है:

एक अरसा हो गया
मंसूर को दुनिया को अपना पैग़ाम दिये हुए
और उसका पाक असर मद्धिम हो रहा है
और तेरी मदद से उसे फिर से बुलंद करना है–
जल्लाद की कसी हुई रस्सी और लकड़ी के खंभे–
अल्लाह के बंदों को मौत ज्यादा बड़ी जिंदगी देती है।

सरमद का यह अंदेशा हकीकत में बदल गया। कहते है कि सरमद की कत्ल से पूरी दिल्ली इस कदर थर्रा गई कि औरंगज़ेब को शहर में फैली हुई सेना को हटाने में महीनों लग गए।

ओशो का नजरिया:

आज जिसका बात करने जा रहा हूं वह उन अनोखे लोगों में से है जो इस पृथ्वी पर चले है। उसका नाम है सरमद। वह सूफी था और एक मुसलमान राजा के हुक्म से मस्जिद में उसका कत्ल किया गया।

वह इसलिए मारा गया क्योंकि एक मुस्लिम कलमा है: अल्लाह ही एक मात्र परमात्मा है। और वह उसके लिए काफी नहीं है। वह कुछ और चाहते है। वे दुनिया में घोषित करना चाहते है कि सिर्फ मोहम्मद ही अल्लाह के पैगंबर है। ईश्वर ही ईश्वर है। और मोहम्मद अकेले पैगंबर है।

सूफी इस कलमा के दूसरे हिस्से को कबूल नहीं करते। सरमद का कुफ्र यही था। स्वभावत: कोई भी अकेला पैगंबर नहीं हो सकता। कोई भी आदमी—फिर से जीसस हो या मोहम्मद या मोज़ेज या बुद्ध, एकमात्र नहीं हो सकता।

सरमद का कत्ल कर दिया गया मुगल बादशाह के हुक्म से। उसने मुल्लाओं के साथ साजिश की थी। लेकिन सरमद हंसता रहा। उसने कहा, मरने के बाद भी मैं यही कहूंगा।

दिल्ली की विशाल जामा मस्जिद, जहां सरमद का कत्ल किया गया। इस महान व्यक्ति की स्मृति लिये खड़ी है। बड़ी बेरहमी से, अमानवीय तरीके से उसका कत्ल हुआ। उसका कटा हुआ सिर मस्जिद की सीढ़ियों पर लुढ़कता हुआ चिल्ला रहा था: ''ला इल्लाही इल अल्लाहा।'' वहां खड़े हजारों लोग इस वाक्य को देख रहे थे।

मुझे पता नहीं यह कहानी सत्य है कि नहीं, लेकिन होनी चाहिए। सत्य को भी सरमद जैसे व्यक्ति के साथ समझौता करना पड़ेगा। मैं सरमद से प्रेम करता हूं। उसने कोई किताब नहीं लिखी लेकिन उसके वचन है: ''अल्लाह ही अकेला अल्लाह है, और कोई पैगंबर नहीं है। तुम्हारे और अल्लाह के बीच कोई मध्यस्थ नहीं है। अल्लाह सीधा उपलब्ध है।'' बस, जरूरत है तो थोड़ी सी दीवानगी की और बहुत से ध्यान की।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

27/ दीवान-ए-गालिब-(गालिब)

दीवान-ए-गालिब-(असदल्ला खां ग़ालिब)

Deewan-E-Galib-(Mirza Galib)

कल हमने दिल्ली के ही एक सूफी फकीर सरमद की बात की थी आज भी दिल्ली की गलियों में जमा मस्जिद से थोड़ा अंदर की तरफ़ कुच करेंगें बल्लिमारन। जहां, महान सूफी शायद मिर्जा गालिब के मुशायरे में चंद देर रूकेंगे। बल्लिमारन के मोहल्ले की वो पेचीदा दरीरों की सी गलियाँ...सामने टाल के नुक्कड पर बटेरों के क़सीदे...गुड़गुड़ाती हुई पान की पीकों में वो दाद, वो वाह, वाह....चंद दरवाज़ों पे लटके हुए बोसीदा से कूद टाट के परदे...एक बकरी के मिमियाने की आवाज....ओर धुँधलाती हुई शाम के बेनूर अंधेर ऐसे दीवारों से मुंह जोड़कर चलते है यहां, चूड़ी वाला के कटरे की बड़ी बी जैसे अपनी बुझती हुई आंखों से दरवाजे टटोलते। आज जो गली इतनी बेनुर लग रही है। जब मैं पहली बार उस घर में पहुंचा तो कुछ क्षण तो उसे अटक निहारता ही रह गया।

असल में वहां अब जूते का कारखाना था। शरीफ़ मिया ने मुझे उस घर में भेजा जहां इस सदी का महान शायद मिर्जा गालिब की हवेली थी। समय ने क्या से क्या कर दिया। खेर सरकार ने बाद में उस हवेली का दर्द सूना और आज उसे मिर्जा जी की याद में संग्रहालय बना दिया। वो बेनूर अंधेरी सी गली, आज भी बेनुर लग रही है। जिसके रोंए-रेशे में कभी काफ़ी महकती थी। अब उदास और बूढ़ी हो कर झड़ गई है। अब उन पैबंद को कौन गांठ बांधेगा।एक सिसकती सी अहा खड़ी रह गई है। एक छुपे हुए दर्द की लकीर जो छूने से पहले ही कांप जाती है। कासिम से एक तरतीब चिराग़ों की शुरू होती है, एक पुराने सुखन का सफ़ा खुलता है, असदुल्लाह खां ग़ालिब का पता देखता और कुछ कहता सा दिखता है।

पुरानी दिल्ली की गलियों में कैमरा का पीछा करती हुई वह आवाज दो सौ साल बाद फिर कुछ कहती है। ये आवाज गुलजार जी की थी। जो टी वी सीरियल ग़ालिब बना रहे थे। जब ओशो ने सुना कि गालिब के जीवन को दूरदर्शन पर धाराप्रवाह दिखाया जा रहा है। और ग़ालिब को पुनरुज्जीवित करने का काम गुलज़ार साहब कर रहे है। ओशो ने इस फिल्म के वीडियो कैसेट मंगवा कर देखने की इच्छा जाहिर की। सन था 1989 दो दफा ओशो का संदेशा गुलजार के पास पहुंचा। गुलजार ने सोचा, अभी नहीं जब फिल्म पूरी हो जायेगी तो सारे कैसेट एक पहुंचा दिये जायेगे। तीसरी बार जो खबर आई वह यह नहीं थी कि ओशो गालिब के वीडियो देखना चाहते है। वह यह थी कि देखने वाला विदा हो चुका है। गुलजार साहब के कलेजे में आज तक कसक है—काश, मैं समय रहते ओशो को वीडियो कैसेट भेज देता।

कैसे होंगे वे मिर्जा गालिब जिनके ओशो इतने दिवाने थे। आज दो सौ साल बाद भी गालिब के शेर गली कूचों में गूंज रहे है। 27 दिसंबर 1797 को आगरा में पैदा हुए असदुल्लाह खां गालिब का कर्ज और दर्द से टूटा हुआ जिस्म 72 साल तक जिंदगी को ढोता रहा। इन दोनों ने उनका पीछा आखिरी दम तक नहीं छोड़ा। लेकिन उनकी हर आह अशअर बनकर उनकी क़लम से झरती रही, दुनिया को रिझाती रही।

ग़ालिब से पहले उर्दू शायरी गुल-बुलबुल और हुस्न-औ-इश्क की चिकनी-चुपड़ी बातें हुआ करती थी। उन्हें वे ''गजल की तंग गली'' कहा करते थे। ग़ालिब के पुख्ता शेर उस गली से नहीं निकल सकते थे। उसकी शायरी में जिंदगी की हकीकत मस्ती और गहराई से उजागर होती थी। इसलिए वे जिस मुशायरे में जाते, उसे लूट लेते। भीतर काव्य की असाधारण प्रतिभा लेकिन पैदा हुए ग़ालिब बदकिस्मती अपने हाथ की लकीरों में लिखा कर लाये थे। उनके पास जो भी आया—चाहे बच्चे, चाहे भाई, चाहे दोस्त या बीबी—उनको दफ़नाने का काम ही

ग़ालिब करते रहे। अपनी नायाब शायरी से लाखों लोगों को चैन और सुकून देनेवाले ग़ालिब को न सुकून कभी नसीब हुआ, न चैन। इसीलिए कभी वह तिल मिलाकर कहते है:

मेरी किस्मत में गम गर इतना था

दिल भी या रब, कई दिये होते

कर्ज में वे गले तक डूबे हुए थे लेकिन शराब और जुए का शौक फर्मा ते रहे। अपने हालात को शेरों में ढालकर मानों वे उनके मुक्त हो जोत थे...

कर्ज की पीते थे मैं और समझते थे कि हां

रंग लायेगी हमारी फ़ाकामस्ती एक दिन

कर्ज की शराब पीते थे, लेकिन समझते थे कि एक न एक दिन हमारी गरीबी अच्छे दिन दिखायेगी।

दिल्ली में घना शायराना माहौल था। उसमें ग़ालिब की शायरी पर निखार आता गया। उनकी शोहरत बुलंदियाँ छूती गई। लेकिन आफ़तें पहाड़ की तरह उन पर टूटती गई। दुनियादारी उन्हें कभी न आई। उन पर चढ़े 40-50 हजार रूपए का कर्ज मानो कम था इस करके एक दीवानी मुकदमे में उनके खिलाफ 5 हजार रूपये की डिग्री हो गई। अगर वह घर से बाहर निकलते तो गिरफ्तार किये जाते। सो अपने ही घर में कैद, दिन काटते हुए उन्होंने लिखा–

मुश्किल मुझ पर पड़ी इतनी कि आसा हो गई,

उन्होंने सारी आप बीती अपनी पुस्तक ''दस्तंबो'' में दर्ज की है। जब उनका शरीर भी बीमारियों का घर होने लगा तो उन्होंने लिखा–

मेरे मुहिब (प्रिय मित्र),

मेरे महबूब,

तुमको मेरी खबर भी है?

पहले नातवां (परेशान) था

अब नीम जान (अधमरा) हूं,

आगे बहरा था,

अब अंधा हुआ जाता हूं।

जहां चार सतरें लिखीं,

उंगलियां टेढ़ी हो गई।

हरफ (अक्षर) सजनें से रह गए।

इकहत्तर बरस जिया, बहुत जिया।

अब जिंदगी बरसों की नहीं,

महीनों और दिनों की है।

ग़ालिब ने यह भविष्यवाणी लिखी, उसके बाद वे ज्यादा दिनों तक जी नहीं सके। 18 फरवरी 1869 के दिन, दोपहर ढले मिर्जा ग़ालिब इस जमीन से उठ गए; और छोड़ गए अपना वह कलाम, जो सदियों तक गाया, गुनगुना या जाएगा।

किताब की झलक:

ग़ालिब की शायरी

थी खबर गर्म कि ग़ालिब के उड़ेंगे पुर्ज़े

देखने हम भी गये थे, पै तमाशा न हुआ।

बाग़ मैं मुझको न ले जा, वरना मेरे हाल पर

हर गुले-तर एक चश्मे-खूंफिशां हो जायेगा।

(हर फूल खून के आंसू बरसाती हुई आँख हो जायेगा)

कितने शीरीं है तेरे लब, कि रकीब

गलियाँ ख़ाके बेमजा न हुआ।

(कितने रसपूर्ण है तेरे होंठ, कि गालियां खाकर भी रक़ीब को मजा ही आया। तू गालियां दे रही थी, और वह होंठों को देखता ही रहा।)

न था कुछ तो खुदा था, कुछ न होता तो खुदा होता

डुबोया मुझको होने ने, न होता मैं तो क्या होता

हुआ जब ग़म से यूं बेहिस (स्तब्ध) तो ग़म

क्या सर के कटने का?

न होता गर जुदा तन से तो जानूं (घुटने) पर धरा होता

हुई मुद्दत कि ग़ालिब मर गया पर याद आता है

वो हर इस बात पर कहना, कि यों होता तो क्या होता?

कुछ शेरों में ग़ालिब सूफी फ़क़ीरों जैसी बात कहते है:

इशरने कतरा है दरिया में फना हो जाना

दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना

(दरियाँ में विलीन हो जाना बूंद का ऐश्वर्य है, दर्द जब हद से गुजर जाता है तो दवा बन जाता है)

मेहरबां होके बुला लो मुझे चाहो जिस तरह

मैं गया वक्त नहीं हूं कि आ न सकूँ

गैर फिरता है लिये यों तेरे खत को कि अगर

काई पूछे ये क्या है, तो छि पाए न बने

इस नज़ाकत का बुरा हो, वो भले है तो क्या

हाथ आयें तो उन्हें हाथ लगाये न बने

मौत की राह न देखू कि बिन आए न रहे

तुमको चाहूं कि न आओ, बुलाये न बने

हमको उनसे है वफा की उम्मीद

जो नहीं जानते वफा क्या है

उभरा हुआ नकाब में है उनके एक तार

मरता हूं मैं कि ये न किसी की निगाह हो

जब मै कदा छूटा तो अब क्या जगह की कैद

मस्जिद हो, मदरसा हो, काई खान काह हो

ग़ालिब भी गर न हो तो कुछ ऐसा ज़रर(नुकसान) नहीं

दुनिया हो या रब और मेरा बादशाहों

ओशो का नज़रिया:

मिर्जा ग़ालिब उर्दू के महानतम शायद है। वे न केवल उर्दू के महानतम शायद है, संभवत: विश्व की किसी भी भाषा के शायर से उनकी तुलना नहीं की जा सकती। उनका संग्रह "दीवान" कहलाता है। दीवान का सीधा सा अर्थ है शेरों का संग्रह। उन्हें पढ़ना अत्यंत कठिन है, लेकिन अगर तुम थोड़ा प्रयास कर सको तो बहुत कुछ पाओगे। मानो प्रत्येक पंक्ति में पूरी किताब छुपी हो। और यही हे उर्दू का सौंदर्य इतने छोटे से स्थान में कोई भाषा इतनी विशालता नहीं दर्श सकती। मात्र दो वाक्य पूरी पुस्तक को समा सकते है। यह जादूगरी है। मिर्जा ग़ालिब भाषा का जादूगर है।

ओशो

बुक्स आई हैव लव्ड

कवि:

कभी-कभी बड़ी मधुर बातें कह देते है। होश में नहीं कहते बहुत। होश में कहें तो ऋषि हो जाएं। बेहोशी में कहते है। लेकिन कवि कभी-कभी बेहोशी में भी झलकें पा लेते है। उस परम सत्य की। कवि और ऋषि का यही फर्क है। ऋषि होश में कहता है, कवि बेहोश में कहता है। ऋषि वहां पहुंचकर कहते है। कवियों को वहां की झलक दूर से सपनों में मिलती है। कवि स्वप्न-दृष्टा है, ऋषि सत्य-दृष्टा है।

ये मसाइले तसव्वुफ़ ये तेरा बयान गालिब

तुम हम बलि समझते जो न बादाख्वार होता

ईश्वरीय प्रेम की ये अदभुत बातें , कि वेद ईर्ष्या करें।

ये मसाइले-तसव्वुफ़.....

सूफियाना बातें। ये मस्ती की बातें।

ये तेरा बयान ग़ालिब

और तेरा कहने का यह अनूठा ढंग, कि उपनिषाद शर्मा जाएं।

तुझे हम बलि समझते जो न बादाख्वार होता।

अगर शराब न पीता होता तो लोग तुझे सिद्ध पुरूष समझते। वह तरी भूल हो गई। ये बातें तो ठीक थी, ये बातें बड़ी कीमती थी, जरा शराब की बू थी, बस।

कवि जब होश में आता है तो ऋषि हो जाता है। लेकिन कवियों के वक्तव्य तुम्हारे लिए सहयोगी हो सकते है। क्योंकि ऋषि तो तुमसे बहुत दूर होता है। कवि तुम्हारे और ऋषि के बीच में खड़ा होता है। तुम जैसा बेहोश, लेकिन तुम जैसा स्पप्नरहित नहीं। ऋषियों जैसा होश पूर्ण नहीं, लेकिन ऋषियों ने जो खुली आँख देखा है, उसे वह बंद आँख के सपने में देख लेता है। कवि कड़ी है।

ये मसाईले-तसव्वुफ ये तेरा बयान ग़ालिब

तुम हम वली समझते जो न बादाख्वार होता

इसलिए कभी-कभी ऋषियों को समझने के लिए कवियों की सीढ़ीयों पर चढ़ जाना उपयोगी है। लेकिन वहां रूकना मत। वह ठहरने की जगह नहीं है। गुजर जाना, चढ़ जाना, उपयोग कर लेना।

ओशो

एस धम्मो सनंतनो भाग:3

28/ सायकोसिंथेसिस-(असोजियोली)

ए मैन्युअल ऑफ प्रिंसिपल्स एंड टेकनिक्स—असोजियोली एम. डी.

Psychosynthesis: A manual of principles and techniques -Roberto Assagioli

(यद्यपि असोजियोली बुद्ध पुरूष नहीं है, और वह चेतना की परम स्थिति का वर्णन नहीं करता, तथापि अंतर् याता की समूची प्रक्रिया को वह अत्यंत विधायक दृष्टिकोण से और वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करता है। लगता है कहीं उसका तार ओशो चेतना द्वारा होने वाली आगामी आध्यात्मिक क्रांति से मिला हुआ है। अंत: आश्चर्य नहीं कि ओशो कहते है, मैं चाहूंगा कि मेरे सभी संन्यासी असोजियोली को पढ़े।)

मनोविश्लेषण के क्षेत्र में यह एक ऐसी किताब है जो फ्रायड की मनोवैज्ञानिक सलिला को एक नया मोड़ देती है। मानव मन की अचेतन वृतियां को समझने के लिए सिगमंड फ्रायड ने मन को विश्लेषण कर अवचेतन की बारीक से बारीक तरंग को पकड़ने की कोशिश की है। और इटालियन मनोवैज्ञानिक रॉबर्ट असोजियोली ने उससे ठीक उलटी प्रणाली ईजाद की। विश्लेषण से छिन्न-भिन्न हुए मन के टुकड़ों को समेट कर उसे एक अखंड संपूर्णता प्रदान करने की विधि विकसित की। असोजियोली के इस विज्ञान का नाम है: सायकोसिंथेसिस। इसकी सही अनुवाद होगा: मानसिक संश्लेषण या मन को जोड़ना।

सन 1910 में उसने फ्रायड के मनोविश्लेषण के सिद्धांत पर एक शोध प्रबंध लिखा जिसमें सिर्फ एक परिछेद था ''सायकोसिंथेसिस''। उसके बाद उसने धीरे-धीरे अपने दवाखाने में मानसिक रोगियों के साथ सायकोथैरेपी की अनेक विधियां सम्मिलित की। उसके भीतर मानसिक रोगियों का इलाज करने की एक नई चिकित्सा विकसित हो रही थी। सन 1926 में, रोम में ''इंस्टीट्यूट ऑफ सायकोसिंथेसिस की स्थापना हुई। 1957 में इसकी शाखा अमेरिका में खोली गई। यही नहीं, 1965 में भारत में इसकी शाखा मुरादाबाद शहर में प्राध्यापक अत्रेय ने भी सायकोसिंथेसिस के संस्थान की नींव रखी। विश्व भर में सायकोसिंथेसिस पर अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन होते है।

असोजियोली के लगभग पचास साल के अनुसंधान और अनुभवों को समृद्ध फल है यह किताब। इस चिकित्सा की जननी है सायकोथैरेपी, लेकिन आगे चलकर इसका अपना स्वतंत्र विस्तार हुआ है। 315 पृष्ठों के इस गहन गंभीर ग्रंथ के दो मुख्य हिस्से है: सिद्धांत और प्रयोगात्मक विधियां। प्रारंभ में ही लेखक विनम्रता से स्वीकार करता है कि उससे पहले जेनेट, फ्रायड, युंग कई और मनोवैज्ञानिकों ने इस शब्द का प्रयोग किया है। व्यक्ति के परिपूर्ण और सुरीले विकास को युंग ''सिंथेसिस'' कहता था। बीसवीं सदी की शुरूआत में मनोवैज्ञानिकों का छोटा सा समूह अपने-अपने चिकित्सालयों में मनुष्य के अवचेतन की गुत्थी सुलझाने में मशगूल था। यह छोटा सा निर्झर शीध्र ही विशाल सरिता में बदल गया। उनकी खोजों की बदौलत ''साइकोसोमैटिक औषधियां'', ''धर्म का मनोविज्ञान'', ''सुपरकॉंशस की एकात्मता'' जैसी कई अव धारणाएं'' प्रचलित हुई। अवचेतन(अनकांशस) का जो विशाल अज्ञात प्रदेश था उसके विभिन्न हिस्से कर असोजियोली ने व्यक्तित्व की संकीर्ण भूमि से लेकर सामूहिक अचेतन के महाद्वीप तक का नक्शा बनाया। वह कहता है, आत्म ज्ञान प्राप्त करने के चार चरण है।

1– स्वयं के व्यक्तित्व की गहरी पहचान।

2– उसके विभिन्न पहलुओं पर (जैसे विचार, भाव, ग्रंथियां) नियंत्रण।

3– स्वयं के वास्तविक केंद्र का अनुभव।

4– सायकोसिंथेसिस: इस नये केंद्र के इर्द-गिर्द व्यक्तित्व का निर्माण।

असोजियोली का विशेषता यह है कि स्वयं की खोज करने में वह किसी प्रकार की धार्मिक या आध्यात्मिक शब्दावली का सहारा नहीं लेता। उस भाषा में वि सोचता भी नहीं। ''आध्यात्मिक'' शब्द का प्रयोग भी वह ''सजगता की स्थिति'' के अर्थों में करता है। पूरी अंतर्यात्रा को ही उसने बिलकुल नई भाषा का परिधान देकर एक नई शक्ल और एक अनूठी ताजगी दे दी है। आध्यात्मिक शब्दावली में कुछ ऐसा गुण है कि वह साधक के भीतर एक सधन और महीन आध्यात्मिक अहंकार पैदा करती है। वह सोचता है कि वह सामान्य जनों से कुछ ऊपर है। और मनोवैज्ञानिक भाषा की विशेषता है, मन, के गहन से गहन अनुभवों को डीमिस्टिफाई करना, साधारण बना देना। जबकि असोजियोली का पूरा चिंतन किसी प्रबुद्ध चेतना के चिंतन से कम नहीं है। शायद इसीलिए ओशो, पश्चिम के प्रतिभाशाली मनोचिकित्सकों में उसकी गिनती हमेशा करते है।

असोजियोली के सिद्धांत का सारांश यही है कि मनुष्य के निम्न व्यक्तित्व की जो ख़ामियाँ है उन्हें दूर कर वह अपनी उर्जा का रूपांतरण करे—उस रूपांतरण को ढेर सारी विधियां भी वह देता है। रूपांतरण की आग से गुजरने के बाद वह एक नया सुगठित केंद्र खोजें और उसके अनुरूप एक नया व्यक्तित्व बनाएँ जो कि पूर्णतया विधायक और अध्यात्मिक होगा। मन की इस संशिलष्ट स्थिति को वह सायकोसिंथेसिस कहता है।

चूंकि असोजियोली क्लिनिकल थेरेपिस्ट था, उसके दो तिहाई किताब हर तरह की प्रायोगिक विधियों के प्रयोगों के लिए रख छोड़ी है। कैथार्सिस अर्थात रेचन सबसे महत्वपूर्ण विधि है जिससे अवचेतन में प्रवेश किया जा ता है। यह विधि मनस्विदों को आधारभूत साधन है। असोजियोली शारीरिक (मांसपेशियों में प्रविष्ट तनाव) तथा मानसिक रेचन पर जोर देता था। कल्पना करना, डायरी लिखना, शरीर के साथ तादात्म्य को जोड़ना, इस तरह की कतिपय विधियों को सविस्तार वर्णन करके असोजियोली ने अपने ग्रंथ को मात्र दार्शनिक ऊहापोह होने से बचा लिया है।

रोजमर्रा के जीवन में करने जैसे अनेक प्रयोग प्रस्तुत कर असोजियोली संकल्प को जगाने के छोटे-छोटे गुर बताता है। उनमें से एक गुर वाकई विचारणीय है: ''मैक हेस्ट स्लोली'' ''आहिस्ता–आहिस्ता शीध्रता करो।'' धीरज को विकसित करने के लिए यह प्रयोग बहुत बढ़िया है। उन सारे मौक़ों पर जहां आदमी को झुंझलाहट होनी स्वाभाविक है, वहां प्रयत्नपूर्वक धीरज रखना—जैसे, दूसरे का दरवाजा खुलने से पहले, लंबे क्यू में खड़े रहने पर, वरिष्ठ द्वारा अपमानित होने पर, कनिष्ठ सेवक की चालाकी पकड़ में आने पर, इस सब स्थितियों में बराबर आत्म स्मरण करने से संकल्प का केंद्र निर्मित होता है।

मनोविज्ञान और विज्ञान ने मानव के आध्यात्मिक विकास में एक बहुत बड़ा योगदान दिया है: वह साधक को संसार से तोड़ता नहीं बल्कि उससे और भी सुंदर ढंग से जोड़ता है। और बुद्धत्व की खोज पूरी तरह ज़ोरबा से जूड़ी रहती है।

मन को केंद्रित करने की विधियां प्रस्तुत करते हुए असोजियोली उन्हें दो हिस्सों में बाँटता है। व्यक्तिगत और सायकोसिंथेसिस की विधियां और आध्यात्मिक सायकोसिंथेसिस की विधियां। व्यक्तिगत विधियों में उसका पूरा जोर इस बिंदू पर है कि व्यक्तित्व के साथ प्रत्येक व्यक्ति का जो तादात्म्य होता है उससे मुक्त कैसे हुआ जाये।

आध्यात्मिक सायकोसिंथेसिस का विवेचन करते हुए लेखक कहता है: अन्य मनोवैज्ञानिक सिद्धांतों से यह भिन्न है। वह उतनी ही मूलभूत है जितनी फ्रायड द्वारा वर्णित अंतरस्थ ऊर्जाऐं। हम मानते है कि मनुष्य के भौतिक हिस्से की भांति उसका आध्यात्मिक तल भी उतना ही महत्वपूर्ण हे। हम मनोविज्ञान के ऊपर दार्शनिक, धार्मिक या पौराणिक धारणाएं थोपना नहीं चाहते, वरन मनोवैज्ञानिक तथ्यों के अध्यन के अंतर्गत हम मनुष्य की वे सब श्रेष्ठ प्रेरणाओं को शामिल करना चाहते है जो अपने आत्मिक केंद्र की और उन्नत होने में उसकी सहायता करते है।

मानव मन के विशाल विश्व में जो भी उच्चतर पहलू है, जैसे कल्पना, अंत: प्रज्ञा, सृजनात्मकता, प्रतिभा वे सारी इतनी यथार्थ और वास्तविक है कि उन पर वैज्ञानिक अनुसंधान निश्चय ही हो सकता है।

संगीत: बीमारी और स्वास्थ्य का स्त्रोत

इस विचार प्रवर्तक ग्रंथ के तीसरे परिच्छेद में कुछ खास विधियों की चर्चा की गई है जिनमें संगीत का उपयोग चिकित्सा के लिए करने के अद्‌भुत उपाय बताये गये है।

यदि यहां पर असोजियोली की किताब समाप्त हो जाती है तो वह फ्रायड से नाता नहीं जोड़ सकता था। अंतिम परिछेद में उसने सेक्स ऊर्जाओं के रूपांतरण तथा उदात्तीकरण के विशेष रूप से चर्चा की है।

असोजियोली के अंतर जगत की सैर करते हुए एक बात बार-बार जेहन में उभरती है। उसके और ओशो के विचार और अभिव्यक्ति की समानता। कई स्थानों पर हम यह भूल जाते है कि हम पचास वर्ष पुराने इटालियन मनोवैज्ञानिक को पढ़ रहे है या ओशो को। यद्यपि असोजियोली बुद्ध पुरूष नहीं है। और वह चेतना की परम स्थिति का वर्णन नहीं करता। तथापि अंतर्यात्रा की समूची प्रक्रिया को वह अत्यंत विधायक दृष्टिकोण से और वैज्ञानिक ढंग से प्रस्तुत करता है। लगता है कहीं उसका तार ओशो चेतना द्वारा होने वाली आगामी आध्यात्मिक क्रांति से मिला हुआ है। अंत: आश्चर्य नहीं कि ओशो कहते है, ''मैं चाहूंगा कि मेरे सभी संन्यासी असोजियोली को पढ़े।

किताब की एक झलक:

मनुष्य का अध्यात्मिक विकास एक लंबा और दूभर सफर है। एक साहस जो अजीबोगरीब प्रदेशों से गुजारता है। उसमे कई तरह के विस्मय चकित करने वाले प्रसंग, कठिनाइयां और खतरे भी आते है। व्यक्तित्व के जो सामान्य पहलू है उनका आमूल रूपांतरण करना पड़ता है। ऐसी क्षमताएं जाग जाती है। जो इससे पहले अज्ञात थीं। चेतना नये लोको तक उन्नत होती है। और एक अभिनव आंतरिक आयाम काम करने लगाता है।

इसलिए हमें आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि इतना बड़ा रूपांतरण, इतना बुनियादी परिवर्तन कई मुश्किल स्थितियों से पटा होता है। और उसके दौरान अनेक भावनात्मक, बौद्धिक और मज्जा तंतुओं की गड़बड़ियाँ पैदा होती है। अपने क्लिनिक में का करनेवाले तटस्थ थेरेपिस्ट को ये सारी उथल-पुथल उसी किस्म की प्रतीत होगी जैसी सामान्यता मरीजों में होती है। लेकिन वस्तुत: उनकी अर्थवत्ता और कारण बिलकुल अलग है। उन्हें चिकित्सा की जरूरत होती है।

आजकल आध्यात्मिक कारणों से पैदा होने वाली उथल-पुथल बढ़ती जा रही है। क्योंकि ऐसे लोगों की तादाद बढ़ती जा रही है। जो जाने अनजाने अधिक संपूर्ण जीवन की तलाश कर रहे है। साथ ही आधुनिक मानव के व्यक्तित्व की विकास और उसी वजह से आयी हुई जटिलता और उसके आलोचक मस्तिष्क के आध्यात्मिक विकास को अधिक और जटिल प्रक्रिया बना दिया है।

अतीत में ऐसा था कि थोड़ा बहुत नैतिक परिवर्तन शिक्षक या गुरु के प्रति सरल सी हार्दिक भक्ति ईश्वर के प्रति प्रेमपूर्ण सम्पूर्ण चेतना के उच्चतर तलों के और आंतरिक मिलन और कृतकृत्यता के द्वार खोलने के लिए पर्याप्त थे। अब इस प्रक्रिया में आधुनिक मानव व्यक्तित्व के अधिक विरोधाभासी और विभिन्न पहलू संलग्न है जिन्हें रूपांतरित करना तथा उनका परस्पर सामंजस्य करना जरूरी है। इन पहलुओं में शामिल है:

मनुष्य की बुनियादी वृतियां, उसके भाव और संवेग, उसकी सर्जनशील कल्पना शक्ति, उसका जिज्ञासु मस्तिष्क, उसका आक्रामक संकल्प और व्यक्तियों के तथा सामाजिक संबंध।

इन कारणों से आध्यात्मिक बोध के भिन्न-भिन्न चरणों में जो गड़बड़ी पैदा हो सकती है उनकी एक सामान्य रूपरेखा तथा उनके इलाज के कुछ सूत्र हम समझते है। उपयोगी होंगे। स्पष्टता की दृष्टि से हम इस विकास के चार मुख्य चरण कर सकते है।

1– आध्यात्मिक जागरण के पहले के संकट

2– आध्यात्मिक जागरण के कारण आनेवाले संकट

3– आध्यात्मिक जागरण की प्रतिक्रिया

4– रूपांतरण की प्रक्रिया के पड़ाव

हमने ''जागरण'', ''अवेकनिंग'' के प्रतीक का प्रयोग किया है क्योंकि उससे अनुभव ने नये लोक की संवेदना का बोध होता है। उस आंतरिक सत्य के प्रति आंखों का खुलना जो अब तक उपेक्षित था।

ओशो का नजरिया:

मनोविश्लेषण सायकोएनेलिसिस की खोज कर सिगमंड फ्रायड ने अनूठा काम किया है। लेकिन वह केवल आधा-अधूरा है। उसका दूसरा आधा हिस्सा है: सायकोसिंथेसिस। लेकिन वह भी आधा हिस्सा है। मेरा काम संपूर्ण है जो कि है: सायक थीसिस।

मनोविश्लेषण और सायकोसिंथेसिस, ये दोनों ही विज्ञान अध्ययन करने जैसे है। यह किताब, सायकोसिंथेसिस, बहुत कम पढ़ी जाती है। क्योंकि असोजियोली फ्रायड जैसा बुलंद व्यक्तित्व नहीं है। वह उन ऊंचाईयों तक नहीं पहुंच पाया। लेकिन सभी संन्यासियों ने उसे पढ़ना चाहिए। ऐसा नहीं है कि वह सही है और फ्रायड गलत है। उन्हें अलग-अलग देखा तो दोनों की गलत हे। वे जब इकट्ठे देखे जायें तभी यही है। और यही मेरा काम है: सभी टुकड़ों को इकट्ठा करना।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

29/ दि हिस्ट्री ऑफ वेस्टर्न फिलॉसॉफी-(रसेल)

दि हिस्ट्री ऑफ वेस्टर्न फिलॉसॉफी—(बर्ट्रेंड रसेल)

A History of Western Philosophy – Bertrand Russell

इंग्लैंड के विश्व विख्यात दार्शनिक, लेखक बर्ट्रेंड रसेल ने अपरिसीम श्रम करके विचार के विकास की कहानी लिखी है। यह कहानी उसके एक महाकाव्य पुस्तक में उंडेली है। जिसका नाम है: ''दि हिस्ट्री ऑफ वेस्टर्न फिलॉसॉफी'' पाश्चात्य दर्शन का इतिहास अर्थात मनुष्य के विचारों का इतिहास। इस पुस्तक में रसेल ने 2500 वर्षों के काल-खंड को समेटा है। लगभग 585 ईसा पूर्व से लेकिर 1859 के जॉन डूयुए तक सैकड़ों दार्शनिकों के चिंतन, दार्शनिक सिद्धांत और मनुष्य जाति पर हुए उनके परिणामों का संकलन तथा सशक्त विश्लेषण इस विशाल ग्रंथ में ग्रंथित है।

इस पुस्तक का नाम सुनकर यदि कोई यह सोचे कि यह तो पश्चिम के मनुष्य के काम की चीज है, हमारा उससे क्या लेना देना, तो यह गलत सोच रहा है। मनुष्य पश्चिम का हो या पूरब का, आज इक्कीसवी सदी की दहलीज पर पूरब-पश्चिम एक हो गए है। और हम सभी पश्चिम से प्रभावित है। हम सब अरस्तू के वंशज है। हमारा तर्क, हमारी सोच, हमारी बुद्धि अरस्तू की तर्क सरणी से बनी है। अरस्तू ने तर्क का जो ढांचा दिया है वह मनुष्य के मस्तिष्क में इतना गहरा खुद गया है कि आधुनिक मनुष्य उससे अन्यथा सोच भी नहीं सकता।

पुस्तक का प्रारंभ होता है ग्रीक सभ्यता के उदय से। समय है600 ईसा पूर्व। रसेल ने दर्शन के इतिहास को तीन मोटे हिस्से में बांटा है: प्राचीन दर्शन, ईसाइयत के उदय के बाद के बाद पैदा हुआ धार्मिक दर्शन और विज्ञान युग के प्रारंभ के पश्चात जन्मा आधुनिक दर्शन।

प्राचीन दर्शन ईसा पूर्व समय का है जिसमें ग्रीक दार्शनिकों का योगदान है। पाइथागोरस, हेराक्लाइटस, इनक्सा, गोरस और अन्य दार्शनिक जिनकी ख्याति इनमें कम है। वह समय था जब चीजें संयुक्त थीं, जीवन बंटा हुआ नहीं था।

पाइथागोरस गणितज्ञ था और दार्शनिक भी। आज हम इन दो विषयों में कोई तालमेल नहीं देख सकते लेकिन गणित जब गहरे उतरता है तो दर्शन के अवकाश में प्रवेश करता है। ग्रीक दार्शनिकों ने जो गणित और ज्यामिति में खोजें की है उससे आज भी हमारा संगीत, खगोल विज्ञान, ज्योतिष दर्शन प्रभावित है। पाइथागोरस के साथ गणित और धर्मविज्ञान का समन्वय शुरू हुआ।

''सुकरात, प्लेटों और अरस्तू–यह त्रिमूर्ति पूरे दर्शन शास्त्र की आधारशिला है। अपनी विचार यात्रा में रसेल उन्हें असाधारण महत्व देता है। एक पूरा विभाग उसने इन तीन दार्शनिकों को समर्पित किया है। सुकरात रहस्यदर्शी था, उसे दार्शनिक कहना ठीक नहीं होगा। लेकिन पश्चिम में बुद्धों की कोई परंपरा नहीं है। इसलिए इतिहासकार या उसके स्वयं के शिष्य भी उसे समझ नहीं पाये। वे उसे एक विचित्र, बेबूझ व्यक्ति मानते थे। सुख-दूःख या सर्दी-गर्मी उसके लिए सब एक बराबर था। उसे बार-बार घंटो टाँस में खो जाने की आदत थी। लोग कहते थे उसकी आत्मा ने शरीर पर विजय पा ली है। उसकी एक ही बुरी आदत थी: लोगों के साथ संवाद करना। और संवाद के द्वारा सत्य को उघाड़ना। एथेन्स के सारे नेता उस की हरकत से परेशान थे। वे उसके बोलने को रोक नहीं सके तो आखिर उसकी आवाज को ही बंद करवा दिया।

सुकरात की चेतना में इतनी सृजन की क्षमता थी कि वह आगे दो पीढ़ियों तक अपनी धारा को चला सका। जिस प्रकार ईसा मसीह समय के प्रवाह में मुस्तैदी से खड़े हो गए और उन्होंने समय को दो खंडों में बांट दिया: ईसा पूर्व और ईसा के बाद। उसी प्रकार सुकरात दार्शनिकों की श्रृंखला में प्रज्ञा की मीनार बन कर खड़ा

है। दर्शन का प्रवाह भी दो भागों में बंट गया है: सुकरात के पूर्व और सुकरात के बाद। उसके शिष्य प्लेटों और प्लेटों के शिष्य अरस्तू के दर्शन के इतिहास में महत्वपूर्ण और मौलिक योगदान दिया। हालांकि सुकरात की बुलंदी इन दोनों में नहीं है। इनमें हम चेतना की ढलान साफ देखते है। सुकरात मन के पास था, प्लेटों मन के अंतरिक्ष में था और अरस्तू बुद्धि की जमीन पर उतर आया। विश्लेषण और तर्क उनके भवन की आधारशिला थी।

यह न केवल दर्शन में बल्कि पूरी मनुष्य जाति के जीवन में एक नया मोड़ था। अरस्तू के संबंध में रसेल कहता है:

''किसी भी महत्वपूर्ण दार्शनिक को, और सबसे ज्यादा अरस्तू को पढ़ते समय, दो तरीकों से उसका अध्यन करना चाहिए: उसके पूर्ववर्तियों के संदर्भ में और उसके अंतर्वर्तियों के संदर्भ में। वह ग्रीक विचार के रचनात्मक काल के अंत में आया। उसकी मृत्यु के बाद दो हजार साल तक संसार उसकी बराबरी के दार्शनिक को पैदा नहीं कर पाया। इस लंबे समय के अंत में उसका अधिकार लगभग चर्च जैसा हो गया था। और विज्ञान में तथा दर्शन में वि विकास की राह का सबसे बड़ा रोड़ा बना गया था। सत्रहवी सदी के प्रारंभ में कोई भी कीमती बौद्धिक कदम अरस्तू पर हमला किये बगैर नहीं उठ सकता था। तर्क शास्त्र के बाबत यह आज भी सच है।

सुकरात, प्लेटों और अरस्तू ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में हुए। इसके बाद धीरेधीरे ग्रीक संस्कृति की खिलावट कम होती चली गई। और रोम में एक नया उत्थान शुरू हुआ। रोम शीध्र ही एक नये धर्म को केंद्र बनने वाला था। जेरूसलेम में ईसा मसीह की सूली के बाद पश्चिम में बड़े जोर से ईसाइयत का उदय हुआ। यहां रसेल एक मजेदार बात कहता है: पहले ईसाइयत की शिक्षा यहूदी लोग यहूदियों को देते थे। और वह यहूदी धर्म का परिष्कृत संस्करण कहलाता था। लेकिन उस धर्म के दो नियम: पुरूषों का खतना करवाना और खान-पान के कठोर नियम। लोगों को मुश्किल मालूम पड़ने लगे। इससे धीरे-धीरे ईसाई धर्म यहूदी से अलग हो गया। लगभग तेरह शताब्दियों तक चर्च का साम्राज्य और हुकूमत छायी रही। दर्शन अब धार्मिक दर्शन बन गया। उसके विचार नहीं, विश्वास प्रधान बन गया। पोप लगभग ईश्वर का विकल्प बन गया। चौदहवीं सदी तक यह सिलसिला चलता रहा। चौदहवीं सदी में सत्रहवी सदी तक का दौर मध्ययुग कहलाता है।

मध्ययुग में, जो ''रेनेसां'' सांस्कृतिक पुनर्जागरण के नाम से प्रसिद्ध है, विचार का अर्थात मानव मन का अधिक विकास नहीं हुआ। लोग साम्राज्यवाद में उलझे रहे। पास-पड़ोस के देशों पर आक्रमण, युद्ध, कुटिल राजनीति, नैतिक पतन....यही कहानी है यूरोप की। राजनीति ने मनुष्य के जीवन को इस कदर ग्रस लिया कि दर्शन भी दर्शन भी राजनैतिक बन गया। पूरी हवा, परिवेश, मानसिकता कुछ ऐसी थी कि उसने एक बहुत अर्थपूर्ण है कि कोई युग कैसे किसी महान शक्ति को जन्म देता है। और वह शक्ति नये युग का निमार्ण करती है। मैक्यावेली बेबाक और स्पष्ट वक्ता था। राजनीति और समाज में फैले हुए पाखंड और बेईमानी के लिए उसकी सीधे नुकीले वक्तव्य झेलना बर्दाश्त के बाहर था। जैसे, उसका प्रसिद्ध वाक्य: Power corrupts and corrupts absolutely , सत्ता भ्रष्ट करती है। और पूरी तरह से भ्रष्ट करती है। सत्ताधीशों को इसे सुनकर चोट लगती थी। मैक्यावेली में इतनी ईमानदारी और स्पष्टता थी कि वह कहता था, राजा सौ प्रतिशत स्वर्ण हो तो नष्ट हो जायेगा। उसे लोमड़ी की तरह चालाक और शेर की तरह दबंग होना चाहिए। वह अशुभ का उपयोग करे लेकिन शुभ के लिए।

सत्रहवी शताब्दी ने स्र्वथा नया मोड़ लिया, या कहें एक क्वांटम लीप, समग्र छलांग ली, जिससे मानव जीवन की ही नहीं, पूरी पृथ्वी की शक्ल ही बदल गई। इस शताब्दी से विज्ञान का उदय के लिए जिस तरह के वैज्ञानिक मस्तिष्क की जरूरत थी उसके बीज अरस्तू ने दो हजार साल पहले बो रखे थे। वे मिट्टी की पर्तों के

बीच दबे पड़े अपने समय की राह तक रहे थे। अब पूरी ताकत से अंकुरित हो गये। क्योंकि तर्क और विश्लेषण के बगैर कोई वैज्ञानिक खोज हो ही नहीं सकती थी।

सत्रहवी सदी में चार वैज्ञानिक हुए जिन्होंने विज्ञान युग की नींव रखी: कोपरनिसक, केपलर, गैलीलियो, और न्यूटन। इन वैज्ञानिकों ने अपनी प्रयोगशाला में जो खोजें की उसने मनुष्य को एकदम यर्थाथ के धरातल पर खड़ा कर दिया। इनकी भाषा, इनकी मानसिकता इतनी अलग थी कि रसेल कहता है, अगर प्लेटों और अरस्तू को फिर से लाया जाये तो वे न्यूटन की एक भी बात समझ न पाएंगे। जिन्होंने आधुनिक विज्ञान की नींव रखी उन वैज्ञानिकों के पास दो असाधारण गुण थे: अपरिसीम धीरज के साथ निरीक्षण करना और अपने निष्कर्षों को बहुत साहस के साथ प्रस्तुत करना। क्योंकि उनके निष्कर्ष पूरा धर्म, बाइबल, स्थापित विश्वासों के विपरीत होते थे। अब तक पृथ्वी ब्रह्मांड का केंद्र थी और गैलीलियो ने देखा दिया कि बेचारी छोटी सी पृथ्वी बहुत बड़े सूरज के चक्कर लगा रही है। विज्ञान की खोजें धार्मिक अहंकार पर बहुत बड़ी चोटें थी।

वैज्ञानिक वातावरण ने एक नये किस्म के दर्शन को जन्म दिया: वैज्ञानिक दर्शन। मनुष्य की पूरी मानसिकता ही बदल रही थी। आधुनिक वैज्ञानिक दर्शन का जनक है डे कार्ट। उसमे मस्तिष्क को दो चीजों ने संस्कारित किया था: आधुनिक विज्ञान और खगोल विज्ञान। अरस्तू के बाद यह पहला बुलंद दार्शनिक था जिसके विचारों में ताजगी थी और अपने पहले जो विचारक हुए उन्हें बनाये हुए महलों को धराशायी करने का साहस था। डे कार्ट के दर्शन में संदेह सबसे बड़ी विधि थी। वह हर चीज पर संदेह करता चला जाता, यहां तक कि स्वयं पर भी। फिर भी अंतत: कुछ ऐसा बचता है। जिस पर संदेह नहीं किया जाता। डे कार्ट का प्रसिद्ध वाक्य है: think therefore I am, मैं सोचता हूं इसलिए मैं हूं।

डे कार्ट के बाद फिर एक बार दर्शन का अभ्युत्थान हुआ और दार्शनिकों की लंबी शृंखला चली। स्पिन झा, फ्रांसिस, बेकन, लॉक, ह्मूम, बर्कले, हीगल, कांट....इत्यादि। इसे हम बुद्धिवादी दर्शन कह सकते है। ये दार्शनिक कोई क्रांतिकारी किस्म के नहीं थे। इनका मिज़ाज सामाजिक था और ये खूद एक प्रतिष्ठित संभ्रांत जीवन जीते थे। उनका दर्शन व्यक्तिनिष्ठ, सब्जेक्टिविज़्म की और उन्मुख था।

उन्नीसवीं शताब्दी में दर्शन का एक शिखर पैदा हुआ जर्मनी में—इमेन्युएल कांट कहता था। चाहे बच्चा हो या बड़ा आदमी, वह किसी और की मर्जी से या दूसरे के इशारों पर चले, यह सबसे भयंकर बात है। बाहर जो संसार दिखाई देता है वह वैसा नहीं है जैसा हम उसे देखते है। हर व्यक्ति अपनी-अपनी मानसिक क्षमता के अनुसार बह्म जगत की व्याख्या करता है।

यहां से ईश्वर का आस्तित्व डांवाडोल हो जाता है। और अंतत: उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में पैदा हुआ नीत्से घोषित करता है: गॉड इज़ डेड, ईश्वर मर चूका है। ईश्वर के साथ ही नीत्से ईसाइयत पर भी कठोर प्रहार करता है। उसे मनुष्य की जड़ों में बसी हुई नैसर्गिक अकृत्रिम, अनिर्बंध जंगल(वाइल्ड) प्रवृतियां अधिक यर्थाथ लगती है। बजाएं पालतू नैतिकता के।

पाश्चात्य दर्शन के इतिहास की रसेल की यात्रा विलियम जेम्स और जॉन डूयुए पर समाप्त हो जाती है। जॉन डूयुए से रसेल को विशेष प्रेम है। शायद इसीलिए वह अपना दार्शनिक सफर जॉन ड्यूक पर पूरा करता है। विलियम जेम्स मनोवैज्ञानिक था। इन दोनों को बर्ट्रेंड रसेल ने संभवत: इसलिए शामिल किया है क्योंकि अमरीकन दर्शन को इन दो दार्शनिकों ने प्रभावित किया है। रसेल को अमरीका के प्रति एक सुप्त आकर्षण था लेकिन वह अमरीका में कभी सम्मानित नहीं हो सका।

विलियम जेम्स अमरीकन दर्शन का नेता माना जाता है। उसने पहली बार अपने दर्शन में ''कांशसनेस'' चेतना शब्द का प्रयोग किया है। अब तक पूरा दर्शन ''विषय और विषयों'' के द्वंद्व पर खड़ा था। विलियम जेम्स

इस आधार को ही इनकार करता है। वह कहता है, ''सृष्टि का मूल स्त्रोत एक कोई तत्व है जिसे हम ''विशुद्ध अनुभव'' कह सकते है। उससे ही विचार और जानने की प्रक्रिया पैदा होती है।

यह अर्थपूर्ण है कि ओशो ने भी मन के पार की चित दशा के लिए ''चेतना'' कांशसनेस शब्द का प्रयोग किया है। और ओशो शब्द के जो विभिन्न अर्थ समझायें है उनमें एक अर्थ यह भी बताया है कि ओशो शब्द विलियम जेम्स के ''Oceanic Consciousness'' से लिया गया है।

जॉन डूयुए अमरीका का प्रमुख दार्शनिक था। अमरीकी शिक्षा प्रणाली, सौंदर्यशास्त्र और राजनीतिक सिद्धांत पर उसका गहरा प्रभाव था। खुद बर्ट्रेंड रसेल भी उससे प्रभावित था और कई मुद्दों पर उसके विचारों से सहमत था। जॉन डूयुए 1859 में पैदा हुआ और जिस वक्त रसेल ने यह किताब लिखी, अमरीका में रहता था।

यहां आकर पाश्चात्य दार्शनिकों का इतिहास समाप्त होता है। किताब का अंतिम परिछेद है: ''दि फिलॉसॉफी ऑफ लॉजिकल एनालिससि'', तर्कसंगत विश्लेषण का दर्शन। यहां दर्शन शास्त्र के विकास पर विहंग दृष्टि डालते हुए रसेल अपनी धाराप्रवाही शैली में कुछ अंतर्दृष्टि प्रस्तुत करता है।

दर्शन अपने पूरे इतिहास में दो हिस्सों से बना है और इन दो हिस्सों का आपस में कोई मेल नहीं है। एक तरफ वह एक सिद्धांत है जो इस संबंध में सोचता है, कि विश्व कैसे बना है और दूसरी तरफ एक नैतिक या राजनैतिक नियम जो हमारे जीवन को बेहतर बना सके। एक भी दार्शनिक इन दोनों को अगल नहीं कर सका। प्लेटों से लेकिर विलियम जेम्स तक सभी दार्शनिक मनुष्य के जीवन को अधिक विकसित करने के लिए दर्शन का यानी उनके अपने मतों का उपयोग कर रहे थे। उनकी दृष्टि में जो विश्वास मनुष्य को अच्छा आचरण करने में सहयोगी थे उनके लिए बहुत परिष्कृत दलीलें जुटाकर उन्होंने उसका एक शास्त्र बना लिया। मैं इस प्रवृति की भर्त्सना करता हूं। मूलत: दर्शन सत्य की निष्पक्ष खोज है, और जो दार्शनिक अपनी व्यवसायिक क्षमता का इसके अलावा किसी अन्य उदेश्य से उपयोग करता है वह एक तरह का विश्वासघात करता है।

...सच तो यह है कि मानवीय बुद्धि उन सभी प्रश्नों के सुनिश्चित उत्तर पाने में असमर्थ है जो मनुष्य जाति के लिए बहुत गहन अर्थों में महत्वपूर्ण है। लेकिन दार्शनिक यह मानने को तैयार नहीं है कि एक श्रेष्ठतर ''जानना'' है जिसके द्वारा हम उन सत्यों को जान सकते है जो विज्ञान और बुद्धि के लिए अगम्य है। ऐसे कई प्रश्न जो अध्यात्म के कुहरे में ढँके हुऐ थे, अगर दार्शनिक के भीतर उन्हें समझने की इच्छा और धीरज हो तो समझे जा सकत है।

जैसे ''संख्या क्या है? स्थान और समय क्या है? मन और पदार्थ के क्या मायने है? मैं यह नहीं कहता कि हम इन प्राचीन प्रश्नों के सही उत्तर दे सकते है, लेकिन अब ऐसी एक विधि खोज ली गई जिसके द्वारा हम उत्तर दे सकते है। जो सत्य के बहुत करीब हो।

यह विधि है वैज्ञानिक अन्वेषण और निरीक्षण।

किताब की एक झलक—

दर्शन(Philosophy) एक ऐसा शब्द है जो कई तरह से प्रयोग किया गया है। मैं बहुत व्यापक अर्थ में इसका प्रयोग करूंगा। दर्शन, जैसा कि मैं इस शब्द को समझाता हूं, धर्मविज्ञान और विज्ञान के बीच की कड़ी है। धर्मविज्ञान (Theology) की तरह यह अनुभव करता है कि कौन सा सुनिश्चत ज्ञान है जिसका पता चल गया है लेकिन विज्ञान की तरह वह तर्क को जँचता है, पद (Authority) को नहीं। सभी सुनिश्चित ज्ञान विज्ञान का हिस्सा है, और वे सारे सिद्धांत जो इस संबंध में खोजते है। कि सुनिश्चित ज्ञान के पार क्या है। धर्मविज्ञान का हिस्सा है। लेकिन धर्मविज्ञान और विज्ञान के बीच एक निर्मनुष्य स्थान है जिस पर दोनों तरफ से विचार किया जा सकता है। यह निर्मनुष्य स्थान है दर्शन।

चिंतनशील मस्तिष्क जिन प्रश्नों में रस लेता है लगभग वे सारे प्रश्न ऐसे है जिन्हें विज्ञान कल नहीं कर सकता। और धर्म वैज्ञानिकों के सारे आत्मविश्वासपूर्ण उत्तर अब उतने बलवान नहीं प्रतीत होते जितने अतीत में होते थे। जैसे, क्या यह विश्व मन और पदार्थ में बंटा हुआ है? यदि ऐसा है तो फिर मन क्या है और पदार्थ क्या है? क्या मन पदार्थ के अधीन है या उसकी अपनी स्वतंत्र शक्ति है? क्या इस विश्व में कोई में कोई एकात्मता या इसका कोई उदेश्य है? क्या यह किसी लक्ष्य की दिशा में विकसित हो रहा है? क्या मनुष्य वही है जो किसी खगोल शास्त्री को प्रतीत होता है—अशुद्ध कार्बन और जल का छोटा सा गोला जो कमजोर ती तरह एक गैर-महत्वपूर्ण ग्रह पर रेंग रहा है? क्या वास्तव में प्रकृति के कोई नियम है? या हम व्यवस्था के प्रति अपने जन्मजात प्रेम की वजह से उनमें विश्वास करते है? क्या जीने के दो ढंग है—उदात्त और निकृष्ट या कि जीने के सारे ढंग व्यर्थ? क्या प्रज्ञा नाम की कोई अंतिम वस्तु है या कि वह मूढ़ता का ही अंतिम परिष्कार है?

इनमें से एक भी प्रश्न का उत्तर प्रयोगशाला में नहीं मिल सकता। धर्म विज्ञानों ने उत्तर देने का दावा क्या है, कुछ ज्यादा ही निर्णायक ढंग से। लेकिन उनके इस निर्णायक ढंग की वजह से ही आधुनिक मस्तिष्क उन्हें संदेह से देखता है। इन प्रश्नों का अध्यन करना दर्शन का काम है। उत्तर भले ही दे कि नहीं।

फिर आप पूछेंगे कि इन अनुत्तरित प्रश्नों को हल करने में वक्त क्यों बरबाद करना? इसका जवाब या तो इतिहासविद् की तरह दिया जा सकता है या ब्रह्मांड में हमारे अकेलेपन के भय का सामना करने वाले एक व्यक्ति की तरह दिया जा सकता है। इतिहासविद् का जवाब, जहां तक मैं देने में समर्थ हूं, इस ग्रंथ में यथास्थान प्रस्तुत किया जाएगा। जब से मनुष्य में स्वतंत्र चिंतन करने की क्षमता आ गई। उसके कृत्य कई सिद्धांतों पर निर्भर करने लगे। जैसे विश्व और मानव जीवन का संबंध शुभ क्या है, अशुभ क्या है? यह आज भी उतना ही सच है जितना कि पहले भी था। किसी युग को या राष्ट्र को समझने के लिए उसके दर्शन को समझना चाहिए। और उसके दर्शन को समझने के लिए हमें किसी मात्रा में दार्शनिक होना चाहिए। यहां कार्य-कारण नियम लागू होता है। मनुष्य के जीवन की परिस्थिति को निर्धारित करने का कारण बनता है। सदियों-सदियों की यात्रा में घटा यह अंतर संबंध आगामी पृष्ठों का विषय होगा।

ओशो का नज़रिया–

मुझे बार-बार ख्याल आ रहा है, पता नहीं क्यों कि मुझे बर्ट्रेंड रसेल को सम्मिलित करना है। मैंने उसे हमेशा पसंद किया है। यह भली-भांति जानते हुए कि हम दोनों में जमीन आसमान का अंतर है। वस्तुत: हम दो विपरीत छोर है—शायद इसीलिए। विपरीत ध्रुव एक-दूसरे को आकर्षित करते है।

तुम फिर से मेरी आंखों में आंसू देखते हो? वे बर्ट्रेंड रसेल के लिए है। उसके दोस्त उसे ''बर्टी'' कहते थे। उसकी किताब का नाम है: ''दि हिस्ट्री ऑफ वेस्टर्न फिलॉसॉफी।''

इससे पहले पाश्चात्य दर्शन शास्त्र मे किसी ने इस तरह का काम नहीं किया है। कोई दार्शनिक ही कर सकता था इसे। इतिहासविदों ने कोशिश की है। और दर्शन के इतिहास कई है। लेकिन उनमें से एक भी इतिहासविद् दार्शनिक नहीं था। पहली बार बर्ट्रेंड रसेल की कोटि के दार्शनिक ने दर्शन का इतिहास भी लिखा है। और वह इतना प्रामाणिक है कि उसे दर्शन का इतिहास नहीं कहता। क्योंकि उसे अच्छी तरह पता है कि वह पूरब के दर्शन का संपूर्ण इतिहास नहीं है। केवल पाश्चात्य अंश—अरस्तू से बर्ट्रेंड रसेल तक।

मुझे दर्शन शास्त्र पसंद नहीं है। लेकिन रसेल की किताब सिर्फ इतिहास नहीं है, एक कलाकृति है। वह इतनी व्यवस्थित है, इतनी सौंदर्य पूर्ण है, इतनी सुंदर रचना है...शायद इसलिए क्योंकि रसेल एक गणितज्ञ था।

भारत को अभी तक कोई बर्ट्रेंड रसेल नहीं मिला जो भारतीय दर्शन के और उसके इतिहास के संबंध में लिखे। इतिहास बहुत है लेकिन वे इतिहासविदों ने लिखें है, दार्शनिकों ने नहीं। और स्वभावत: इतिहासविद्

आखिर इतिहासविद् है, वह प्रवहमान विचार की आंतरिक लय और उसकी गहराई को नहीं समझ सकता है। राधाकृष्ण ने भारतीय दर्शन का इतिहास लिखा है इस आशा में कि वह बर्ट्रेंड रसेल की किताब जैसी बनेगी, लेकिन वह चोरी है। वह राधाकृष्णन की किताब नहीं है। वह एक गरीब विद्यार्थी का शोध प्रबंध है। जिसके राधाकृष्णन परीक्षक थे। और उन्होंने पूरी थीसिस ही चुरा लिया।

अब ऐसे लोग भारतीय दर्शन के साथ न्याय नहीं कर सकते। भारत को, चीन को, बर्ट्रेंड रसेल की जरूरत है। खास कर इन दो देशों को। पश्चिम सौभाग्यशाली है, कि उसे बर्ट्रेंड रसेल जैसा क्रांतिकारी विचारक मिला। उसने बहुत खूबसूरत वर्णन लिखा है—अरस्तू से लेकर स्वयं तक के पश्चिमी विचार का विकास।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

30/ दि विल टु पावर: (नीत्से)

दि विल टु पावर-(फ्रेडरिक नीत्से)

The Will To Power-Nietzche's

कुछ व्यक्तियों का वजूद इतना बड़ा होता है कि उनके देश का नाम उनके नाम सक जुड़ जाता है। जैसे ग्रीस सुकरात और प्लेटों की याद दिलाता है। चीन लाओत्से का देश बन गया। वैसे ही जर्मनी फ्रेडरिक नीत्शे का पर्यायवाची हुआ। नीत्शे—जिस महान दार्शनिक को ओशो ''जायंट'' या विराट पुरूष कहते है। नीत्शे की प्रतिभा को ओशो ने बहुत सम्मान दिया है। नीत्शे के महाकाव्य ''दसस्पेक जुरतुस्त्र'' पर प्रवचन माला कर ओशो ने नीत्शे को अपनी साहित्य संपदा में अमर कर दिया है। उसी नीत्शे की अंतिम किताब ''दि विल टु पावर'' ओशो की मनपसंद किताबों में शामिल है।

यह किताब कई अर्थों में अनूठी है। एक—यह किताब प्रकाशित करने के लिए लिखी ही नहीं गई थी। नीत्शे का निधन 1900 में हुआ। 1884-1888 के बीच उसने जो टिप्पणियां अर्थात नोटस लिखे थे उन्हें एकत्रित कर उसकी बहन फ्रॉ एलिज़ाबेथ फ्रॉस्टर नीत्शे ने 1901 में प्रकाशित किया।

नीत्शे ने जो नोटस लिखे थे वे केवल सुत्र थे। इनमें कभी-कभी पूरा वाक्य भी नहीं पाया जाता। लेकिन इससे बहुत फर्क नहीं पड़ता क्योंकि यही नीत्शे की शैली है। उसके वाक्य तराशे हुए हीरे है। ''दि विल टु पावर'' शीर्षक से नीत्शे किताब प्रकाशित करना चाहता था। मुख्य शीर्षक के साथ उसने एक उपशीर्षक भी दिया हुआ है: ''सभी मूल्यों का पुनर् मूल्यांकन करने का प्रयास।'' किताब में नीत्शे ने जो विचार प्रगट किये है उन्हें देखते हुए यह शीर्षक अधिक सम्यक लगता है। वास्तव में , मनुष्य के इतिहास में जो भी मूल्य श्रेष्ठ माने गए है उन्हें उलटा कर नीत्शे उन्हें फिर से परखता है। उन पर प्रश्नचिन्ह लगाता है।

नीत्शे की अनोखी लेखन शैली का नमूना उसके द्वारा लिखी गई भूमिका में मिलता है—''जो भी महान है उसके बारे में या तो महानता से बोलना चाहिए या मौन रहना चाहिए। ''महानता'' से मतलब है नकारात्मक दृष्टि से और मासूमियत से देखना।''

'' मैं जो लिख रहा हूं वह अगली दो सदियों का इतिहास है। मैं उसका वर्णन कर रहा हूं जो आनेवाला है, जो इससे अलग तरीके से नहीं आ सकता-विनाशवाद का उदत बनकर ही आ सकता है। यह इतिहास अभी लिखा जा सकता है। क्योंकि इसकी जरूरत सक्रिय हुई है। यह भविष्य इस क्षण भी सैकड़ों इशारों में बात कर रहा है। यह नियति खुद को हर संगीत को सुनने के लिए सभी कान आतुर है। कुछ समय से हमारी समूची यूरोपियन संस्कृति दुर्घटना की तरफ गतिमान है। एक दशक से दशक की ओर बढ़ता चला जा रहा है: बेचैनी से, हिंसकता से, सिर के बल, उस नदी जैसा जो लक्ष्य तक पहुंचना चाहती है। जो सोचना नहीं चाहती; जो सोचने से डरती है।''

नीत्शे को एक बात सुस्पष्ट है कि पुराने मूल्य अंतिम साँसे गिन रहे है। उनका समय बीत गया है। हमें नए मूल्यों की जरूरत है। लेकिन उससे पहले हमें यह देखना है कि पुराने मूल्यों की कीमत क्या है। उसके देखे, विनाशवाद (निहिलिज्म) उन समूचे मूल्यों की तार्किक निष्पति है।

नीत्शे के नोट्श चार हिस्सों में बांटे गये है।

यहां हमें सतत ध्यान रखना है कि यह किताब, इसके परिच्छेद और उनके शीर्षक नीत्शे ने नहीं दिये हे। उसकी मृत्यु के बाद उसकी बहन एलिज़ाबेथ ने इसकी संरचना की है।

प्रथम परिच्छेद: निहिलिज्म या विनाशवाद।

दूसरा परिच्छेद: आज तक जो भी श्रेष्ठतम मूल्य थे उनकी समालोचना।

तीसरा परिच्छेद: नये विकास के सिद्धांत।

चौथा परिच्छेद: अनुशासन ओर संवर्धन।

विनाशवाद का आशय नीत्शे इस प्रकार कहता है, ''श्रेष्ठ मूल्य खूद-ब-खूद नीचे गिर जाते है। लक्ष्य का अभाव है। क्यों? का कोई जवाब नहीं है।''

इस परिच्छेद में नीत्शे का हमला मुख्य रूपेण ईसाइयत ने निर्मित किये हुए मूल्यों पर है। उनमें सबसे बड़ा मूल्य है, नैतिकता। नीत्शे की दृष्टि में नैतिकता और नीति सबसे झूठा और खतरनाक मूल्य है। जिसकी पकड़ मनुष्य जाति पर रही है। और इसकी दोषी है ईसाइयत। नीति प्राकृतिक नहीं है। कृत्रिम है। हर नैतिक सभ्यता निश्चित ही विनाशवाद में बदल जायेगी।

नीत्शे कहता है—''समय आ गया है जब हमें दो हजार वर्ष तक ईसाई बने रहने की कीमत चुकानी पड़ेगी। हम अपना वह चुंबकीय केंद्र खो रहे है। जिसके सहारे हम जी रहे थे। हम भटक गये है।''

नैतिक सभ्यता की पैदाइश क्या है? दुख वादी दर्शन, निराशा, नियंत्रण, प्रेम का आभाव, विवाह, गरीबी, सामाजिक असमानता, मनुष्य की गरिमा का विनष्ट होना, आत्महत्या की और झुकाव, शरीर और मन की रूग्णता...इत्यादि।

विनाशवाद के परिच्छेद में एक खास हिस्सा है: यूरोप का विनाशवाद। जाहिर है कि अठारहवीं शताब्दी में लोग दूर की यात्राएं नहीं करते थे। नीत्शे का अनुभव जगत यूरोप तक ही सीमित है। इसका मतलब यह नहीं है वह संकीर्ण है। क्योंकि उस सदी में पूरी पृथ्वी पर यूरोप की संस्कृति ही चरम शिखर पर थी। तो मनुष्य चेतना का सार-निचोड़ यूरोप में ही उपलब्ध था।

दूसरा परिच्छेद है: श्रेष्ठतर मूल्यों की समालोचना। यह परिच्छेद बहुत बड़ा है। और यही इस किताब की रीढ़ है। मनुष्य की संस्कृति के जो भी समा दूत मूल्य थे। उन सब पर नीत्शे व्यंग करता है और उनकी खाल उधेड़ कर रखता है। जैसे, ''ज्ञान और प्रज्ञा अपने आप में मूल्यवान नहीं है। न ही शुभ। मानवीय जीवन को देखते हुए ''सत्य'' ''शुभ'' ''पवित्र'' ''दिव्य'' इत्यादि ईसाई शैली के मूल्य बहुत खतरनाक सिद्ध हुए है। अभी भी मनुष्य जाति उस आदर्शवाद के कारण विनष्ट होने की कगार पर है। जीवन की दुश्मनी करना सिखाता है।''

पुराने मूल्यों को अच्छी तरह धराशायी कर नीत्शे नये विकास के सिद्धांत प्रस्तुत करता है। इस परिच्छेद की शुरूआत ''विल टु पावर-एज नॉलेज'' से होती है। ज्ञान प्राप्त करने की जिज्ञासा भी शक्ति की आकांक्षा ही है। नीत्शे के अनुसार उन्नीसवीं सदी की सबसे बड़ी जीत है, वैज्ञानिक विधि की विज्ञान पर हुई जीत। विज्ञान की खोज ने मनुष्य को एक वैज्ञानिक विधि एक मेथड़ दी है।

शक्ति की आकांक्षा जहां-जहां दिखाई देती है उनमें एक है: समाज और व्यक्ति।

इसके अंतर्गत नीत्शे लिखता है:

''मूल सिद्धांत सिर्फ व्यक्ति ही स्वयं को जिम्मेदार मानते है। समूह इसलिए बनाये गये है ताकि वे काम किये जायें जिन्हें करने का साहस व्यक्ति में नहीं होता। व्यक्ति अपनी खुद की इच्छाओं को पूरा करने का साहस भी नहीं रखता। परोपकार करने की अपेक्षा हमेशा व्यक्तियों से ही की जाती है। समाज से नहीं। ''अपने पड़ोसी वास्तविक पड़ोसी को शामिल नहीं करता। वह संबंध तो मनु के आदेश के अनुसार ही चलता है; ''जिन देशों की सीमाएं एक ही है वह सब, और उनके दोस्त भी, अपने दुश्मन है यही मानकर चलें।''

''समाज की अध्ययन करना बहुत कीमती है क्योंकि मनुष्य समाज की तरह बहुत सरल है, एक व्यक्ति की उपेक्षा।''

पुलिस, कानून, वर्ग, व्यापार और परिवार इनको नीत्शे शासन द्वारा आयोजित ''अनैतिकता'' कहता है।

जब तक हाथ में ताकत नहीं होती तब तक व्यक्ति स्वतंत्रता चाहता है। एक बार हाथ में ताकत आ गई तो फिर वह दूसरे को दबाना चाहता है। अगर ऐसा नहीं कर सकता तो फिरा वह न्याय चाहता है; जिसका अर्थ है; समान ताकत।''

श्रेष्ठ मनुष्य और भीड़ का मनुष्य। जब महान लोग नहीं होते तब व्यक्ति ''मिनी भगवान'' या अतीत के महान लोगों को अवतार बनाते है। धर्म का उद्रेक यही दिखाता है कि मनुष्य अपने आपसे खुश नहीं है।

किताब का अंत नीत्शे के उन विचारों से किया गया है जिनमें वह विश्व की नई अवधारण प्रस्तुत करता है।

''विश्व है। वह कुछ ऐसा नहीं है, जिसे होना है, या जो विदा होता है। वह न कभी हुआ है, न कभी विदा होगा। वह अपने आप पर जीता है। हमें एक क्षण के लिए भी निर्मित विश्व के सिद्धांत पर ध्यान नहीं देना चाहिए। आज ''निर्माण'' की अवधारण क्या है। इसे बताया नहीं जा सकता। वह महज एक शब्द है, अंधविश्वास के युग का एक बचा-खुचा खंडहर।

''और पता है मेरे लिए यह विश्व क्या है? क्या मैं आपको उसे मेरे आइनें में दिखा सकता हूं? यह विश्व: ऊर्जा का राक्षस। न आदि, न अंत। एक मजबूत लोह चुंबक की शक्ति जो कभी चुकती नहीं, अपने आपको सिर्फ रूपांतरित करती है। पूर्ण, जिसका आकार कभी बदल नहीं सकता। ऐसा घर जिसमें न ता फायदा है न नुकसान। ''नथिंगनेस'' ''नाकुछ'' इसकी सीमा है।

बहती हुई, एक साथ दौड़ती हुई शक्तियों का सागर.....यह विश्व स्वयं को बनाता और मिटाता हुआ, निरूद्देश्य अगर इसके वर्तुल का आनंद अपने आप में उद्देश्य न कहलाया जाये। क्या इस विश्व को आप कोई नाम देना चाहेंगे? उसकी पूरी पहेली के लिए कोई हल? क्या आप अपने लिए एक प्रकाश चाहेंगे—आप जो कि ढँके रहें तो अच्छा, ताकतवर, बहुत निर्भय, अत्यंत निशाचर लोग? यह विश्व केवल शक्ति के लिए आकांक्षा है, और कुछ भी नहीं। ओर आप भी यही है; शक्ति के लिए आकांक्षा और कुछ भी नहीं।''

ओशो का नजरिया:

यह प्रतिभाशालियों की किस्मत में लिखा है कि वे गलत समझे जायेंगे। यदि प्रतिभाशाली को, जीनियस को गलत न समझा गया तो यह जीनियस है ही नहीं। यदि सामान्य जन उसे समझते है तो उसका अर्थ हुआ वह उसी के तल से बोल रहा है। फ्रेडरिक नीत्शे को गलत समझा गया। इससे बहुत बड़ी दुर्घटना घटी है। लेकिन शायद ऐसा ही होना था। नीत्शे जैसे आदमी को समझने के लिए उसके जैसी ही चेतना चाहिए। एडोल्फ हिटलर इतना मूढ़ है कि यह सोचना कतई संभव नहीं है। कि वि नीत्शे के दर्शन को समझा होगा। लेकिन वह नीत्शे के दर्शन का पैगंबर बना। और उसके मूढ़ दिमाग के अनुसार उसने व्याख्या की; न केवल व्याख्या की, उस पर अमल किया। और उसका नतीजा था, दूसरा विश्व युद्ध।

जब नीत्शे ''विल टु पावर'' शक्ति की आकांक्षा के बारे में लिख रहा था। तो उसका अर्थ दूसरे पर हुकूमत चलाने का नहीं है। लेकिन नाझियों ने यही अर्थ लिया। शक्ति की आकांक्षा हुकूमत की आकांक्षा से बिलकुल उल्टी है। हुकूमत की आकांक्षा हीन ग्रंथि से आती है। दूसरे पर हुकूमत चलाकर आदमी यही सिद्ध करना चाहता है कि वह हीन नहीं है। लेकिन इसके लिए उसे सबूत चाहिए। बगैर सबूत के वह जानता है कि वह एक अदना सा आदमी हे। जो वास्तव में महान है उसे अपनी महानता का कोई सबूत नहीं चाहिए। क्या गुलाब उसके सौंदर्य की दलील देता है? क्या चाँद उसकी महिमा को सिद्ध करने की फ्रिक करता है? क्योंकि महान व्यक्ति जानता है कि वह महान है।

शक्ति की आकांक्षा का दूसरे से कोई लेना-देना नहीं है। वह अपनी ही निजता में अपनी ही खिलावट की गरिमा में डोलता रहता है। नीत्शे के वचनों की गलत व्याख्या कर हिटलर और उसके अनुयायी नाझियों ने संसार का इतना नुकसान किया है कि उसका कोई हिसाब नहीं। नीत्शे से पहले किसी भी रहस्यदर्शी या कवि को यह भुगतना नहीं पडा था। न जीसस, न सुकरात की इतनी बुरी किस्मत थी। कि वे इतने बड़े पैमाने पर गलत समझे जायें; और जिसका अंत अस्सी लाख यहूदियों की हत्या पर हो।

थोड़ा वक्त लगेगा। जब हिटलर, नाझी और दूसरी विश्व युद्ध भुला दिये जायेंगे तभी नीत्शे अपनी गरिमा प्रगट कर सकेंगे। नीत्शे का पुनरागमन हो ही रहा है। नीत्शे की नई व्याख्या होनी जरूरी है ताकि नाझियों ने उसके सुंदर दर्शन पर जो कचरा डाल रखा है वह दूर हो जाए। नीत्शे को शुद्ध करना है, पुनरुज्जीवित करना है।

नीत्शे का नाझी के हाथ में पड़ना एक संयोग है। उन्हें लड़ने के लिए कोई दर्शन चाहिए था। नीत्शे सैनिक की सुंदरता का प्रशंसक था। नीत्शे ने उन्हें एक बहाना दिया—सुपरमैन का। उन्होंने तत्क्षण ''सुपरमैन'' की कल्पना को उठा लिया। नॉडिक जर्मन जाति नीत्शे का सुपरमैन बनने वाली थी। वे विश्व पर हुकूमत करना चाहते थे। और नीत्शे बहुत सहायक बना। अब उनके पास पूरा दर्शन था कि जर्मन जाति श्रेष्ठ जाति है। और वे ही सुपरमैन को जन्म देंगे।

नीत्शे ने सोचा भी नहीं होगा कि वे लोग इतने खतरनाक हो जायेंगे और मनुष्य जाति के लिए एक दुस्वप्न बन जायेंगे। लेकिन नीत्शे इतना अधिक महत्वपूर्ण है कि उसके विचारों को स्वच्छ, निर्मल करना सार्थक है। और आश्चर्य यह है कि न केवल नाझी बल्कि सभी दार्शनिक नीत्शे को गलत समझे। शायद उसकी प्रतिभा इतनी बुलंद थी तुम्हारे तथाकथित महान लोग भी उसके आगे बौने पड़ गए।

मौलिक चिंतन के जगत में वह इतनी नई अंतदृष्टियां ला रहा था कि उनमें से एक भी दृष्टि उसकी गिनती विश्व के सर्वश्रेष्ठ दार्शनिकों में कर सकती थी। और उसकी दर्जनों अंतदृष्टियां है जो नितांत मौलिक है। अगर ठीक समझा जाये तो नीत्शे सचमुच वह वातावरण और वह आबोहवा बना सकता है जिसमे सुपरमैन पैदा हो सकता है। वह मनुष्य जाति को रूपांतरित कर सकता है।

मैं इस आदमी का अत्यधिक समादर करता हूं। और उदास भी हूं कि उसे गलत समझा गया। इतना अधिक की उसे पागल खाने में भेज दिया गया। डॉक्टरों ने कह दिया कि वह पागल है। उसके विचार साधारण आदमी से इतने परे थे कि साधारण आदमी को उसे पागल करार देने में बड़ी खुशी हुई। ''अगर वह पागल नहीं है तो हम बिलकुल नाचीज हुए।'' उसे जबरदस्ती पागल खाने भेज दिया गया।

मेरा अपना मानना है कि वह पागल हुआ ही नहीं। वह सिर्फ अपने समय से आगे था; बहुत ज्यादा ईमानदार और सच्चा था। राजनीतिक, पुरोहित और बौने लोगों के बारे में उसे जो ठीक लगता, वह कहता था। लेकिन बौने बहुत ज्यादा है, और आदमी अकेला था। उसकी कौन सुनता? उसकी आखिरी किताब ''विल टू पावर'' इसका सबूत है कि वह पागल नहीं था। इसे उसने पागलख़ाने में लिखा। मैं पहला आदमी हूं जो कह रहा है कि नीत्शे पागल नहीं था। पूरी दूनिया इतनी चालाक, इतनी राजनैतिक हे लोग वे ही बातें करते है जो उन्हें प्रतिष्ठा देती है। जिनके लिए भीड़ तालियां बजाती है। तुम्हारे बड़े-बड़े विचारक भी नहीं है।

जो किताब उसने पागल खाने में लिखी वह श्रेष्ठतम है, और उस बात का सबूत है कि वह पागल नहीं था। ''विल टू पावर'' उसकी आखिरी किताब है। लेकिन वह उसे प्रकाशित नहीं करवा सका। पागल की किताब कौन छापेगा? उसके कई प्रकाशकों के द्वार खटखटाये लेकिन उन्होंने मना कर दिया। और अब सभी यह मानते है कि वह उसकी सर्वश्रेष्ठ किताब है। उसकी मृत्यु के बाद उसकी बहन ने उसका मकान और चीजें बेचकर किताब छपवाई क्योंकि यह नीत्शे की अंतिम इच्छा थी।

यदि एक पागल ''विल टु पावर'' जैसी किताब लिख सकता है तो इस दूनिया में पागल होना ही बेहतर है।''

ओशो

दि ग्रेट झेन मास्टर ताई हुई

दि विल टु पावर

(भूमिका जो स्वयं नीत्शे लिखना चाहता था)

सोचने के लिए एक किताब; और कुछ नहीं। वह उनकी है जिनके लिए सोच-विचार एक आनंद है—और कुछ नहीं।

इसका जर्मन भाषा में लिख जाना समय से पहले है—कम से कम। काश में इसे फ्रैंच में न लिखता ताकि जर्मन राइकी की आकांक्षाओं का समर्थन न बनता।

आज के जर्मन सोचते नहीं है। उन्हें कुछ और ही आनंदित और प्रभावित करता है

''विल टू पावर'' एक सिद्धांत की तरह उन्हें प्रभावित कर सकती है।

आज के जर्मन लोगे को सोचने की आदत नहीं है बजाएं किन्हीं अन्य लोगों की अपेक्षा। लेकिन किसे पता? दो पीढ़ियों के बाद, अपनी सत्ता को बरबाद करने का राष्ट्रीय रिवाज कायम रखने के लिए जो ''कुरबानी करनी पड़ती है, और मूढ़ बनना पड़ता है, उसकी जरूरत न रह जायेगी।

(इसके पहले मुझे लगा था, काश मैं जुरतुस्त्र जर्मन में न लिखता)

नीत्शे

31/ ब्रदर्स कार्मोझोव-(दोस्तोव्सकी)

ब्रदर्स कार्मोझोव-(फ्योदोर दोस्तोव्सकी)

The Brothers Karamazov by Fyodor Dostoevsky

विश्व विख्यात रशियन उपन्यासकार फ्योदोर दोस्तोव्सकी की श्रेष्ठ रचना ब्रदर्स कार्मोझोव ओशो की दृष्टि में सर्वश्रेष्ठ तीन किताबों में से एक है। यह कहानी है बेइंतहा प्यार की, कत्ल की और आध्यात्मिक खोज की। यह कहानी वस्तुत: लेखक की अपनी खोज की कहानी है। उसकी खोज यह है कि सत्य क्या है। मनुष्य क्या चीज है, जीवन क्या है, ईश्वर क्या है, है या नहीं। इस उपन्यास के सशक्त चरित्र दोस्तोव्सकी की गहरी निगाह के प्रतीक है जो मनुष्य के अवचेतन की झाड़ियों में गहरी पैठती है। इस किताब के विषय में वह खुद कहता है कि ''अगर मैंने इस उपन्यास को पूरा कर लिया तो मैं प्रसन्नतापूर्वक विदा लुंगा। इसके द्वारा मैंने अपने आपको पूरी तरह अभिव्यक्त कर लिया है।

यह कहानी बहती है फ्योदोर कार्मोझोव और उसके चार बेटों के अंतर्संबंधों के बीच उपन्यास का खलनायक है। यह अर्थपूर्ण है कि दोस्तोव्सकी उसे अपना नाम देता है। उसका सबसे छोटा बेटा जो कि नेक और भला है, सबका प्यारा है, इस उपन्यास का नायक है।

फ्योदोर कार्मोझोव वैसा ही है जैसे कि खलनायक आम तौर पर चित्रित किये जाते है—कुरूप, लालची, थोथा, चालाक, भद्दा, सभी उससे नफरत करते है। दूसरे की भावनाओं के प्रति वह बिलकुल जड़ है। शराबखोरी और व्यभिचार के बगैर ऐसे लोगों का चरित्र चित्रण पूरा नहीं होता। फ्योदोर में ये भी गुण है। फ्योदोर के तीन बेटे दो पत्नियों से है और चौथा बेटा अवैध है। चारों बेटे उससे घृणा करते है। हर एक के पास अपने पिता की हत्या करने का ठोस कारण है। दिमित्रि सबसे बड़ा बेटा अपने पिता की तरह कामुक है। उसकी मां ने उसके लिए जो छोटी सी जायदाद छोड़ी थी, उसे फ्योदोर हड़प कर लेता है। अपने ही बेटे से झूठे दस्तखत करवाकर। और बदले में सिर्फ थोड़ी पॉकेट मनी उसे देता है। इतना ही नहीं दिमित्रि जिन युवतियों से दोस्ती करता है उन सबको फ्योदोर अपने शिकंजे में फंसा लेता है। बाप बेटे के बीच पैसों के लिए, प्रेमिका के लिए निरंतर कलह चलती रहती है। दिमित्रि क्रोधी, फिजूलखर्च और हिंसक वृति का है। वह आये दिन अपने पिता को मार डालने की धमकियां देता रहता है।

दूसरा बेटा स्मेरद्याकोव, जो कि अवैध है, फ्योदोर का बावर्ची और नौकर बनकर रहता है। वह थोड़ा सिरफिरा भी है। वह मानसिक दृष्टि से रूग्ण है।

इवान तीसरा बेटा है जो कि बुद्धिजीवी कहलाता है, वह अपनी ही बौद्धिक आशंकाओं और संदेहों से घिरा, परेशान सा रहता है। उसे बीच-बीच में भ्रांतियों के झटके भी आते है। सब लोग उसे मानसिक रूप से असंतुलित मानते है।

सबसे छोटा बेटा, जिसे नायक कहा जा सकता है, फ़क़ीराना ढंग का है। सज्जन गहन रूप से धार्मिक, प्रज्ञावान, सौम्य, करुणापूर्ण, अल्योशा सबकी आँख का तारा है। अत्यंत मानवीय और मृदुभाषी अल्योशा अपने पिता की क्रूरता और किये गये अपमान के प्रति कोई प्रतिक्रिया नहीं करता। अल्योशा का धार्मिक रुझान इतना प्रबल होता जाता है कि वह शहर में स्थित एक मठ के बुजुर्ग पादरी का शिष्य बन मठ में प्रवेश करता है। अल्योशा अपने गुरु से इतनी आत्मीयता से जुड़ा होता है कि गुरु की मृत्यु पर वह मठ छोड़ देता है। अंतत: फ्योदोर के बेटों में से एक बेटा उसकी हत्या कर देता है। स्वभावत: दिमित्रि पर लोगों का और पुलिस का शक जाता है क्योंकि वह सरे आम पिता का खून करने की धमकी दिया करता था। उसे गिरफ्तार कर दोषी भी

ठहराया जाता है। लेकिन असली खूनी होता है स्मरद्याकोव—अवैध, मानसिक रूग्ण बेटा। वह फ्योदोर की हत्या कर खुद को भी समाप्त कर देता है, लेकिन मरने से पहले इवान के आग अपना गुनाह कबूल करता है। उन दिनों रशिया में किसी भी संगीन अपराध की सज़ा थी: साइबेरिया के बर्फ़ीले बियाबान में दिन काटना। उपन्यास आकस्मिक रूप से समाप्त होता है। दिमित्रि को साइबेरिया ले जाने की तैयारियाँ हो रही है। और वह चुपके से भाग निकलने की योजना बना रहा है। उधर अल्योशा स्कूल के बच्चों के आगे एक भाषण दे रहा है।

मानवीय संबंधों के उलझे हुए जाल प्रकट करने के लिए दोस्तोव्सकी को 936 पन्ने भी कम मालूम हुए। वह इस कहानी को पूरा करने के लिए एक और उपन्यास लिखना चाहता था लेकिन उससे पहले ही उसकी अपनी कहानी खत्म हो गई।

किताब की झलक:

आशय और भाषा शैली, दोनों पहलुओं में दोस्तोव्सकी लाजवाब है। कहीं-कहीं उसकी गद्य विशुद्ध बन जाता है। ओशो उसकी इसी विशेषता की प्रशंसा करते है।

प्रस्तुत है दोस्तोव्सकी की भाषा शैली की एक झलक–

''तीस सेकंड तक अल्योशा शव पेटिका की और देखता रहा, ढँके हुए उस निश्चल शरीर की और जिसके सीने पर एक चिन्ह था और सिर पर क्रॉस बना हुआ ताज। उसे अभी-अभी मृत गुरु की आवाज सुनाई दी थी और वह आवाज अभी भी उसके कानों में गूंज रही थी। अल्योशा कानों में परे प्राण लाकर सुन रहा था। शायद फिर एक बार.....अचानक वह चल पडा और कमरे से बाहर निकल आया।

''वह दरवाजे के बाहर नहीं रुका शीध्रता से आँगन में आ गया। उसकी आत्मा भावनाओं से छलक रही थी। और उसे लगा कि घुटन से मुक्त होकर घूमने के लिए उसे बहुत सा अवकाश चाहिए। सिर के ऊपर आसमान का विशाल गोल गुंबद था जिसमे चमकते हुए खामोश सितारे जड़ें थे। निश्चल, मद्धिम आकाशगंगा क्षितिज तक फैली हुई दो धाराओं में बंट गई थी। पूर्णतया स्तब्ध रात पृथ्वी से लिपटी हुई थी। सफेद मीनारों और सुनहरे गुंबद गहरे नीले आकाश के आगोश में चमक रहे थे। पतझर के शानदार फूल इमारतों से लिपटी हुई क्यारियों में भोर होने ते चैन की नींद ले रहे थे। धरती की खामोशी आसमान की खामोशी में घुल रही थी। और धरती का रहस्य सितारों के रहस्य में विलीन हो रहा था। खड़ा-खड़ा अल्योशा इस परिदृश्य को कुछ देर आंखों से पीता रहा, और फिर कटी घास की भांति जमीन पर गिर पडा।

उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह जमीन को क्यों आलिंगन कर रहा था। उसे कितना ही चूमे, उसका मन भरता नहीं था। आखिर चूमनें की चाहत ही क्यों उठ रही थी। वह बार-बार जमीन को चूम रहा था। उसे आंसुओं से भिगो रहा था, कसमें खा रहा था, कि वह जमीन से हमेशा-हमेशा प्यार करेगा। उसकी आत्मा में एक स्वर गुंजा, ''आनंद के आंसुओं से धरती को सिंचो, और उन आंसुओं से प्रेम करो।''

वह किस खातिर रो रहा था? वह मस्ती से रो रहा था। वे अनगिनत तारे तो अनंत दूरी से उस पर रोशनी बरसा रहे थे उनसे पुलकित होकर रो रहा था। वह अपनी मस्ती से जरा भी शर्मिंदा नहीं था। मानो परमात्मा के उन अनगिनत लोको के सूत्र उसकी आत्मा से आ मिले है। और उसकी आत्मा उन विभिन्न लोको के संस्पर्श से स्पंदित हो रही थी। उसके भीतर हर कुछ और हर किसी को क्षमा करने की ललक जाग उठी, साथ ही क्षमा मांगने की भी। उसकी आत्मा में आवाज गूँजती रही, गुनगुनाती रही। प्रतिपल वह सुस्पष्टता से, लगभग शारीरिक तल पर किसी यथार्थ, अविनाशी तत्व को महसूस करने लगा ऊपर फैले हुए आकाश की गोलाई की भांति जो उसकी आत्मा में प्रवेश कर रही थी।

न जाने कोई एक ख्याल उसकी आत्मा में सदा के लिए बस गया था। जब वह जमीन पर गिरा तब कमजोर जवान था, जब उठा तब मजबूत निश्चयी योद्धा था। अब वह ज्ञानी था। उस मंत्रमुग्ध क्षण में वह ज्ञान घटा था। और उसके बाद अल्योशा कभी भी, एक बार भी उस क्षण को नहीं भूलेगा। वह बाद मै दृढ़ निश्चय से लरजते हुए स्वर में कहेगा। ''उस घड़ी कोई मेरी आत्मा में पाहुन बना था।''

तीन दिन बाद, गुरु के आदेश के अनुसार उसने मठ को छोड़ दिया और बाहर की दुनिया में निकल पडा।''

ओशो का नज़रिया:

फ्योदोर दोस्तोव्सकी अपनी कोटि आप है। वह जीनियस था। विश्व की भाषाओं में यदि दस सर्वश्रेष्ठ उपन्यासों को चुनना हो तो उन दस में तीन उपन्यास दोस्तोव्सकी के होंगे।

मनुष्य और उसकी समस्याओं के विषय में उसकी अंतर्दृष्टि तुम्हारे तथाकथित मनशिचकित्सकों से कहीं अधिक गहरी थी। और उनमें वह महान रहस्यदर्शीयों की ऊँचाइयों छूता है। लेकिन वह खुद बीमार है। एक मनोवैज्ञानिक रूग्ण। उस पर करूणा करनी जरूरी है क्योंकि वह बहुत पीड़ा में जिया, असहनीय पीड़ा में। उसे कभी खुशी का एक क्षण नसीब नहीं हुआ। वह विशुद्ध दुःख और संत्रास था। फिर भी वह ऐसे उपन्यास लिख सका जो शायद विश्व साहित्य में सर्वश्रेष्ठ है। ब्रदर्स कार्मोझोव इतना महान है कि कोई बाईबिल, कुरान या गीता उसकी बराबरी नहीं कर सकते है।

उसके बारे में यह आश्चर्यजनक तथ्य है: वह इतनी अद्‌भुत अंतदृष्टियां लिख रहा था मानों आविष्ट हो गया था। लेकिन वह खुद नर्क में जी रहा था। और वह नर्क उसने स्वय निर्मित क्या हुआ था। उसने कभी किसी से प्रेम नहीं किया। और न ही उससे किसी ने किया। उसे कभी पता नहीं चला कि हंसी जैसा भी कुछ होता है। उसकी गंभीरता रूग्णता बन चुकी थी। और भीतर भी उसके भीतर इतनी स्पष्टता थी। वह एक सुव्यवस्थित पागल था।

उपन्यास का एक पात्र इवान कार्मोझोव एक अर्थपूर्ण वचन कहता है—शायद दोस्तोव्सकी उसके द्वारा बोल रहा है—''यदि ईश्वर होगा और मुझे मिल जायेगा तो मैं उसकी टिकट वापस कर दूँगा। और उससे कहूंगा ''तूने मुझसे पूछे बगैर मुझे जीवन में क्यों भेज दिया।? तुझे क्या हक है? मैं तेरी टिकट तुझे वापस करना चाहता हूं।''

यह आत्मघाती मस्तिष्क है। उसने हमेशा यही लिखा है कि अस्तित्व निरर्थक हे, सांयोगिक है, और जीवन में कहीं कोई सार नहीं दिखाई देता।

उसके निष्कर्ष गलत थे लेकिन आदमी बहुत प्रतिभाशाली था, अत्यंत सक्षम। अगर वह कुछ बातें गलत भी लिखता है तो इतनी सुंदरता से और कलात्मक ढंग से कि लाखों लोग उससे प्रभावित हुए।''

ओशो

दि गोल्डन प्यूचर

32/ रिसरेक्शन-(टॉलस्टॉय)

रिसरेक्शन-(लियो टॉलस्टॉय)

Resurrection-Leo Tolstoy

''रिसरेक्शन'' टॉलस्टॉय का आखिरी उपन्यास है। इससे पहले ''वार एंड पीस'' और ऐना कैरेनिना'' जैसे श्रेष्ठ और महाकाय उपन्यास लिखकर टॉलस्टॉय ने विश्व भर में ख्याति अर्जित कर ली थी। ऐना कैरेनिना के बारे में उसने खुद कहा कि मैंने अपने आपको पूरा उंडेल दिया है। इस उपन्यास के बाद टॉलस्टॉय की कल्पनाशीलता वाकई चुक गई थी क्योंकि इसके बाद वह दार्शनिक किताबें लिखने लगा था। अपने आपको एक संत या ऋषि की तरह प्रक्षेपित करने लगा था। उस भाव दशा में ''रिसरेक्शन'' जैसा उपन्यास लिखने की प्रेरणा टॉलस्टॉय के पुनर्जन्म जैसी ही थी। रिसरेक्शन अर्थात पुनरुज्जीवन।

अख़बार में प्रकाशित एक छोटी सी खबर पढ़कर टॉलस्टॉय के भीतर का सोया हुआ सर्जन जाग उठा और उसने इस उपन्यास को जन्म दिया। ''रिसरेक्शन'' के कई अंश लंबे समय तक विवाद के घेरे में पड़े थे। रशियन चर्च ने उन पर प्रतिबंध लगा दिया क्योंकि वे चर्च के पाखंड और राजनीति पर प्रहार करते थे। चर्च जीसस के सूत्रों पर जिस तरह अमल कर रहां था वह टॉलस्टॉय को बिलकुल पसंद नहीं था, इसलिए अपने उस पर चोट की।

टॉलस्टॉय के सभी नायकों में उसकी अपनी छवि झलकती है। वैसी इस उपन्यास के नायक में भी साफ नजर आती है। यह उपन्यास लिखते समय टॉलस्टॉय की मनोदशा कुछ दार्शनिक की थी और कुछ उपन्यासकार की। अंत: अपने पात्रों की कहानी कहते-कहते वह बीच में कूदकर अपना दर्शन पिलाने लगता था। और ये ही पन्ने चर्च को आपत्तिजनक लगे। उपन्यास की शुरूआत जीसस के पाँच सूत्रों से होती है। उनमें से एक है:

''फिर पीटर उसके पास आया और उसने पूछा, ''प्रभु मेरा भाई मेरे खिलाफ कितनी बार अपराध करेगा तब मैं उसे माफ करूंगा—सात बार?''

जीसस ने कहा, ''सात बार नहीं, सतहत्तर बार।''

उपन्यास की पूरी कहानी राजकुमार नेखलुदोव और एक गरीब और खुबसूरत कैदी स्त्री के अंतर्संबंधों की कहानी है। उपन्यास की शुरूआत ही क़ैदख़ाने में होती है। मैस लोवा, एक महिला जो कि वेश्या वृति से रहती थी। एक अमीर आदमी की हत्या के जुर्म में कैद की जाती है। उसका अपराध अभी साबित नहीं हुआ है। लेकिन उस दिन उसे अदालत में पेश किया जाना था। अदालत में ज्यूरी के जो सदस्य थे उनमें से एक था राजकुमार नेखलुदोव। कट घरे में खड़ी मैस लोवा को देखकर नेखलुदोव की पुरानी यादें जाग जाती हे। जब वह बीस-इक्कीस साल का था तब उसकी मौसियों के घर मैस लोवा काम करती थी। उस समय नेखलुदोव ने उसके साथ रिश्ता बनाया था। बाद में उसके हाथ में सौ रुबल थमा कर वह चला गया और सेना में भरती हुआ।

इधर मैसलोवा के पेट में नेखलुदोव का बच्चा पलने लगा। मौसियों को उसके गर्भवती होने की खबर लगी तो उन्होंने उस पर लांछन लगाकर घर से निकाल दिया। बेसहारा मैसलोवा का बच्चा पैदा होते ही मर जाता है और वह वेश्यालय चली गई। उसके पास जो ग्राहक आते थे उन्ही में से एक की हत्या करने के जुर्म में वह पकड़ी गई। मैसलोवा का जुर्म किसी भी तरह से साबित नहीं हो सका और फिर भी ज्यूरी ने उसे साइबेरिया में चार साल तक सश्रम कारावास की सज़ा दे दी। मैसलोवा रो-रोकर कहती रही, ''मैंने हत्या नहीं की, मैं निर्दोष हूं।''

लेकिन न्यायाधीशों को और भी कई काम थे, एक वेश्या की सच्चाई में गहरे उतरने की फुर्सत नहीं थी। सिर्फ नेखलुदोव की अंतरात्मा उसे कचोटने लगी। एक तो ज्यूरी के फैसले को वह बदल सकता था। लेकिन

उसकी कायरता ने उसे मैसलोवा के पक्ष में कुछ कहने नहीं दिया। उसे डर था कि कहीं उन दोनों के संबंध का भेद न खुद जाए।

खैर, देर से ही, नेखलुदोव ने अपनी गलती को सुधारने का निश्चय किया। उसका आदर्शवादी मन मैसलोवा की हालत के लिए खुद को जिम्मेदार मानने लगा। न वह मैसलोवा को फुसलाता, न उसे घर छोड़ना पड़ता, न उसका बच्चा मरता, न वह वेश्या बनती ओर इस मुक्दमें में फँसती।

इसके बाद नेखलुदोव की जिंदगी का एक ही मकसद हो गया: मैसलोवा को इस इल्जाम से बरी कराना और उससे विवाह कर उसे इज्जतदार जिंदगी देना। चूंकि वह राजकुमार था। बड़े-बड़े अधिकारियों से उसकी पहचान थी, समाज में प्रतिष्ठा थी, उसने वकीलों के द्वारा सीनेट में अपील की कि निचली अदालत के निर्णय पर पुनर्विचार किया जाये। वहां उसकी अपील खारिज हुई तो उसने खूद ज़ार से अपील की। वहां वह सफल हुआ और मैसलोवा की सज़ा कम हुई—साइबेरिया में चार साल सामान्य कारावास, सश्रम नहीं।

मैसलोवा से मिलने के बाद नेखलुदोव के समूचे जीवन दर्शन में बदलाव हुआ। उसने गरीब किसानों को अपनी ज़मीन दान देना शुरू कर दी। उसके रिश्तेदारों और अन्य राज परिवारों में उसके पागलपन की खबर फैल गई—कि वह एक हत्यारिन वेश्या से विवाह करना चाहता है। और अपनी संपति गरीबों में बांट रहा है। लेकिन नेखलुदोव इस सबसे एक प्रकार की निर्मलता अनुभव कर रहा था, मानो धुल गया हो। इधर वह जब भी मौका मिलता मैसलोवा से मिलने चला जाता। इतनी बदसूरत जिंदगी जी कर मैसलोवा जड़ हो चुकी थी। नेखलुदोव के विवाह प्रस्ताव का उस पर कोई असर नहीं हुआ। अब तक क़ैदियों के बीच भी इन दोनों की कहानी फैल चुकी थी। लेकिन मैसलोवा सोचती थी कि नेखलुदोव उस पर दया कर रहा है और वह यह बिलकुल नहीं चाहती थी।

जब लगभग दो हजार क़ैदी भेड़-बकरीयों की तरह साइबेरिया ले जाये गये तो दूसरी रेल से नेखलुदोव भी साइबेरिया गया। मैसलोवा की सज़ा पूरी होने तक वि भी उसके साथ रहना चाहता था। यहां से कहानी अचानक मोड़ लेती है। मैसलोवा नेखलुदोव से विवाह करने के लिए इंकार कर देती है। वह जिन राजनैतिक क़ैदियों के साथ होती है उन्हीं में से एक, सिमॉनसन के साथ प्रेम हो जाता है। उसका मानना था कि नेखलुदोव अपना फ़र्ज अदा कर बीते हुए कल का प्रायश्चित करना चाहता है और सिमॉनसन आज वह जैसी है वैसी ही स्वीकार कर उससे प्रेम करता है।

नेखलुदोव का गुब्बारा अचानक फूट जाता है, प्रायश्चित, त्याग, कर्तव्य–सारे आदर्श एक झटके में बिखर जाते है। वह अपने मन को समझा लेता है कि मैसलोवा इससे बहुत प्रेम करती है, इसलिए नहीं चाहती कि अपनी कुरूप जिंदगी का साया उसकी राजसी जीवन शैली पर पड़े।

मैसलोवा से मिलने नेखलुदोव क़ैदख़ाने जाता रहा और कैदियों के जीवन से भली भांति परिचित हुआ। कैद खाने की बदतर हालत गंदगी, कैदियों के साथ किया जाने वाला अमानवीय व्यवहार, उनकी भुखमरी, इन बातों का नेखलुदोव के संवेदनशील मन पर गहरा असर होता रहा। उसे सबसे व्यथित करनेवाली बात थी अनेक-अनेक निर्दोष लोगों का कारावास। उन्हें पता ही नहीं था कि उनका गुनाह क्या है। और फिर भी पुलिस उन्हें पकड़कर ले आती है। उन्हें अंदर बंद कर दिया जाता। उनकी कई सुनवाई नहीं थी और न उन्हें कोई इंसाफ मिलता। सबको पकड़कर एक मुश्त साइबेरिया भेज दिया जाता।

उन दिनों अधिकांश रशियन जनता भयंकर गरीबी में जी रही थी। उनके शरीर के कंकाल, बीमार बच्चे और जर्जर बूढ़े, और आधे पेट मेहनत मजदूरी करनेवाले पुरूष देखकर ही नेखलुदोव ने अपनी ज़मीनें उनके नाम कर दी थी।

सामान्य नागरिक के जीवन के इन भीषण दुखों को देखकर नेखलुदोव असहनीय पीड़ा से भर उठा। वह लास्ट टैस्टामैंट में सांत्वना ढूंढने लगा। उसने मैथ्यू के नियम पढ़े—''अपने पड़ोसी से प्रेम करो, कोई एक गाल पर चांटा मारे तो दूसरा आगे कर दो'' इत्यादि।

उसे लगने लगा कि आदमी का अपनी ज़िदगी पर बस कहां, वह यहाँ किसी के द्वारा भेजा गया है। और जिसने भेजा है वही उसका मालिक है। आदमी खुद मालिक बनने की कोशिश करता है और वहीं वह इन नियमों के विपरीत जाता है, दुःख पाता है।

जीसस ने कहा, ''पहले ईश्वर का राज्य खोजा, बाकी सारी चीजें तुम्हें अपने आप मिल जायेगी।

हम उल्टा करते है, पहले चीजों को इकट्ठा करने में मशगूल हो जाते है, और ईश्वर के राज्य की कोई फ्रिक नहीं करते।

इस मनन-चिंतन से नेखलुदोव की चेतना में मानों क्रांति घट गई। और वह नई सुबह के लिए, नई जिंदगी के लिए तैयार हुआ। यही उसका पुनरुज्जीवन था।

इस उपन्यास को पढ़ते हुए यह ख्याल में लेना बहुत जरूरी है कि यह समय के किस दौर में लिखा गया था। यह किताब 1899 में लिखी गई। वह विख्यात रशियन क्रांति के पहले का समय था। जमींदारी, जार शाही, गरीब ओर अमीर के बीच की अलंघ्य खाई, ये सब रशियन समाज व्यवस्था के अंग थे। उन दिनों रशिया पर ईसाई धर्म की पकड़ जबरदस्त थी जैसे कि पूरे यूरोप में थी। जीसस के मूल सूत्र खो गए थे। और चर्च तथा चर्च का आडंबर बहुत शक्तिशाली हो गया था। समय के इस दौर में जो-जो बुद्धिजीवी हुए—गैलीलियो से लेकिर बर्ट्रेंड रसेल तक—उन सबने चर्च के द्वारा फैलाये गये पाखंड को मानने से साफ इंकार कर दिया। स्वभावत: उसकी कीमत भी चुकाई—मृत्यु दंड से लेकर सामाजिक बहिष्कार तक।

टॉलस्टॉय भी इन्हीं विद्रोहियों के सिलसिले का हिस्सा था। कारागृह में कैदियों के लिए हर रविवार की सुबह चर्च द्वारा एक धर्म सभा आयोजित की जाती थी। पादरी जीसस और मेरी, पवित्र आत्मा और ईश्वर की खोखली बातें किये जाते जिनका इन सजायाफ्ता, बीमार, भूखे, परेशान कैदियों से कोई तालमेल नहीं होता। उस सभा के विषय में टॉलस्टॉय लिखता है:

''उस सभा में जो भी मौजूद थे, पादरी से लेकर मैसलोवा तक, वे इस बात से बेखबर थे कि वह जीसस जिसके नाम पर पादरी बार-बार दोहरा रहा था, जिसकी वह अजीब से क्लिष्ट शब्दों में प्रशंसा कर रहा था। उसके वही बातें करने की मनाही की थी जो यहां हो रही थी। उसने ने केवल यह अर्थहीन बकवास और ब्रेड और शराब के बारे में यह नापाक गौरव गान मना किया था बल्कि साफ शब्दों में मनुष्य को मना किया था कि वह दूसरे मनुष्यों को मालिक कहे। उसके मंदिरों में प्रार्थना करने के लिए मना किया था और एकांत में प्रार्थना करने का आदेश दिया था। उसके मंदिर बनाने का निषध किया था और कहा था कि वह उन्हें मिटाने के लिए आया है। और पूजा मुदिर में नहीं, आत्मा में और सत्य में होनी चाहिए। उसने कहा था, किसी का मूल्यांकन मत करो, कैदी मत बनाओ सताना, दंड देना या किसी प्रकार की हिंसा मत करो। उसका वचन था, ''मैं बंदियों को आज़ाद करने आया हूं।''

वहां इकट्ठे लोगों में से एक को भी इसका अहसास नहीं था कि वहां जो हो रहा था वह अधर्म है; और वह उसी क्राइस्ट की मखौल है जिसके नाम पर यह सब हो रहा था। किसी को यह होश नहीं था कि पादरी के गले में जो सोने का क्रॉस था, जिसे लोग आगे बढ़कर चम रहे थे वह उस सूली का प्रतीक था जिस पर क्राइस्ट को टाँगा गया था। क्योंकि उसने इन्हीं बातों का विरोध किया था जो यहां पर हो रही थी।''

उन्नीसवीं सदी के आखरी चरण में इस तरह की बातें लिखना कोई जीनियस और जिगर वाला व्यक्ति ही कर सकता है। वैसे ये दोनों गुण एक ही सिक्के के दो पहलू है। जीनियस होता जिगर होता ही है।

धार्मिक या दार्शनिक विषय छोड़ भी दें, तब भी मनोविज्ञान की अंतर्दृष्टि और उस अंतर्दृष्टि की अभिव्यक्ति भी टॉलस्टॉय के कलम की बहुत बडी ताकत है। एक जगह वह मनुष्य के बारे में लिखता है:

''एक बहुत ही आम मान्यता है कि प्रत्येक व्यक्ति में एक खास गुण होता है। जैसे कोई दयालु होता है, कोई दुष्ट होता है; कोई समझदार होता है कोई नासमझ; काई जोशीला होता है कोई आलसी। लेकिन यह कहना सही नहीं होगा कि यह आदमी दयालु और समझदार है। और दूसरा दुष्ट और नासमझ। और फिर भी हम मनुष्य जाति की अलग-अलग श्रेणियां बनाते है।

''लोग नदियों की तरह होते है। सभी नदियों में पानी एक जैसा होता है। लेकिन हर नदी कहीं चौड़ी होती है तो कहीं संकरी; कहीं तेज बहती है, कही धीरे; कहीं मटमैला, कहीं निर्मल; कहीं शीतल, कही उष्ण। मनुष्य के बारे में ऐसा ही है। प्रत्येक आदमी में हर तरह के मानवीय गुणों के बीज होते है। कभी एक गुण प्रकट होता है और कभी दूसरा गूण। और बहुत बार वह आदमी स्वयं से बिलकुल भिन्न हो जाता है। हालांकि वह वही आदमी बना रहता है।

कुछ लोगों में ये बदलाव अतिशय होते है, और नेखलुदोव ऐसा व्यक्ति था। उसके भीतर ये बदलाव होने की वजह जितनी शारीरिक थी उतनी आध्यात्मिक भी थी।

उसमें अब इसी तरह का बदलाव हुआ था। जीवन को नया रूख मिलने की खुशी और विजय की भावना जो उसे मुकदमे के बाद और कात्युश (मैसलोवा) से मिलने के बाद अनुभव हुई थी वह नदारद हो गई। और पिछली बार उसे मिलने के बाद खुशी की जगह भय और वितृष्णा ने ले ली। उसने ठन ली थी कि वह उसे नहीं छोड़ेगा, और उससे शादी करने का निर्णय नहीं बदलेगा। अगर वह चाहे तो, लेकिन वह अति कठिन मालूम हो रहा था। और उससे उसे बहुत कष्ट हो रहा था।'' वह चाहता था इन दोनों के संबंध को आदर्शवादिता की सुनहरी झालर लगा सकता था। नेखलुदोव के साथ-साथ मैसलोवा का भी ह्रदय परिवर्तन दिखाकर, और उसे नेखलुदोव की पत्नी बनाकर उसकी दव्य रूपांतरण दिखा सकता था। लेकिन मानवीय मन की जटिलता और जीवन का यथार्थ इतना सरल नहीं है।

टॉलस्टॉय की प्रतिभा पूरी तरह से जमीन से जुड़ी हुई थी। उसने कभी कल्पना की कृत्रिम उड़ान नहीं भरी। उसकी सफलता का यह एक बहुत बड़ा अधिष्ठान था।

ओशो का नजरिया:

तीसरी किताब है, टॉलस्टॉय की ''रिसरेक्शन''। पूरी जिंदगी लियो टॉलस्टॉय जीसस क्राइस्ट से बहुत प्रभावित था। यह शीर्षक ''रिसरेक्शन'' उसी से आया था।

लियो टॉलस्टॉय ने सचमुच बहुत ही कलात्मक रचना पेश कि है। मेरे लिये यह बाइबल की तरह थी। जब में छोटा था तो मैं अभी भी देख सकता हूं कि किस तरह मैं निरंतर टॉलस्टॉय की ''रिसरेक्शन'' लिए घूमता रहता था। मेरे पिताजी चिंतित हो गए। एक दिन उन्होंने मुझसे कहा, ''तुम दिन भी यह किताब लेकर क्यो घूमते हो? तुम तो इसे पढ़ चूके हो।

मैंने कहा: ''सिर्फ एक बार नहीं, कई बार। लेकिन फिर भी मैं इसे अपने साथ रखूंगा।''

मेरा पूरा गांव जानता था कि मैं ''रिसरेक्शन'' नाम की कोई किताब साथ रखता हूं। उन्होंने सोचा कि मैं पागल हो गया हूं। और पागल आदमी कुछ भी कर सकता है। लेकिन मैं ''रिसरेक्शन'' दिन भी क्यों साथ रखता

था? न केवल दिन भर बल्कि रात को भी वह किताब मेरे विस्तर के पास रखी रहती थी। मुझे वह बेहद पसंद थी।

जिस तरह लियो टॉलस्टॉय ने जीसस के संदेश को प्रतिफलित क्या है, वह जीसस के किसी भी शिष्य से अधिक सफल है। थॉमस को छोड़कर। उस किताब में मैं ''रिसरेक्शन'' के तुरंत बाद बात करूंगा। बाईबिल में जो चार गॉस्पल शामिल किये गये है वे जीसस की आत्मा से ही चूक गये।

टालस्टाय सचमुच जीसस से प्रेम करता था। और प्रेम जादुई है। क्योंकि जब तुम किसी से प्रेम करते हो तब समय खो जाता है। टॉलस्टॉय जीसस से इतना प्रेम करता था कि वे दोनों समसामयिक हो गए। दोनों के बीच अंतराल बड़ा है, दो हजार साल का, लेकिन जीसस और टॉलस्टॉय के बीच वह खो जाता है। ऐसा विरले ही होता है, मुश्किल से कभी: इसलिए मैं वह किताब हाथ में लेकिर घूमता था।

हालाकि अब में उसे हाथ में नहीं रखता पर वह अब भी मेरे दिल में उसी तरह रहती है। अभी भी।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

33/ एक आदमी पर्वत जैसा-(हु आंग पो)

दि ज़ेन टीचिंग ऑफ हु आंग पो ऑन दि ट्रांसमिशन ऑफ माईड–ं

अंग्रेजी अनुवाद: जॉन ब्लोफेल्ड

The Zen teaching of Huang Po on the transmission of mind-John Blofield

हु आंग पो एक मनुष्य का नाम था और पर्वत का भी क्योंकि हु आंग पो इसी नाम के पर्वत पर रहता था। यह एक उतंग ज़ेन सदगुरू था जिसे पर्वत शिखर का नाम मिला क्योंकि वह खुद भी एक उत्तुंग शिखर था।

यह किताब उसके शिष्य और विद्वान पंडित पेई सियु द्वारा किया गया संकलन है। चांग साम्राज्य में ईसवीं सदी 850 में यह संकलन चीनी भाषा में किया गया था।

आठवीं शताब्दी में ज़ेन दो शाखाओं में बट गया था: आकस्मिक बुद्धत्व और क्रमश: बुद्धत्व।

क्रमश: बुद्धत्व का प्रतिपादन करने वाली शाखा अधिक समय नहीं चली। आकस्मिक बुद्धत्व में विश्वास करने वालों की संख्या अधिक होती चली गई।

हु आंग पो इसी शाखा का प्रमुख गुरु था। उसने लिन ची उर्फ रिंझाई को निःशब्द सिद्धांत सौंपा और वह 850 में मर गया। यह धारा चीन और जापन में आज भी फल फूल रही है। सभी चीनी संतों के एक से अधिक नाम होते है। हु आंग पो के भी थे। जीवित रहते हुए उसके नाम थे मास्टर स्ही युन और मास्टर तू आन ची। हु आंग पो नाम उसे मरने के बाद मिला।

मूल चीनी संकलन की भूमिका हु आंग पो के शिष्य पेई सियु ने लिखी है। चूकि वह हु आंग पो के निकट रहा था, उसके लेखन में आदर मिश्रित आर्द्रता है।

पेई सियु चीनी सरकार का विद्वान उच्च अधिकारी था। उसकी कैली ग्राफी (एक प्रकार की चीनी चित्रकारी) आज भी आदर्श मानी जाती है। ज्ञान के लिए उसकी प्यास असीम थी। कभी-कभी वह साल भर अपनी किताबें लेकर एकांत में बैठा उनका चिंतन करता रहता था। हु आंग पो के प्रति उसकी श्रद्धा इतनी गहरी थी कि उसने अपना पुत्र उसे भेंट किया था। कहा जाता है कि यह लड़का आगे जाकर महान ज़ेन गुरु बना।

''महान ज़ेन मास्टर स्हि युग हु आंग पो पर्वत के वल्चर शिखर पर रहता था। वह हुई नेंग, छठे प्रट्रियार्क का तीसरा वारिस था और हुई हाई का शिष्य था। वह श्रेष्ठ वाहन की अंत: प्रज्ञा पर आधारित विधि का पालन करता था। जो कि शब्दों से कहीं नहीं जा सकती।

वह ''एक मनस'' के तत्व को सिखाता था। मन और उसके भीतर की चीजें शून्य है। जिन्होंने सत्य को जान लिया है उनके लिए न तो कुछ नया है न कुछ पुराना; उथले और गहरे की धारणा निरर्थक है। उसके शब्द सरल है, उसका तर्क सीधा, उसकी जीवन शैली दिव्य है और उसके तरीके अन्य लोगों से अलग। भिन्न-भिन्न जगह से शिष्य उसके पास आते थे और उसकी और आंखें उठाकर यूं देखते थे मानों पर्वत को देख रहे हों। उसके सत्संग से यर्थाथ के प्रीत जागते थे। उसके साथ हमेशा हजारों की भीड़ होती थी।

''हुई चांग के दूसरे वर्ष (सन 843) जब मैं चुंग लिन जिले का अधिकारी था तब हु आंग पो पर्वत से उतर कर उस शहर आया था। हम लंग सिंग आश्रम में रहे जहां मैं दिन-रात मार्ग के बारे में सवाल पूछता रहा।

उसके बाद ताई चुंग (सन 849) के दूसरे वर्ष जब मैं वान लिंग जिले का गवर्नर था तब भी वहां पर हु आंग पो का आगमन हुआ। इस बार हम काइ युग आश्रम में शांति पूर्वक रहे। उस समय भी मैंने दिन-रात उनके साथ अध्ययन किया। और उनके विदा होने के बाद मेरी स्मृति के अनुसार सब कुछ लिखा। मुझे चिंता थी कि ये कीमती वचन आनेवाली पीढ़ियों के लिए कैसे सुरक्षित रख जायें। मैंने मेरा संकलन हु आंग पो पर्वत पर

रहनेवाले वरिष्ठ भिक्षुओं के पास भेजा ताकि उन्होंने हु आंग पो से जो सुना था उसके साथ मेरे लिखने का तालमेल वे बिठा सकें।

जैसा कि ज़ेन वचनों का दस्तूर है, हु आंग पो के वचन तीन प्रकार से ग्रंथित है—प्रवचन, संवाद और कथाएं।

यों तो पूरा सिद्धांत अभिव्यक्त करने के लिए प्रवचन अपने आप में काफी है। फिर भी संवाद और कथाएं। फिर भी संवाद और कथाएं उसी आशय को सुस्पष्ट करती है। बड़ी सरलता से गहरे सिद्धांत लोगों तक पहुंचाने के लिए वे बहुत अच्छा माध्यम है।

ज़ेन सदगुरूओं का मानना है कि सिर्फ एक मुहावरा सही ढंग से सुनने से शिष्यों का अंधकार नष्ट हो जाता है। अंत: ज़ेन गुरु संक्षिप्त विरोधाभासी संवाद बहुत पसंद करते है। शिष्य के मस्तिष्क को अचानक धक्का दिया जाये तो वह बुद्धत्व की कगार पर आ सकता है।

किताब की एक झलक:

प्रवचन–

सामान्य जन धारणाओं और विचारों में जीते है। वे विचार आसपास की घटनाओं पर आधारित होते है। इसलिए वे वासनाओं और घृणा को अनुभव करते है। घटनाओं को हटाना हो तो अपने धारणा गत की घटनाएं शून्य बन जाती है। और जब वे शून्य बनती है तब विचार थम जाते है।

लेकिन अगर तुम धारणा गत विचारों को रोके बगैर घटनाओं को हटाने का प्रयत्न करते हो तो तुम सफल नहीं होओगे। उल्टे तुम्हें विचलित करने की उनकी शक्ति को बढ़ाओगे।

अंत: सारी वस्तुएं मन के अलावा कुछ नहीं है—अगोचर मन। तो तुम क्या पाने की आशा रखते हो। जो प्रज्ञा के विद्यार्थी है वे मानते है कि कुछ भी गोचर नहीं है। इसलिए वे तीन वाहनों के बारे में सोचना बंद कर देते है। (तीन वाहन अर्थात क्रमिक बुद्धत्व को मानने वाली तीन शाखाएं।) हकीकत केवल एक है—न उसे पाना है न जानना है, अपने आपको अहंकारियों की श्रेणी में रखना है। जिन लोगों ने अपने वस्त्र फड़फड़ाएं और सभा के बीच में उठकर चले गये—जैसा कि लोटस सूत्र में लिखा है—वे ऐसे ही लोग थे।

इसलिए बुद्ध ने कहा, वास्तव में मुझे बुद्धत्व से कुछ नहीं मिला।'' केवल एक रहस्यपूर्ण समझ, और कुछ भी नहीं।

संवाद–

प्रश्न: मार्ग क्या है और इस पर कैसे चलना चाहिए?

उत्तर: तुम मार्ग कौन सी चीज मानते हो जिस पर तुम चलना चाहते हो?

प्रश्न: सर्वत्र सदगुरूओं ने ध्यान अभ्यास तथा धर्म-अध्यन के लिए क्या निर्देश दिये है?

उत्तर: मंदबुद्धि लोगों को आकर्षित करने के लिए जिन शब्दों का प्रयोग किया जाता है उन पर भरोसा नहीं किया जा सकता।

प्रश्न: अगर वे देशनाएं मंदबुद्धि के लिए है तो श्रेष्ठ योग्यता के लोगों को कौन सा धर्म सिखाया जाता है। वह मैने अभी तक सुना नहीं।

उत्तर: यदि वे सच मुच श्रेष्ठ योग्यता के लोग है तो उन्हें अनुयायी कहां से मिलेंगे? यदि वे अपने भीतर खोजते है तो उन्हें कुछ भी स्थूल नहीं मिलेगा। उन्हें ऐसा धर्म बाहर कहां मिलेगा? उपदेशक जिसे धर्म कहते है उसकी और मत देखो, क्योंकि वह किस तरह का धर्म होगा?

प्रश्न: यदि ऐसा है तो क्या हम खोजना बंद ही नहीं कर दें?

उत्तर: ऐसा करने से तुम बहुत से मानसिक प्रयास से बच जाओगे।

प्रश्न: लेकिन इस तरह तो सभी कुछ विदा होता जायेगा। सिर्फ नाकुछ तो नहीं हो सकता।

उत्तर: किसने उसे ''नाकुछ कहा?'' यह कौन व्यक्ति? तुम तो कुछ खोजना चाहते थे।

प्रश्न: अगर खोजने की जरूरत ही नहीं है तो आप ऐसा क्यों कहते है कि सब कुछ विदा नहीं होता।

उत्तर: ना खोजना शांति से जीना है। तुमसे कुछ कम करने के लिए किसने कहां? तुम्हारी आंखों के सामने जो शून्य है उसे देखो। तुम उसे पैदा या समाप्त कैसे कर सकते हो?

प्रश्न: यदि मैं इस धर्म तक पहुंच जाऊं तो क्या वह शून्य एक है और अनेक भी है।

उत्तर: मैंने तुम्हें एक क्षणिक स्पष्टीकरण की तरह कहा लेकिन तुम उसके द्वारा धारणाएं बना रहे हो।

प्रश्न: क्या आपका ये मतलब है कि हम धारणा न बनाएँ? जैसा की मनुष्य सामान्यत करता है?

उत्तर: मैंने तुम्हें राका नहीं लेकिन धारणाएं इंद्रियों से संबंधित होती है। और जब भाव उभरते है तो प्रज्ञा का द्वार बंद हो जाता है।

प्रश्न: तो क्या हम धर्म के संबंधित सभी भावों से बचे?

उत्तर: जहां कोई भाव नहीं होगा वहां कौन कह सकेगा कि तुम सही हो?

प्रश्न: आदरणीय, आप इस तरह क्यों बोलते है जैसे मैंने आपसे सभी गलत प्रश्न पूछे?

उत्तर: तुम ऐसे व्यक्ति हो जो उसे नहीं समझता जो उससे कहा जाता है। यह गलत होने का मामला क्या है ?

अनुवादक की टिप्पणी: जाहिर है कि हु आंग पो प्रश्नकर्ता की धारणागत सोचने की आदत को तोड़ने में मदद कर रहा है। इसकी खातिर वह प्रश्नकर्ता को वह यह अहसास दे रहा है कि यह गलत है। क्योंकि उसे प्रश्न का उत्तर नहीं देना है, बल्कि प्रश्न करने वाले मन को नष्ट करना है।

कथाएं–

हमारे गुरु मूलत: फुकेन से आये लेकिन बचपन में ही उन्होंने माउंट हु आंग पो पर व्रत लिया। उनके माथे के माध्य में मोत जैसी एक छोटी सी गांठ थी। उनकी आवाज मृदु और मधुर थी। उनका चरित्र सरल और शांत था।

दीक्षित होने के कुछ वर्ष बाद, माउंट ति येन ताइ पर जाते हुए उन्हें एक भिक्षु मिला जो उन्हें चिर परिचित लगा, तो उन्होंने एक साथ यात्रा शुरू की। एक जगह उनके रास्ते में एक पहाड़ी झरना आया जिसमे बाढ़ आई थी। हमारे गुरु रूक गये और अपनी लाठी पर झुककर खड़े हो गये। उनके मित्र ने उनसे आगे जाने का आग्रह किया।

''नहीं, तुम आगे जाओ,'' गुरु ने कहा।

मित्र ने उसका बरसाती हैट प्रवाह में तैराया और सहज ही उस पार चला गया।

गुरु ने गहरी सांस छोड़ी: ''ऐसे आदमी को मैंने अपने साथ आने की इजाजत दी। मुझे अपने डंडे की चोट से उसे मार डालना चाहिए था।''

** ** **

एक दफा, जब हमारे गुरु ने काइ यू आन आश्रम में दैनिक सभा समाप्त की ही थी कि मैं वहां पहुंचा। मेरी नजर दीवाल पर टंगे हुए चित्र पर पड़ी। व्यवस्था करने वाले एक भिक्षु से पूछने पर मुझे ज्ञात हुआ कि वह चित्र एक विख्यात भिक्षु का था।

''वाकई, मैं उससे समानता देख रहा हूं, लेकिन वह आदमी स्वयं कहां है? मैंने पूछा।

वह भिक्षु मौन रहा।

मैंने कहां: ''निश्चय ही इस मंदिर में ज़ेन भिक्षु रहते होंगे न?''

''हां'' उस व्यवस्थापक ने कहा, ''यहां एक है।'' इसके बाद मैं सदगुरू से मिलने गया और मेरा वार्ता लाप उन्हें बताया।

''पेई सियु।'' वे चिल्लाये।

''गुरूदेव'' मैंने आदरपूर्वक कहा।

''तुम कहां हो?''

यह जानकर कि ऐसे प्रश्न का कोई उत्तर संभव नही है, मैंने गुरूदेव से विनती की कि वे पुन: सभागार में जाकर अपना प्रवचन शुरू करें।''

ओशो का नज़रिया:

''दि बुक ऑफ हु आंग पो'', एक चीनी आदमी द्वारा लिखी गई किताब है। यह छोटी सी किताब है, ग्रंथ नहीं—बस कुछ अंश। सत्य को ग्रंथ में व्यक्त नहीं किया जा सकता। तुम उस पर पी. एच. डी. नहीं लिख सकते। ऐसी डिग्री है जो मूर्खों को दी जानी चाहिए। हु आंग पो छोटे-छोटे अंशों में लिखता है। ऊपर से असंबंधित लगते है। लेकिन है नहीं। तुम्हें ध्यान करना होगा, तभी उनका आपसी संबंध समझ पाओगे। यह सर्वाधिक ध्यान पूर्ण किताब में से एक है जो आज तक लिखी गई है।

''दि बुक ऑफ हु आंग पो'' अंग्रेजी में ''दि टीचिंग्ज़ ऑफ हु आंग पो'' के नाम से अनुवादित हुई है। जो कि अंग्रेजी शैली है1 यह शीर्षक गलत है। हु आंग पो जैसे लोग सिखाते नहीं। उसमें कोई सिखावन है ही नहीं। उसे समझने के लिए तुम्हें ध्यानस्थ होना होगा, मौन होना होगा।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

34/ दि गॉस्पल-(थॉमस)

दि गॉस्पल-(एकॉर्डिंग टू थॉमस)

The Gospel of Thomas

वह दिसंबर का एक भाग्य शाली दिन था। सन था 1951 उत्तर ईजिप्त में एक शहर है नाग हम्मदि। उसके आसपास बियाबान में एक अरब किसान अपने खेत के लिए खुदाई कर रहा था। अचानक उसे एक मिट्टी का बड़ा सा लाल रंग का पुराना बर्तन मिला। वह उत्तेजना से भर गया, उसे लगा की कोई गड़ा हुआ धन मिल गया। पहले तो उसे डर लगा कि कोई जिन प्रेत है; उसने जल्दी से फावड़ा मार कर बर्तन को नीचे गिराया, अंदर उसे न तो जिन मिला और न धन। कुछ कागजी किताबें जरूर मिलीं। लगभग एक दर्जन किताबें सुनहरे भूरे रंग के चमड़े में बंधी हुई। उसे क्या पता था कि उसे एक ऐसा असाधारण दस्तावेज मिला है जो तकरीबन 1500 साल पहले निकटवर्ती मठ के भिक्षुओं ने पुरातनपंथी चर्च के विध्वंसक चंगुल से बचाने की खातिर भूमि के नीचे दफ़ना रखा था। चर्च उस समय जो-जो भी विद्रोही मत रखते थे उन सबको नष्ट कर रहा था। चर्च का क्रोध जायज भी है कि क्योंकि जीसस के ये मूल सूत्र प्रकाशित होते तो चर्च का काम तमाम हो जाता।

बाद में विद्वानों को इस खजानें की खबर लगी और उन्होंने इसका अनुवाद कर इसे छपवाया। ये सूत्र ईसाइयत के लिए सर्वाधिक खतरनाक है। क्योंकि ये मनुष्य की अन्त प्रज्ञा को मानते है, चर्च या ईश्वर को नहीं। थॉमस के ये सूत्र आध्यात्मिक खोज को आदमी के भीतर मोड़ते है। चर्च या पादरियों की और नहीं, इसलिए ये बाइबल का हिस्सा नहीं है। ये जीसस के कुँवारे शब्द जो 2000 साल तक मानवीय हाथों से अछूते रहे—गंगोत्री के जल समान पवित्र, ताजे, शुद्ध। इनमें से कुछ वचन तो ऐसे की पहली बार मनुष्य की निगाह उन पर पड़ी। इन सुत्रों की प्रामाणिकता इससे भी स्थापित होती है कि ओशो ने अपने प्रसिद्ध पुस्तक ''दि मस्टर्ड सीड'' के प्रवचनों के लिए ये ही सूत्र चुने।

यह पुस्तक सहिदिक भाषा में पाई गई। वैसे इस किताब के कुछ हिस्से यहां वहां ग्रीक शास्त्रों में पाए जाते है। जबकि विद्वानों का मानना है कि यह किताब मूलत: अमेरिक में होनी चाहिए। क्योंकि जीसस की मात्र भाषा अमेरिक थी। जैसे कि उस समय के सभी ज्ञानियों के साथ हुआ, उनके द्वारा बोले गए वचन उनके शिष्यों ने लिखे और संकलित किए। यह तो आज के इलेक्ट्रॉनिक जमाने की देन है कि ओशो के वचन शत प्रतिशत उपलब्ध है। अंत: उसमे विकृतियां संभव नहीं है।

इस किताब में जीसस का मूल हिब्रू नाम जोशुआ ही लिखा हुआ है। जीसस का उनके शिष्यों के साथ हुआ वार्तालाप है यह। यह बहुत छोटी सी पाकेट बुक नुमा किताब है। जिसमे आधे पन्नों में खूबसूरत चित्र है और आधे पन्नों में जिससे के सूत्र जो थॉमस ने दर्ज किए है। ये सारे चित्र प्राचीन मिस्त्र के है। और उनमें से कुछ रहस्य पूर्ण प्रतीक है जैसे यिन-यांग की आकृति, या और कुछ यंत्र। सूत्रों के प्रारंभ में थॉमस ने लिखा है: ये गुप्त शब्द है जिन्हें जीवित जोशुआ ने कहा और डिडीमस जूदास थॉमस ने लिखा।

ये सूत्र कई तरह के है—इनमें प्रज्ञापूर्ण वचन है, भविष्य वाणीयां है, मुहावरे है, कथाएं है और समूह के लिए कुछ नियम है। वे इस प्रकार गुंथे है कि उनमें कोई तरतीब नज़र नहीं आती। समय-समय पर शिष्यों ने कुछ पूछ लिया और जीसस ने जवाब दे दिया। बहुत से सूत्र ऐसे है जो जॉन के गॉस्पल में पाए जाते है। न्यू टैस्टामैंट में जो सूत्र है उनके मुकाबले थॉमस के सुत्र अधिक प्रभाव शाली है। और प्रमाणिक भी है। और ये सूत्र जीसस के वचनों के काफी नजदीक महसूस होते है। इस किताब में जीसस का विख्यात मुहावरा, ''दि किंगडम ऑफ गॉड'' नहीं पाया जाता। उसकी जगह यहाँ तो किंगडम ऑफ स्काई। किंगडम ऑफ फादर या फिर किंगडम ऑफ

लाईफ। और तो और इसमें कहीं भी गॉड या ईश्वर शब्द का उल्लेख नहीं है। अगर यह जीसस के असली वचन है तो फिर ''ईश्वर'' या ''ईश्वर का राज्य'' जैसे शब्द बाद में पादरियों ने जोड़े है।

हर दस्तावेज अपने समय का प्रतिफलन होता है वैसे यह भी है। पढ़कर आश्चर्य होता है कि आज से 2000 साल पहले भी पुरूष स्त्रियों को वैसे ही निकृष्ठ मानते थे जैसे कि आज मानते है। जैसे आखिरी सूत्र—114 में साइमन पीटर बाकी शिष्यों से कहता है, ''मेरी मग्दालिन हममें से चली जाए क्योंकि औरतें जीवन के काबिल नहीं है।''

जोशुआ कहता है, ''देखो मैं उसका मार्गदर्शन करूंगा और मैं उसे पुरूष बनाऊंगा ताकि वह भी जीवंत आत्मा बन जाए जैसे कि तुम पुरूष हो। क्योंकि हर औरत जो अपने को पुरूष बनाती ळ वह आकाश के राज्य में प्रवेश करेगी।''

शिष्यों ने जीसस से पूछा, ''हमें बताओ, स्वर्ग का राज्य कैसा है? उसने कहा, ''वह राई के दाने जैसा है, जो सभी बीजों से छोटा है। लेकिन जब वह कसी हुई जमीन पर गिरता है तब वह बहुत बड़ा पौधा बन जाता है और आकाश के पक्षियों के लिए सहारा बन जाता है।

एक और मजेदार सवाल है खतना के बारे में। उसके शिष्य उससे पूछते है, ''खतना आवश्यक है कि नहीं? जोशुआ ने कहा, ''यदि वह आवश्यक होता तो पिता बच्चों को उनकी मां से ऐसे ही पैदा करता। लेकिन आत्मा का खतना हर तरह से अनिवार्य है।''

एक चीज बहुत सुस्पष्ट है कि जीसस जिसे आकाश का या पिता का राज्य कहते है वह भीतर है। वह स्वर्ग नहीं है जो मरने के बाद मिलने वाला है। निम्न लिखित संवाद इस पर अच्छी रोशनी डालता है:

जोशुआ स्तन पान करने वाले शिशुओं को देखता है। वह अपने शिष्यों से कहता है: ये दूध पीने वाले बच्चे वे लोग है जो राज्य में प्रवेश करेंगे।

वे पूछते है, ''तो क्या फिर हम, जो कि छोटे बच्चे होकर ही, राज्य में प्रवेश करेंगे?''

जोशुआ उनसे कहता है, ''जब तुम दो को एक बनाओगे, जब तुम भीतर को बाहर जैसा और बहार को भीतर जैसा बनाओगे। ऊपर को नीचे जैसा, जब तुम स्त्री और पुरूष को ऐ इकाई बनाओगे। ताकि पुरूष-पुरूष न रहे। और स्त्री-स्त्री ने रहे। जब तुम आँख की जगह आँख बनाओगे, हाथ की जगह हाथ बनाओगे, पाँव की जगह पाँव बनाओगे तब तुम राज्य में प्रवेश करोगे।''

यहां जीसस ने योग और तंत्र की पूरी प्रक्रिया बता दी है बहुत सरलता से बहुत सुस्पष्टता से।

एक और सुत्र है: ''जब तुम उसे देखोगें जो स्त्री से पैदा नहीं हुआ तब उसे औंधे मुंह दंडवत करना और उसकी पूजा करना। वह तुम्हारा पिता है।''

एक और संभाषण है जो थॉमस के विशिष्ट होने का सबूत है:

जोशुआ अपने शिष्यों से कहता है, ''मेरी तुलना करो और बताओ कि मैं किसके जैसा हूं।''

साइमन पीटर कहता है: ''आप एक न्यायपूर्ण फ़रिश्ते जैसे हो।''

मैथ्यू ने कहा, ''आप एक दार्शनिक विद्धान जैसे है।''

थॉमस ने कहा, ''आप शिक्षक, मेरा मुंह यह कहने के काबिल नहीं है कि आप किसके जैसे है।''

जोशुआ ने कहा, ''मैं तुम्हारा शिक्षक नहीं हूं, क्योंकि तुमने उस झरने से, उस उछलते हुए झरने से पानी पिया है, और उससे मदहोश हुए हो जिसे मैंने बहाया है।''

फिर वह थॉमस को लेकिर एकांत में जाता है और कहता है, ''I am who I am.'' ''मैं वह हूं जो हूं।''

फिर जब थॉमस अपने साथियों के पास आता है तो वे पूछते है, ''जोशुआ ने तुम्हें क्या कहां?''

थॉमस ने कहा, ''अगर मैं तुम्हें एक भी शब्द बताऊंगा तो उसने मेरे से कहा तो तुम पत्थर उठाओगे और मुझे मारोगे। उन पत्थरों से आग निकलेगी और तुम्हें जलाएगी।''

इस किताब में जीसस की कुछ कहानियां भी है जो थॉमस ने वैसी की वैसी दर्ज कह है। एक कहानी बहुत सुंदर है:

एक आदमी के घर में मेहमान आए हुए थे। जब खाना तैयार हो गया तब मेज़बान ने अपने गुलाम को मेहमानों को बुलाने के लिए भेजा। वह पहले मेहमान के पास गया और उससे कहा, ''मेरे मालिक आपको बुला रहे है।''

वह बोला, ''मैं कुछ व्यापारियों के साथ सौदा कर रहा हूं वे शाम को मुझसे मिलने आने वाले है। मुझे जाकर उन्हें ऑर्डर देने है। मैं क्षमा चाहता हूं।''

गुलाम दूसरे मेहमान के पास गया और उसे उसने कहा, ''मालिक आपको बुला रहे है।''

उसने कहा ''मैने नया मकान खरीदा है और उन्हें एक दिन कि लिए मेरी जरूरत है। मेरे पास वक्त नहीं है।''

उसने तीसरे से जाकर कहा, ''मेरे मालिक आपको बुला रहे है।''

उसने कहा, ''मेरे दोस्त की शादी होने वाली है और मुझे उसके प्रीतिभोज की तैयारी करनी है। मैं नहीं आ सकूंगा।''

गुलाम वापिस आ गया और उसने मेज़बान से कहा, जिन्हें आप बुलाना चाहते है वे नहीं आ सकते।''

मालिक ने कहां, ''सड़क पर जाओं और जो भी मिल जाए उन्हें ले आओ ताकि वे भोज का आनंद ले सकें।''

फिर उसने कहा, '' व्यापारी और सौदागर मेरे पिता के राज्य में प्रवेश नहीं कर सकेंगे।''

कुछ सूत्र:

जोशुआ कहता है, ''मुझे वह पत्थर दिखाओं जिसे बिल्डर ने फेंक दिया है, वहीं नींव का पत्थर है।''

जोशुआ कहता है, ''जो सब कुछ जानता है लेकिन अपने आपको नहीं जानता उसके पास कुछ भी नहीं है। ''

उसके विद्यार्थी उसे पूछते है, ''राज्य कब आएगा?''

जोशुआ कहता है, ''अपेक्षा करोगे तो वह नहीं आएगा। वे ऐसा नहीं कहेंगे। यहां देखो, वहां देखो, पिता का राज्य पूरी पृथ्वी पर फैला हुआ है लेकिन लोग देखते ही नहीं है।''

और वह कहता है, ''जिसने इन शब्दों की व्याख्या कर ली वह मृत्यु का स्वाद नहीं लेगा।''

ओशो का नज़रिया:

पांचवी किताब है गॉस्पल। यह बाईबिल में शामिल नहीं है, यह अभी-अभी ईजिप्त में मिली है। यह किताब है: ''नोटस ऑन जीसस'' थॉमस द्वारा लिखी हुई। मैं इस पर बोल रहा हूं, क्योंकि मैं एकदम इसके प्रेम में पड़ गया। इस किताब में थॉमस इतनी सरलता से लिखता है कि वह गलत नहीं हो सकता। वह इतना प्रत्यक्ष है, तत्काल है कि वह मौजूद नहीं है, केवल जीसस है।

क्या तुम जानते हो कि भारत पहुंचने वाला थॉमस पहला शिष्य है? भारतीय ईसाइयत प्राचीनतम है, वेटिकन से भी प्राचीन। और थॉमस का शरीर अभी तक गोवा में रखा हुआ है—विचित्र जगह है लेकिन सुंदर है, बहुत सुंदर है। इसीलिए तो सारे बाहर के हिप्पी गोवा से आकर्षित होते है। जैसे किनारे गोवा के समुंदर के है वैसे और कहीं नहीं है।

थॉमस का शरीर अभी तक सुरक्षित रखा है। और जैसे वह रखा है वह एक आश्चर्य है। अब हम जानते है कि मृत शरीर को कैसे सुरक्षित रखना, हम उसे बर्फ की भांति जमा देते है। लेकिन थॉमस का शरीर जमाया हुआ नहीं है। कोई पुरानी विधि जो तिब्बत में या प्राचीन ईजिप्त में इस्तेमाल की गई थी वहीं यहां की गई है।

ऐसे कैमिकल्स इस्तेमाल किए गए है जिन्हें अभी वैज्ञानिक खोज नहीं पाए है; या फिर पता नहीं कैमिकल्स काम में लिए भी गए है कि नहीं। वैज्ञानिक महान है, वे चाँद पर पहुंच सकते है लेकिन वे ऐसा पैन नहीं बना सकते जो लीक नहीं करता। छोटी बातों में वे असफल होते है।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

35/ दि बुक-(ऐलन वॉटस)

ऑन दि टैबू अगेंस्ट नोइग हू यू आर

The Book on the Taboo Against Knowing Who You Are

-Alan W. Watts

किताब में प्रवेश करने से पहले खुद ऐलन वॉटस संक्षेप में इसे लिखने की वजह बताता है।

''यह किताब मनुष्य के उस निषिद्ध लेकिन अनचीन्हें टैबू के संबंध में है जो एक तरह से हमारी साजिश है हमारे ही प्रति कि हम स्वयं को जानना नहीं चाहते। चमड़े के थैले में बंद हम जो एक अलग-थलग हस्ती बनकर जीते है वह एक भ्रांति है। यही वह भ्रांति है जिसकी वजह से मनुष्य ने टैकनॉलॉजी का उपयोग अपने पर्यावरण पर विजय पाने के लिए और फलत: खुद के अंतिम विनाश के लिए किया।

''इसलिए दरकार है इस अहसास की कि हम विश्व के साथ जो कट गये है इससे बाहर आ जायें और अपने वजूद को पहचाने। इसलिए मैंने वेदांत के सूत्रों को चुनकर उन्हें पूरी तरह से आधुनिक शैली में पेश किया है। ताकि वेदांत दर्शन का परिचय पश्चिम को हो। यह पाश्चात्य विज्ञान और पूर्वीय अंत: प्रज्ञा का क्रॉस ब्रीड है, संकर है।''

ऐलन वॉटस के लेखन का एक ही मकसद था कि वह पूरब के अध्यात्म को पश्चिम के विज्ञान से मिलाकर प्रस्तुत करे। धर्मों के विषय में बाट की समझ बहुत गहरी है। पहले परिच्छेद में भीतर सूचना, Inside information में वह लिखता है—''वे सारे औरत ब्रांड धर्म जैसे कि इस समय आचरण में लाये जाते है ऐसी खदानें है जो खाली हो गई। अब उनकी खुदाई करके कुछ मिलनेवाला नहीं। मनुष्य और विश्व के संबंध में उनकी अव धारणाएं, उनकी प्रतिमाएं, उनके क्रिया कांड, और अच्छे जीवन के बारे में उनके जो विश्वास है वे उस विश्व के माकूल नहीं है जिसे हम जानते है, या कि वे मनुष्य के उस जगत से मेल नहीं खाते जो इतनी तेजी से बदल रहा है कि स्कूल में हम जो सीखते है वह स्कूल से उत्तीर्ण होने के दिन तक पुराना पड़ चुका होता है।''

''मैं जिस किताब को लिखने की सोच रहा हूं वह आम अर्थों में धार्मिक नहीं है लेकिन वह उन सब बातों की चर्चा करेगी जिससे धर्म ताल्लुक रखते है। मसलन विश्व और उसमे मनुष्य का स्थान, अनुभव का वह रहस्यपूर्ण केंद्र जिसे हम ''मैं'' कहते है; जीवन और प्रेम की समस्याएं, पीड़ा और मृत्यु और वह अहम सवाल—आस्तित्व का कोई अर्थ है कि नहीं। क्योंकि यह एक बढ़ता हुआ खौफ है कि अस्तित्व पिंजरे में बंद चूहों की एक दौड़ है। सारी जीवंत चीजें, जिनमें लोग भी शामिल है—पोंगरी की तरह है जिनमे एक छोर से चीजें अंदर जाती है और दूसरे छोर से बाहर।''

जब आदमी खुद के बारे में सोचने लगता है तो सबसे पहले सवाल उठता है: ''मैं कहां से आया? इस पर ऐलन वॉटस का उत्तर है: ''हम विश्व के भीतर प्रवेश नहीं करते। हम विश्व से प्रगत होते है। हम विश्व से प्रगट होते है। जैसे पेड़ पर ऊगते है उसके पत्ते। जिस प्रकार सागर लहराता है। उस प्रकार विश्व मनुष्य उत्पन्न करता है। प्रत्येक व्यक्ति प्रकृति के पूरे साम्राज्य की अभिव्यक्ति है, समूचे विश्व की अनूठी व समग्र क्रिया है। और इस तथ्य को बहुत ही कम व्यक्ति अनुभव कर पाते है।''

''इसका परिणाम यह हुआ कि हम बह्म जगत के प्रति एक तरह की दुश्मनी पालते है। हम निरंतर पहाड़ों, रेगिस्तानों, बैक्टीरिया, प्रकृति या अवकाश को जीतते रहते है।''

ऐलन वॉटस का यह निरीक्षण बहुत ही मौजूं है कि अब मनुष्य जाति को एक और नया धर्म या नई बाइबिल नहीं चाहिए। धर्मों ने केवल लड़ना और इंसान को इंसान से तोड़ना सिखाया है। हमें अपने बच्चों को

एक नया अनुभव देना है कि इस ''मैं'' का अर्थ क्या है। लेकिन आज एक अत्यंत निषिद्ध बात है स्वयं को जानना, पहचानना।

बीसवीं सदी में बुद्धिवाद, विज्ञान और तकनीक के अपरिसीम विकास ने मनुष्य को पूर्णतया बहिर्मुखी बना दिया है। स्वयं का, स्वयं की खोज का द्वार ही मानों बंद हो गया। यह एक तरह का हादसा ही है। जिससे पाश्चात्य देश बुरी तरह से प्रभावित थे। ऐलन वॉटस की विशिष्टता यह है कि वह आधुनिक मानसिकता को पूरब के अध्यात्म की निगाहों से देखता है। मिसाल के तौर पर, बुद्धिवाद का सबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुआ है कि हम विरोधाभास, असंगति और द्वंद्व को एक साथ स्वीकार नहीं कर सकते। तर्क सिर्फ एक ही पक्ष को मानता है। दूसरे को नहीं। और तर्क की दृष्टि में दो विपरीत एक साथ सच नहीं हो सकते। इसके कारण मनुष्य इतनी बड़ी त्रासदी में घिर गया है कि कहना मुश्किल है। उसके सारे तनावों की जड़ यही है। इसे ऐलन वॉटस ने बढ़िया सा नाम दिया है: ''दि गेम ऑफ ब्लैक ऐ व्हाइट, सफेद और काले खेल।''

अस्तित्व द्वंद्व से अर्थात दो विपरीत तत्वों से बना है। जब हम ध्वनि को सुनते है, तो उसके साथ निर्ध्वनि को भी सुनते है। बल्कि दो ध्वनियों के बीच का जो अंतराल है उसी की वजह से हम ध्वनि को सुन पाते है। प्रकाश भी सिर्फ प्रकाश नहीं है। उसमें अंधकार मिला हुआ है। अंधकार होता है इसलिए प्रकाश का पता चलता है।

हमारा खेल सिर्फ विपरीत ध्रुव के इन्कार तक सीमित नहीं है। वह और भी खतरनाक हो जाता है। क्योंकि हम सोचते है सफेद की जीत होनी चाहिए और काले की हार। वह सोचना उतना ही मुर्खतापूर्ण होगा जितना कि यह चाहना कि सिर्फ शिखर ही शिखर हों और घाटियाँ न हों। जीवन तो हो लेकिन मृत्यु जैसी नैसर्गिक घटना एक मातम बन गई है। क्या पका हुआ पत्ता डाल से जब गिरता है तो पेड़ को मातम होता है। वह शोक मनाता है? मृत्यु उतनी ही सहज है? नैसर्गिक है, अब यह जरूरी है कि जिस तरह डॉक्टर प्रसूति तज्ञ होते है उसी तरह उन्हें मृत्यु तज्ञ भी होना चाहिए। वे आदमी को जनम लेने में मदद करते है तो यहां से विदा होने में मदद क्यों नहीं कर सकते?

यह किताब इसलिए लिखी गई है ताकि लोग ''मैं'' को खोजें, उसके होने पर सवाल उठाये-यह कौन है जो इस चमड़े के थैले में रहता है? और जब इधर मैं का प्रश्न उठता है तो उसके दूसरे छोर पर या ब्राह्म जगत में उसका जो परिपूरक है परमात्मा, उस पर भी शक होता है। यह कौन है जो हमारे जीवन में ताक-झांक करता रहता है। हमारे कामों में, यहां तक विचारों में भावों में भी दखल देता है? ऐलन वॉटस यहां कहते है परमात्मा जो महज एक कल्पना है, उसकी हमें कोई जरूरत नहीं है। और विश्व को भी जरूरत नहीं है। क्योंकि वह तो एक स्वयं चालित मशीन की तरह भलीभाँति चल रहा है।

वस्तुत: जिसे हम ''मैं'' कहते है वह हमारे आसपास बने हुए समाज के विचारों, धारणाओं, दृष्टिकोण, भाषा इत्यादि से बनता है। उसे बनाने में हमारे मां-बाप, शिक्षक, रिश्तेदार और दोस्तों का बड़ा हाथ है। हम उनके आईने में अपनी तस्वीर देखना सीख लेते है। लेकिन वह आईना टूटा हुआ है। हमें शायद यह पता नहीं है कि हम अपने सामाजिक परिवेश से हम कितना प्रभावित होते है। हमारे गहरे से गहरे विचार और नितांत व्यक्तिगत भावनाएं भी हमारी अपनी नहीं होती। क्यों? क्योंकि हम भाषा से सोचते है और हमारे भाव सचित्र होते है जिनका आविष्कार हमने नहीं किया। समाज में सदियों-सदियों से चलते आ रहे है। समाज मानो हमारा फैला हुआ शरीर और मन है। जब तक हम समाज दत संस्कारों से पूरी तरह मुक्त नहीं हो जाते तब तक हमारा वास्तविक ''मैं'' नहीं उभर सकता। इसलिए आज जो मनुष्य है उसे ऐलन वॉटस ''फेंक'' अर्थात नकली ''मैं'' कहता है। उसके हाथ में इतना ही है कि वह कैसे प्रामाणिक रूप से नकली हो जाये।

आधुनिक मनुष्य बहुत ज्यादा समाजिक हो गया है। समाज के साथ उसका संबंध विचित्र बन गया है। समाज को मान्यता और प्रतिष्ठा पाने के लिए वह स्वयं विचित्र बन गया है। जब तक कि समाज ही उसे प्रमाणपत्र नहीं देता तब तक वह अपने आपको स्वतंत्र, सृजनात्मक, लायक नहीं मानता। आज कल जो भी समाज सेवाएं या कार्य हो रहे है वे मनुष्य के अपराध भाव से निकले है। गरीबों को भोजन देना। कपड़े देना, मकान का इंतजाम करना, मान लें कि यह सब कर भी लिया तो उससे क्या होगा? फिर क्या उन गरीबों को अपने धर्म में दीक्षित करना होगा? या कि उनका बोट बैंक बनाना है? क्या वे भी आकर हमारी पागल दौड़ में शामिल हो जायें?

नीति और नैतिकता की आलोचना करते हुए ऐलन वॉटस कहता है कि नीति ''जो है'' उससे व्यक्ति का ध्यान हटाकर जो ''होना चाहिए'' उस पर ले जाती है। झूठे आदर्श पैदा करती है। इन आदर्शों पर वह कभी चल नहीं सकता। इसलिए अक्सर देखा गया है कि दया, प्रेम, शांति, करूणा इत्यादि का आचरण करने वाले लोग पाखंडी हो जाते है। जिनकी वे मदद करना चाहते है वे लोग भी उनके ओढ़े हुए कछ गुणों से दूर भागते है।

किताब का अंतिम परिच्छेद है: इट, वह। जाहिर है कि वह ''तत्व मसि'' से प्रेरित हुआ है। इस परिच्छेद का प्रारंभ इस प्रकार है: जिस तरह सच्चा हास्य अपने आप पर हंसना है, वैसे ही सच्ची मानवता वह है जिसे आत्म ज्ञान हो।''

''आत्म ज्ञान से विस्मय पैदा होता है और विस्मय कौतूहल और अन्वेषण की दिशा में ले जाता है। व्यक्ति को दूसरे व्यक्तियों से अधिक कुछ आकर्षित नहीं करता। स्वयं का आकर्षण भी इसीलिए है कि वह एक व्यक्ति है। वह जानना चाहता है कि मैं कौन हूं, कैसे कार्य करता हूं। उसे इस बात का आकर्षण और हताशा दोनों एक साथ है। की स्वयं को जानना बहुत मुश्किल है। क्योंकि मानवीय संरचना इतनी जटिल है कि अपने ही करीब आकर खुद की चेतना को बारीकी से जानना अति कठिन है। इसलिए शायद यह विरोधाभास दिखाई देता है। कि चेतना की जड़ें जहां है उसे अवचेतन कहा जाता है।

इस बदलते परिवेश में एक तरह ईश्वर का स्थान खो गया और उसी के साथ परिवार में पिता का आदर खो गया। औद्योगिक समाज में पिता वह शख्स है जो सुबह उठकर घर से मीलों दूर किसी कारखाने में जाकर पैसे लाने का काम करता है। अपने बच्चों की शिक्षा में उसका कोई योगदान नहीं है, वह काम स्कूलों के कोई अजनबी शिक्षक करते है।

इस आधुनिक समाज रचना में व्यक्ति स्वयं को कैसे खोजें? और जिसे खुद का ही पता नहीं है वह ''उस'' को ''तत्'' को कैसे अनुभव करे?

इसी प्रश्न को मुखरित करने के हेतु इस किताब की रचना की गई है। उत्तर देना ऐलन वॉटस के बस में नहीं है। उसके लिए प्रबुद्ध सदगुरू चाहिए। लेकिन उनके प्रश्न को जीवंत किया यही क्या कम है।

ओशो का नज़रिया:

आखिरी किताब है, ऐलन वॉटस लिखित ''दि बुक''। मैंने इसे बचाकर रखा था। ऐलन वॉटस बुद्ध नहीं था लेकिन एक दिन हो सकता था। वह उसके करीब चला गया था। ''दि बुक'' अत्यधिक महत्वपूर्ण है। यह उसकी वसीयत है; झेन सदगुरूओं, झेन ग्रंथों के उसके अनुभव का सार निचोड़। और यह आदमी बेहद बुद्धिमान था। वह शराबी भी था, उसकी बुद्धि के साथ शराब धुलि और बड़ी रसपूर्ण किताब बनी। मुझे यह किताब हमेशा पसंद रही है। और मैंने इसे आखिरी क्षण के लिए बचा रखा।

तुम्हें जीसस का वह वक्तव्य याद है? ''धन्य है वे जो अंतिम है। हां, वह किताब धन्य है। मैं उसे आशीर्वाद देता हूं और मैं इस प्रवचन माला को ऐलन वॉटस की स्मृति को समर्पित करता है।

ओशो

दि बुक्स आय हैव लव्ड

36/ दि फर्स्ट एंड लास्ट फ़्रीडम-(जे कृष्णामूर्ति)

दि फर्स्ट एंड लास्ट फ़्रीडम-(जे. कृष्णामूर्ति)

The First and Last Freedom-Jiddu Krishnamurti

यह किताब जे. कृष्णामूर्ति के लेखों का संकलन है। यह उस समय छपी है जब कृष्ण मूर्ति आत्म क्रांति से गुजरकर स्वतंत्र बुद्ध पुरूष के रूप में स्थापित हो चूके थे। लंदन के "विक्टर गोलांझ लिमिटेड" प्रकाशन ने 1958 में यह पुस्तक प्रकाशित की। कृष्ण मूर्ति के एक प्रशंसक और सुप्रसिद्ध अमरीकी लेखक अल्डुअस हक्सले ने इस किताब की विद्वत्तापूर्ण भूमिका लिखी है।

ओशो ने यह किताब 1960 में जबलपुर के मार्डन बुक स्टॉल से खरीदी है। इस पर उनके हस्ताक्षर है, सिर्फ "रजनीश'। किताब के दो खंड है। पहले खंड में विविध मनोवैज्ञानिक विषयों पर कृष्ण मूर्ति के प्रवचन है और दूसरे खंड में प्रश्नोतरी है। प्रवचनों के कुछ विषय इस प्रकार है:

क्या हम खोज रहे है?

व्यक्ति और समाज

विश्वास

सादगी

इच्छा

समय और रूपांतरण

क्या सोचने से सारी समस्याएं हल हो जायेगी?

इन पृष्ठों में कृष्ण मूर्ति का बुद्धत्व सूरज के समान प्रखरता से दीप्तिमान हो उठा है। एक-एक वक्तव्य ऐसा है कि तीर की तरह अंतस में चूभ जाये। मनुष्य की हर छोटी-छोटी स्थिति पर वे मनातीत शिखर से ऐसी रोशनी डालते है, कि हमारे देखने-सोचने का पूरा ढंग तहस नहस हो गया है। इसलिए आश्चर्य नहीं है कि ओशो ने जगह-जगह कृष्ण मूर्ति के वचन रेखांकित किए है। इन शब्दों में न तो नीति है न धर्म, न आचरण के उपदेश है। यह सत्य की सीधी साफ अभिव्यक्ति है। एक-एक वाक्य मर्म भेदन कर पढ़ने वाले को सीधा ध्यान में ले जाता है।

किताब की झलक:

प्रश्न: हम जानते है कि सेक्स एक शारीरिक और मानसिक आवश्यकता है जिससे बचा नहीं जा सकता। लगता है कि हमारे जीवन में जो अराजकता है उस का यह मूल कारण है। हम इस समस्या को कैसे सुलझाएं?

कृष्ण मूर्ति: ऐसा क्यों है कि हम जिस चीज को छूते है उसे समस्या बना देते है? हमने ईश्वर को समस्या बनाया हुआ है, प्रेम को समस्या बनाया हुआ है। और जीने को और संबंधों को समस्या बनाया हुआ है। सेक्स को भी समस्या बनाया हुआ है। हम क्यों दू:ख झेल रहे है? सेक्स समस्या क्यों बन गया? हम जीने को समस्या क्यों बना लेते है? हमारा काम, धन कमाना, सोचना, महसूस करना, अनुभव करना—पूरा जीवन व्यवहार ही—समस्या क्यों है?

क्या इसका कारण बुनियादी तौर पर यह नहीं है कि हम हमेशा एक खास दृष्टिकोण से देखते है? हम हमेशा केंद्र से परिधि की और सोचते है। इसलिए हम जिसे छूते है वह सतही हो जाता है। लेकिन जीवन सतह पर नहीं है। जीवन संपूर्णता चाहता है। और चूंकि हम सतह पर जी रहे है, हम सिर्फ सतही प्रतिक्रिया से ही अवगत है। हम सतही तौर पर जो भी करें उससे समस्या पैदा होने ही वाली है। और यही हमारा जीवन है। हम सतह पर जीते है, और वहीं हम अपनी समस्याओं के संग जीने से संतुष्ट है। जब तक हम सतह पर जीते है तब तक समस्याएं होती है। क्योंकि परिधि ही ''मैं हूं'' मेरी संवेदनाएं है। इन संवेदनाओं को मैं संसार के साथ देश के साथ, या किसी और मनगढ़ंत चीज के साथ जोड़ता हूं।

सेक्स की समस्या से हमारा क्या मतलब है?—सेक्स का कृत्य, या कृत्य के संबंध में हमारी सोच? निश्चय ही, कृत्य समस्या नहीं है। संभोग तुम्हारे लिए समस्या नहीं है। जैसे भोजन करना समस्या नहीं है। लेकिन अगर तुम भोजन के विषय में सारा दिन सोचते रहो, क्योंकि सोचने के लिए तुम्हारे पास और कुछ नहीं है। तो वह समस्या बन जाएगी। तुम सेक्स के बारे में क्यों सोचते हो? क्यों उसकी इमारत खड़ी करते हो? सिनेमा, पत्रिकाएँ, कहानियां, स्त्रियों के कपड़े पहनने का ढंग, सब कुछ तुम्हारी कामुकता को बढ़ावा देता है। तुम्हारा मन सेक्स के बारे में इतना क्यों सोचता रहता है। वह तुम्हारे जीवन में केंद्रीय समस्या क्यों बन गई है?

वह एक अंतिम मुक्ति है। खुद को भूलने का एक तरीका है। कुछ क्षण, कम से कम उस क्षण तुम अपने आपको भूल सकते हो। स्वयं को भूलने का और कोई उपाय नहीं है। तुम्हारे पास जीवन में तुम जो भी करते हो उससे तुम्हारा ''मैं'' पुष्ट होता है। तुम्हारा धंधा, तुम्हारा धर्म, तुम्हारे ईश्वर, तुम्हारे नेता, तुम्हारे राजनैतिक और आर्थिक काम, तुम्हारे सामाजिक कार्य, सब कुछ ''मैं'' को मजबूत करते है। एक ही कृत्य है (संभोग) जिसमें ''मैं'' पर जोर नहीं है? इसलिए वह समस्या बन जाता हैं, है न?

...तुम्हारा जीवन एक विरोधाभास है, मैं को मजबूत करना और ''मैं'' को भूलना। और मन इस विरोधाभास को समाप्त नहीं कर सकता क्योंकि मन ही विरोधाभास है। विरोधाभास को तभी समझा जा सकता है। जब तुम अपनी रोज की जिंदगी को समझोगे सिनेमा जाकर परदे पर स्त्रियों को धुरना, कामुक चित्रों से भरी पत्रिकाएँ पढ़ना, स्त्रियों को देखने को ढंग.... ये सब अनेक उपायों से मन को प्रोत्साहन दे रहे है; अहंकार का पोषण कर रहे है। और दूसरी तरफ तुम प्रेमपूर्ण, कोमल, दयालु होने का प्रयास कर रहे हो। ये दो चीजें एक साथ नहीं हो सकती।

जो आदमी महत्वाकांक्षा से भरा हो—आध्यात्मिक या सांसारिक—वह कभी समस्या के बगैर नहीं रह सकता। क्योंकि समस्या तभी खत्म होती है जब तुम अहम् को भूल जाते हो। जब ''मैं'' होता ही नहीं और ''मैं'' का न होना कोई प्रयत्नपूर्वक कृत्य नहीं है, प्रतिक्रिया नहीं है। तुम्हारा सेक्स प्रतिक्रिया होता है। जब मन समस्या हल करने की कोशिश करता है तब वह समस्या को और जटिल, और उलझी हुई और दर्द नाक बना देता है। सेक्स का कृत्य समस्या नहीं है। मन है समस्या। मन जो कहता है कि मुझे पवित्र होना है। पवित्रता मन की नहीं हो सकती। पवित्रता कोई गुण नहीं है, उसे विकसित नहीं किया जा सकता। जो व्यक्ति विनम्रता को विकसित करता है वह विनम्र नहीं है। वह अपने अभिमान को ही विनम्रता कहता है। भीतर से वह घमंडी है, और अपने घमंड को ही विनम्र कहता है। पवित्रता तभी होगी जब प्रेम है। और प्रेम मन का गुण नहीं है।

इसलिए सेक्स के प्रश्न को तब तक समझा नहीं जायेगा जब तक मन कोन समझा जाये।....सेक्स की अपनी जगह है। न तो वह अपवित्र है, न पवित्र है। जब मन उसे असाधारण महत्व देता है तब वह समस्या बन जाता है। और मन सेक्स को इसलिए समस्या बनाता है क्योंकि वह थोड़े से सुख के बगैर जी नहीं सकता। जब

मन अपनी पूरी प्रक्रिया को समझता है तो वह रूक जाता है। उस क्षण विचार भी रूक जाते है। विचार के रूकने पर ही सृजन है जो कि सुख का स्त्रोत है।

ओशो का नज़रिया:

मैं इस आदमी से प्रेम करता हूं और उन्हें नापसंद भी करता हूं। प्रेम करता हूं क्योंकि वह सच बोलते है और नापसंद करता हूं क्योंकि वह बहुत बौद्धिक है। वे शुद्ध तर्क है। बुद्धि है। कभी मुझे आश्चर्य होता है कि कही वे उस ग्रीक एरिस्टोटल के अवतार तो नहीं है। उनके तर्क मुझे नापंसद है। उनके प्रेम के प्रति मुझे सम्मान है। लेकिन यह किताब बहुत सुंदर है।

बुद्धत्व के बाद यह उनकी पहली किताब है, और आखरी भी। हालांकि उनकी बहुत किताबें आई है बाद में, लेकिन वे एक ही चीज की सामान्य पुनरूक्ति है। फर्स्ट एंड लास्ट फ़्रीडम'' से बेहतर वे कुछ पैदा नहीं कर सके।

यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है। खलील जिब्रान ने अपनी मास्ट पीस ''प्रॉफेट'' उस समय लिखी जब वह अठारह साल का था। और पूरी जिंदगी उससे बेहतर लिखने के लिए प्रयास करता रहा। लेकिन सफल नहीं हुआ। ऑस्पेन्सकी गुरजिएफ से मिला, वर्षो तक उसके साथ रहा, फिर भी ''टर्शियम ऑर्गेनम'' के पार नहीं जा पाया। कृष्ण मूर्ति की भी यही स्थिति है। ''दि फर्स्ट एंड लास्ट फ़्रीडम'' वास्तव में प्रथम और अंतिम है।

ओशो

दि बुक्स आय हैव लव्ड

37/ कमेंटरीज़ ऑन लिविंग-(कृष्ण मूर्ति)

कमेंटरीज़ ऑन लिविंग-(जे. कृष्ण मूर्ति)

Commentaries on Living: Jiddu Krishnamurti's

जे कृष्ण मूर्ति की बेहद खूबसूरत किताब, ''कमेंटरीज़ ऑन लिविंग' एक निर्मल झील है। जो कृष्ण मूर्ति के अंतरतम को पूरा का पूरा प्रतिबिंबित करती है। कृष्ण मूर्ति प्रकृति के सौंदर्य से असीम प्रेम करते थे। जंगलों में, पहाड़ों में देर तक सैर करने का उनका शौक सर्वविदित है। वे प्रकृति की बारीक से बारीक भंगिमा का अति संवेदनशीलता से आत्मसात करते थे।

यह डायरीनुमा दस्तावेज कृष्ण मूर्ति ने अल्डुअस हक्सले के अनुरोध पर लिखा है। कृष्ण मूर्ति अमेरिका यूरोप और भारत में निरंतर भ्रमण करते थे। वहां के लोगों से मिलते थे, उनके प्रश्नों को हल करते थे। उनका वर्णन उन्होंने एक डायरी के रूप में लिखा है। इस डायरी का एक नक्शा है जो कृष्ण मूर्ति का अपना है। वह इस प्रकार है: पहले प्रकृति का वर्णन, फिर स्वयं की मन स्थित और चेतना का चित्रण और अंतत: उन व्यक्तियों और उनके साथ हुए संवाद का शब्दांकन जो उस दिन घटा था। यह डायरी त्रिविध संवाद है—व्यक्ति का प्रकृति से, व्यक्ति का स्वयं से, और व्यक्ति का व्यक्ति से। कृष्ण मूर्ति की वर्णन शैली फिर वह प्रकृति का वर्णन हो या सामने बैठे हुए व्यक्ति की मानसिकता का—चित्रमय है। वे दृश्य को शब्दों में रँगते है। उनके रंग इतने सजीव होते है कि उनके साथ हम भी वह दृश्य देखने लगते है। ये डायरियां कृष्ण मूर्ति के जीवन भविष्य है।ये कभी पुराने और बासी नहीं होते। ठीक वैसे ही जैसे प्रकृति कभी पुरानी या बासी नहीं होती। क्या सूरज बूढ़ा लगता है। क्या लाखों सालों से उग रहे तारे पुराने पड़ गये है। क्या पहाड़ बासी हो गये मालूम होते है। कृष्ण मूर्ति का यह लेखन हमेशा तरो ताजा, सद्य: स्नात है। उसे पढ़कर पढ़ने वाले के भी तर भी ताजगी की फुहार फूट पड़ी है। और वो उस आनंद से सरा बोर हो उठता है। आंखों के सामने प्रकृति का पोर-पोर नाच उठता है, लगता है, हाथ बढ़ा कर छू लो।

प्रकृति के सान्निध्य के साथ-साथ इन संवादों में हम कृष्ण मूर्ति की मानव पर काम करने की शैली देख सकते है। यह शैली बहुत कुछ सुकरात का स्मरण दिलाती है। जिज्ञासु व्यक्ति के प्रश्नों के भीतर पैठ कर कृष्ण मूर्ति उसे दिखा देता है कि उत्तर प्रश्न की गहराई में ही छिपा है। व्यक्ति स्वयं, स्वयं को पूर्ण और स्वस्थ बना सकता है। किसी गुरु के पास जाने की जरूरत नहीं है। कृष्ण मूर्ति दर्पण बनते है जिसमें प्रश्नकर्ता चाहे तो अपनी छवि देख सकता है। ध्यानियों, खोजियों के लिए अत्यंत उपयोगी यह किताब कृष्णामूर्ति फ़ाउंडेशन, इंडिया ने प्रकाशित की है।

किताब की झलक:

घाटी के एक छोर से दूसरे छोर जाता घुमावदार रास्ता एक छोटे से पुल पर से गुजरता है जहां तेजी से दौड़ता हुआ पानी अभी-अभी हुई बारिश से मटमैला हुआ है। उत्तर की और मुड़कर मुलायम ढलानों के पार वह एकाकी गांव की तरफ जाता है। वह गांव और उसके निवासी बहुत गरीब थे। पहाड़ियों के उतार पर कई बकरियां, मैं, मैं करती जंगली पौधों को खाती रहती। बड़ा खूबसूरत प्रदेश था यह—हरा-भरा नीली पहाड़ियों से पटा। ये पहाड़ियां ऊंची नहीं थी। लेकिन बहुत प्रचीन थी। और नीले आकाश की पृष्ठभूमि में वे अद्‌भुत सौंदर्य लिये थी। अपरिसीम समय का विलक्षण सुहावनापन। वे उन मंदिरों की भांति थी जो आदमी उनकी शक्ल में बनाता है। स्वर्ग तक पहुंचने की अभीप्सा पूरी करने की कोशिश में। लेकिन उस संध्या, डूबते हुए सूरज की

किरणों को अपने माथे पर धरी हुई ये पहाड़ियां बहुत निकट प्रतीत होती थी। दूर कहीं, दक्षिण दिशा में एक तूफान घुमड़ रहा था और बादलों में लरजती हुई बिजली पूरे भूप्रदेश को एक अजीब सा अहसास दे रही थी। तूफान रात के प्रहर से बरसेगा, लेकिन पहाड़ियां अंतत काल के तूफ़ानों को झेलकर खड़ी थी। और वे हमेशा रहेंगी—मनुष्य के सारे श्रम और पीड़ा के पार।

....उस रास्ते पर अब एक भी व्यक्ति नहीं था। एकाध अकेला ग्रामीण भी नहीं। धरती अचानक सूनी हो गई। अजीब सी शांति छा गई। नया, जवान चाँद काली पहाड़ियों से झांक रहा था। हवा थम गई थी। एक पत्ता भी नहीं हिल रहा था। सब कुछ स्तब्ध था, और मन पूरी तरह अकेला था। वह एकाकी नहीं था, कटा हुआ, अपने विचारों में बंद नहीं था। अकेला था अस्पर्शित और अदूषित था। वह दूरी बनाये उपेक्षा लिये नहीं था, पार्थिव चीजों से अलग नहीं था। वह अकेला था। और फिर भी सबके साथ था। चूंकि वह अकेला था, इसलिए सब कुछ उसी का था। जो अलग होता है वह स्वयं को अलग जानता है। लेकिन इस अकेलेपन में कोई अलगाव नहीं था। कोई विभाजन नहीं था। वृक्ष, झरना, दूर पुकारता कोई ग्रामीण, सारे इसी अकेलेपन में सम्मिलित थे। वह मनुष्य के साथ या पृथ्वी के साथ तादम्यता नहीं था। क्योंकि सब तादात्म्य पूरी तरह से गायब हो गया था। इस अकेलेपन में समय के गुजरने का बोध खो गया था।

वे तीन लोग थे—पिता, पुत्र और एक मित्र। पिता पचपन से ऊपर था, पुत्र तीस साल के आसपास और मित्र की आयु का अंदाजा लगाना मुश्किल था। दोनों बुजुर्ग गंजे थे। लेकिन बेटे के घने बाल थे। सुघड़ मस्तिष्क था, कुछ छोटी नाक, और बड़ी आंखें। उसके होंठ बेचैन थे, हालांकि वह चुपचाप बैठा हुआ था।

बेटा बोलने लगा, यद्यपि मेरे पिताजी बातचीत में भाग नहीं लेंगे। फिर भी वे साथ रहना चाहते है क्योंकि यह समस्या ऐसी है। कि सभी को छूती है। सर, बात यह है कि हम सब बूढ़े हो रहे है। मैं, हालांकि इन दोनों की बनिस्बत युवा हूं, उस मोड़ तक आ रहा हूं जब लगता है, समय के पंख लगे है। दिन छोटे लगते है और मौत करीब लगती है। लेकिन फिलहाल हमारी समस्या मौत नहीं बुढ़ापा है।

बुढ़ापे से तुम्हारा मतलब क्या है? तुम शारीरिक संयंत्र के जराग्रस्त होने की बात कर रहे हो या मन के?

शरीर का बुढ़ापा तो अटल है, उपयोग और बीमारी की वजह से वह चुक जाता है। लेकिन क्या मन का बूढ़ा होना और जीर्ण होना जरूरी है?

इस तरह दिमाग लड़ाना व्यर्थ है और समय बरबाद करना है। क्या मन का जीर्ण होना मात्र कल्पना है या तथ्य?

तथ्य है, सर। मुझे पता है कि मेरा मन जीर्ण हो रहा है, थक रहा है। हलके-हलके बूढा हो रहा है।

क्या युवकों की भी यही समस्या नहीं है। हालांकि उन्हें अभी इसका बोध नहीं है? उनके मस्तिष्क भी एक ढाँचे में जड़ हो गये है। उनके विचार संकीर्ण चौखट में बंद हो गये है। लेकिन जब तुम कहते हो कि मन बूढा हो रहा है तब तुम्हारा मतलब क्या है?

वह उतना तरल, लचीला, सजग और संवेदनशील नहीं है जैसा पहले हुआ करता था? उसकी सजगता कम हो रहा है। जीवन की चुनौतियों के प्रति उसी जो प्रतिक्रिया होती है वह अतीत से आती है।

तब फिर वह क्या है जो मन को बूढा करता है। वह है सुरक्षा और परिवर्तन के प्रति विरोध प्रत्येक व्यक्ति का एक न्यस्त स्वार्थ है जिसकी वह जाने अनजाने रक्षा कर रहा है। उसे किसी को छूने नहीं देता।

ओशो का नज़रिया:

मैं फिर जे. कृष्ण मूर्ति की और तुम्हारा ध्यान खींचता हूं। उस किताब को नाम है: ''कमेंटरीज़ ऑन लिविंग'' इसके कई भाग है। यह उसी तत्व से बनी है जिससे सितारे बने है।

''कमेंटरीज़ ऑन लिविंग'' कृष्ण मूर्ति की डायरी है। कभी-कभी वे अपनी डायरी में लिखते है.....एक रमणीय सूर्यास्त, कोई प्राचीन वृक्ष, या सिर्फ एक संध्या...घर लोट रहे पक्षी। सागर की और दौड़ने वाली सरिता...जो भी भाव उठे, उसे कभी-कभी लिखते थे। ऐसे ही इस पुस्तक का जन्म हुआ। यह व्यवस्थित रूप से नहीं लिखी गई। यह एक डायरी है। फिर भी, इसे सिर्फ पढ़ने से तुम किसी और ही लोक में पहुंच जाते हो। सौंदर्य का जगत...या इससे भी अच्छा, धन्यता का जगत। क्या तुम मेरे आंसुओं को देख सकते हो?

कुछ समय से मैंने पढ़ा नहीं है। लेकिन इस किताब के नाम से ही मेरी आंखों में आंसू आ जाते है। मुझे यह किताब बेहद प्यारी है। आज तक जो श्रेष्ठतम किताबें लिखी गई है उनमें से यह एक है। मैंने पहले कहा था कि कृष्ण मूर्ति की ''फर्स्ट एंड लास्ट फ़्रीडम'' सर्वश्रेष्ठ किताब है। जिसके पार वे नहीं जा सके। लेकिन यह तो किताब नहीं डायरी है। इसलिए मैं इसे अपनी सूची में सम्मिलित करता हूं।''

ओशो

दि बुक्स आय हैव लव्ड

38/ एट दि फीट ऑफ दि मास्टर-(जे कृष्ण मुर्ति)

एट दि फीट ऑफ दि मास्टर-(जे. कृष्ण मूर्ति)

At the Feet of the Master: Selected-J. Krishnamurti

यह किताब गागर में सागर है। इतनी छोटी है कि उसे किताब कहने में झिझक होती हे। चार इंच चौड़ी और पाँच इंच लंबी इस लधु पुस्तक के सिर्फ 46 पृष्ठों में पूरा ज्ञान सम्माहित है। किताब के लेखक का नाम दिया है ''अल्कायन''। मद्रास के थियोसोफिकल पिब्लशिग हाऊस ने सन 1910 में पहली बार यह किताब प्रकाशित की। उसके बाद इसके दर्जनों संस्करण हुए। ओशो ने यह किताब 1969 में जबलपुर की किसी दुकान से खरीदी थी।

किताब की भूमिका है एनी बेसेंट द्वारा लिखित। उन्होंने लिखा है कि हमारे एक छोटे बंधु की—जो कि आयु में छोटा है, आत्मा में बड़ा—यह पहली किताब है जो उसके गुरु ने उसे हस्तांतरित की है। गुरु के विचार शिष्य के शब्दों का परिधान पहन कर आये है।

इसके बाद एक आमुख है जिस पर किसी का नाम नहीं है। जाहिर है इसे लेखक ने ही लिखा है। उसमे लेखक स्पष्ट करता है: ''ये मेरे शब्द नहीं है, मेरे गुरु के शब्द है। ये शब्द उन सके लिए है जो अंतर्यात्रा पर चलना चाहते है। लेकिन गुरु के शब्दों की प्रशंसा करना काफी नहीं है, उन पर चलना जरूरी है। गुरु के शब्दों को एकाग्रता से सुनना चाहिए। यदि चूक गए तो वे सदा के लिए खो गए। क्योंकि गुरु दो बार नहीं बोलता।''

किताब के कुल चार प्रकरण है, और एक-एक प्रकरण में एक-एक गुणों का विवेचन किया है जो अंतर्यात्रा पर चलने के लिए आधारभूत है।

1.विवेक 2. इच्छारहित 3. सदाचार 4. प्रेम।

यह एकमात्र किताब है जो कृष्ण मूर्ति ने थियोसाफी के प्रभाव में लिखी है। इसलिए इनकी भाषा, अभिव्यक्ति, सोचने का ढंग बहुत परंपरा से बंधा है। जो कि अत्यंत गैर-कृष्णामूर्ति जैसा है। बुद्धत्व के बाद उनके द्वारा लिखी गई किताबों पर उनकी अपनी छाप है। जो कि पूरे विश्व साहित्य में अद्वितीय है। यह किताब पढ़ते हुए लगता है जैसे कोई भी आम धार्मिक ग्रंथ पढ़ रहे हो। फिर भी आध्यात्मिक पथ पर चलने के इच्छुक पथिक के लिए वह कीमती पाथेय है।

किताब की एक झलक:

अनेक लोग है जिनके लिए इच्छारहित होना बहुत मुश्किल जान पड़ता है। क्योंकि वे महसूस करते है कि वे ही इच्छा है। यदि उनकी विशिष्ट इच्छाएं पसंदगी ना-पसंदगी उनसे छीन ली जाए तो वह बचेंगे ही नहीं। लेकिन ये वहीं लोग है जिन्होंने गुरू को नहीं जाना और देखा है। उनकी पवित्र उपस्थिति में सारी इच्छाएं मर जाती है। सिवाय एक उनके जैसे होने की इच्छा के। फिर भी इससे पहले कि उससे दरस-परस हो जाए, तुम इच्छाओं को त्याग सकते हो।

विवेक ने तुम्हें दिखा दिया है कि अधिकांश लोग जिसकी आकांशा करते है, जैसे धन, सत्ता, वे पाने योग्य नहीं है। जिन्हें वास्तव में ऐसा प्रतीत होता है सिर्फ कहने के लिए नहीं, उनके लिए सारी दौड़ खो जाती है। जब अहंकार की सारी इच्छाएं विलीन हो जाती है, तब भी अपने काम के परिणाम देखने की इच्छा बनी रहती है। अगर तुम किसी की सहायता करते हो तो तुम देखना चाहते हो कि तुमने कितनी सहायता की। शायद तुम चाहते हो कि वह भी उसे देखे और अनुग्रह अनुभव करे। लेकिन यह भी इच्छा है और उससे श्रद्धा नहीं है। जब तुम अपनी पूरी उर्जा उड़ेल कर किसी की सहायता करते हो तब परिणाम तो होंगे ही; तुम देख सको या ना देख

सको। यदि तुम नियम को जानते हो तो ऐसा होगा ही। इसलिए तुम्हें सही काम करना है सही करने के खातिर; फल की आशा से नहीं। तुम्हें काम की खातिर काम करना है; उसका परिणाम देखने के लिए नहीं। तुम्हें संसार की सेवा करनी है क्योंकि तुम्हारा प्रेम इतना है कि तुम वैसा करने के लिए विवश हो।

ओशो का नज़रिया:

कृष्ण मूर्ति कहते है कि उन्हें स्मरण नहीं है कि उन्होंने यह किताब कब लिखी। बहुत पहले यह लिखी गई थी। जब कृष्ण मूर्ति नौ दस साल के रहे होंगे। उन्हें इतनी पुरानी याद कैसे होगी जिस समय यह किताब छपी थी? लेकिन यह एक बहुत बड़ी रचना है।

मैं पहली बार दुनिया से कहना चाहता हूं कि इसकी असली लेखिका है ऐनि बेसेंट। ऐनि बेसेंट ने अपना नाम क्यों नहीं दिया? उसके पीछे कारण था। वह चाहती थी कि संसार कृष्ण मूर्ति को सदगुरू की तरह जाने। यह एक मां की महत्वाकांक्षा थी। उसने कृष्ण मूर्ति की परवरिश की थी। और वह उनसे वैसा ही प्रेम करती थी जैसी एक मां अपने बच्चे से करती है। बुढ़ापे में उसकी एक ही इच्छा थी कि कृष्ण मूर्ति जगत गुरु बन जाए। अब कृष्ण मूर्ति जगत गुरु कैसे बने अगर उनके पास जगत से कहने के लिए कुछ न हो? इस किताब—''एट दि फीट ऑफ दि मास्टर''—में उसने इस जरूरत को पूरा किया है।

''कृष्ण मूर्ति इस किताब के लेखक नहीं है। वे खुद कहते है कि उन्हें याद नहीं है कि उन्होंने यह किताब कब लिखी। वे प्रामाणिक आदमी है, सच्चे और ईमानदार, फिर भी यह किताब उन्हीं के नाम से बिकती है। उन्हें उसे रोकना चाहिए। इस किताब के प्रकाशक को उन्हें ये बात स्पष्ट कर देना चाहिए कि वे इसके लेखक नहीं है। अगर वे प्रकाशित करना चाहते है तो इसे बीना नाम के प्रकाशित करे। लेकिन ऐसा उन्होंने नहीं किया। इसलिए मुझे कहना पड़ता है कि अभी तक वे, ज़ेन के दस बैलों में से नौवें पर ही अटके है। वे इनकार नहीं कर सकते। वे सिर्फ इतना ही कहते है कि उन्हें याद नहीं है। इनकार करो। कहो कि यह तुम्हारी रचना नहीं है।

लेकिन किताब सुंदर है। वस्तुत: किसी को भी फख्र होता है उसने लिखी है। जिन्हें राह पर चलना है और गुरु से सुर मिलाना है, उन्हें इस किताब का अध्ययन करना चाहिए। मैंने कहा, ''अध्ययन'' पढ़ना नहीं, क्योंकि लोग उपन्यास पढ़ते है। या आध्यात्मिक कहानियां पढ़ते है—लोब सैंग राम्पा की दर्जनों किताबों की तरह।

ओशो

दि बुक्स आय हैव लव्ड

39/ ए न्यू मॉडल ऑफ दि यूनिवर्स-(पी. डी. ऑस्पेन्सकी)

ए न्यू मॉडल ऑफ दि यूनिवर्स—(पी. डी. ऑस्पेन्सकी)

A New Model of the Universe-P. D. Ouspensky

पी. डी. ऑस्पेन्सकी एक रशियन गणितज्ञ और रहस्यवादी था। उसे रहस्यदर्शी तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन रहस्य का खोजी जरूर था। विज्ञान अध्यात्म, गुह्म विद्या, इन सबमें उसकी एक साथ गहरी पैठ थी। इस अद्‌भुत प्रतिभाशाली लेखक ने पूरी जिंदगी अस्तित्व की पहेली को समझने-बुझने में लगायी। उसने विश्वंभर में भ्रमण किया, वह भारत भी आया, कई योगियों और महात्माओं से मिला। और अंत मैं गुरजिएफ का शिष्य बन गया। गुरजिएफ के साथ उसे जो अनुभव हुए उनके आधार पर उसने कई किताबें लिखी।

ऑस्पेन्सकी को बचपन से ही अदृश्य पुकारता था; उसकी झलकें आती थी। एक तरफ वह फ़िज़िक्स का अध्यन करता और दूसरी तरफ उसे ''अनंतता'' दिखाई देता।

ओशो ने ऑस्पेन्सकी की पाँच किताबों को अपनी मनपसंद किताबों में शामिल किया है। ''टर्शियम ऑर्गेनम'', ''इस सर्च ऑफ दि मिरेकुलस'', '' एक न्यू मॉडल ऑफ यूनिवर्स'', ''दी फोर्थ वे'', और ''दि फ़्यूचर साइकॉलॉजी ऑफ मैन''। वे स्पष्ट रूप से कहते थे, ऑस्पेन्सकी की किताबें मुझे बहुत पसंद है।

इस किताब के भी 542 पृष्ठ है, और बारह प्रकरण है। यह एक अच्छा खाता रत्नाकर हे। विचारों के रत्न ही रत्न भरे पड़े है। इसके पन्नों में। और हर विचार ऐसा जो हमें एक नई अंतर्दृष्टि दे, जीवन के बारे में नये ढंग से सोचने की प्रेरणा दे। किताब का प्रारंभिक प्रकरण है ''इसोटेरिज्म एक मॉडर्न थॉट (गुह्म विज्ञान और आधुनिक विचार) और अंतिम प्रकरण है: सेक्स एंड इवोल्यूशन (सेक्स और विकास)। ऑस्पेन्सकी निरंतर विज्ञान की खोजों का आधार लेते हुए, उसकी नींव पर रहस्य और अध्यात्म का भवन खड़ा करता है। उसका पूरा प्रयास यह है कि अतीत के आविष्कारों, वैज्ञानिकों, तर्क शास्त्रियों और नियमों को रद्द करके आधुनिक मनुष्य को एक नवीन, संपूर्ण और स्वस्थ आध्यात्मिक दृष्टि दी जाये। इसीलिए उसने किताब का नामकरण किया है: ''ए न्यू मॉडल ऑफ दि यूनिवर्स'' इसी नाम का एक प्रकरण भी है इस किताब में।

ऑस्पेन्सकी का तर्क सीधा-साफ है। वह कहता है विश्व को समझने के लिए उसकी एक रूपरेखा बनानी जरूरी है। जैसे घर बनाने से पहले आर्किटेक्ट उसका नक्शा बनाता है। विज्ञान और दर्शन ने अतीत में विश्व का जो नक्शा बनाया था वह बड़ा संकीर्ण था। फ़िज़िक्स, केमिस्ट्री, खगोलविज्ञान इतना विकसित नहीं हुआ था। अब बीसवीं सदी में विज्ञान ने और विचार ने इतनी छलाँगें लगाई है कि अब हमें अरस्तू न्यूटन, पाइथागोरस, यूक्लिडी इत्यादि लोगों को सम्मानपूर्वक विदा करना चाहिए। विज्ञान ने ही अपने पुरखों की उपयोगिता निरर्थक कर दी है।

किताब की भूमिका में प्रसिद्ध अंग्रेज नाटककार इब्सेन द्वारा निर्मित एक पात्र डॉ स्टॉकमन का एक वक्तृत्व ऑस्पेन्सकी के उद्‌धृत किया है। (इस वक्तव्य पर ओशो के पेन के लाल निशान लगे है।) वह कहता है, '' कुछ जरा-जर्जर सत्य होते है। वे अपनी उम्र से कुछ ज्यादा जी चुके है। और जब सत्य इतना बूढा होता है तो वह झूठ बनने के रास्ते पर होता है। इस तरह के सभी जीर्ण सत्य मांस के सड़े हुए टुकड़े की तरह होते है। उनमें पैदा होने वाली नैतिक बीमारी लोगों की अंतड़ियों को भीतर से कुरेदती रहती है।

अतीत का विचार और विज्ञान अब एक बूढा सत्य हो चूका है जो लंबी उमर के कारण असत्य बन गया है।

ऑस्पेन्सकी ने दो तरह की सोच बतायी है: तर्कसंगत और मनोवैज्ञानिक, अब तक हम आस्तित्व को तर्कसंगत मस्तिष्क से समझने की कोशिश करते थे लेकिन अस्तित्व बहुत विराट है, उसे समझने के लिए नई संवेदनशीलता चाहिए जो कि मनोवैज्ञानिक सोच से आ सकती है। तर्क बड़े सुनिश्चत निष्कर्ष निकालता है। और तार्किक मस्तिष्क सोचता है कि उसने सब कुछ जान लिया। इसलिए जीवन के रहस्य को वह बिलकुल चूक जाता है। मनोवैज्ञानिक मस्तिष्क मुश्किल में पड़ जाता है। क्योंकि उसके सामने रहस्य के इतने द्वार खुल जाते है कि वह कुछ भी सुलझा नहीं पाता। अस्तित्व के समक्ष विवश होकर खड़ा रह जाता है। लेकिन वह आदमी रहस्य को जीता है।

ऑस्पेन्सकी को बचपन से ही अदृश्य पुकारता था; उसकी झलकें आती थी। एक तरफ वह फ़िज़िक्स का अध्ययन करता और दूसरी तरफ उसे अनंतता के आलोक में वस्तुओं की जड़ता खो जाती। सब कुछ चैतन्य से तरंगायित नजर आता। जब चेतना नजर आती है तो उसके साथ एक और परिवर्तन घटते है। वस्तुओं को जोड़ने वाले एक अखंड तत्व का साक्षात होता है। इन परा मानसिक अनुभूतियों के बाद ऑस्पेन्सकी अपने घर में न रह सका। वह पूरब की और चल पडा गुह्म रहस्य विद्यालयों और गुरूओं की खोज में।

ऑस्पेन्सकी अपनी यात्रा के दौरान ईजिप्त से होते हुए भारत आया। वह इतने आध्यात्मिक व्यक्तियों से मिला कि धीरे-धीरे उसकी आंखों के सामने एक नया रहस्यपूर्ण समाज उभरने लगा, नयी कोटि के लोग जिनके पैदा होने की तैयारियाँ चल रही है; नये आदर्श नये बीज बोये जा रहे है ताकि आदमी की नई नस्ल पैदा हो। क्या यह ओशो चेतना के अवतरण की पूर्व तैयारी थी। वे नई कोटि के लोग कौन है? ओशो कहते है: ''ऑस्पेन्सकी मेरे संन्यासियों की बात कर रहा है।'' (बुक्स आय हैव लव्ड)

ऑस्पेन्सकी रहस्य लोक और भौतिक जगत को जोड़नेवाला एक सेतु है। वह निरंतर मनुष्य की प्रचलित, स्थापित धारणाओं का अनदेखा पहलू दिखाता है। जैसे डार्विन के विकासवाद के सिद्धांत के बारे में वह कहता है, कि यह सिद्धांत अब मनुष्य के मस्तिष्क में इतना खुद गया है। इसके पक्ष में बोलना पुरातन पंथी लगता है। लेकिन विकास वाद हर कहीं लागू नहीं होता। अगर हर चीज एक नियम के अनुसार विकसित हो रही है तो फिर दुर्घटनाओं का क्या? घटनाओं की आकस्मिकता की क्या व्याख्या होगी। कुछ चीजें ऐसी भी है जो विकास से परे है, जैसे आनंद, चेतना, आसमान।

समय की चर्चा करते हुए, ''इटर्नल रिकरन्स'' ''अर्थात शाश्वत पुनरावर्तन'' के प्रकरण में ऑस्पेन्सकी ने यह अंत दृष्टि दी है कि तार्किक मस्तिष्क को समय जैसा दिखाई देता है, केवल वैसा ही नहीं है। समय का तीन आयामों के, विश्व के पास का चौथा आयाम भी है: अनंतता, अनंतता समय का अंत ही विस्तार नहीं है। बल्कि त्रिकाल(भूत, वर्तमान, भविष्य) के पार स्थित, चौथा आयाम है जिसे सामान्य तार्किक मन समझ नहीं पाता।

पुनर्जन्म की वैज्ञानिक जरूरत बताते हुए ऑस्पेन्सकी कहता है, यदि पुनर्जन्म न हो तो मानव जीवन बहुत ही बेतुका, अर्थहीन और छोटा मालूम होता है। जैसे किसी उपन्यास का एक फटा हुआ पन्ना। इस छोटे से जीवन के लिए इतनी आपाधापी, इतना शोरगुल व्यर्थ जान पड़ता है।

ऑस्पेन्सकी भारत में कई योगियों से मिला। उसने स्वयं योग का अभ्यास भी किया। इस अभ्यास से निर्मित हुआ एक प्रकरण: ''योग क्या है।''

ऑस्पेन्सकी की विशिष्टता यह है कि इस किताब को यह दार्शनिक या अध्यात्मिक शब्दजाल नहीं बनाता, बल्कि लगातार वैज्ञानिक धरातल पर ले आता है। भौतिक जगत और सूक्ष्म जगत, विज्ञान और अध्यात्म का एक अंतर-नर्तन सतत चलता रहता है। इसलिए यह ग्रंथ एक फंटासी न रहकर वैज्ञानिक खोज बनती है। सभी स्थापित वैज्ञानिक नियमों को ऑस्पेन्सकी ने आध्यात्मिक आयाम के द्वारा विस्थापित कर दिया है। न्यूटन का

सर्वमान्य गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत ऑस्पेन्सकी अ-मान्य कर दिया है। उसकी दृष्टि में गुरुत्वाकर्षण तभी तक लागू है जब तक हम वस्तुओं को ठोस आकार की तरह देखते है। यदि वस्तुएं केवल वर्तुलाकार तरंगें है। जो एक दूसरें से जुड़ी हुई है तो कौन किसको खींचेगा। हम किस तल से चीजों को देखते है इस पर उसके नियम निर्भर करते है। एक कुर्सी तभी तक कुर्सी है जब तक हम चीजों को जड़ मानते है। इलेक्ट्रॉन की आंखों से देखें तो कुर्सी एक नाचते हुए अणुओं का ऊर्जा-पुंज है। और अवकाश में जायें तो कुर्सी की कोई उपयोगिता नहीं है, क्योंकि वहां ''बैठना'' संभव ही नहीं है। सब कुछ तैरता रहता है।

''ए न्यू मॉडल ऑफ दि यूनिवर्स'' एक आनंद यात्रा है। इसके शब्द मृत आकार नहीं है। जीवंत प्राणवान अनुभूतियां है। ऑस्पेन्सकी की भाव दशा में आकर हम इस अभियान पर चलें तो वाकई नये मनुष्य बनकर बाहर आयेंगे—एक ताजगी लेकर, नई आंखे और नई समझ लेकर।

लेकिन यह ताजगी इतनी आसानी से नहीं मिलेगी। 542 पृष्ठ का लंबा सफर तय करना पड़ेगा। उतना साहस और धीरज हो तो विश्व का यह नया नक्शा आपके जीवन को रूपांतरित कर देगा। लंदन के ''रूट लेज एण्ड केगन पॉल लिमिटेड'' ने इसे 1931 में प्रकाशित किया था। उसके बाद इसके छह संस्करण प्रकाशित हुए। टी. वी. के उथले मनोरंजन से जो ऊब गये है उनके लिए यह किताब एक स्वास्थ्यवर्धक बौधिक पोषण है।

किताब की एक झलक:

दि फोर्थ डायमेन्शन—(चौथा आयाम)

यह ख्याल लोगों के मन में बढ़ना और मजबूत होना जरूरी है कि एक गुह्म ज्ञान है। जो उस सारे ज्ञान के पार है, जो मनुष्य अपने प्रयत्नों से प्राप्त कर सकता है। क्योंकि ऐसी कितनी ही समस्याएं है, प्रश्न है, जिन्हें वह सुलझा नहीं सकता।

मनुष्य स्वयं को धोखा दे सकता है, सोच सकता है उसका ज्ञान बढ़ता है, विकसित होता है; और वह पहले जितना जानता-समझता था, अब उससे अधिक जानने समझने लगा है। लेकिन कभी-कभार वह ईमानदारी से देखे कि आस्तित्व की बुनियादी पहेलियों के आगे वह इतना ह विवश है जितना कि जंगली आदमी या छोटा बच्चा होता है। हालांकि उसने कई जटिल यंत्र खोज लिए है। जिन्होंने उसके जीवन को और उलझा दिया है। लेकिन सुलझाया कुछ भी नहीं।

स्वयं के साथ और भी ईमानदारी बरतें तो मनुष्य पहचान सकता है कि उसकी सारी वैज्ञानिक और दार्शनिक प्रणालियां और सिद्धांत इन यंत्रों और साधनों की मानिंद है, क्योंकि वे प्रश्नों को और दुरूह बना देते है। हल नहीं करते।

दो खास प्रश्न जो मनुष्य को हर वक्त धेरे रहते है वे है—अदृश्य जगत का प्रश्न और मृत्यु की पहले।

मनुष्य चिंतन के पूरे इतिहास में सभी रूपों में , निरपवाद रूप से, जगत को दो कोटियों में बांटा गया है: दृश्य और अदृश्य। और लोगों को इस बात का अहसास रहा है कि दृश्य जगत जो उनके सीधे निरीक्षण और अध्ययन का अहसास रहा है कि दृश्य जगत जो उनके सीधे निरीक्षण और अध्ययन का हिस्सा है वह बहुत छोटा है, लगभग है ही नहीं। जिसकी तुलना में विराट अदृश्य आस्तित्व है। ....विश्व का यह विभाजन—दृश्य और अदृश्य–मनुष्य की विश्व-संबंधी पूरी सोच की आधारशिला है; भले ही इन विभाजनों को उसने नाम कुछ भी दिया हो। अगर हम विश्व के दर्शनों की गिनती करें तो ये विभाजन स्पष्ट हो जायेंगे। पहले ता हम सभी विचार पद्धतियों को तीन वर्गों में बांट दें–

धार्मिक पद्धति

दार्शनिक पद्धति

वैज्ञानिक पद्धति

सभी धार्मिक पद्धतियां, निरपवाद रूप से, जैसे ईसाइयत, बौद्ध, जैन से लेकर जंगली आदमी के पूर्णतया अप्रगति धर्म तक जो कि आधुनिक मनुष्य को आदिम दिखाई देते है। विश्व को दो वर्गों में बांटते है—दृश्य और अदृश्य। ईसाइयत में ईश्वर, फ़रिश्ते, शैतान, दैत्य, जीवित और मृत व्यक्तियों की आत्माएं, स्वर्ग और नर्क की धारणाएं है। और उससे पूर्व पेगन धर्मों में आधी तूफान, बिजली, बरसात, सूरज, आसमान, इत्यादि-इत्यादि नैसर्गिक शक्तियों को मानवीय रूप देकर देवताओं की शकल में पूजा गया है।

दर्शन में एक घटनाओं का जगत है। और एक कारणों का जगत है। एक संसार वस्तुओं का और एक संसार विचारों का। भारतीय दर्शन में, विशेषत: उसकी कुछ शाखाओं में दृश्य याने घटनाओं के जगत को माया कहा गया है, जिसका अर्थ है: अदृश्य जगत की अयथार्थ प्रतीति, इसलिए वह है ही नहीं।

विज्ञान में, अदृश्य जगत अणुओं का जगत है। और अजीब बात यह है कि वही विशाल मात्राओं का जगत है। जगत की दृश्यता उसकी मात्रा से नापी जाती है। अदृश्य जगत में है: कोशिकाएं, मांसपेशियाँ, माइक्रो-ऑर्गानिज्मस, दूरबीन से देखे जाने वाले सूक्ष्म जीवन, इलेक्ट्रॉन -प्रोटोन- न्यूट्रॉन, विद्युत तरंगें। इसी जगत में शामिल है, दूर-दूर तक फैले सितारे, सूर्य मालाएँ और अज्ञात विश्व। माइक्रोस्कोप एक आयाम में हमारी दृष्टि को विशाल करता है। और टेलीस्कोप दूसरी दिशा में। लेकिन जो अदृश्य विश्व शेष रह जाता है उसकी तुलना में विज्ञान की सूक्ष्म दृश्यता बहुत कम है।

ऑन दि स्टडी ऑफ ड्रीम्स एण्ड हिप्नोटिज्म:

यह पुस्तक ओशो ने सन 1869 में पढ़ी। जैसी कि उनका पढ़ने का अंदाज था, वे पुस्तक के महत्वपूर्ण अंशों पर लाल और नीले निशान लगाते थे। इस पुस्तक के जिन अंशों पर ओशो ने नीले बिंदु लगाये है उनमें से कुछ अंश प्रस्तुत है:

मेरे जीवन के कुछ बहुत अर्थपूर्ण संस्कार ऐसे थे जो स्वप्नों के जगत से आये। बचपन से स्वप्न लोक मुझे आकर्षित करता रहा। स्वप्नों की अगम घटना की व्याख्या मैं हमेशा ढूँढता रहा और यथार्थ और अयथार्थ स्वप्नों का अंतर-संबंध जानने की कोशिश करता रहा हूं, मेरे कुछ असाधारण अनुभव स्वप्नों से संबंधित रहे है। छोटी आयु में ही मैं इस ख्याल को लेकिर जागता था कि मैंने कुछ अद्‌भुत देखा है, और वह इतना रोमांचकारी है कि अब तक मैंने भी जो जाना था, समझा था, वह बिलकुल नीरस जान पड़ता है। इसके अलावा, मैं बार-बार आनेवाले स्वप्नों से आश्चर्यचकित था। ये स्वप्न बार-बार एक ही परिवेश में एक ही शकल में आते और उनका अंत भी एक जैसा होता। और उनके पीछे वही स्वाद छूटता।

सन 1900 के दरमियान जब मैं सपनों पर उपलब्ध पूरा साहित्य पढ़ चुका, मैंने खुद ही अपने स्वप्नों को विधिवत समझने की ठान ली। मैं अपने ही एक अद्‌भुत ख्याल पर प्रयोग करना चाहता था। जो बचपन में ही मेरे दिमाग में मेहमान हुआ था: क्या स्वप्न देखते समय होश साधना संभव नहीं है? मतलब, स्वप्न देखते हुए यह जानना कि में सोया हूं और होश पूर्वक सोचना, जैसे हम जागे हुए सोचते है।

मैंने अपने स्वप्नों को लिखना शुरू किया। उससे मेरी समझ में एक बात आ गई कि स्वप्नों को देखना हो तो जो सामान्य विधियां सिखाई जाती है वे किसी काम की नहीं हे। स्वप्न निरीक्षण को झेल नहीं पाते। निरीक्षण उन्हें बदल देता है। और शीध्र ही मेरे ख्याल में आया कि मैं जिनका निरीक्षण कर रहा था वे पुराने स्वप्न नहीं थे। बल्कि नये स्वप्न थे जिन्हें मेरे निरीक्षण ने पैदा किया था। मेरे भीतर कुछ था जिसने स्वप्न पैदा करने शुरू किये। मानों वे ध्यान को आकर्षित कर रहे थे।

दूसरा प्रयास स्वप्न में जागे रहना, इसे साधते-साधते मैं स्वप्नों को निरीक्षण करने का एक नया ही अंदाज सीख गया। उसने मेरी चेतना में एक अर्ध-स्वप्न की स्थिति पैदा कर दी। और मैं निश्चित रूप से जान गया कि अर्ध-स्वप्न की स्थिति के बिना स्वप्नों का निरीक्षण करना असंभव था।...इस अर्ध स्वप्न की स्थिति में मैं एक ही समय सोचा रहता और जागा भी रहता।

ऐक्सपैरिमैंट मिस्टिसिज्म:

सामान्य जीवन में हम सिद्धांत और प्रतिसिद्धांत के रूप में सोचते है। हमेशा हर कहीं, ''हां'' या ''ना'' में जवाब होत है। अलग ढंग से सोचने पर, नये तरीके से सोचने पर वस्तुओं को चिन्ह बनाकर सोचने पर मैं अपनी मानसिक प्रक्रिया की बुनियादी भूल को समझ गया।

हकीकत में हमेशा तीन तत्व होते है। दो नहीं। सिर्फ, हां या ना नहीं होते, वरन ''हां'' ''ना'', ''और कुछ'' और होते है। और इस तीसरे तत्व का स्वभाव, जो कि समझ के परे था, कुछ ऐसा था कि उसने सामान्य तर्क को असंगत बना दिया और सोचने की आम पद्धति में बदलाहट की मांग की। मैंने पाया कि हर समस्या का उत्तर हमेशा ''तीसरे'' अज्ञात तत्व से आता है। और इस तीसरे तत्व के बिना सही निष्कर्ष निकालना असंभव था।

मैं जब प्रश्न पूछता था तो मैं देखता था कि अकसर वह प्रश्न ही गलत पेश किया गया है। मेरे प्रश्न का उत्तर देने की बजाय वह ''चेतना'' जिससे मैं बात करता था, उस प्रश्न को ही उलटा कर, घूमाकर दिखा देती कि प्रश्न गलत था। धीरे-धीरे मैं देखने लगा कि क्या गलत था। और जैसे ही मैंने स्पष्ट रूप से देखा कि मेरे प्रश्न में गलत क्या था, मुझे उत्तर दिखाई दिया। लेकिन उत्तर हमेशा अपने भीतर तीसरा तत्व लिये रहता जो इससे पहले में देख नहीं पाता था। क्योंकि मरे प्रश्न सदा दो तत्वों पर खड़ा रहता सिद्धांत और प्रतिसिद्धांत। मैंने इसे अपने लिए इस भांति सोच लिया: सारी कठिनाई प्रश्न के बनाने में थी। अगर हम सही प्रश्न बना सकें तो हमे उत्तर का पता चलना चाहिए। सही ढंग से पूछे गये प्रश्न में उत्तर अंतर्निहित होता है। लेकिन वह उत्तर हमारी अपेक्षा से कही भिन्न होगा।

ओशो का नज़रिया:

मैं पुन: ऑस्पेन्सकी का जिक्र करने जा रहा हूं, मैं उसकी दो किताबों का नाम ले चुका हूं। एक ''टर्शियम ऑर्गेनम'' जो उसने अपने गुरु गुरजिएफ से मिलने से पहले लिखी थी। ''टर्शियम ऑर्गेनम'' गणितज्ञों में प्रसिद्ध है। क्योंकि ऑस्पेन्सकी ने जब यह किताब लिखी तब वह गणितज्ञ था। दूसरी किताब ''इन सर्च ऑफ मिरेकुलस'' उसने उस समय लिखी जब वह गुरूजिएफ के साथ कई वर्ष रह चुका था। लेकिन उसने तीसरी किताब लिखी है जो इन दो किताबों के बीच लिखी, ''टर्शियम ऑर्गेनम'' के बाद और गुरूजिएफ से मिलने से पहले। इस किताब को बहुत कम ख्याति प्राप्त हुई है। यह किताब है: ''ए न्यू मॉडल ऑफ दि यूनिवर्स'' बडी विचित्र किताब है। बड़ी विलक्षण।

ऑस्पेन्सकी ने पूरी दुनिया में गुरु की खोज की, खास कर भारत में। क्योंकि लोग अपनी मूढ़ता में सोचते है कि गुरु सिर्फ भारत में ही मिलते है। ऑस्पेन्सकी ने भारत में खोज की, और वर्षों खोज की। गुरु की खोज में वह बंबई भी आया था। उन दिनों में उसने ये सुंदर किताब लिखी ''न्यू मॉडल ऑफ दि यूनिवर्स''

यह एक कवि की कल्पना है। क्योंकि उसे पता नहीं है कि वह क्या कह रहा है। लेकिन जो वह कह रहा है वह सत्य के बहुत-बहुत करीब है। लेकिन सिर्फ ''करीब'' ख्याल रखना। और सिर्फ बाल की चौड़ाई तुम्हारी दूरी बनाने के लिए काफी है। वह दूर ही रहा। वह खोजता रहा.....खोजता रहा....

इस किताब में उसने उसकी खोज का विवरण लिखा है। किताब अचानक खत्म हो जाती है। मॉस्को के एक कैफेटेरिया में, जहां उसे गुरूजिएफ मिलता है। गुरूजिएफ वाकई एक विलक्षण गुरु था। वि कैफेटेरिया में

बैठकर लिखता था। लिखने के लिए भी क्या जगह ढूँढी। वह कैफेटेरिया में जाकर बैठता....लोग बैठे है, खा रहे है, ...बच्चे इधर-उधर दौड़ रहे है। रास्ते से शोर गुल आ रहा है। हॉर्न बज रहे है....ओर गुरूजिएफ खिड़की के पास बैठा, इस सारे उपद्रव से घिरा ''आल एंड एवरीथिंग'' लिख रहा है।

ऑस्पेन्सकी ने इस आदमी को देखा और इसके प्रेम में पड़ गया। कौन बच सकता था? वह सर्वथा असंभव है कि गुरु को देखो और उसके प्रेम में न पड़ जाओं, बशर्ते कि तुम पत्थर के होओ.....या सिंथेटिक चीज से बने हो। जैसे ही उसने गुरूजिएफ को देखा.....आश्चर्य। उसने देखा कि यही वे आंखें है जिन्हें खोजते हुए वह पूरी दुनियां में घूम रहा था। भारत की धूल-धूसरित गंदी सड़कें छान रहा था। और यह कैफेटेरिया मॉस्को में उसके घर के बिलकुल पास था। कभी-कभी तुम जिसे खोजते हो वह बिलकुल पास में मिल जाता है।

ए न्यू मॉडल ऑफ दि यूनिवर्स'' काव्यात्मक है, लेकिन मेरी दृष्टि के बहुत करीब आती है। इसलिए मैं उसे सम्मिलित करता हूं।

ओशो

दि बुक्स आय हैव लव्ड

40/ दि आऊटसाइडर-(विलसन)

दि आऊटसाइडर-(अजनबी)—कॉलिन विलसन

The Outsider-Colin Wilson

(प्रसिद्ध लेखक एच. जी. वेल्स भी एक अजनबी है। वह स्वयं को ''अंधों के देश में आँखवाला आदमी'' कहता है। सोरेन किर्कगार्ड एक गहरा आध्यात्मिक दार्शनिक था। ''अस्तित्ववाद'' उसी ने प्रचलित की हुई संज्ञा है। उसने तर्क और दर्शन को बिलकुल ही नकार दिया। वह कहता था: मैं कोई गणित का फार्मूला नहीं हूं—मैं वास्तव में ''हूं''।

बीसवीं सदी के मध्य में जो शब्द लोकप्रिय हुआ उनमें से एक है: आऊटसाइडर। अस्तित्ववादी दार्शनिक सार्त्र और आल्बेर कामू ने अपनी किताबों में इस शब्द का बहुतं प्रयोग किया है। आऊटसाइडर। इस किताब पर एक फिल्म भी बनी थी जो बहुचर्चित रही।

क्या अर्थ है ''आऊटसाइडर'' कि? शब्दशः: आऊटसाइडर वह है जो बाहरी व्यक्ति है, जिंदगी के बाहर खड़ा है। साथी द्रष्टा, तटस्थ। जीवन के कोलाहल में वह अजनबी है। साक्षी और द्रष्टा आध्यात्मिक शब्द है, और आऊटसाइडर दार्शनिकों के दिमाग से पैदा हुआ। बीसवीं सदी के प्रारंभ में पाश्चात्य विचारक मानव जीवन के प्रति हताश ओर निराशा से भर गये थे। उनकी बुद्धि इतनी प्रखर हो गई थी कि वह साधारण सामाजिक जीवन में रस नहीं ले पाती थी। उस दौर में जो भी अस्तित्ववादी साहित्य पैदा हुआ उसमे लेखकों का जीवन के प्रति रूख ऐसा था जैसे वे एक कमरे में खड़े है और दूसरे कमरे में घटने वाली घटनाओं को दूर से देख रहे है। इन अर्थों में आऊटसाइडर याने अजनबी।

यह किताब आधुनिक युग का प्रतीक है। आधुनिक समय न जाने कैसी सभ्यता और संस्कृति विकसित हई है, आज हर शख्स जिस में थोड़ी भी सजगता है। अपने आपको बेगाना मानता है। वह जिंदगी से उखड़ा-उखड़ा जीता है। जैसे कोई अपना नहीं है। किसी से लगाव नहीं है। आऊटसाइडर या अजनबी होने को ख्याल ही इस मनोभूमि में अंकुरित हुआ है।

यह किताब वक्त की जरूरत थी। एक ही तथ्य इसे सिद्ध करता है कि यह किताब कॉलिन विलसन ने 1956 में लिखी और 1960 तक इसके तेरह संस्करण प्रकाशित हुए। यह इस बात का प्रतीक है कि उन दिनों यह विचार बुद्धिजीवियों पर किस कदर छाया हुआ था। एक अजनबियों की जमात इस किताब की प्रतीक्षा कर रही थी। इस किताब में कॉलिन विलसन ने उन सब लेखकों की किताबों को शामिल किया है। जो असाधारण रूप से प्रतिभाशाली है। जो सतही, समाजिक जीवन से असंतुष्ट है; जिनकी कोई गहरी खोज है।

जो अजनबी है उनकी समस्या क्या है? लोगों की भीड़ में अजनबी बनकर जीना सरल नहीं है। समस्या वह है कि एक ही शरीर में बंदर और मनुष्य दोनों जीते है। और जैसे ही बंदर की इच्छाएं पूरी होने के करीब होती है। वह गायब हो जाता है। और उसकी जगह मनुष्य आ जाता हे। और यह मनुष्य अपने बंदर से सषत नफरत करता है।

विलसन किताब की शुरूआत में लिखता है: ''इस किताब के दौरान हम भिन्न-भिन्न प्रकार से इस समस्या का साक्षात करेंगे—दार्शनिक तल पर सार्त्र और कामू के साथ (जहां उसे अस्तित्ववाद कहा जाता है) धार्मिक स्तर पर बोहेमें और किर्कगार्ड के साथ.....समस्या कमोवेश रूप में वैसी ही रहती है।

विलसन अजनबी की परिभाषा बड़ी मजेदार करता है। वह कहता है, ''अजनबी व्यक्ति एक समाजिक समस्या होता है। याने कि वह हर कहीं बेमेल होता है।''

विलसन हमे तथ्य से आगाह करता है कि हर कलाकर अजनबी नहीं होता। शेक्सपीयर, डांटे, कीट्स बिलकुल सामान्य थे। सामाजिक थे अजनबी व्यक्ति कुछ बेगाना होता है। उस सब कुछ सपने जैसा प्रतीत होता है। अजनबी व्यक्ति आरामदेह, प्रतिष्ठित लोगों का सुरक्षित जीवन नहीं जी सकता। वह बहुत ज्यादा और बहुत गहरे देख लेता है। मूलत: उसकी पैनी नजर अराजक को देख लेती है। वह अराजक के प्रति जाग जाता है। और उसी में जीवन का बीज छिपा होता है। क़बाला नाम के कबीले यह मानते है कि अराजक या कै ओस वह स्थिति है जिसमे व्यवस्था छिपी हुई है। जैसे अंडा पक्षी का अराजक है, कै ओस है।

प्रसिद्ध लेखक एच. जी. वेल्स भी एक अजनबी है। वह स्वयं को ''अंधों के देश में आँख वाला आदमी'' कहता है। सोरेन किकगार्ड एक गहरा आध्यात्मिक दार्शनिक है। ''अस्तित्ववाद'' उसी ने प्रचलित की हुई संज्ञा हे। उसने तर्क और दर्शन को बिलकुल की नकार दिया। वह कहता था। ''मैं कोई गणित का फार्मूला नहीं हूं—मैं वास्तव मैं, ''हूं''।

किर्कगार्ड और फ्रेडरिक नीत्शे दोनों विचारक अपने आप को अजनबी मानते थे।

विलसन की किताब पढ़ते हुए एक बात बड़े प्रभावशाली रूप से उभरती है। और वह है, कॉलिन विलसन का आर्श्चयजनक अध्ययन। उसने पिछले दो शताब्दियों के सभी पाश्चात्य दार्शनिकों और विचारकों का लेखन न केवल पढ़ा है। बल्कि हजम किया है। और उस पूरे अध्ययन का सार निचोड इस किताब में प्रस्तुत किया है। इसलिए विलसन का ''आऊटसाइडर'' कामू और सार्त्र के आऊटसाइडर से बहुत विशाल है।

यह आऊटसाइडर या अजनबी व्यक्ति, एक संकल्पना है, और पश्चिम के जिन लेखकों न इस संकल्पना को समृद्ध बनाने में योगदान दिया है उन सबको किताबों के परिछेद और उन लेखकों के विभिन्न पहलू सामने लाकर विलसन तटस्थता की धारणा को बहु आयामी ओर बहुत अमीर बनाता है। गहरे में, हर प्रतिभाशाली, जीनियस इस दुनिया में अजनबी की तरह जीता है।

आऊटसाइडर को अस्तित्ववाद के छोटे दायरे से मुक्त कर विलसन उसे ''रोमांटिक आऊटसाइडर'' की नई दिशाएं बहाल करता है। पुस्तक के तीसरे परिच्छेद में वह लिखता है।

''अस्तित्ववादियों ने पैदा किए हुए आऊटसाइडर के वातावरण में सांस लेना दुखद है। उसमें कुछ मितली आने जैसा है, जीवन विरोधी है। ये निरूदेश्य लोग एक ही कमरे में रहते है क्योंकि कुछ और करने जैसा नहीं है। इनके जीवन में कोई मूल्य नहीं है। यह बुज़ुर्गों का जगत है। इससे विपरीत बच्चों का जगत बिलकुल साफ-सुथरा है। उसकी हवा में अपेक्षाओं का स्पंदन है। क्रिसमस के समय सजी-धजी बड़ी दुकान नये का जगत का हिस्सा है। रूग्ण चित के लिए, इस दुकान के बाहर खड़े हुए आदमी के लिए यह नया जगत भय पैदा करता है। यह यांत्रिक सभ्यता का प्रतीक है जो लकीरों पर चलती है मानों ग्रामोफोन रेकार्ड हो।

''बच्चों के और बड़ों के जगत में जो फर्क है वही फर्क उन्नीसवीं शताब्दी और वर्तमान समय के बीच है। जॉज स्टूवर्ड मिल, हक्सले, डार्विन, इमर्सन, कार्ल इल, रस्किन इन विक्टोरियन युन के ऋषियों ने विचार के जगत में जो क्रांति लायी उससे मानव जीवन में अंतहीन परिवर्तनों का सिलसिला शुरू हुआ। और मनुष्य अपनी ही मृत आत्माओं को सीढ़ी बनाता हुआ आगे बढ़ता चला गया। इससे पहले कि हम उसकी निंदा करें हम—जो कि दो विश्व युद्धों और अणु बम से बचकर निकले है—उन बुज़ुर्गों की स्थिति में है जो बच्चों की बुराई करते है। अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी का बुद्धिवाद मन की मुर्दा, ऊबाऊ स्थिति नहीं थी। वह तीव्र और स्वस्थ आशावादिता का दौर था जिसे कठिन श्रम और साधारण तर्क से कोई एतराज न था। क्योंकि उसने अपने आपको इतना आजाद कभी न अनुभव किया था।

बीसवीं सदी के पाश्चात्य लेखकों में हरमन हेस (सिद्धार्थ) का लेखक अर्नेस्ट, हमिंग्वे, एच जी वेल्स इत्यादि उपन्यासकारों की कृतियां अजनबी के विभिन्न पहलुओं को चित्रित करने वाली रचनाएं थी। कला के क्षेत्र में देखा जाए तो ऐसे कई कलाकार थे जो असाधारण प्रतिभा को न झेल पाने की वजह से विक्षिप्त हुए। उन्हें कॉलिन ''कलाकार आऊटसाइडर'' कहता है। विन सेन्ट वॉन गाग, ऐसा अजनबी है जिसने चित्रकला को अपनी माध्यम चूना। विन सेंट वॉन गाग, टी ई लॉरेंस, विलक्षण रशियन नर्तक निजिन्सकी इसके कुछ उदाहरण है। इनमें निजिन्सकी पर ईश्वर या जीसस क्राइस्ट बनने की धुन सवार थी। इसके चलते, अंतिम दिनों में निजिन्सकी का पागल होना वाजिब था। उसकी डायरी उसके दर्दनाक जीवन पर काफी प्रकाश डालती है।

नृत्य निजिन्सकी के भीतर बसे अजनबी की अभिव्यक्ति का माध्यम था; लेकिन वह सिर्फ कलाकार नहीं था, उसकी खोज धार्मिक थी। वह लिखता है, ''मैं अपने शरीर में ईश्वर को अनुभव करता हूं, कभी वह मेरे सिर में आग बनता है।....मेरा शरीर बीमार नहीं है, मेरी आत्मा बीमार है। लेकिन डॉ इसे नहीं समझते।

अपनी डायरी में निजिन्सकी बार-बार लिखता है: मैं ईश्वर हूं, मैं ईश्वर हूं। मैं अपनी मांस मज्जा में इसे अनुभव करता हूं।'' निजिन्सकी का जिस्म उसकी सृजन ऊर्जा की अभिव्यक्ति बना और उसके उन्मेषों का आज्ञाकारी सेवक की तरह अनुसरण करता रहा। लोग इसे नृत्य कहते थे।

अजनबी का यह भी मनभावन रूप था.....

फ्रेडरिक नीत्शे एक गंभीर, मौलिक चिंतन करने वाला अजनबी था। उसकी प्रतिभा उसे ही भारी पड़ गई। और निजिन्सकी की तरह आखिर वह भी पागल खानें में पहुंच गया। प्रसिद्ध रशियन उपन्यासकार दोस्तोव्सकी के उपन्यास ''ब्रदर्स कार्मोझोव'' की सविस्तार समीक्षा करते हुए विलसन ''आऊटसाइडर'' नाम के प्राणी की कुछ ख़ूबियाँ बताता है।

आऊटसाइडर तटस्थ बने रहना नहीं चाहता।

वह संतुलित होना चाहता है।

वह मनुष्य की आत्मा और उसकी कार्य शैली को समझना चाहता है।

वह क्षुद्रता से मुक्त होकर अधिक विशाल जीवन जीना चाहता है।

सबसे बढ़कर वह स्वयं को अभिव्यक्ति करना चाहता है। क्योंकि उसी के द्वारा वह खुद को और खुद की अज्ञात संभावनाओं को समझ सकता है।

6.किबात के अंतिम दो परिच्छेदों में अजनबी का स्तर बौद्धिक न रहकर आध्यात्मिक हो जाता है। इन परिच्छेदों में विलसन रहस्यदर्शीयों को शामिल करता है। उनमें एक है रामकृष्ण परमहंस, और दूसरे है, जॉर्ज गुरूजिएफ। रामकृष्ण परमहंस का परिचय देते हुए विलसन कहता है।''

''अब तक हम पाश्चात्य रहस्यदर्शीयों पर चिंतन करते रहे, अब हिंदू रहस्यदर्शी रामकृष्ण के जीवन का थोड़ा अवलोकन करें। यह वातावरण अलग है। भारत में ध्यान और आत्म ज्ञान की लंबी परंपरा है। यहां हम देख सकते है कि आऊटसाइडर जब किसी परंपरा में प्रवेश करता है, जहां वह एक अकेला अजनबी नहीं रहता, तब क्या होता है।''

रामकृष्ण उनकी शिशु वत निश्छलता को बरकरार रखने में सफल रहे। हमारी जटिल आधुनिक सभ्यता में हम अपने आसपास एक सषत पर्त ओढने को मजबूर हो जाते है। अंत: यह कहाना गलत नहीं होगा कि हमारे भौतिकवादी और मानवतावादी विचारधारा के लिए हमारी सभ्यता जिम्मेदार है। उधर रामकृष्ण कल्पना की उस उन्मत्त अवस्था में गहरे उतर सके जहां पश्चिम का आदमी विरला ही पहुंचा है।''

''किताब का समापन करते हुए विलसन ने यह स्वीकार किया है कि जीवन में जो भी आऊटसाइडर है, अजनबी है। वह कई समस्याओं से जूझता है। यह समाज साधारण व्यक्तियों के लिए बना है। उसमें असाधारण व्यक्ति सदा बेचैन और बेमेल ही रहेंगे। लेकिन ये ही वे व्यक्ति है जिन्होंने समाज को कुछ दिया है, विकास को गतिमान किया है। मनुष्य जीवन को समृद्ध बनाया है।

एक और अजनबी है जो आध्यात्मिक तल पर जीता है, वह है साक्षी या द्रष्टा। वहीं वास्तविक तटस्थता को उपलब्ध हुआ है। सचमुच जीवन के खेल से ही बाहर है। यह अजनबी आनंदमय है, चैन और सुकून में जीता है। यहां तक पहुंचने के लिए मन को छोड़ना पड़ता है। लेकिन पश्चिम के बुद्धिजीवी के लिए यह बहुत लंबा सफर है। इसका एक इशारा विलसन के अंतिम वाक्य में है।

''आत्म विकास की अंतिम यात्रा पर जब कोई निकलता है तो उसकी शुरूआत अजनबी की तरह होती है और अंत, संत की तरह।''

ओशो का नज़रिया:

''कॉलिन विलसन ने लिखी हुई ''दि आऊटसाइडर'' इस सदी की सर्वाधिक महत्वपूर्ण किताबों में से एक है। लेकिन यह आदमी साधारण है। वह अद्‌भुत क्षमता का विद्वान है। और उसमें कुछ अंतदृष्टियां भी है—यह किताब सुंदर है।

जहां तक कॉलिन विलसन का सवाल है, वह खुद आऊटसाइडर नहीं है, वह सांसारिक आदमी है। मैं ''आऊटसाइडर'' हूं, इसलिए मुझे यह किताब अच्छी लगती है। मुझे इसलिए अच्छी लगती है क्योंकि यद्यपि वह उन आयामों को नहीं जानता जिनका वर्णन करता है। वह सत्य के बहुत करीब जाकर लिखता है। लेकिन ध्यान रहे, तुम सत्य के कितने ही करीब होओ, होओगे असत्य ही। या तो तुम सत्य हो, या असत्य; इसके बीच कुछ नहीं है।

कॉलिन ने बहुत बड़ा प्रयास किया है। वह आऊटसाइडर के बाहर खड़ा होकर उसके भीतर झांकने का प्रयास करता है। जैसे कोई दरवाजे के बाहर खड़ा होकर ''की होल'' से अंदर झांके। वह थोड़ा बहुत तो देख ही सकता है। और कॉलिन विलसन ने देखा है।

यह किताब पढ़ने जैसी है—सिर्फ पढ़ने जैसी। अध्ययन करने जैसी नहीं है। इसे पढ़ो और फिर फेंक दो। क्योंकि जब तक कोई किताब वास्तविक अजनबी से नहीं आती तब तक वह सत्य सिर्फ एक प्रतिध्वनि होगी—दूर की प्रतिध्वनि ....प्रतिध्वनि की प्रतिध्वनि ।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

41/ माय ऐक्सपैरिमैंट विद दि टूथ-(गांधी)

माय ऐक्सपैरिमैंट विद दि टूथ-(महात्मा गांधी)

My Experiments with Truth: An Autobiography-Mahatma Gandhi

आज में जिस किताब का जिक्र करने जा रहा हूं, उसके बारे में किसी ने सोचा नहीं होगा कि मैं बोलूगा। वह है: महात्मा गांधी की आत्मकथा। माय ऐक्सपैरिमैंट विथ टूथ। सत्य को लेकिर उनके प्रयोगों के विषय में बात करना सचमुच अद्‌भुत है। यह सही समय है।

आज महात्मा गांधी के बारे में मैं कुछ अच्छी बातें कहता हूं, एक: एक भी व्यक्ति ने अपनी जीवनी इतनी ईमानदारी से, इतनी प्रामाणिकता से नहीं लिखी। आज तक जो सबसे प्रमाणिक जीवनी लिखी गई उसमें से एक है।

जीवनी बड़ी विचित्र चीज है। या तो तुम अपनी प्रशंसा करना शुरू कर दो या अत्यंत विनम्र बनो। लेकिन महात्मा गांधी ये दोनों बातें नहीं कहते। वे सरल है; सिर्फ तथ्य कथन करते है, एक वैज्ञानिक की भांति। उन्हें हम बात का बहुत अहसास है कि यह उनकी जीवनी है। वे उन सब बातों को कहते है जिन्हें आदमी दूसरों से छिपाना चाहता है।

लेकिन इसका शीर्षक गलत है। सत्य के साथ प्रयोग नहीं किये जा सकते। या तो आप उसे जान सकते हो या नहीं जान सकते। लेकिन उसके प्रयोग नहीं कर सकते। यह शब्द ''प्रयोग'' ही वस्तुनिष्ठ विज्ञान के जगत का शब्द है। व्यक्ति निष्ठता के साथ प्रयोग नहीं कर सकते। ध्यान रहे, व्यक्ति निष्ठता (Subjectively) को, प्रयोग या निरीक्षण के किसी भी तल पर उतारना संभव नहीं है।

अस्तित्व में व्यक्तिनिष्ठता सबसे रहस्यपूर्ण घटना है। और उसका रहस्य यह है कि वह सदा पीछे हटता चला जाता है। तुम जिसका भी निरीक्षण करते हो वह ''वह'' नहीं है: वह व्यक्तिनिष्ठता नहीं है। व्यक्तिनिष्ठता निरीक्षक है, निरीक्षण की जानेवाली वस्तु नहीं है। सत्य के प्रयोग नहीं किए जा सकते क्योंकि प्रयोग केवल वस्तुओं के , विषयों के किये जाते है। चेतना के नहीं।

महात्मा गांधी ईमानदार और भले आदमी थे। लेकिन वे ध्यानी नहीं थे। और अगर कोई ध्यानी नहीं है तो कितना ही अच्छा क्यों न हो, सब बेकार है। उन्होंने जीवन भर प्रयोग किए और कुछ भी उपल्बध न हुआ। वे उतने ही अज्ञानी मरे जितने कि थे। यह दुर्भाग्य है क्योंकि इतना संगठित, इतना ईमानदार, इतना प्रामाणिक आदमी मिलना मुश्किल है। सत्य को खोजने की उनकी इच्छा प्रबल थी। लेकिन वही इच्छा बाधा बन गई।

सत्य मेरे जैसे लोगों को मिलता है जो उसकी फिक्र ही नहीं करते। जो सत्य की और ध्यान भी नहीं देते। मेरे द्वार पर परमात्मा भी दस्तक दे तो मैं खोलनेवाला नहीं हूं, द्वार खोलने का उपाय भी उसे ही खोजना होगा। सत्य ऐसे आलसी लोगों के पास आता है। इसलिए मैं स्वयं को ''बुद्धत्व के लिए आलसी मनुष्य का मार्गदर्शक'' कहता हूं।

मुझे इस आदमी से हमदर्दी है यद्यपि मैंने उसकी राजनीति की, सामाजिक विचारों की और समय के चरख़े को पीछे की और मोड़ने की मूढ़ धारणाओं की हमेशा आलोचना की है। वे चाहते थे कि मनुष्य पुन: आदिम हो जाए। वे सभी टैकनॉलॉजी के खिलाफ थे। यहां तक कि रेलगाड़ी और डाक-तार के भी विरोध में थे। विज्ञान के बगैर आदमी बंदर हो जायेगा। माना कि बंदर ताकतवर होता है, लेकिन बंदर आखिर बंदर ही है। आदमी को आगे बढ़ना है।

मुझे किताब के शीर्षक पर भी ऐतराज है। क्योंकि यह सिर्फ शीर्षक नहीं है, उनके पूरे जीवन का सारांश है। वे सोचते थे, चूंकि वे इंग्लैड में पढ़े थे, वे आदर्श भारतीय अंग्रेज थे। बिलकुल विक्टोरियन। ये विक्टोरियन लोग नर्क में जाते है। गांधी बहुत भद्र व्यक्ति थे, शिष्टाचार और तहजीब से भरपूर। हर तरह की अंग्रेज मूढताएं .....

महात्मा गांधी इंग्लैड में पढ़े। शायद उसी कारण वे इतने उलझ गये। बेहतर होता अगर वे अशिक्षित रहते । फिर वे सत्य के प्रयोग न करते, सत्य का अनुभव करते।

सत्य को जानना हो तो उसको अनुभव करना चाहिए, उसके प्रयोग नहीं।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

किताब की एक झलक:

नैटाल की राजधानी मेरिन्सवर्ग में ट्रेन कोई 9 बजे पहुंची। यहां सोने वालों को बिछौना दिए जाते थे। एक रेलवे के नौकर ने आकर पूछा–

''आप बिछौना चाहते है?''

मैंने कहा—''मेरे पास बिछौना है।

वह चला गया। इस बीच में एक यात्री आया। उसने मेरी और देखा। मुझे काला आदमी देखकर चकराया, बहार गया ओ एक दो कर्मचारियों को लेकर आया। किसी ने मुझ से कुछ न कहा—अंत में एक अफसर आया। कहा चलो, तुमको दूसरे डिब्बे में जाना होगा।''

मैंने कहा—''पर मेरे पास पहले दर्जे का टिकट है।''

उसने कहा—''परवाह नहीं, मैं तुमसे कहता हूं कि तुम्हें आखिरी डिब्बे में बैठना होगा।''

''मैं कहता हूं कि मुझे डरबन से इसी डिब्बे में बिठाया गया है। और इसी में जाना चाहता हूं।''

अफसर बोला—''यह नहीं हो सकता। तुम्हें उतरना होगा, नहीं तो सिपाही आकर उतार देंगे।''

मैंने कहा—''तो सिपाही आकर भले ही मुझे उतार दें, मैं अपने से नहीं उतरूंगा।''

सिपाही आया। उसने हाथ पकड़ा और धक्का मारकर मुझे नीचे गिरा दिया। मेरा सामान नीचे फेंक दिया गया। मैंने दूसरे डिब्बे में जाने से इनकार कर दिया। गाड़ी चल दी। मैं वेटिंग रूम में जा बैठा। हैंडबैग अपने साथ रखा। दूसरे सामान को मैने हाथ न लगाया। रेलवे वालों ने सामान कही रखवा दिया।

मौसम जाड़े का था। दक्षिण अफ्रीका में ऊंची जगहों पर बड़े जोर का जाड़ा पड़ता है। मेरिन्सवर्ग ऊँचाई पर था। इससे खूब जाड़ा लगा। मेरा ओवरकोट मेरे सामान में रह गया था। सामान मांगने की हिम्मत न पड़ी कि कहीं फिर बेइज्जती न हो। जाड़े में सिकुड़ता और ठिठुरता रहा। कमरे में रोशनी न थी। आधी रात के समय एक मुसाफिर आया। ऐसा जान पडा मानो वह कुछ बात करना चाहता है। पर मेरे मन की हालत ऐसी न थी की मैं बात करता।

मैंने सोचा—मेरा कर्तव्य क्या है? या तो मुझे अपने हकों के लिए लड़ना चाहिए, या वापस लौट जाना चाहिए। अथवा जो बेइज्जती हो रही है, उसे बर्दाश्त करके प्रिटोरिया पहुंचूं और मुक़द्दमे का काम खत्म कर के देश चला जाऊं। मुक्दमें को अधूरा छोड़कर भाग जाना तो कायरता होगी। मुझे पर जो कुछ बीत रही है, वह तो ऊपरी चोट है, वह तो भीतर के महारोग का एक बह्म लक्षण है। यह महारोग है वर्ण-द्वेष। यदि इस गहरी बीमारी को उखाड़ फेंकने की सामर्थ्य हो तो उसका उपयोग करना चाहिए। उसके लिए जो कुछ कष्ट और दुःख

सहन करना पड़े, सहना चाहिए। इन अन्यायों का विरोध उसी हद तक करना चाहिए। जिस हद तक उनका संबंध रंग-द्वेष दूर करने से हो।

ऐसा संकल्प करके मैने जिस तरह हो दूसरी गाड़ी से आगे जाने का निश्चय किया।

रात गई गाड़ी गई। ट्रेन मुझे चार्ल्स टाउन ले चली।

चार्ल्स टाउन ट्रेन सुबह पहुँचती है। चार्ल्स टाउन से जोहानिसबर्ग तक पहुंचने के लिए उस समय ट्रेन न थी। घोड़ा गाडी थी। और बीच में एक रात स्टैड रटन में रहना पड़ता था। मेरे पास घोड़ा-गाड़ी का टिकट था। मेरे एक दिन पिछड़ जाने से यह टिकट रद न होता था। फिर अब्दुल्ला सेठ ने चार्ल्स टाउन के घोड़ा-गाड़ी को तार भी दे दिया था। पर उसे तो बहाना बनाना था। इसलिए मुझे एक अंजान आदमी समझ कर उसने कहा—'' तुम्हारा टिकट रद हो गया है।'' मैंने उचित उत्तर दिया। यह कहने का, कि टिकट रद्द हो गया है। कारण तो और ही था। मुसाफिर सब घोड़ा-गाडी में बैठते है। पर मैं समझा जाता था ''कुली'' और अंजान मालूम होता था। इसलिए घोड़ा-गाड़ी वाले कि यह नीयत थी कि मुझे गोरे मुसाफ़िरों के पास न बैठना पड़े तो अच्छा है। घोड़ा गाड़ी के बाहर की तरह अर्थात हांकने वाले के पास, दाएं-बांए दो बैठके थी। उनमें से एक बैठक पर घोड़ा गाड़ी के मालिक अफसर गोरा बैठता। वह अंदर बैठा और मुझे हांकने वाले के पास बिठाया। मैं समझ गया कि यह बिलकुल अन्याय है। अपमान है, परंतु मैंने इसे पी लिया। मैं जबर्दस्ती तो अंदर बैठ नहीं सकता था। यदि झगडा छेड़ूं तो घोड़ा गाड़ी वाला गाडी चला कर ले जाएं और मुझे एक दिन की देर हो, और दूसरे दिन का हाल परमात्मा ह जाने। इसलिए मैंने समझदारी से काम लिया और बैठ गया। मन में बड़ी खीझ रहा था।

कोई तीन बजे घोड़ा गाड़ी पारडीकोप पर पहुंची। उस वक्त गोरे अफसर को मेरी जगह बैठने की इच्छा हुई। उसे सिगरेट पीना था। शायद खुली हवा भी खानी थी। सो उसने एक मैला सा बोरा हांकने वाले के पास से लिया। और पैर रखने के तख्ते पर बिछाकर मुझसे कहा—सामी, तू यहां बैठ, मैं हांकने वाले के पास बैठूंगा।'' इस अपमान को सहन करना मेरे सामर्थ्य के बाहर था। इसलिए मैंने डरते-डरते कहां, ''तुमने मुझे यहां जो बैठाया, सो मैंने इस अपमान को सहन कर लिया। मेरी जगह तो थी अंदर; पर तुमने अंदर बैठकर मुझे यहां बैठाया; अब तुम्हारा दिल बहार बैठने का हुआ, तुम्हें सिगरेट पीना है, इसलिए तुम मुझे अपने पैरों के पास बिठाना चाहते हो। मैं चाहे अंदर चला जाऊं पर तुम्हारे पैरों के पास बैठने को तैयार नहीं हूं।

यह मैं किसी तरह से कह ही रहा था। कि मुझे पर थप्पड़ों की वर्षा होने लगी। और मेरे हाथ पकड़कर वह नीचे खींचने लगा। मैंने बैठक के पास लगे पीतल के सीख़चों को जोर से पकड़ लिया, और निश्चय कर लिया कि कलाई टुट जाने पर भी सींखचे न छोडूंगा। मुझ पर जा कुछ बीत रही थी, वह अंदर वाले यात्री देख रहे थे। वह मुझे गालियां दे रहा था। खींच रहा था। फिर भी में चुप रहा। वह तो बलवान और मैं बल-हीन। कुछ मुसाफ़िरों को दया आई और किसी ने कहा—अजी बेचारे को वहां बैठने क्यों नहीं देते? फिजूल उसे मार पीट रहे हो? वह ठीक तो कहता है, वहां नहीं तो उसे हमारे पास अंदर बैठने दो। वह बोला हरगिज नहीं। पर जरा सिटपिटा जरूर गया। पीटना छोड़ दिया, मेरा हाथ भी छोड़ दिया। हां दो चार गालियां अलबत्ता और दे डाली। फिर एक हाटेटोर नौकर को जो दूसरी तरफ बैठा था, अपने पाँव के पास बिठाया, और खुद बहार बैठा। मुसाफिर अंदर बैठे। सीटी बजी और घोड़ा-गाड़ी चली। मेरी छाती धक-धक कर रही थी। मुझे भय था कि मैं जीते जी मुकाम पर पहुंच सकूंगा कि नहीं। गौरा मेरी और त्योरी चढ़ाकर देख रहा था। अंगुलि का इशारा करके बकता रहा—'' याद रख स्टैण्ड रन पहुंचने दे, फिर तुझे मजा चखाऊंगा।'' मैं चुप साध कर बैठा रहा और ईश्वर से सहायता के लिए प्रार्थना करता रहा।

महात्मा गांधी

42/ मैन्स पॉसिबल इवोलुशन-(ओस्पेंस्की)

दि साइकोलाजी ऑफ-मैन्स पॉसिबल इवोलुशन—पी. डी. ओस्पेंस्की–(मनुष्य कासंभावित विकास)

The Psychology of Man's Possible Evolution-Peter D Ouspensky

पी. डी. ओस्पेंस्की बीसवीं सदी के विख्यात रहस्यदर्शी गुरजिएफ का प्रधान शिष्य था। वह अत्यंत विद्वान और प्रतिभाशाली तो था ही, उसे शब्दों की बादशाहत भी हासिल थी। उसने आध्यात्मिक जगत की खोजों पर एक से एक अद्‌भुत किताबें लिखी है। यक किताब ''दि सॉयकॉलाजी ऑफ मैन्स पॉसिबल इवोलुशन'' ओस्पेंस्की की सबसे छोटी किताब है। वस्तुत: यह उसके पाँच व्याख्यानों का संकलन है जो उसने लंदन में 1934 के दौरान दिये।

पी. डी. ओस्पेंस्की के व्याख्यानों का विषय है, ''मनोविज्ञान का अध्ययन।'' बीसवीं सदी से पहले मनोविज्ञान एक स्वतंत्र विषय नहीं था। वह धर्म ओर अध्यात्मिक का हिस्सा था। हजारों साल तक विश्व के सारे पुराने ग्रंथ, भारत के योग सूत्र और छहों दर्शन, सभी कुछ मनोविज्ञान का हिस्सा थे। लेकिन इस नाम से मनोविज्ञान कभी अपने पैरों पर खड़ा नहीं हो पाया। न जाने क्यों उसके बारे में यही धारण थी कि वह विकृति है और उसमे कुछ गलत है। मनोविज्ञान को दर्शन शास्त्र से घटिया माना जाता था जबकि वे सारे शास्त्र चाहे सांख्य हो, योग हो, सूफी देशना हो, क्या मानवीय मन का ही विज्ञान नहीं बताते?

इसके अलावा काव्य शास्त्र नाटय शास्त्र, कला, सौंदर्य शास्त्र भी मन की विभिन्न स्थितियों का वर्णन ही तो है। फिर भी आज तक मन को एक अलग स्वतंत्र वस्तु की तरह कभी मान्यता प्राप्त नहीं हुई। जो बीसवीं सदी में मिली। पहली बार यह घटना घटी है कि अब धर्म गुरूओं या दार्शनिकों की बनिस्बत मनोवैज्ञानिक की प्रतिष्ठा ज्यादा है। इस सदी में मनोविज्ञान की इतनी शाखाएं और इतने मनोवैज्ञानिक पैदा हुए कि उनकी चकाचौंध ने उन सब धार्मिक संदर्भों को धूमिल कर दिया जिनकी छाया में मनोविज्ञान चलता था।

इस पृष्ठभूमि को साफ-साफ प्रस्तुत करने के बाद ओस्पेंस्की अपने लेखों की दशा-निर्देश करता है। वह दो प्रश्नों की खोज कर रहा है: एक कि मनुष्य का विकास याने क्या? और दूसरा, क्या उसके लिए कोई खास स्थितियों का होना जरूरी है?

डार्विन का विकास सिद्धांत या मनुष्य की उत्पती और विकास की और कोई थ्योरी ऑस्पेन्सकी स्वीकार नहीं करता। क्योंकि मनुष्य की परंपरा, पुराने शास्त्र, अवशेष यही दर्शाते है कि हमसे भी विकसित लोग है पृथ्वी के परे।

फिर मनुष्य के विकास का अर्थ क्या है? एक तो यह विकास अपने आप, यंत्रवत नहीं होता। प्रकृति एक बिंदु तक उसे ले आती है और उसके बाद उसे छोड़ देती है। अगर वह चाहे तो अपने प्रयासों से ऊपर उठ सकता है। या जैसा पैदा हुआ वैसा ही मर सकता है। वक्त के इस चौराहे पर आकर मनुष्य के विकास का मतलब है उसके आंतरिक गुणों, संभावनाओं का विकास और इसके लिए उसे अधिक सावचेत, अधिक सजग होना जरूरी है। क्योंकि मनुष्य सरलता से सजग हो सकता है।

मनुष्य की सजगता को नापने के लिए ओस्पेंस्की ने बड़ा सरल प्रयोग बताया है। एक घड़ी लेकर उसकी सेकंड की सुई पर ध्यान दें और अपने आपको स्मरण करने का प्रयास करें। ध्यान कहीं और न जाने दें। बस स्वयं का होना और घड़ी की सरकती हुई सुई। यदि आप एकाग्र होकर लगे रहे तो मुश्किल से दो मिनट होश रख पाएंगे, उससे अधिक नहीं। यह आपकी सजगता की सीमा है। इस प्रयोग से यही सिद्ध होता है कि मनुष्य को अपना होश नहीं है।

मनुष्य की देह भर से कोई मनुष्य नहीं हो जाता। ओस्पेंस्की सभी मनुष्यों को सात श्रेणियों में बाटता है। उन्हें वह मनुष्य न. 1, मनुष्य न.-2, इस तरह नाम देता है। ये भेद किस आधार पर किये गये है? उनमें जो हिस्सा प्रधान है उसके आधार पर। मनुष्य न.-1, सिर्फ शरीर के तल पर नैसर्गिक प्रवृतियों में जीता है। मनुष्य न.-2, में भावनाओं की प्रबलता होती है। नंबर तीन में—मनुष्य बुद्धि प्रधान होता है, मनुष्य जाती में अकसर ये तीन प्रकार के ही मनुष्य पाये जाते है। चौथे, नंबर का मनुष्य आध्यात्मिक विद्यालयों में, अनेक साधना पद्धतियों से गुजरने के बाद तैयार होता है। उसकी विशेषता यह है कि उसे अपना होश होता है। वह स्वयं के प्रति जागने लगता है।

इसके बाद के तीन नंबर मनुष्य चेतना की उच्चतर विकास की स्थितियाँ है। सातवें नंबर का मनुष्य वह है जिसने वह सब पा लिया जो मनुष्य पा सकता है। उसके बाद कुछ शेष नहीं रहता।

झूठ बोलना क्या है?

जैसा कि सामान्य भाषा में समझा जाता है। झूठ बोलने का अर्थ सच को विकृत करना या कुछ मौक़ों पर सच को, या जिसे लोग सच मानते है उसे छूपाना। जीवन में झूठ बोलने का स्थान बहुत बड़ा है। लेकिन झूठ बोलने के कई बदतर तरीके भी है जब लोगों को पता नहीं चलता कि वे झूठ बोलते है। पिछले व्याख्यान में मैंने कहा था हम जैसे है वैसे सच को नहीं जा सकते और उसे केवल वस्तुगत चेतना की दशा में ही जान सकते है।

फिर हम झूठ कैसे बोल सकते है? यहां विरोधाभास मालूम पड़ता है। लेकिन वास्तव में है नहीं। हम सच को जान नहीं सकते। लेकिन दिखा सकते है। कि जानते है। और यही झूठ बोलना है। झूठ बोलना हमारे पूरे जीवन में छाया हुआ है। लोग दिखावा करते है कि वे हर तरह की बातें जानते है जैसे ईश्वर, भविष्य, विश्व के संबंध में, मनुष्य की उत्पती के बारे में, विकास क्रम—हर चीज के बारे में, लेकिन यथार्थ में वे कुछ भी नहीं जानते, स्वयं के बारे में भी नहीं और हर बार जब वे उस विषय के बारे में ऐसे बात करते है जिसके बारे में नहीं जानते मानो वे जानते है। वे झूठ बोलते है। फलत: झूठ का अध्ययन करना मनोविज्ञान का अहम विषय बनता है।

और उससे मनोविज्ञान की तीसरी परिभाषा भी बन सकती है: झूठ बोलने का अध्ययन।

मनोविज्ञान उन झूठों में रूचि लेता है जो आदमी अपने बारे में बोलता है और सोचता है। ये झूठ मनुष्य को समझना मुश्किल बना देती है। मनुष्य जैसा है वैसा प्रामाणिक चीज नहीं है। वह किसी चीज की नकल है। और बड़ी बुरी नकल।

मनुष्य को लेकिन मनोविज्ञान की यही स्थिति है। उसे नकली मनुष्य का अध्ययन करना पड़ता है यह जाने बगैर कि असली मनुष्य कैसा है। स्वभावत: मनुष्य जैसे जीव का अध्ययन करना आसान नहीं हो सकता। क्योंकि वह यही नहीं जानता कि उसमे असली क्या है। और कल्पनागत क्या है। अंत: मनोविज्ञान को असली और नकली मनुष्य में फर्क करके शुरूआत करनी पड़ेगी। मनुष्य का, एक संपूर्ण इकाई की तरह अध्ययन करना असंभव है, क्योंकि मनुष्य दो हिस्सों में बंटा हुआ है—एक जो कुछ मामलों में लगभग वास्तविक है, और दूसरा हिस्सा, जो कुछ मामलों में लगभग एकदम कल्पनागत होगा। अधिकांश सामान्य जनों में वे दो हिस्से मिले जूले होते है। उन्हें अलग से जानना आसान नहीं होता जबकि वे दोनों ही मौजूद होते है। और उन दोनों का अपना अर्थ और परिणाम होता है।

हम जिस प्रणाली का अध्यन कर रहे है उसके तहत इस स्थिति को इसेंस, अर्क और पर्सनैलिटी, व्यक्तित्व कहा जाता है।

अर्क वह है जो मनुष्य के साथ पैदा होता है। व्यक्तित्व वह है जो अर्जित किया जाता है। अर्क उसका अपना होता है। व्यक्तित्व वह है जो उसका अपना नहीं होता। अर्क खोता नहीं, बदलता नहीं, या उसे आसानी से चोट नहीं पहुँचाई जा सकती। जैसे व्यक्तित्व को पहुंचायी जा सकती है। व्यक्तित्व को करीब-करीब पूरा बदला जा सकता है। अगर हालात बदले जायें। वह खोया जा सकता है या टूट-फूट सकता है।

यदि मैं अर्क का वर्णन करने की कोशिश करूं तो सबसे पहले मुझे कहना होगा कि यह मनुष्य के शारीरिक और मानसिक गठन की बुनियाद है। उदाहरण के लिए एक आदमी स्वभावत: एक अच्छा नाविक है, दूसरा बुरा नाविक है; एक सुरीला है, दूसरा नहीं है, किसी के पास भाषाओं की क्षमता है, दूसरे के पास नहीं है। यह अर्क है।

व्यक्तित्व वह सब है जो किसी ने किसी प्रकार से सीखा गया है—याने कि सामान्य भाषा में चेतन या अचेतन रूप से—''अचेतन'' का अर्थ अधिकतर ''नकल'' होता है। व्यक्तित्व बनाने में नकल का बहुत बड़ा हाथ होता है।

व्यक्तित्व ओर अर्क, इसेंस—ये दो शब्द गुरजिएफ के है। वह अकसर लोगों का इसेंस, उनका वजूद देखने के लिए बहुत से प्रयोग करता था। जिसका कोई वजूद है वही ध्यान की कठिन तपस्या से गुजर सकता है। अकसर देखा गया है कि पढ़े लिखे, सुसंस्कृत लोगों का व्यक्तित्व तो विकसित होता है लेकिन उनका वजूद एकदम बचकाना होता है। ग्रामीण लोगों में कई बार विकसित अर्क या वजूद दिखाई देता है। लेकिन उनका व्यक्तित्व जार भी नहीं होता।

व्यक्तित्व एक यंत्र है, इसलिए विकसित व्यक्तित्व के लोग और आम लोग यंत्रवत जीते है। यदि यंत्रवत जीने से ऊब कर मनुष्य आत्म विकास करना चाहता है तो उसमें उसके बड़े शत्रु है कल्पना और दुर्भाव। ये दोनों उसे स्वयं की सच्चाई जानने नहीं देते। इनकी पर्तें बीच में खड़ी हो जाती है। नकारात्मक भाव इतने प्रबल होते है कि उनका प्रकोप होने पर इनका निरीक्षण करना असंभव होता है। आदमी को ये बहा ले जाते है।

मनुष्य की यांत्रिकता चार बातों में प्रगट होती है—झूठ बोलना, कल्पना करना, नकारात्मक भावों को व्यक्त करना। और व्यर्थ बोलना। इस यांत्रिकता के प्रति वह अपने बलबूते पर जाग नहीं सकता क्योंकि वह बार-बार सो जाता है। उसे कोई जगाने वाला चाहिए।

ओस्पेंस्की के लेखे नकारात्मक भाव एकदम व्यर्थ है—उनकी कोई जरूरत नहीं है। लेकिन यह भी सच है कि वे है, और कुछ लोग तो उन्ही के सहारे जीते है। यदि उनसे उनकी नफरत या क्रोध या दुख छीन लो तो वे टूट जायेगे। जी नहीं पायेंगे। मनुष्य का साहित्य, कला इन भावों का ही काव्यात्मक, सतरंगा चित्रण है।

तो फिर मनुष्य अपना विकास कैसे करे, अपने आप पर काम कैसे करे? एक ही उपाय है—अपना स्मरण करके। अपना स्मरण, सतत स्मरण मुश्किल मालूम होता है। क्योंकि हमारी समझ कम है। यहां पर ओस्पेंस्की ज्ञान और अंतस में फर्क करता है। ज्ञान सूचनाओं के संग्रह से इकट्ठा होता है। लेकिन समझ अंतस से पैदा होती है।

पाँच व्याख्यानों में तरह-तरह से मनुष्य के मनोविज्ञान की चर्चा करने के बाद सबका सार निचोड़ वह एक ही शब्दों में ले आता है और है ''Self remembrance" स्वयं का स्मरण। यदि आप पल-पल आत्म स्मरण से भरे है तो आपको मनोविज्ञान जानने समझने की कोई जरूरत नहीं रह जाती। वह ऐसी चीज है जिसे पाकर सब पा लिया जाता है।

ओशो का नज़रिया:

मुझे ओस्पेंस्की की किताबें हमेशा अच्छी लगी है। हालांकि मुझ वह आदमी कभी अच्छा नहीं लगा। वह स्कूल के शिक्षक जैसा दिखता था। सदगुरू की तरह नहीं।

मुझे ओस्पेंस्की पसंद नहीं है। जब वह गुरजिएफ की देशना पर व्याख्यान देता था तब भी वह ब्लैक बोर्ड के आगे हाथ में खड़िया लेकर खड़ा हो जाता था। सामने एक मेज और कुर्सी, चश्मा चढ़ाकर। कुछ भी बाकी नहीं था। और जिस तरह से वह सिखाता था....मैं समझता हूं कि उसकी और इतने कम लोग आकर्षित क्यों होते थे, जब कि वह स्वर्णिम संदेश ला रहा था।

दूसरी बात, मैं उसे इसलिए पसंद नहीं करता क्योंकि वह जूदास था, उसने धोखा दिया। जो धोखा देता है उसे मैं पसंद नहीं कर सकता। धोखा देना आत्महत्या करने जैसा है, आध्यात्मिक आत्महत्या। ओस्पेंस्की से मुझे कोई इश्क नहीं है। लेकिन मैं क्या करूं? यह एक सक्षम लेखक था, प्रतिभाशाली था, जीनियस था।

यह किताब जिस का में जिक्र करने जा रहा हूं, वह उसके मरणोपरांत प्रकाशित हुई। वह कतई नहीं चाहता था कि उसके जीवन काल में वह छपे। शायद वह डर रहा था कि हो सकता है यह किताब उसकी अपेक्षाओं को पूरा न करे।

यह छोटी सी किताब है, और इसका नाम है ''दि सॉयकॉलाजी ऑफ मैन पॉसिबल इवोलुशन''। उसने अपनी वसीयत में लिखा था कि यह किताब मेरे मरने के बाद प्रकाशित हो। मुझे यह आदमी पसंद नहीं है। लेकिन कहना पड़ेगा मेरे बावजूद कि इस किताब में उसने करीब-करीब मेरी और मेरे संन्यासियों की भविष्यवाणी की थी। उसने भविष्य के मनोविज्ञान के बारे में लिखा, और यहां मैं कर रहा हूं—भविष्य का मनुष्य , नया मनुष्य।

मेरे सभी संन्यासियों को इस छोटी सी किताब का अध्ययन करना चाहिए।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

43/ दि वे ऑफ झेन-(ऐलन वॉटस)

दि वे ऑफ झेन-(ऐलन वॉटस)

The Way of Zen-Alan W. Watts

आध्यात्मिक अनुभवों का सौंदर्य यह है कि उनके घटने से विश्व की और देखने का नजरिया बदल जाता है। विश्व एक समस्या नहीं रहता। उल्टे ऐसा लगता है कि जो भी है बिलकुल ठीक है, इससे अन्यथा हो ही नहीं सकता।

इस बार ऐलन वॉटस की दो किताबों को एक साथ प्रस्तुत कर रहे है। ये दोनों किताबें ओशो ने एक साथ गिनाई है। ऐलन वॉटस ओशो का प्रिय लेखक है। बहुत कम लेखक है जिनकी शख्सियत ओशो को प्रसंद आती है। और ऐलन वॉटस उनमें से एक है। आम तौर पर लेखक और उनकी रचना में जमीन आसमान का फर्क होता है। लेकिन ऐलन वॉटस उसका अपवाद है।

''दि इज़ इट'' ऐलन वॉटस के अनुभवों से उपजे हुए लेखों का संकलन है। इन लेखों से जाहिर होता है कि वह केवल विचारक या दार्शनिक नहीं वरन खोजी भी है। उसका कंठ पानी पीने के लिए प्यासा है, उसे पानी की बौद्धिक चर्चा नहीं करनी। पहले पृष्ठ पर ही ये पंक्तियां है: झेन और आध्यात्मिक अनुभव पर एक निबंध'' किताब 1961 में प्रकाशित हई है। उसके आमुख में ऐलन वॉटस ने जो वर्णन किया है उससे इन निबंधों की प्रकृति समझ में आती है।

''पहले चार वर्षो के आध्यात्मिक और रहस्यपूर्ण अनुभव और साधारण भौतिक जीवन से उनका संबंध।'' और ध्यान रहे, इन निबंधों का पूरा उद्देश्य यह है कि भौतिक और आध्यात्मिक, विशिष्ट और साधारण, इनके बीच हमने जो खाई बनाई है उसे मिटा दिया जाए। हमारे विचार और वक्तव्यों की आदतें ऐसी बन गई है कि हम इन दो लोको को अलग करते है। और यह नहीं मानते कि जो सामान्य है, अभी है, रोजमर्रा का है वही परम है, आत्यंतिक है।''

ऐलन वॉटस की दृष्टि बहुमूल्य है जो उसे झेन के अध्ययन से मिली है। गहन आध्यात्मिक अनुभवों का अर्थ यह नहीं है कि हम संसार से मुंह मोड़ लें, उल्टे उन अनुभवों का आनंद ही दूसरों को बांटने में है। लेकिन यह बांटना किसी शिक्षक या उपदेशक की भांति नहीं वरन कुछ ऐसा है जैसे हम स्नान करते हुए गुनगुनाते है या सागर में उतर कर लहरों के साथ खेलते है।

''आध्यात्मिक अनुभवों का सौंदर्य यह है कि उनके घटने से विश्व की और देखने का नजरिया बदल जाता है। विश्व एक समस्या नहीं रहती उल्टे ऐसा लगता है कि जो भी है बिलकुल ठीक है, इससे अन्यथा हो ही नहीं सकता।''

''आध्यात्मिक अनुभव का केंद्र है यह अंतर्दृष्टि का जन्मना कि जो अभी है, यहीं है वही सभी जीवों का अंतिम लक्ष्य है। इस अंतर्दृष्टि को घेरे हुए और इससे बहती हुई एक भावनाओं की मस्ती होती है, एक तीव्र राहत, मुक्ति, निर्भारता और विश्व के प्रति एक असहनीय प्रेम का झरना फूट पड़ता है—लेकिन वह गौण है।

अपने अनुभवों की पुष्टि की खातिर ऐलन वॉटस ने जगह-जगह उन लोगों के वक्तव्य उद्धत किये है जिन्हें ऐसे अनुभव हुए है। ध्यान के अनुभव तो नि: शब्द गहराइयों में होते है लेकिन वे जब भाव के तल पर उतरते है तो प्रतीकों के वस्त्र पहन लेते है। उनके बगैर निर्वस्त्र अनुभव को कहना असंभव है। उदाहरण के लिए बर्नार्ड ब्रैन्सन का एक वक्तव्य पढ़ें-

''वि ग्रीष्म की सुबह। नींबू के वृक्षों पर एक रूपहली पर्त झिलमिला रही थी। थिरक रही थी। वातास उन वृक्षों की सुगंध से बोझिल था। तापमान ऐसा कि मानों सहला रहा था। मुझे याद हे—मुझे स्मरण करने की जरूरत नहीं है—कि में एक वृक्ष के ठूंठ पर चढ़ा और अकस्मात ''उसमें'' डूब गया। मैंने इसे कोई नाम नहीं दिया। मुझे शब्दों की कोई जरूरत नहीं थी। ''वह'' और मैं एक थे।

ऐसे कतिपय अनुभवों को प्रस्तुत कर ऐलन वॉटस लिखता है कि सामान्य जीवन में सोमवार की सुबह जब हम काम करने जाते है और संसार को जिन आंखों से देखते है वह हमारे सामाजिक संस्कारों के अलावा कुछ नहीं है।

ऐलन वॉटस के आकस्मिक अनुभवों का विवरण पढ़ना बड़ा ही सुगंधित मालूम होता है। दूसरा अनुभव उसे तब हुआ जब वह भारतीय और चीनी दर्शन को पढ़ रहा था–

''एक रात आग के पास बैठा हुआ मैं ''ध्यान के लिए सही मनोदशा क्या हो'' इसका चिंतन कर रहा था। हिंदू और बौद्ध पद्धतियों के अनुसार बहुत सी विभिन्न मन:स्थितियां हो सकती है। उसके बारे में सोचते-सोचते मैं इतना परेशान हो गया कि मैंने सोचना बंद कर उस सभी पद्धतियों को परे कर दिया। और तय किया कि मैं एक भी मनोदशा को नहीं अपना उगा। उन्हें एक साथ छोड़ने के प्रयास में मैंने अपने आपको भी हटा दिया। और अचानक मेरे शरीर का बोझ गायब हो गया। मुझे लगा मेरा कुछ नहीं है। आत्मा भी नहीं। और मैं किसी का नहीं हूं। पूरा विश्व किसी अवरोध के पारदर्शी नजर आने लगा। ठीक ऐसा जैसा इस क्षण मेरा मन था। जीवन की समस्या नि: शेष हो गई और लगभग अठारह घंटे तक मैं स्वयं और मेरा परिवेश ऐसा प्रतीत होता रहा। जैसे पतझड़ के किसी दिन हवा पत्तों को खेत में सब तरफ उड़ा रही है।''

ऐलन वॉटस के ये पारदर्शी अनुभव जब शब्दों में प्रवाहित होते है तो उसकी कलम रस से सराबोर हो जाती है और उससे सत्य की चिनगारियां प्रस्फुटित होने लगती है। जैसे–

'' मनुष्य के उद्देश्य और लक्ष्य एक विराट वर्तुलाकार विश्व के भीतर पाये जाते है। जिसका अपना कोई लक्ष्य नहीं है। प्रकृति एक खेल है, उसका कोई उद्देश्य नहीं है। और यह संभावना कि भविष्य में उसका कोई उदेश्य नहीं, और यह संभावना कि भविष्य में उसका कोई लक्ष्य नहीं है उसकी कोई खामी नहीं है। उल्टे प्रकृति की जो भी प्रक्रियाएं है जिन्हें हम आसपास के जगत में और हमारे शरीर की अनैच्छिक क्रियाओं में देखते है वे कला की मानिंद है, उद्योग, राजनीति या धर्म की तरह नहीं। वे संगीत और नृत्य कला जैसी है जो अपने आप ही खिलती जाती है। उनमें कोई भविष्य का लक्ष्य नहीं होता संगीत का लक्ष्य प्रतिपल उसे बजाने और उसे प्रतिपल सुनने में है, हमारे अधिकांश जीवन के संबंध में यहीं सच है। यदि हम अकारण उसे सुधारने में लग जाते है तो उसे जीना भूल जाते है। जिस संगीतज्ञ का लक्ष्य सिर्फ इतना ही है कि उसका यह कार्यक्रम पहले वाले से बेहतर हो, तो वह अपने खुद के संगीत में सहभागी होने से और उसका आनंद लेने से वंचित रह जायेगा। उसका पूरा ध्यान अपनी तकनीक की प्रवीणता दिखाकर श्रोताओं को प्रभावित करने में लगा रहेगा।''

पहले निबंध के बाद अन्य दो निबंध मुख्यत: झेन के मौलिक विश्लेषण जैसे है। ''झेन एंड दि प्रॉब्लम ऑफ कंट्रोल'' और बीट झेन, स्कवेअर झेन, झेन।'' अपने दूसरे निबंध के कारण ऐलन वॉटस अच्छी तरह से जानता है कि झेन का विशेषज्ञ कहलाने लगा। ऐलन वॉटस अच्छी तरह से जानता है कि झेन चीन प्रज्ञा की उपज है। और पश्चिम के तर्क निष्ठ मनस के लिये इसे समझना टेढ़ी खीर है। ताओ की अंत दृष्टि बुद्धि के लिए बेबूझ है। लाओत्से और च्वांत्सु कहते है, ''जब तक आप गलत नहीं होते तब तक सही नहीं हो सकते क्योंकि सही और गलत एक सिक्के के दो पहलु है। उन्हें अलग नहीं किया जा सकता।

फिर भी यूरोप और अमेरिका में झेन की लोकप्रियता बढ़ती चली गई है। ऐलन वाटस के देखे इसका कारण है, झेन नैतिकता का उपदेश नहीं देता, या ईसाई और यहूदी पैगंबरों के अंदाज में लोगों को डाँटता फटकारता नहीं। और झेन के जो प्रबुद्ध गुरु है वे बौद्ध या हिंदू अवतारों की तरह असाधारण नहीं है। वे आम आदमी की तरह जीते है, लेकिन इस असुरक्षित और क्षणजीवी विश्व के समुंदर में बड़ी आसानी से तैरते है।

एलन वॉटस की प्रज्ञा निरंतर मानव जीवन की दुई को मिटाने का प्रयास करती है। यह पूछता है कि रात को विराट आसमान में जब हम तारे और नक्षत्रों का जाल देखकर अवाक हो जाते है तो हमारे मन में यह भाव नहीं उठता कि ये तारे यही है और वो गलत। इसी तरह जीवन में भी सही और गलत के पार एक स्थिति होती है जहां से रोज का जीवन जिया जा सकता है। हम जितना अपने भीतर जाते है उतना पाते है की ''मैं नहीं हूं'' लेकिन फिर भी यही मेरा केंद्र है।

किताब के अंतिम निबंध ''दि न्यू अल्केमी'' में नशीले पदार्थों द्वारा आध्यात्मिक अनुभव उत्पन्न करने के विषय में चर्चा की गई है। ऐलन वॉटस ने कुछ पदार्थों का सेवन भी किया था। उसके बाद उसे जो अतींद्रिय अनुभव हुए उन्हें वह ''बोतल में बंद आध्यात्मिक अनुभव'' कहता है। यद्यपि उनमें आरे आध्यात्मिक अनुभवों में थोड़ी समानता है, वह उनके पक्ष में नहीं है, क्योंकि वे चेतना के विकास के द्वारा नहीं होते। कृत्रिम रसायनों द्वारा होते है। और स्वास्थ्य के लिए निश्चित रूपेण हानिकारक है।

दि वे ऑफ झेन–

चीन और जापन में झेन बुद्धिज़्म का उदय और विकास हुआ। दूसरे विश्व युद्ध के बाद पाश्चात्य देश जापान की और आकर्षित हुए और झेन धीरे-धीरे अमेरिका में फैलता चला गया। झेन का इतिहास और दर्शन इस किताब में बड़े सरल और सुगम तरीके से समझाया गया है। ऐलन वॉटस स्वयं अंग्रेज था और अमरीका में रहा लेकिन उसे जो आध्यात्मिक अनुभवों की झलकें आती थी उनके कारण वह पूर्वीय दर्शनों का मर्म समझ सकता था। वह समझ इस किताब में प्रतिफलित होती है। इस किताब के दो भाग है—पहला है झेन की पृष्ठभूमि और इतिहास, और दूसरा झेन के सिद्धांत और आचरण। इस किताब को लिखने के लिए ऐलन वॉटस ने झेन पर लिखी हुई सारी अंग्रेजी किताबों को तो पढ़ा ही, और साथ में चीन के पुराने रिकार्डो को भी देखा। क्योंकि उसका मानना है कि झेन चीनी प्रज्ञा के अधिक करीब है बजाएं जापान के। झेन की जो गहराई है उसका स्त्रोत चीन है। जापान उथला है और बहुत कुछ अमरीकी संस्कृति जैसा है।

पहले भाग में ताओ दर्शन और झेन बुद्धिज़्म के विकास का वर्णन है क्योंकि झेन ताओ से उपजा है। किताब के प्रारंभ में ऐलन वॉटस ने झेन बुद्धिज़्म का वर्णन इन शब्दों में किया है।

''झेन बुद्धिज़्म जीवन की एक शैली और मार्ग है जो किसी भी आधुनिक पाश्चात्य विचार में सम्मिलित नहीं हो सकता। वह न तो धर्म है और न दर्शन, यह न मनोविज्ञान है न विज्ञान की कोई शाखा। चीन और भारत में जिसे मोक्ष का मार्ग कहते है, वह इसका उदाहरण है। और इसीलिए वह ताओ वाद, वेदांत और योग से मिलता-झूलता है। मोक्ष मार्ग की सकारात्मक परिभाषा नहीं हो सकती। उसे ऐसे कहा जा सकता है कि वह नहीं है—ठीक ऐसे ही जैसे शिल्पकार पत्थर के टुकड़े हटाकर मूर्ति को खोदता है।''

झेन ताओ से अधिक जुड़ा है क्योंकि बौद्ध मत जब पैदा हुआ तब ताओ वाद दो हजार साल पुराना हो चुका था। और विशाल वृक्ष की भांति फैल गया था। और इस प्रचीन चीनी प्रज्ञा प्रवाह में बौद्ध मत की नई धारा शामिल हुई। ताओ ने उसे आत्मसात कर लिया। इसीलिए ताओ वाद की गहनता, रहस्यवाद, विरोधाभास, सरलता और सहजता झेन बुद्धिज़्म के रक्त मांस मज्जा बने। और इसीलिए झेन कभी धर्म या संप्रदाय नहीं बन

पाया। उसका संगठन नहीं बना, वह जीवन शैली ही बना रहा। और पश्चिम को इसी बात ने आकर्षित किया। पश्चिम के लोग संगठित धर्म, नैतिकता, उपदेश, पाप-पूण्य, चर्च इनसे ऊबे हुए थे। उन्हें झेन की पर्वतों से आयी हुई हवा की ताजी लहर बहुत भायी।

झेन का अपना अनूठा स्वाद है, सुगंध है। माना कि उसका स्त्रोत बुद्धिज़्म है फिर भी वह उससे बिलकुल अलग हो गया। पहले तो चीन में जाकर वह ताओ वाद के रंग में रंग गया और बाद में जापान में जाकर उसकी शक्ल पूरी ही बदल गई, इतनी की उसे बौद्ध प्रवाह की एक धारा कहना भी मुश्किल मालूम होता है। न कोई क्रिया कांड, न संप्रदाय, न ध्यान की विधियां। न व्रत या जप-तप। झेन, बुद्धत्व के साथ सीधा संस्पर्श है। बौद्ध मत में बोधि या जागरण अत्यंत कठिन, अति मानवीय है। झेन में अगर कोई कठिनाई है तो वह है—वह बहुत सीधा-सादा है।

झेन के उदय और विकास का इतिहास लिखने के बाद किताब के दूसरे भाग में प्रत्यक्ष झेन बताया गया है। झेन के विषय में ऐलन वॉटस की समझ सचमुच बहुत गहरी है। उसने लिखा है कि झेन का बेबूझ विरोधाभाष समझ में आये इसके लिए सापेक्षता को समझना जरूरी है। दो विपरीत ध्रुवों के बीच जो संबंध है, वह है झेन। जैसे, सफल होने का मतलब है असफल होना; इन अर्थों में कि व्यक्ति जितना सफल होता है उतना उसकी सदा सफल होने की भूख बढ़ती जाती है। खाने का मतलब है, भूखा होने के लिए जीवित रहना।

झेन गुरूओं का अतार्किक भाषण बुद्धिजीवी मस्तिष्क को एक चक्कर में डाल देता है। ऐसे अनेक गुरु शिष्य संवाद कहानियों के रूप में यहां प्रस्तुत किये गये है। झेन का अजीबोगरीब चेहरा इन कहानियो में जितना प्रकट होता है उतना और कहीं भी नहीं होता। मसलन,

एक बार मात्सु और पो चांग सैर करने गये थे। तभी उन्होंने जंगली बत्तखों को ऊपर उड़ते हुए देखा।

मात्सु ने पूछा: ''वे क्या है?''

''जंगली बत्तख, ''पो-चांग ने कहां।''

पो-चांग ने कहा, ''वे तो उड़ गये।''

मात्सु ने पो-चांग की नाक को मरोड़ दिया।

पो-चांग पीड़ा से चीख उठा।

''वे ऐसे कैसे उड़ गये?'' मात्झु चिल्लाया।

वह पो-चांग को जगाने का क्षण था।

अंतिम दो परिच्छेदों में झेन के अन्य अंग जैसे झा झेन, कुआन (पहेली) और कला के संबंध में खुबसूरत विवरण है। वह वाकई अपने आप में एक कुआन है कि बाहर से इतनी रूखी-सूखी प्रतीत होनेवाली झेन शैली ने एक से एक नाजुम और नफीस कला को जन्म दिया। चित्रकला, हाइकु, चाय समारोह, बग़ीचे, ये सब झेन के स्त्रैण अंग कहे जा सकते है।

झेन का सार क्या है? ऐलन वॉटस बहुत कुशल चित्रकार की तरह इन वाक्यों में झेन का सारांश चित्रित करता है—''झेन का कोई लक्ष्य नहीं है। वह एक यात्रा है जिसका कोई गंतव्य नहीं है। यात्रा करना जीवंतता का प्रतीक है लेकिन कहीं पहुंचना मृत्यु है। यह आधुनिक संसार जिसमे मंज़िलें ही मंज़िलें है और उनके बीच कोई यात्रा नहीं, यह जगत जिसमे कहीं पहुंचने की ही कीमत है, तेज से तेज रफ्तार से इस जगत में कोई सार नहीं।

ये शब्द ऐलन वॉटस ने आज से 45 वर्ष पहले लिखे थे। और आज हम इसी नि: सार जगत में जी रहे है। सभी लोग कही न कहीं पहुँचना चाहते है। यात्रा में किसी को रस नहीं है। इस खोखले, तनावपूर्ण विश्व में क्या झेन ही एकमात्र आशा नहीं है?

ओशो का नज़रिया–

मैं एक आदमी को, उसकी सभी किताबों के साथ सम्मिलित करना चाहता हूं। उसका नाम है ऐलन वॉटस1 मैंने इस आदमी से बेहद प्रेम किया है। मैंने बुद्ध से प्रेम किया है किन्हीं और कारणों से। मैंने सोलोमन से प्रेम किया और कारणों से। वे प्रबुद्ध थे। ऐलन वॉटस नहीं है। वह अमरीकी है....पैदाइशी नहीं, वह उसकी एकमात्र आशा है। वह सिर्फ वहां रहने गया। लेकिन उसने बहुत कीमती किताबें लिखी। ''दि वे ऑफ झेन'' को अत्यंत महत्व पूर्ण किताबों में शामिल करना चाहिए।

''दिस इज़ इट'' बहुमूल्य खूबसूरत रचना है। जिसमे उसकी समझ दिखाई देती है। और ये ऐसे आदमी ने लिखी है जो अभी जागा नहीं है। इसलिए सह और भी प्रशंसा योग्य है।

जब तुम जाग जाते हो तब तुम जो भी करते हो वह सुंदर होता है। होना ही चाहिए। लेकिन जब तुम प्रबुद्ध नहीं हो, अंधेरे में टटोल रहे हो, और फिर भी अगर प्रकाश का एक छोटा सा झरोखा खोज लेते हो तो वह बहुत बड़ी बात है। अद्‌भुत है। ऐलन वॉटस शराबी था लेकिन बुद्धत्व के बहुत करीब था।

एक समय ऐसा थ जब वह दीक्षित ईसाई पादरी था—कैसा दुर्भाग्य। लेकिन उसने उसका त्याग कर दिया। धर्मगुरू का पद छोड़ने का साहस बहुत कम लोगों में होता है। क्योंकि उसके साथ संसार की बहुत सी सुविधाएँ मिलती हे। उसने वह सब कुछ छोड़ दिया और साधारण हो गया। वह मुझे बोधिधर्म, बाशो और रिंझाई की याद दिलाता है।

ऐलन वॉटस बुद्ध हुए बगैर बहुत दिन नहीं रह सकता। वह अब मर चूका है....लेकिन मेरे पास आने के लिए तैयार हो रहा होगा। मैं इन सब लोगों की प्रतीक्षा कर रहा हूं। ऐलन वॉटस उनमें से एक है।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

44/ बालशेम तोव—(हसीद)

बालशेम तोव—(हसीद दर्शन)

The Baal Shem Tov-Tzavaat HaRivash

हसीद की धारा कुछ चंद रहस्यदर्शीयों की रहस्यपूर्ण गहराइयों से पैदा हुई है। बालशेम उनमें सबसे प्रमुख है। हमीद पंथ का जा भी दर्शन है वह शाब्दिक नहीं है, बल्कि उसके रहस्यदर्शीयों के जीवन में, उनके आचरण में प्रतिबिंबित होता है। इसलिए उनका साहित्य सदगुरू के जीवन की घटनाओं की कहानियों से बना है। हसीदों की मान्यता है कि ईश्वर का प्रकरण स्तंभ इन ज़द्दिकियों में प्रवेश करता है और उनका आचरण इस प्रकाश की किरणें है अंत:, स्वभावत: दिव्य प्रकाश से रोशन है।

बालशेम तोव हसीदियों का सर्व प्रथम सदगुरू है। ''बालशेम तोव'' असली नाम नहीं है, वह एक किताब है जो इज़रेलबेन एलिएज़र नाम के रहस्यदर्शी को मिला हुआ था। हसीद परंपरा में उसे बेशर्त कहा जाता है। इसका अर्थ है: दिव्य नामों वाला सदगुरू। बालशेम एक यहूदी रबाई था जिसके पास गुह्म शक्तियां थी। वह गांव-गांव घूमता था और अपनी स्वास्थ्य दायी आध्यात्मिक शक्तियों से लोगों का स्वस्थ करता था। उसने अपनी शक्तियां तब तक छुपा रखी थी। जब तक कि उसने खुद को आध्यात्मिक सदगुरू घोषित नहीं किया। वह किस्से-कहानियों में अपनी बात कहता था। हसीद साहित्य में बहुत गुरु गंभीर ग्रंथ नहीं है। हसीद फ़क़ीरों द्वारा कही गई किस्से कहानियों ही कुल हसीद साहित्य है। हसीद मिज़ाज यहूदियों से बिलकुल विपरीत है। यहूदी लोग गंभीर और व्यावहारिक होते है। और हसीद मस्ती और उन्मादी आनंद में जीते है। हसीदों की प्रज्वलित आत्माएं, ''Soul on fire'' कहा जाता है।

बालशेम की जन्म की तारीख पक्की नहीं है। कुछ कहते है 1698 और कुछ कहते है 1700।

हसीद कहानियों को बाहर से समझा नहीं जा सकता। उनके भीतर प्रवेश किया जाता है। तब कहीं वे समझी जाती है। लगभग दो शताब्दियों तक इज़ रेल में हसीद कहानियां पीढ़ी दर पीढ़ी सुनायी जाती रही है। बालशेम तोव कहता था, कहानी इस ढंग से कही जानी चाहिए कि वह एक मार्गदर्शन बन जाये। कहानी कहते वक्त बालशेम कूदता-फांदता था, नाचता था। ये कहानियां बौद्धिक नहीं है। उसके रोएं-रोएं से प्रस्फुटित होती है। हसीदों का मूल सिद्धांत है: ऐसा नहीं है कि परमात्मा है, जो कुछ है, परमात्मा ही है। बालशेम तोव परमात्मा प्रेम से आविष्ट हो जाता था, इतना अधिक कि उसकी जबान खामोश हो जाती थी। उसकी स्मृति पटल से सब कुछ मिट जाता था। वह रोशनी का एक खाली स्तंभ हो जाता था। बालशेम ने विद्धान और पंडितों की प्रतिभा को नहीं झकझोरा, उसका योगदान यह है कि वह दीन-दरिद्र साधारण जनों के मुरझाये, कुचले हुए दिलों में दिव्य प्रकाश की आग जलाता था।

बालशेम तोव बच्चों से बेहद प्यार करता था। दूर-दराज से मां-बाप अपने बच्चों को बालशेम के पास लाते थे। बालशेम उनका शिक्षक नहीं, दोस्त बन जाता था। उन्हें उपदेश नहीं देता, उनके प्राणों में नया जीवन फूंक देता था। उनमें बच्चों जैसी मासूमियत थी। उसकी कोई गद्दी नहीं थी। न कोई पीठ था, लेकिन वह जिस शान के साथ जन-साधारण के ह्रदय सिंहासन पर विराजमान था, वैसा कोई सम्राट भी कभी नहीं होगा।

हसीद पंथ: एक छोटा सा झरना

ओशो का नज़रिया–

यह ज्ञात नहीं है कि अत्यंत परंपरागत, सनातन यहूदी घर्म में भी कुछ महान बुद्धत्व प्राप्त सदगुरू पैदा हुए है। कुछ तो बुद्धत्व के पर चले गये। उनमें से एक है बालशेम तोव।

तोव उसके शहर का नाम था। उसके नाम का मतलब इतना ही हुआ: तोव शहर का बालशेम। इसलिए हम उसके केवल बालशेम कहेंगे। मैंने उसे पर प्रवचन दिये क्योंकि जब मैं हसीद पंथ के विषय में बात कर रहा था तब मैंने कुछ भी सारभूत बाकी नहीं छोड़ा। ताओ, ज़ेन, सूफी, हसीद, सब पर मैंने बात की। मैं किसी परंपरा का हिस्सा नहीं हूं। इसलिए में किसी भी दिशा में जा सकता हूं। मुझे नक्शे की जरूरत नहीं है। मैं तुम्हें फिर एक बार याद दिला दूँ:

भीतर आते, बहार जाते।

पीनी का बतख़ कोई चिन्ह नहीं छोड़ता।

न ही उसे मार्ग दर्शक जरूरत है।

बालशेम तोव ने कोई शास्त्र नहीं लिखा। रहस्यवाद के जगत में शास्त्र एक वर्जित शब्द है। लेकिन उसने कई खुबसूरत कहानियां कही है। वह इतनी सुंदर है कि उनमें से एक मैं तुम्हें सुनाना चाहता हूं। यह उदाहरण सुनकर तुम उस आदमी की गुणवत्ता का स्वाद ले सकते हो।

बालशेम तोव के पास एक स्त्री आई, वह बांझ थी। उसे बच्चा चाहिए था। वह निरंतर बालशेम तोव के पीछे पड़ी रही।

आप मुझे आशीर्वाद दें, तो सब कुछ हो सकता है। मुझे आशीर्वाद दें, मैं मां बनना चाहती हूं।''

आखिरकार तंग आकर—हां सतानें वाली स्त्री से बालशेम तोव भी तंग आ जाते है—वे बोले, बेटा चाहिए की बेटी।

वह बोली—'' निश्चय ही बेटा चाहिए''

बालशेम तोव ने कहा तो फिर तुम यह कहानी सुनो। मेरी मां का भी बच्चा नहीं था। और वह हमेशा गांव के रबाई के पीछे पड़ी रहती थी। आखिर रबाई बोला, एक सुदंर टोपी ले आ।

मेरी मां ने सुदंर टोपी बनवाई और रबाई के पास ले गई। वह टोपी इतनी सुदंर बनी कि उसे बनाकर ही वह तृप्त हो गई। और उसने रबाई से कहा, ''मुझे बदले में कुछ नहीं चाहिए।'' आपको इस टोपी में देखना ही अच्छा लग रहा है। आप मुझे धन्यवाद दें, मैं ही आपको ही आपको धन्यवाद दे रही हूं।''

''और मेरी मां चली गई, उसके बाद वह गर्भवती हो गई। और मेरा जन्म हुआ। बालशेम तोव ने कहानी पूरी की।

इस स्त्री ने कहा, बहुत खुब अब कल मैं भी एक सुंदर टोपी ले आती हूं, दूसरे दिन वह टोपी लेकर आई। बालशेम तोव ने उसे ले लिया। और धन्यवाद तक न दिया। स्त्री प्रतीक्षा करती रही। फिर उसने पूछा बच्चे के बारे में क्या।

बालशेम ने कहां की बच्चें के बारे में भूल जाओं। टोपी इतनी सुंदर है कि मैं आभारी हूं। मुझे धन्यवाद करना चाहिए।। वह कहानी याद है। उस स्त्री ने बदले में कुछ नहीं मांगा इस लिए उसके बच्चा हुआ। और वह भी मेरे जैसा बच्चा।

लेकिन तुम कुछ लेने की चाहत से आई हो। इस छोटी सी टोपी के बदले में तू बालशेम जैसा बेटा चाहती है।

कई बातें ऐसी है जो केवल कहानियों द्वारा कहीं जा सकती है। बालशेम तोव ने बुनियादी बात कह दी: ''माँगों मत और मिल जायेगा।''

मांग मत—यह मूल शर्त है।

बालशेम की कहानियों से जिस हसीद पंथ का निर्माण हुआ वह एक बहुत सुंदर खिलावट है। जो आज तक हुई है। हसीदों की तुलना में यहूदियों ने कुछ भी नहीं किया है। हसीद पंथ एक छोटा सा झरना है—अभी भी जीवंत, अभी भी खिलता हुआ।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

45/ दि सूफीज़-(इदरीस शाह)

दि सूफीज़—(इदरीस शाह)

The Way of the Sufi-Idries Shah

समुंदर ने पूछा किसी ने कि ''तुम नीला रंग क्यों पहले हुए हो ? यह तो मातम का रंग है। और तुम निरंतर उबलते क्यों रहते हो ? वह कौन सी आग है जो तुम्हें उबालती है ? समुंदर ने कहा, ''मेरे महबूब से बिछुड़ कर में उदास हूं इसलिए नीला पड़ गया हूं, और वह प्यार की आग है जिससे मैं खोलता रहता हूं।''

यह है सूफी तरीका। सीधा सी बात को प्रतीक रूप में कहना और उस कहने में अर्थों के समुंदर को उंडेलना सूफियाना अंदाज है।

सूफियों की जीवन शैली, उनके तौर-तरीकों के बारे में अगर सब कुछ एक साथ जानना हो तो इस किताब की सैर करें। रहस्य के पर्दे में ढँके सूफियों को दिन के उजाले में लाने का महत्वपूर्ण काम इदरीस शाह ने किया है।

इदरीस शाह एक अद्‌भुत व्यक्तित्व है। वे सन 1924 में उतर भारत में जन्मे। उनके पुरखों में मध्य एशिया के महान सूफी गुरु थे। सूफी प्रणाली का मौलिक अध्ययन करने के बाद वह इंग्लैड में जा बसे थे। और जीवन के आखरी दस साल सूफी विरासत के पौधे को समकालीन पाश्चात्य चिंतन के आँगन में लगाने का बहुमूल्य काम करते रहे। इदरीस शाह के भी तर पूरब और पश्चिम का अनोखा संगम था। इसलिए बेबूझ, अतर्क, सूफी साहित्य को पश्चिम की बुद्धिवादी तर्क सरणी में प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त कर सके। सूफी साहित्य पर उनकी लगभग एक दर्जन किताबें है।

सूफी लोगों को आप कोई भी व्यवस्था नहीं दे सकते। उनके न तो मंदिर बन सकते है, न शास्त्र, न क्रिया कांड। इसलिए उनका स्कूल कॉलेजों में अध्ययन नहीं किया जा सकता। सूफियों का दर्शन शास्त्र नहीं है क्योंकि उनका ज्ञान शब्दों में संरक्षित नहीं है। वह सदगुरू के अंतरतम में समाहित है। सदगुरू अपनी आंखों में , आचरण से, खामोशी और अपने वजूद से शिष्यों को संप्रेषित करता है। इसलिए सूफियों में सदगुरू का महत्व असाधारण होता है। सूफी सदगुरू प्रतीकों में बात करते है। उनकी बातें समझने के लिए तर्क संगत मस्तिष्क को परे हटाना होता है।

सूफी आबोहवा इदरीस शाह की रग-रग में समाई थी। साथ ही उन्हें पाश्चात्य शिक्षा भी नसीब हुई थी। इसलिए वे पूरब की मय को पश्चिम के पैमाने में उंडेलने का काम बखूबी करते रहे। इस किताब के तीस परिछेद है। और उनमें पूरा सूफी जहां समाया हुआ है। पहले तो वह सूफियों की पृष्ठभूमि देते है, सूफी हमेशा परोक्ष बात करते है। सीधी बात नहीं कहते। जीवन दो तरह से जिया जा सकता है। तर्क से या अनुभव से। तर्क किसी निष्कर्ष पर पहुंचता है और हमें उसे मानना पड़ता है लेकिन उससे हमारे संदेह दूर नहीं होते। अनिश्चय बना रहता है। अनुभव सीधे ह्रदय में प्रवेश करता है और आदमी को एक सुकून बख़्शता है। इसलिए सूफी कभी तर्क नहीं करते, दो टूक बात करते है।

साधारण आदमी अपने पापों का पश्चाताप करता है।

विकसित व्यक्ति अपनी असावधानी पर ग्लानि करता है।

इस किताब के सात परिच्छेद सात बुलंद सूफी सदगुरूओं को समर्पित है। इसमें है मुल्ला नसरूद्दीन, शेख सादी, फरिदुद्दीन अत्तार, जलालुदिन रूमी, इब्न–अल-अरबी, अल-गझली और उमर ख्याम। ये वे दैदीप्यमान नक्षत्र है। जिन्होंने सूफी पथ को अपने अलौकिक प्रकाश से आलोकित किया है। हर एक का कुछ न कुछ मौलिक

योगदान रहा है। नसरूद्दीन के लतीफ़े, रूमी की कविताएं, उमर ख्याम की रूबाइयां। मनुष्य जाति के साहित्य और जीवन पर छाई हुई है। दूसरे को जीतने का यह भी सूफियाना अंदाज ही है। वे सीधे आक्रमण नहीं करते; हौले-हौले, दिल के दरवाजे से आपके ज़ेहन में प्रवेश करते है। आपके दिल की धड़कन बन जाते है। उनमें मुक्ति पाना असंभव है। मनुष्य की पूरी कला सूफियों से प्रभावित है। वे लोग इस अदा से कत्ल करते है कि मरने वाले को पता भी नहीं चलता कि मारे गये। वस्तुत: हर धर्म का गहराइयों में सूफी बसता है। क्योंकि वह हर सृजन का स्त्रोत है।

सूफी साधक निरंतर चेतना के उर्ध्व गमन का प्रयास करते है—कैसे मन के उच्चतर स्तरों की खिलावट हो और आदमी दिव्यता का अनुभव करे। इस प्रयास में वे कई चीजों का उपयोग करते है। इसलिए सूफी खुद को ''पीपल ऑफ दि पाथ'' अर्थात राहगीर कहते है। अनंत की यात्रा है और चलते जाना है अथक अनवरत।

मन को विकसित करने के लिए वे कुछ नंबर, कुछ अक्षर और कुछ विधियों का प्रयोग करते है। उनके अभ्यास से मन की जड़ता दूर होकर वह जीवन के रहस्यों को समझने के काबिल हो जाता है। अधिकांश लोग जीवन की टुच्ची क्षुद्र बातों में उलझे रहते है। इतना छोटा मन श्रेष्ठतर बातों का अहसास नहीं कर सकता। उसके लिए मन को संकीर्णताओं से हटाकर विशालता पर केंद्रित करना, रहस्यों पर ध्यान करना जरूरी होता है।

सूफी जिस भाषा का प्रयोग करते है उसे वे ''गुह्म भाषा'' कहते है। उनके शब्दों का प्रकट अर्थ कुछ होगा और भीतरी अर्थ कुछ और होगा। एक-एक शब्द के कई अर्थ होंगे। और सुनने वाला अपने तल से उस अर्थ को समझेगा। इसके पीछे उद्देश्य होता है; बंधी हुई धारणाओं को तोड़कर मन को नई ऊर्जाओं के लिए उपलब्ध करना।

सामान्यतया माना जाता है कि सूफियों के पास चमत्कार आरे सिद्धियां होते है। लेकिन सूफियों के मुख्य धारा में, चमत्कार और जादू का प्रदर्शन उस व्यक्ति का पतन माना जाता है।

चमत्कारों का एक खास उद्देश्य होता है। कुछ लोगों उनमें भ्रांति में पड़ जाएंगे। कुछ लोगों में संदेह पैदा होगा, अन्य कुछ लोग डर जाएंगे। तो दूसरे उत्तेजित हो जाएंगे। चमत्कार लोगों की मानसिकता को बदलने का एक साधन है।

जीवन को देखने का सूफियों का एक खास अंदाज होता है। वे कुदरत के साथ पूरी तरह तालमेल बिठा कर जीते है। मसलन सूफी कहते है कि आप जब बीमार होते है तो फौरन दवा ढूंढने की बजाएं बीमारी की सोहबत करिए। उससे पूछिये की तू क्या है। कैसे ठीक होगी। इलाज बीमारी में ही छीपा होता है। जो जानकारी बीमारी के भीतर कैद होती है। उसे मुक्त करिये और आप स्वास्थ हो जाएंगे। शेर जब बीमार होता है तो एक खास तरह का पौधा खाता है और ठीक हो जाता है। उसे यह इलाज कौन बताता है। खुद उसकी बीमारी।

सूफी फकीर अपने आपको दरवेश कहते है। जो अल्लाह की राह पर चलने लगा उसके लिए सारी दुनिया ''उसका'' दर है। दरवेशों की अपनी पूरी व्यवस्था है और तल है। उनका रहन सहन थेगड़े लगे हुए कपड़े खोयी-खोयी सी मुद्रा और अतार्किक आचरण उन्हें आम आदमी से अलग करता है। इश्क उनकी जाति है। क्योंकि उन्हें अल्लाह से इश्क है। वे उसी का जिक्र करते है। खुद को इस हद तक पाक बनाने की कोशिश करते है। कि अनवर (खुदा का एक नाम, जिसका मतलब है रोशन) हो जाएं।

इदरीस शाह की इस किताब को पढ़ना एक रहस्य लोक का सफर करने जैसा है। यह लोक हर एक शख्स के भीतर बसा है। इसमें पैठने के लिए निरंतर सतह को छोड़कर गहरी पर्तों को उघाड़ना जरूरी होता है। सूफियों की नजरों से देखते-देखते पढ़ने वाले को भी एक नई आँख मिलती है। यह कहना बेहतर होगा। कि उसकी आंखें खुल जाती है। वह पहली बार सतह पर दिखाई देने दृश्यों के पार देखने लगता है।

इस किताब का नाम सूफी, सूफीवाद या सूफीज्म मत नहीं रखा है। इसे वे कहते है, दि सूफीज़। यह अर्थ पूर्ण है। सूफियों का कोई वाद नहीं होता। सूफी हुआ जा सकता है। जो भी खोजी है, जो भी खुद को बेहतर बनाने के रास्ते पर चल पड़े है। उनके लिए सूफियों को समझना बहुत काम आएगा।

किताब की एक झलक–

मुल्ला नसरूद्दीन के लतीफ़े–

मुल्ला नसरूद्दीन एक आदर्श उदाहरण है। जिसे दरवेशों ने ईजाद किया है। उनका मकसद यह है कि कुछ खास परिस्थितियों में मन को एक झटका लगे और वह रूक जाएं। मध्यपूर्व में प्रचलित नसरूद्दीन की कथाएं अध्यात्म के जगत में एक अनूठी उपलब्धियाँ है। ऊपर से देखने पर नसरूद्दीन की कहानियां महज मजाक मालूम होता है। चाय खानों में, कैरेवान सराय में, घरों में, या रेडियों पर ये कहानियां निरंतर सुनाई जाती है। एक कहानी के कई तल होते है। उसमे निहित व्यंग्य, निष्कर्ष और उससे अधिक कुछ तत्व, जो रहस्य के खोजी को उसकी खोज में एक कदम आगे ले जाते है।

चूंकि सूफी शैली को जीना होता है और जानना होता है, सिर्फ नसरूद्दीन की कहानी को सुनकर कोई ज्ञानी नहीं बन सकता है। हर कहानी भौतिक जीवन और चेतना के रूपांतरण के बीच की खाई को पाट देती है। विश्व का और कोई साहित्य यह काम नहीं कर सकता।

ये कहानियां पाश्चात्य जगत में कभी पेश नहीं कही गई है। शायद इसलिए क्योंकि कोई गैर सूफी इनका अनुवाद नहीं कर सकता। या संदर्भ के बाहर इनका अध्ययन भी नहीं कर सकता। क्योंकि तब वे अपना असर खो देंगी। पूरब में भी सिर्फ दीक्षित सूफी साधक ही उन पर मनन कर सकते है। इस संग्रह के मजाक विश्व के लगभग सभी तरह के साहित्य में प्रविष्ट हो गए है। उनकी वजह है, इन मज़ाक़ों में बहती हुई हास्य की धारा। हालांकि सूफियों का मकसद यह था कि आम आदमी को सूफियाना अंदाज सक वाकिफ किया जाए और मनुष्य जाति सूफियों के गुह्म अनुभवों को उपल्बध हो।

मजाक को फैलने से रोका नहीं जा सकता। मनुष्य के ऊपर विचारों का जो ढांचा थोपा गया है उसकी दरारों में निकल कर मजाक फिसल जाती है। नसरूदीन मनुष्य जाति के विचारों के इतने तलों पर जा बसा है कि उसे निकाल बाहर करना असंभव है1 वह अमर है। कोई भी जानता है कि नसरूद्दीन कौन था। कब और कहा हरता था। यही उसका प्रयोजन है। सूफियों को ऐसा ही चरित्र गढ़ना था जो समयातित है, अनचीन्हा है। उनके लिए आदमी नहीं उनका संदेश महत्वपूर्ण है।

नसरूद्दीन वस्तुत: सूफी सदगुरू है। लेकिन हर कहानी में वह मूढ़ता का दिखावा करता है। और उसके जरिए सत्य को उजागर करता है। आम आदमी क सोचने के सख्त ढाँचे होते है। और लीक से हटकर अलग नज़रिये से यह देख नहीं सकता। इसलिए जीवन के गहरे अर्थों से वंचित रह जाता है। इस तथ्य को यह कहानी बहुत स्पष्टता से प्रकट करती है।

नसरूद्दीन प्रतिदिन गधे को सरहद के पर ले जाता है। उस पर घास लादी होती थी। सरहद के सिपाहियों के सामने वह स्वीकार करता था कि वह तस्कर है। इसलिए वह लोग उसकी रोज तलाशी लेते थे। उसकी घास उछालते थे, कभी जला देते थे। कभी पानी में डाल देते थे। इधर नसरूद्दीन धनी से धनी होता जा रहा था।

फिर वह वहां से दूसरे देश में रहने गया। वर्षों बाद उसे सरहद की रखा करने वाल पुराने अफसरों में से एक मिला। उसने कुतूहलवश पूछा, नसरूद्दीन तुम ऐसी कौन सकी चीज की तस्करी करते थे कि हम तुम्हें कभी नहीं पकड़ पाये।

नसरूदीन ने कहां की गधे की।

शिक्षक, शिक्षा और शिक्षार्थी–

पश्चिम से आया हुआ एक खोजी एक सूफी शेख से बुरी तरह जवाब तलब कर रहा था। कि वह सूफी शिक्षकों को कैसे पहचाने? क्या वह शिक्षक एक मसीही मार्गदर्शक होता है, जो लोगों का नेतृत्व करता है?

शेख ने कहा, तुम खुद इस तरह के नेता बनोंगे। और तुम्हारी जिंदगी में पूरब के रहस्यदर्शीयों का महत्वपूर्ण स्थान होगा। विश्वास करो।

बाद में शेख अपने शिष्यों से बोला, वह आदमी इसीलिए यहां आया था। क्या तुम बच्चों को मिठाई देने से इनकार करते हो। या पागल आदमी से कहते हो कि वह विक्षिप्त है। जो सीखने के काबिल नहीं है उनका हौसला बढ़ाना चाहिए। जब कोई आदमी पूछता है, ''मेरा नया कोट कैसा है, तो तुम्हें यह नहीं कहना चाहिए कि, बिलकुल बेकार है। जब तक कि तुम उसे बेहतर कोट नहीं दे देते हो। या रहन सहन की तहजीब नहीं सिखा देते हो। कुछ लोगों को सिखाया नहीं जा सकता है।

जलालुद्दीन रूमी कहता है: ''किसी का विरोधी बनकर सिखाया नहीं जा सकता है।''

रेत की कहानी-

एक उछलता हुआ झरना रेगिस्तान पहुंचा। उसे दिखाई दिया कि वह उसे पार नहीं कर सकेगा। बारीक रेत में उसका पानी तेजी से सूख रहा था। झरने ने स्वयं से कहा, ''रेगिस्तान को पार करना मेरी नियति है लेकिन उसके आसार नजर नहीं आते है।

यह शिष्य की स्थिति है जिसे सदगुरू की जरूरत होती है। लेकिन वह किसी पर श्रद्धा नहीं कर सकता। यह मनुष्य की दुखद हालत है।

रेगिस्तान की आवाज ने कहा, ''हवा रेगिस्तान को पार करती है, तुम भी कर सकते हो।''

झरना बोला, ''जब भी मैं कोशिश करता हूं मेरा पानी रेत में समा जाता है, और मैं कितना ही जोर लगाऊं थोड़ी दूर ही जा पाता हूं।

हवा रेगिस्तान के साथ जोर नहीं लगाती।

लेकिन हवा उड़ सकती है, मैं उड़ नहीं सकती।

तुम गलत ढंग से सोच रही हो। अकेले उड़ने की कोशिश मूढ़ता है। हवा को तुम्हें ले जाने दो।

झरने ने कहा कि वह अपनी निजता को खोना नहीं चाहता। इस तरह तो उसकी हस्ती खो जाएगी। रेत ने समझाया कि इस तरह सोचना तर्क का एक भाग है लेकिन यथार्थ के साथ उसका कोई ताल्लुक नहीं है। हवा जल की नमी को आत्म सात कर लेती है। रेगिस्तान के पार ले जाती है। और फिर बरसात बन कर पुन: नीचे ले आती है।

झरना पूछता है, ''यदि ऐसा है तो क्या मैं यही झरना रहूंगा जो आज हूं।''

रेत बोली; ''यों भी किसी सूरत में तुम यही नहीं रहोगे। तुम्हारे पास कोई चुनाव नहीं है। हवा तुम्हारे सार तत्व को, सूक्ष्म अंश को ले जाएगी। जब रेगिस्तान के पार, पहाड़ों में तुम फिर नदी बन जाओगे। फिर लोग तुम्हें किसी और नाम से पुकारेगा। लेकिन भीतर गहरे में तुम जानोंगे: ''मैं वहीं हूं।''

हवा की स्वागत करती हुई बांहों में स्मारक झरना रेगिस्तान के पार चला गया। हवा उसे पर्वत की चोटी पर ले गई और फिर धीरे से, लेकिन दृढ़ता से जमीन पर गिरा दिया। झरना बुदबुदाया: ''अब मुझे मेरी वास्तविक अस्मिता का पता चला। फिर भी एक प्रश्न उसके मन में था। ''मैं अपने आप को क्यों नहीं जान सका।'' रेत को मुझे क्यों बताना पडा।

एक छोटी सी आवाज उसके कानों में गूँजी। रेत का एक कण बोल रहा था: सिर्फ रेत ही जान सकती है क्योंकि उसने कई बार इसे घटते देखा है। क्योंकि वह नदी से लेकिर पर्वत तक फैली हुई है। जीवन की सरिता अपनी यात्रा कैसे करेगी इसका पूरा नक्श रेत में बना होता है।''

ओशो का नजरिया–

एक आदमी है, इदरीस शाह। मैं उसकी किसी किताब का नाम नहीं लुंगा क्योंकि वे सभी अद्‌भुत है। मैं इस आदमी की प्रत्येक पुस्तक का समर्थन करता हूं। लेकिन उसकी एक पुस्तक अन्य सभी पुस्तकों से उभरकर दिखाई देती है। ''दि सूफीज़'' यह पुस्तक कोहिनूर है। ''सूफीज़'' में उसने जो काम किया है वह अपरिसीमित है। इस आदमी ने पश्चिम को मुल्ला नसरूद्दीन से परिचित कराया। उसने बहुत बड़ा काम किया है। उसने नसरूद्दीन के छोटे-छोटे किस्से बहुत खूबसूरत बना दिये है। वह कहानियों को सुंदरता से अनुवादित तो करता ही था। उसके साथ उनकी सुंदरता में चार चाँद लगा देता था। और उन्हें ज्यादा सारगर्भित, ज्यादा दिलकश बना देता है।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

46/ लिसन-लिटल मैन-(विलहम रेक)

लिसन-लिटल मैन—(विलहम रेक)

ऑर्गोन इंस्टिट्यूट की आर्काइव्ज का एक दस्तावेज "लिसन लिटल मैन" एक मानवीय पुस्तक है, वैज्ञानिक नहीं। यह ऑर्गोन इंस्टिट्यूट के आर्काइव्ज के लिए 1945 की गर्मी में लिखी गई थी। इसे प्रकाशित करने का कोई इरादा नहीं था। यह एक (Natural scientist) प्राकृतिक वैज्ञानिक और चिकित्सक के अंतर्द्वंद्व और आंतरिक आंधी तूफ़ानों का परिमाण है। इस वैज्ञानिक ने बरसों तक पहले भोलेपन से, फिर आश्चर्य से और अंतत: भय से देखा है कि सड़क पर जानेवाला छोटा आदमी अपने साथ क्या करता है। कैसे वह दु:ख झेलता है। और विद्रोह करता है; कैसे वह अपनी दुश्मनों को सम्मान करकता है और दोस्तों की हत्या करता है। कैसे जब भी उसे लोक प्रतिनिधि बनने की ताकत मिलती है वह इस ताकत का गलत उपयोग कर उससे क्रूरता ही पैदा करता है। इससे पहले उच्च वर्ग के पर पीड़कों ने उसके साथ जो किया है। उससे यह क्रूरता अधिक भंयकर होती है।

"लिटल मैन" के साथ यह बातचीत अपने बारे में फैलायी गई अफ़वाहों और बदनामी के लिए दिया गया विलहेम रेक का खामोश जवाब था। वर्षों से, "भावनात्मक प्लेग" ने ऑर्गोन रिसर्च को कुचल डाने का प्रयास किया है—उसे गलत सिद्ध करके नहीं, उसकी बदनाम करके। दुर्भाग्य से वह लेखक को ही मारने में सफल हुआ। लेकिन लेखक का काम अभी भी स्थापित वैज्ञानिकों औरसामाजिक संस्थानों को चुनौती दे रहा है। ऑर्गोन रिसर्च पर मानव जीवन और स्वास्थ्य की बहुत बड़ी जिम्मेदारी है। इसे ध्यान से रखते हुए इस ऐतिहासिक वार्तालाप को प्रकाशित किया गया है।

सन 1947 में इस दस्तावेज को प्रकाशित करने का निर्णय लिया गया। उससे पहले किसी को यह ख्याल भी नहीं था कि कोई सरकारी एजेंसी राजनैतिक और मनोविश्लेषकों के साथ सांठ-गांठ करके ऑर्गोन रिसर्च पर जबर्दस्त आक्रमण करेगी।

इस भाषण का यह मतलब है कि कोई इसे अपने जीने का ढंग बनाये। किसी भी रचनात्मक, प्रसन्न व्यक्ति के जीवन में जो आंधी-तूफान आते है उनका यह वर्णन है। वह किसी को जीतना या स्वयं के साथ राज़ी करवाना नहीं चाहता। इसमे अनुभव को उस तरह चित्रित करता है। जरूरी नहीं है कि पाठक इसे समझे। यह इसे पढ़े या न पढ़े इसमे कोई उदेश्य या कार्यक्रम नहीं है। इसकी एक ही इच्छा है कि खोजी या विचारक को प्रतिक्रिया करने का वही हक मिले जो कवि या दार्शनिक को मिलता है। यह निषेध है। भावनात्मक प्लेग है, गुप्त और अंजान इरादों के खिलाफ यह प्लेग मेहनती अन्वेषकों की और विषैले तीर फेंकता है। सुरक्षित स्थानों में छुपकर। भावनात्मक प्लेग क्या है। कैसे काम करता है। और प्रगति को रोकता है। यह दर्शाना इसका प्रयोजन है। मनुष्य की प्रकृति की गहराइयों में अपरिसीम खजानें है जिनकी खुदाई नहीं हुई है, उनमें विश्वास जगाना है और उन्हें मनुष्य की आशाओं की सेवा में लगाना है।

इस अद्‌भुत किताब की खोज मेरे लिए लगभग उतनी ही दूभर और रोमांचकारी थी जितनी कि स्वयं विलहेम रेक लिए उसकी अपनी खोज रही होगी। जब से इस किताब के बारे में ओशो का वक्तव्य पढ़ा, मैं इसे पाने के लिए बेचैन हो उठा। ओशो कहते है; "मेरा हर संन्यासी इस किताब पर ध्यान करे।" कैसे होगी यह किताब जिसे ओशो हमारे ध्यान के काबिल समझते है।

ओशो का पढ़ने का अंदाज अद्वितीय है—उनके ही जैसा। हर किताब के पहले पृष्ठ पर उनके हस्ताक्षर, जिनकी स्याही का रंग और लिखने का ढंग उस किताब के आशय से मेल खाता है और अंतिम पृष्ठ पर हिंदी में

तारीख जिसमे उनके हाथ यह किताब आई, और उस शहर का नाम जहां उन्हें ये किताब मिली। जैसे इस किताब में—बम्बई 25-2-1970

किताब के पन्नों पर जो अंश उन्हें महत्वपूर्ण लगे उनकी पहली पंक्ति के पहले अक्षर के आगे लाल और नीले रंग से छोटे-छोटे बिंदू। कुछ शब्दों के नीचे लाल या नीले रंग की छोटी सी रेखा—सिर्फ पहले शब्द के नीचे। बाकी पूरा पन्ना बिलकुल साफ-सुथरा। क्या अर्थ होगा इन लाल-नीले बिंदुओं या रेखाओं का। अब कौन बता सकता है। सिवाय उनके।

यह ''किताब की झलक'' के अंतर्गत जो अंश प्रस्तुत किये है वे ओशो के लाल नीले सौभाग्य तिलकों के साथ आये है।

किताब की एक झलक—

इस किताब के कुल 128 पृष्ठ है। इसे सर्वप्रथम सन 1947 में न्यूयार्क के नून डे प्रेस ने प्रकाशित किया था। इन तीस वर्षों में इसके पंद्रह संस्करण छप चूके है। विलहेम रेक के साथ दुनिया ने जो दुराचार, अत्याचार आरे अनाचार किया है उसकी प्रतिक्रिया है यह आक्रोश। हारकर, तिल मिलाकर वह अपनी बात लोगों तक पहुँचाता है। लिटल मैन अर्थात कॉमन मैन साधारण आदमी। जो दिखता तो बड़ा निरीह, असहाय है लेकिन तमाम असाधारण व्यक्तियों को कुचल डालने की विध्वंसक शक्ति रखता है। सदियों-सदियों से, सभी असाधारण आदमियों के साथ साधारण आदमी ने यही किया है। किसी को सूली दी, किसी को जहर दिया, किसी को जेल भिजवाया, किसी को बोटी-बोटी काट डाला।

इस साधारण आदमी की ताकत क्या है? समूह की शक्ति, भीड़ की शक्ति। भीड़ जब एक इकाई की तरह व्यवहार करती है तो एटम बम से भी अधिक खतरनाक हो जाती है। अपने जीवन भर के अनुभव, हताशा और विषाद को विलहेम रेक व्यांगात्मक ढंग व्यक्ति करता है। अपनी भावनाओं को उसने इस तरह शब्दों में ढाला है जैसे वह एक-एक लिटल मैन के साथ बात कर रहा है। साधारण आदमी के दिशाहीन जीवन का ओछापन, टुच्चापन; उसका स्वार्थ और पाखंड, उसकी दोगली जीवन शैली, उसके अंधेरे में किरण बनकर उतरने वाले असाधारण व्यक्ति के साथ किया हुआ दुर्व्यवहार और क्रुरता.....हर छोटा-मोटी बात पर रेक करारी चोट करता है। यह चोट उसका तिरस्कार करने के लिए नहीं है। उसके पीछे निहित रेक की पीड़ा है। उसकी व्याकुलता साफ दिखाई देती है। वह छटपटाता है कि इस साधारण आदमी को उसकी कीचड़ से कैसे निकाला जाये।

किताब की शुरूआत देखिए–

''वे तुम्हें लिटल मैन कहते है या कॉमन मैन कहते है। वे कहते है तुम्हारे दिन आ गए है—साधारण आदमी का यूग।

यह तुम नहीं कहते हो ''लिटल मैन'' वे कहते है—महान राष्ट्रों के उपराष्ट्रपति मजदूर नेता, बूर्ज्वा के पश्चात्ताप करने वाले पुत्र, कूटनीतिज्ञ और दार्शनिक। वे तुम्हें भविष्य देते है, लेकिन अतीत के बारे में कोई सवाल नहीं पूछते।

तुम्हारा अतीत भयंकर रहा है। तुम्हारी विरासत तुम्हारे हाथों में एक जलता हुआ हीरा है। तुमसे मैं यही कहना चाहता हूं।

डॉक्टर हो या चमार, मजदूर या शिक्षक, उसे अपना काम कुशलता से करना हो और पैसे कमाने हों तो उसे अपनी कमज़ोरियों का पता चलना चाहिए। अब कुछ दशकों से पूरी दुनिया में तुम्हारा शासन चल रहा है। मनुष्य जाति का भविष्य तुम्हारे विचारों और कृत्यों पर निर्भर करेगा।

लेकिन तुम्हारे शिक्षक और गुरु तुम्हें ठीक-ठाक नहीं बताते कि तुम कैसे सोचते हो या तुम वास्तव में क्या हो। किसी की भी, तुमसे एक सत्य कहने की हिम्मत नहीं होती जिससे तुम तुम्हारे भविष्य के अडिग मालिक बन जाओ। तुम सिर्फ एक अर्थ में स्वतंत्र हो: खुद की आलोचना सुनकर ही तुम अपने जीवन को नियंत्रित कर पाओगे।

तुम महान आदमी से सिर्फ एक बात में अलग हो: महान आदमी भी कभी बहुत छोटा आदमी था। लेकिन उसने एक महत्वपूर्ण गुणवत्ता को विकसित किया उसने अपने विचारों और कृत्यों की संकीर्णता को पहचाना। किसी अर्थपूर्ण काम के दबाव के नीचे उसने यह देखना सीखा कि किस तरह उसका छोटापन, टुच्चापन, उसकी प्रसन्नता को बिगड़ता है। दूसरे शब्दों में महान आदमी जानता है कि कब और किस तरह वह छोटा आदमी है। छोटा आदमी नहीं जानता कि वह छोटा है और जानने से डरता भी है। वह ताकत और महानता की भ्रांति के पीछे अपनी क्षुद्रता और छोटापन को छिपाता है। वह अपने महान सेनाधिकारियों पर नाज करता है, खुद पर नहीं।

मैं तुमसे घबड़ाता हूं लिटल मैन, बेहद घबड़ाता है। क्योंकि तुम पर मनुष्य जाति का भविष्य निर्भर करता है। मैं तुमसे घबड़ाता हूं। क्योंकि तुम इतना किसी चीज से नहीं भागते जितना कि स्वयं से।

तुम रूग्ण हो, बहुत रूग्ण लिटल मैन। इसमें तुम्हारा दोष नहीं है। लेकिन इस रूग्णता को दूर करना तुम्हारा दायित्व है। अगर तुम दमन को स्वीकार नहीं करते तो तुम उत्पीड़कों को कभी के उठाकर फेंक देते। तुम उसे सिक्रय सहारा देते हो। अगर रोजमर्रा के व्यावहारिक जीवन में तुम्हारे पास थोड़ा भी आत्म सम्मान होता तो संसार की कोई पुलिस की ताकत तुम्हें दबा नहीं सकती थी। काश गहरे में तुम्हें पता होता है कि तुम्हारे बगैर जीवन एक घंटा भी नहीं चल सकता था। क्या तुम्हारे मुक्तिदाता ने तुम्हें यह बताया। नहीं उसने तुमसे कहा: ''प्रोलिटेरिएट ऑफ दि वर्ल्ड'' लेकिन उसने तुमसे यह नी कहा कि तुम्हारे जीवन के लिए तुम, सिर्फ तुम ही जिम्मेदार हो तुम्हारी पितृभूमि के लिए नहीं हो।

तुम जीवन के सूख की भीख मांगते हो। लेकिन तुम्हारे लिए सुरक्षा अधिक कीमती है भले ही उसके लिए तुम्हें अपनी रीढ़ की या अपने जीवन की कीमत चुकानी पड़े। चूंकि तुमने कभी भी सुख को पैदा करना, उसे भोगना, और उसकी रक्षा करना नहीं सीखा है। तुम निर्भीक व्यक्ति के साहस को नहीं जानते। लिटल मैन, क्या तुम जानना चाहते हो कि तुम कैसे हो। तुम टी. वी. पर हाज मोला, टूथपेस्ट और डियोडोरंट के विज्ञापन देखते हो। लेकिन उसके पीछे प्रचार को के संगीत को नहीं सुनते। इन चीजों की असीम मूढ़ता और घटियापन को तुम नहीं देखते जो कि तुम्हें फंसाने के लिए बनायी गई है। नाइट क्लब में अनाउंसर जो मजाक सुनाता है क्या उन्हें तुमने बनायी गई। नाइट क्लब में अनाउंसर जो मजाक सुनाता है क्या उन्हें तुमने कभी ध्यान से सुना है। मजाक जो तुम्हारे बारे में है, उसके खुद के बारे में है, तुम्हारे छोटे दुःखी संसार के बारे में है....।

तुम अपने बारे में मजाक सुनते हो और दिल खोलकर हंसते हो। तुम इसलिए नहीं हंसते कि तुम अपनी ही हंसी उड़ा रहे हो। तुम जो दूसरे पर, लिटल मैन पर हंसते हो लेकिन तुम्हें यह पता नहीं है कि तुम अपने पर ही हंस रहे हो। लाखों लिटल मैन्स को यह पता नहीं है। कि तुम्हारी हंसी उड़ायी जा रही है। सदियों-सदियों से, इतने खुलकर दुष्ट प्रसन्नता के साथ तुम्हारी हंसी क्यों उड़ायी जा रही है लिटल मैन। क्या कभी तुम्हारे ख्याल में आया कि सिनेमा में साधारण लोगों को इतना हास्यास्पद क्यों दिखाया जाता है। मैं तुम्हें बताता हूं, कि मैं तेह दिल से तुम्हारी कद्र करता हूं।

अत्यंत संगत रूप ये यानि कि लगातार तुम्हारी सोच सत्य को चूक जाती है। ठीक वैसे ही जैसे कोई अनाड़ी तीरंदाज हमेशा अपने निशाने को चूक जाये। क्या तुम ऐसा नहीं सोचते। मैं तुम्हें दिखाता हूं। तुम कभी

के अपने जीवन के मालिक बन चुके होते अगर तुम्हारी सोच सत्य की और उन्मुख होती। लेकिन तुम इस तरह सोचते हो–

''यह सब यहूदियों को दोष है।''

''यहूदी कौन है, मैं पूछता हूं।''

जिन लोगों में यहूदी खून है, तुम्हारा जवाब।

यहूदी खून और दूसरे खून में क्या फर्क है।

यह सवाल तुम्हें स्तब्ध कर दे है, तुम झिझकते हो, कन्फ्यूज हो जाते हो। लिटल मैन, तुम इस तरह बेहूदापन करते हो। तुम्हारे बेहूदेपन से तुम सशस्त्र सेनाएं बनाते हो और वे सेनाएं एक करोड़ यहूदियों की हत्या कर देती है। जब कि तुम इतना भी नहीं बता सकते कि यहूदी कौन है। इसीलिए हम तुम पर हंसते है। जब गहरा काम करना हो तो लोग तुमसे बचते है। इसीलिए तुम दलदल में फंसे हुए हो। जब तुम किसी को यहूदी कहते हो तो अपने आपको श्रेष्ठ समझते हो। यह जरूरी है क्योंकि भीतर तुम वस्तुत: दुःखी हो। और तुम इसलिए दुःखी हो क्योंकि तुम जिस कारण तथाकथित यहूदी को मारते हो, तुम वही हो। लिटल मैन, यह तुम्हारे संबंध में सत्य का एक छोटा सा अंश है।

लिटल वू मन, यदि तुम्हारे अपने बच्चे नहीं है, इसलिए तुम शिक्षक के पेशे में चली आई हो, तो तुम बच्चों का अविवेकपूर्ण नुकसान कर रही हो। तुम्हें बच्चों की परवरिश करनी है। बच्चों की परवरिश करने की सही तरीका है, उनकी लैंगिक ऊर्जा का सही प्रशिक्षण। बच्चे की लैंगिकता को ठीक से समझने के लिए व्यक्ति को प्रेम का अनुभव होना चाहिए। लेकिन तुम एक टब की तरह बनी हो, तुम ,खुद झिझक से भरी हो और शरीर से कुरूप हो। यह अकेली वजह तुम्हें हर जीवित आकर्षक शरीर के प्रति घृणा से, कड़वाहट भर

के लिए काफी है। मैं तुम्हें टब जैसी बनावट के लिए दोषी नहीं ठहराता, या प्रेम का अनुभव न करने के लिए और बच्चों में खिलते हुए प्रेम को न समझने के लिए भी कुछ नहीं कहता। लेकिन अपनी सारी कुरूपता को लेकर बच्चों के पास जाना और उनके भी के प्रेम का गला घोटना में बहुत बड़ा जुर्म मानता हूं। तुम उनके भी जन्मनें वाले स्वस्थ प्रेम का रूग्ण मानती हो, क्योंकि तुम स्वयं रूग्ण हो।

और लिटल मैन तुम ऐसी मोटी कुरूप महिलाओं को अपने बच्चों को सौपकर अपने बच्चों की स्वस्थ आत्माओं में जहर और कड़वाहट घोलते हो। इसीलिए तुम ऐसे हो जैसे कि तुम हो।

+ + +

तुम मेरे पास दौड़ें चले आते हो और पूछते हो, प्यारे महान डॉक्टर, हम क्या करे। मैं क्या करू, मेरा पूरा भवन गिर गया है। दीवार की दरारों में से हवा गुजर रही है। मेरा बच्चा बीमार है और मेरी पत्नी का बुरा हाल है। मैं खुद बीमार हूं। क्या करू?

अपने घर को ग्रेनाइट जैसी मजबूती पर बनाओ ग्रेनाइट से मेरा मतलब है तुम्हारा स्वभाव; जिसे तुम सता कर मटियामेट कर रहे हो। तुम्हारे बच्चे की काया में पनप रहा प्रेम के सपने सोलह साल की उमर में देखे तुम्हारे अपने सपने। तुम्हारे भ्रम को थोड़े से सत्य के साथ बदल लो। अपने राजनीतिज्ञों और कूटनीतिज्ञों को बाहर फेंक दो। अपनी किस्मत को अपने हाथ से लिखो और अपने जीवन को चट्टान पर खड़ा करो। अपने पड़ोसी को भूल जाओ और अपने भीतर झांको। इससे तुम्हारा पड़ोसी भी अनुगृहीत होगा। पूरे संसार में अपने साथियों से कह दो कि, अब तुम मृत्यु के लिए नहीं, जीवन के लिए काम करना चाहते हो। किसी की हत्या करने के लिए या निषेध करने के लिए जुलूस निकालने की बजाय मानव जीवन और उसके आशीषों की रक्षा करने के लिए कानून बनाओ। ऐसा कानून तुम्हारे घर की मजबूत बुनियाद का हिस्सा बनेगा।

+ + + +

दिन भर के काम के बाद मैं अपने घर के आँगन में, हरी-हरी दूब पर अपनी प्रियतमा या अपने बेटे के साथ बैठता हूं। चारों और सांस लेती हुई प्रकृति के अहसास से भर जाता हूं तब मनुष्य जाति और उसके भविष्य के बारे में एक गीत मेरे जहर में उभरता है।

और फिर मैं जीवन से अनुरोध करता हूं, कि वह अपने हक को पुन: प्राप्त कर ले और जो दुष्ट और भयभीत लोग युद्ध का ऐलान करते है उनका ह्रदय परिवर्तन कर दे। वे इसलिए संहार करते है क्योंकि वे जीवन से वंचित हुए है।

मेरे बेटा मुझसे पूछता है: पिताजी सूरज विदा हो गया। कहां गया वह? क्या वह जल्दी लौट आयेगा? मैं उसे बांहों में भर कहता हूं, हां बेटा, सूरज फिर अपनी ममतामयी उष्मा को लेकर वापिस आ जायेगा।

लिटल मैन, मैं अपनी अपील के अंत पर आ रहा हूं, मैं तो अंतहीन रूप से लिख सिकता था। लेकिन तुमने यदि मेरे शब्दों को ध्यान से और निश्छलता से पढ़ा है तो तुम तुम्हारे भीतर के छोटे आदमी को उन संदर्भों में भी पहचान लोगे जिनमें मैंने कहा नहीं है। तुम्हारे हर ओछे कृत्यों और विचारों के पीछे एक ही मानसिकता है।

तुमने मेरे साथ जो भी व्यवहार किया है या करोगे, तुम मुझे जीनियस कहो या पागल कहार जेल में बंद कर दो। तुम्हारा मुक्तिदाता कहो या जासूस कहकर सताओ और फांसी दे दो। तुम्हारी पीड़ा तुम्हें देर अबेर यह देखने के लिए मजबूर करेगी कि मैने जीवंत ऊर्जा के नियम खोजें है और तुम्हारे जीवन की सुनियोजित करेन के लिए एक साधन तुम्हारे हाथ दिया है। तुम्हारे ऑर्गानिज़्म के लिए मैं एक भरोसेमंद अभियंता इंजीनियर हूं। तुम्हारे नाती-पोते मेरे पद चिन्हों पर चलेंगे और मनुष्य स्वभाव के प्रज्ञावान अभियंता होंगे। मैंने तुम्हारे भीतर जीवंत ऊर्जा का, तुम्हारे वैश्विक सार-अंश का विराट लोक उद्घाटित किया है।

यह मेरा बड़े से बड़ा पुरस्कार है।
मैंने इस जगह में
पवित्र शब्दों का ध्वज रोपित किया है।
पाम वृक्ष के मुरझाने और चट्टान के चूर-चूर होने के अरसे बाद,
चमकते हुए सम्राट
सूखे पत्तों की धूल की तरह उड़ जायेंगे।
लेकिन उसके बाद भी हजारों नौकाएं
हर बाढ़ में मेरे शब्दों का वहन करेंगी
वे गूँजते रहेंगे
गूँजते रहेंगे।

ओशो का नजरिया–

यह एक अजीब किताब है, उसे कोई नहीं पढ़ता। तुमने शायद उसका नाम भी नहीं सुना होगा। हालांकि यह अमेरिका में ही लिखी गई है। किताब है: ''लिसन, लिटल मैन'' लेखक विलहम रेक। बड़ी छोटी सी किताब है। लेकिन वह ''सर्मन ऑन माउंट'', ''ताओ तेह किंग'', ''दस स्पेस जुरतुस्त्र'', ''दि प्रॉफेट'' इनकी याद दिलाती है। वस्तुत: रेक की यह हैसियत नहीं थी की वह इस तरह की किताब लिखे, लेकिन लगता है वह कसी अज्ञात आत्मा से आविष्ट हो गया.....

''लिसन लिटल मैन'' ने रेक के प्रति बहुत दुश्मनी पैदा की—खास कर व्यावसायिक मनस चिकित्सकों के बीच, जो कि उसके सहयोगी थे क्योंकि वह हर किसी को ''लिटल मैन'' छोटा आदमी कहा रहा था। और वह

क्या सोचता था, वह बहुत महान है। मैं तुमसे कहना चाहता हूं; वह था। बुद्ध के अर्थों में नहीं लेकिन सिगमंड फ्रायड, कार्ल गुस्ताव युंग, अस गोली .... वह उसी कोटि का था।

वह महान आदमी था—आदमी ही था, महा मानव नहीं था, लेकिन बहुत बड़ा था। और यह उसके अहंकार से पैदा नहीं हुई। वह विवश था, उसे लिखना पडा। यह ऐसे ही है जैसे स्त्री गर्भवती हो तो उसे बच्चे को जन्म देना ही पड़ता है। इस छोटी सी किताब को यह वर्षो तक अपने भीतर सम्हाले रहा। उसे लिखने के ख्याल को दबाता रहा क्योंकि वह भलीभाँति जानता था। कि वह उसके लिए तूफान खड़ा करने वाला है। आरे वैसा ही हुआ।

इस किताब के बाद सब तरफ से उसकी भर्त्सना हुई।

इस संसार में किसी भी महान चीज का सर्जन करना महान अपराध है। आदमी जरा भी नहीं बदला है। सुकरात...उसने मार डाला। रेक....उसने मार डाला। कोई परिर्वतन नहीं। उन्होंने रेक को पागल करार दे दिया और उसे जेल में डाल दिया। वह वैसा ही सज़ा भुगतते हुए, पागल खाने में पागल होने का लेबल माथे पर लगाकर जेल में ही मर गया। बादलों के पार उठने की उसी क्षमता थी लेकिन उसे नहीं उठने दिया गया। सुकरात, जीसस, बुद्ध जैसे लोगों के साथ जीना अभी अमरीका को सीखना है।

मैं चाहता हूं, मेरे सभी संन्यासी इस किताब पर ध्यान करें। मैं इस किताब का बेशर्त समर्थन करता हूं।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

47/ उमर ख्याम की रूबाइयां

उमर ख्याम की रूबाईया-(उमर ख्याम)

उमर ख्याम सुंदरी, शराबी, इश्क के बारे में लिखता है। उसे पढ़कर लगता है, यह आदमी बड़े से बड़ा सुखवादी होगा। उसकी कविता का सौंदर्य अद्वितीय है। लेकिन वह आदमी ब्रह्मचारी था। उसने कभी शादी नहीं की, उसका कभी किसी से प्रेम नहीं हुआ। वह कवि भी नहीं था। गणितज्ञ था। वह सूफी था। जब वह सौंदर्य के संबंध में लिखता तो ऐसा लगता कि वह स्त्री के सौंदर्य के बारे में लिख रहा है। नहीं, वह परमात्मा के सौंदर्य का बखान कर रहा है।

.....पर्शियन भाषा में उसकी किताबों में चित्र बनाये हुए है और अल्लाह को साकी के रूप में चित्रित किया गया है—एक सुंदर स्त्री हाथ में सुराही लेकिर शराब ढाल रही है। सूफी शराब को प्रतीक की तरह इस्तेमाल करते है। जो इंसान अल्लाह से इश्क करता है उसे अल्लाह एक तरह की मस्ती देता है जो उसे बेहोश नहीं करती बल्कि होश में लाती है। एक मदहोशी जो उसे नींद से जगाती है।

फिट्जरल्ड को इन प्रतीकों की कोई जानकारी नहीं थी। वह सीधा सरल पार्थिव कवि था। और वस्तुत: उमर ख्याम से बेहतर कवि था। जब उसने अनुवाद किया तो उसने यही समझा कि स्त्री यानी स्त्री, शराब यानी शराब। प्रेम यानी प्रेम। उसके लिए प्रतीक नहीं थे। फिट्जरल्ड ने अपनी गलतफहमी के द्वारा उमर ख्याम को विश्व विख्यात कर दिया। अगर तुम उमर ख्याम को समझने की कोशिश करोगे तो दोनों में इतना अंतर दिखाई देगा कि तुम हैरान होओगे कि फिट्जरल्ड ने उमर ख्याम के गणितिक मस्तिष्क से इतनी सुंदर कविता कैसे निर्मित की।

ओशो

फ्रॉम मिज़री टू इनलाइटमेंट

किताब की झलक–

जागों मित्र, भरों प्याला, लो वह देखो प्राची की और
राज अटारी पर चढ़ता रवि फेंक अरूण किरणों की डोर
नभ के प्याले में दिन मणि को माणिक-सुधा ढालते देख
कलियां अधर पुटों को खोले ललक रही आनंद-विभोर।

पौ फटते ही मधुशाला में, गुंजा शब्द निराला एक,
मधुशाला से हंस कर यों कहता था, मतवाला एक–
स्वांग बहुत है रात रही पर थोड़ी, ढालों-ढालों शीध्र
जीवन ढल जाने के पहिले ढालों मधु का प्याला एक।

और कान में भनक पड़ी जब ऊधा मैं पीर कर दो चार
कोई कहता था पुकार कर, ''मधुशाला का खोलों द्वार
केवल चार घड़ी रहना है हम को, क्यों करते हो देर?
एक बार के गये हुए न लौटेंगे न दूजी बार।
लो फिर आई है वसंत ऋतु, हरी हुई फिर मन की आस

व्यथित ह्रदय कहता है चल कर करें कही एकांत-निवास
जहां लता-तरुणों के पत्ते हिलते ज्यों मूसा का हाथ
और सुगंध सुमन-माला की उठती ज्यों ईसा की श्वास।
देखो आज खिले है सुख के लाखों मधु-कलियों के गात–
किंतु कहो तो कल इन में से कितने फेर खिलेंगे ताता,
बूंद-बूंद टपका जाता हो, जीवन का मधु रस ख्याम,
एक-एक कर झड़ते जा रहे पक-पक कर जीवन पात।

कैकोवाद, कैखुसरो, दारा, रूस्तम और सिकंदर वीर–
क्या जानें अब कहां छिपे वे बड़े-बड़े योद्धा रणधीर,
किंतु आज भी विमल वारुण में जगती मणिक की ज्योति
और चित को चंचल करता अब भी वन का स्निग्ध समीर

अब भी, झुकी लदी गुच्छों से, अंगूरों की डाली देख–
फूली, छकी, ओस की धोई नव गुलाब की प्याली देख
भूली, अमी-अधखिली कलियों की चितवन की लाली देख
पीओ-पीओ कहती फिरती है बुलबुल मतवाली देख।

ला, ला, साकी। और-और ला; फिर प्याले पर प्याला ढाल,
घर रख, गूढ-ज्ञान गाथा को, व्रत-विवेक चूल्हे में डाल।
सिखला रहा ''त्याग'' की पट्टी—कैसा ज्ञानी है तू मित्र।
नहीं सूझता क्या तुझको वह यौवन यह मधु, यह मधुकाल?
यों तो मैं भी नित्य सोचता हूं अब खाऊंगा सौगंध—
इस प्याले का मोह तजूंगा, पानी कर दूँगा अब बंद।
किंतु आज तो प्रकृति-प्रिया है आई सज फूलों का साज
आज वसंतोत्सव है प्रियतम, आज न पीऊँ तो सौगंध।
आज वसंतोत्सव है प्रियतम फूलों में फूटा रसराज
मन की कसर निकालूंगा सब, तज कर लोक-लीक की लाज–
पहिला प्याला पी, कर दूँगा बांझ बुद्धि बुढ़ियाँ का त्याग
चढ़ा दूसरा, वरण करूंगा, वरूण नन्दिनी को फिर आज।

कोई स्वर्ग लोक से सुख को कहता है अतोल, अनमोल,
कोई राजपाट के ऊपर करता है मन डांवाडोल,
गांठ बाँध ले मूर्ख नकद ने नौ, तेरह उधर के छोड़–
यों तो लगते है, सुहावनें सब को सदा देर के ढोल।

गांठ-बाँध लें मूर्ख नकद के, फिर की आशा पर मल भूल,
सुन तो सही कह रहा है क्या हंस-हंस कर गुलाब का फूल–
जो सु-वर्ण लाता हूं जग में चलने से पहिले ही, मित्र।
उपवन में बिखेर जाता हूं, रत्ती-रत्ती झाड़ दुकूल।

हाँ, मिट्टी में मिल जाती है आशा सभी हमारी, तात।
कभी खिली भी तो बस जैसे दो दिन की उँजियारी रात।
हीरा-मोती लाल, धरा-धन-धाम-संपदा जितनी, हाय।
क्षणिक मरुस्थल के तुषार सी उड़ जाती है सारी तात।

और, मरुस्थल यह जीवन है, लेना सतर्कता से काम,
काल-क़जाक़ प्राण हरने की घात लगाता आठों याम।
सूख का प्यासा मृग-अबोध-मन, रखना इसको खूब संभाल
स्वर्ग-नरक की मृग-तृष्णा में बहक न कही जाए ख्याम।
ओशो का नजरिया–

उमर ख्याम, महान पर्शियन कवि था। उसने अपनी रूबाइयात में लिखा है.....रूबाइयात याने जैसे—जैसे में हाइकु होते है वैसे सूफियों में रूबाइयात होते है। एक रुबाई में वह कहता है:

गुनाह क्या न किए, क्या खुदा रही न था,
फिट्जरल्ड ने इसका अंग्रेजी में अनुवाद कर उसे विश्व विख्यात कर दिया।
ओशो

मैं ''रूबाइयात'' को भूल गया। मेरी आँख में आंसू आ रहे है। मैं और कुछ भी भूल जाऊं तो माफी मांग सकता हूं, लेकिन ''रूबाइयात'' के विषय में नहीं। उस के विषय में मैं केवल आंसू बहा सकता हूं। आंसुओं के द्वारा क्षमा मांग सकता हूं। शब्द काफी नहीं होंगे। ''रूबाइयात'' ऐसी किताब है जो संसार में सबसे अधिक पढ़ी गई। और सबसे कम समझी गई। उसका अनुवाद समझा गया है लेकिन उसकी आत्मा बिलकुल नहीं समझी गई। अनुवादक अपने शब्दों में आत्मा को नहीं उड़ेल सकता। 'रूबाइयात'' प्रतीकात्मक है, और अनुवादक सीधा-सादा अंग्रेज था—अमेरिका में उसे ''स्कवेअर'' कहेंगे; कोई गोलाई नहीं। ''रूबाइयात'' को समझने के लिए तुममें थोड़ी गोलाई चाहिए।

''रूबाइयात'' सिर्फ मदिरा और महिषाक्षी के बारे में बातें करती है। और कुछ नहीं। बस शराब और सुंदरियों के गीत गाता रहता है। उसके अनुसार जो कि अनेक अनुवादक, जो कि अनेक है, सभी गलत है। ऐसा होना ही था क्योंकि उमर ख्याम सूफी था। तसव्वुफ़ का आदमी था—जो जानता है। सूफी अल्लाह को इसी तरह बुलाते है। महबूब....ओ मेरे महबूब....ओर वे अल्लाह के लिए स्त्रीलिंग वाचक शब्दों का उपयोग करते है। विश्व में और किसी ने, मनुष्य जाति और चेतना के पूरे इतिहास में, परमात्मा को स्त्री की तरह संबोधित नहीं किया है। सिर्फ सूफी ही परमात्मा को महबूब कहते है।

और शराब वह है जो आशिक माशूका के बीच घटती है, उसका अंगूरों से कोई लेना देना नहीं है। प्रेमी और प्रेमिका के बीच, शिष्य और गुरु के बीच, भक्त और भगवान के बीच जो रसायन, जो अल्केमी घटती है, जो

रूपांतरण होता है। वह शराब है। ''रूबाइयात'' को इतना गलत समझा गया है....शायद इसीलिए मैं उसे भूल गया।

ओशो

बुक्स आई हैव लव्ड

48/ बीइंग एंड टाईम-(मार्टिन हाइडेगर)

बीइंग एंड टाईम-(मार्टिन हाइडेगर)

कभी-कभार कोई ऐसी किताब प्रकाशित होती है। जो बुद्धिजीवियों की जमात पर टाइम-बम का काम करती है। पहले तो उसकी अपेक्षा की जाती है लेकिन जैसे-जैसे मत बदलते है वह लोगों का ध्यान आकर्षित करने लगती है। ऐसी किताब है जर्मन दार्शनिक मार्टिन हाइडेगर द्वारा लिखित ''बीइंग एंड टाईम''

इसका प्रभाव न केवल यूरोप और अमेरिका के दर्शन पर हुआ बल्कि वहां के साहित्य और मनोविज्ञान पर भी हुआ। इसके प्रशंसक तो यहां तक कहते है कि उसने आधुनिक विश्व का बौद्धिक नक्शा बदल दिया। सार्त्र, मार्टिन वूबर, और कामू जैसे अस्तित्ववादी दार्शनिक हाइडेगर से बहुत प्रभावित थे। यह किताब पहली बार 1927 में प्रकाशित हुई। चूंकि हाइडेगर जर्मन लोगों के लिए बेबूझ था। इस लिए इसका अनुवाद करना लगभग असंभव था। लेकिन हाइडेगर के प्रभाव शाली शिष्य जॉन मैकेरी और एडवर्ड रॉबिन्सन ने बड़ी मेहनत से यह किताब अंग्रेजी में उपलब्ध कराई। हाइडेगर की खूबी यह है कि वह प्रचलित शब्दों का सामान्य अर्थों में प्रयोग नहीं करता, वरन उन्हें अपने आशय देता है। इस करके उसका लेखन बेहद तरोताजा होता है। पाठक को पुलकित करता है लेकिन अनुवाद के लिए चुनौती बनता है।

कभी-कभी वह शब्दों के पुराने धातुओं में जाकर उनके नए अर्थ गढ़ता है। हाइडेगर की प्रतिभा भाषा के साथ अभिसार करती है। यह किताब वाकई अनुवाद तथा पाठक, दोनों के लिए बुद्धि की कवायद है। न केवल इसकी भाषा बल्कि इसका विषय ''अंतस और समय'' भी बड़ा ही दुर्बोध और अगम है। और इसे सुबोध करने में हाइडेगर की लेखनी कहीं भी सहयोग नहीं करती।

पूरी किताब जीवन के दो बुनियादी गहन बिंदुओं का ऊहापोह है—स्वयं का होना और समय। और सचमुच गहराई से देखें तो मनुष्य को जीवन के ये ही दो प्रश्न बहुत परेशान करते है। मैं कौन हूं? और समय क्या है? हाइडेगर लिखता है कि हम जो कि समझते थे कि हम जानते है, कि अपना होना, बीइंग क्या है, अब बिबूचन में पड़ गया है। क्या हमारे पास इसका कोई उत्तर है। कि बीइंग का वास्तविक अर्थ क्या है? जरा भी नहीं। इस ग्रंथ में हम इसका अनुसंधान करेंगे। कि बीइंग अर्थात होना क्या है? और इसका समय के साथ क्या रिश्ता है?

अपने होने के भिन्न-भिन्न पहलूओं का बारीक विश्लेषण हाइडेगर इतनी प्रवीणता से करता है कि पढ़ने वाले को अपने-आप पर संदेह होने लगाता है। क्या सचमुच हम वह है जैसा कि हम मानते है? क्या यह विश्व वास्तव में है या हमने इसे मान लिया है? इस मोटी किताब का (488 पृष्ठ) तीसर परिच्छेद है: ''दि वर्ल्ड हुड ऑफ दि वर्ल्ड'' विश्व का विश्वता। विश्व के संदर्भ में अपने होने का मतलब समझना हो तो पहले यह समझना जरूरी है कि यह विश्व क्या है। सतही तौर पर माना जायेगा कि विश्व को समझने की क्या जरूरत है? यह तो है ही। नहीं, हाइडेगर की नजरों से देखें तो आप जानेंगे कि आपने कभी विश्व को समझा ही नहीं है। क्या विश्व वे सारी वस्तुएँ है जो उसके भीतर है? जैसे मकान, लोग, वृक्ष पर्वत, सितारे..... ? यदि इन वस्तुओं का हटा लें तो विश्व क्या होगा? होगा या नहीं होगा? क्या बीइंग भी एक वस्तु है या वस्तुओं से पहले की घटना है? क्या वस्तुओं का अपना मूल्य है या वह मूल्य उनमें हमने डाला हुआ है? हमने—याने किसने?

.....फंस गए न भंवर में। इसी भँवर का ना है मार्टिन हाइडेगर। बीसवीं सदी का मूर्धन्य अस्तित्ववादी दार्शनिक। ओशो ने इसकी किताब को अपनी मनपसंद किताबों में शामिल तो किया है लेकिन साथ में यह भी कहा है कि जो तीसरे दर्जे के पागल है वह ही इसे पढ़े।

फिर भी, चल पड़े है तो थोड़ी दूर तो चलना चाहिए।

मृत्यु के संबंध में हाइडेगर का चिंतन भी असामान्य है।

किताब की एक झलक–

हम एक दूसरे के साथ रोजमर्रा की जिंदगी में जिस प्रकार की सार्वजनिकता में है उसमे मृत्यु को एक ऐसी दुर्घटना माना जाता है जो निरंतर घट रही है। कोई न कोई ''मरता'' है—चाहे पड़ोसी हो या अजनबी। लोग, जिनका हमसे कोई परिचय नहीं है वे मर रहे है—प्रतिदिन, प्रति घंटे। मृत्यु एक जानी मानी घटना है जो विश्व के भीतर घटती है। लोगों ने इस घटना की व्याख्या अपनी सुविधा के लिए की हुई है। जिसका सार इस प्रकार है ....''कभी न कभी हमें मरना होगा, अंत में, लेकिर अभी हमारा इससे कोई लेना देना नहीं है।''

''व्यक्ति मरता है'' इस वाक्य का विश्लेषण असंदिग्ध रूप से ऐसा होने को प्रगट करता है जो मृत्यु की और उन्मुख है। इस प्रकार की वार्ता में मृत्यु को कुछ ऐसी अनिश्चिता समझा जाता है जो प्राथमिक रूप से अभी करीब नहीं है। और इसलिए उससे कोई खतरा नहीं है। यह वक्तव्य यह ख्याल प्रसारित करता है कि मृत्यु जिन तक पहूंचती है वे दूसरे लोग है। बीइंग या अपना ''होना'' कभी यह नहीं सोच सकता की मरनेवालों में मैं भी शामिल है।

सभी जीनियसों की तरह हाइडेगर भी रूढिवादिता और पिटी-पिटाई धारणाओं से संतुष्ट नहीं है। वह हर मान्यता की जड़ तर उतरता है। और अंतिम छोर तक पहुंचने के बाद उसे पता चलता है कि वह एक बेबूझ पहली है। सभी गहन चिंतक उस ''डेड एंड'' पर पहुंचते है जो रहस्य का द्वार होता है। उसके आगे सोच-विचार संभव नहीं है। अज्ञेय और छलांग ही काम आती है।

इस विशाल किताब का अंत दो प्रश्न वाचक वाक्यों से होता है—''क्या कोई रास्ता है जो आदिम समय से निकल कर बीइंग के, होने के अर्थ तक पहुँचाता है? क्या समय स्वयं को होने के क्षितिज पर प्रकट करता है?

मार्टिन हाइडेगर जर्मनी में 1989 में पैदा हुआ। फ्रेबर्ग विश्वविद्यालय में वह प्राध्यापक रहा। हाइडेगर के माता-पिता निम्न 8मध्येवर्गीय परिवार के थे। उसकी मां किसान की बेटी थी। और पिता मजदूर थे। लेकिन वह खुद बहुत मेधावी था इसलिए शिष्य वृति पाकर उच्च शिक्षा ले सका। उसके जीते जी उसके जीवन का एक पहलू अज्ञात रहा। जो 1987 में उसके एक विद्यार्थी ने उजागर किया। वह पहलू यह था कि हाइडेगर नाझी पार्टी का सदस्य था। 1933 में वह नाझी पार्टी में शामिल हुआ। वह हिटलर से इतना प्रभावित कि फ्रेबर्ग विश्वविद्यालय में वह नाझी वाद की नीतियों का लागू करना चाहता था। न जाने कैसे, अब तक उसका यह हिटलर प्रेम दुनिया की नजरों से छिपा रहा। मन की जटिलता का कोई क्या कहे। हो सकता है हिटलर की और आकर्षित होने का कारण उसका गरीब, सुकड़ता बचपन रहा हो।

जो भी हो, इस काली छाया के बावजूद या हो सकता है इसकी वजह से, हाइडेगर का मौलिक योगदान दर्शन के क्षितिज पर चंद्रमा की तरह चमकता है। वह बीसवीं सदी की पाश्चात्य दर्शन धाराओं की गंगोत्री था। 1976 में उसका देहांत हुआ और तब तक वह बीइंग एंड टाइम'' का दूसरा भाग प्रकाशित न कर सका।

ओशो का नज़रिया–

दूसरी किताब है, मार्टिन हाइडेगर की ''बीइंग एंड टाइम'' मुझे यह आदमी बिलकुल पसंद नहीं है। वह न केवल कम्युनिस्ट था बल्कि फासिस्ट भी था। एडोल्फ हिटलर को मानने वाला। जर्मन लोग क्या कर सकते है। उस पर भरोसा नहीं होता। वह इतना प्रतिभाशाली आदमी था, जीनियस था, और फिर भी उस विक्षिप्त, मूढ़ एडोल्फ हिटलर का समर्थक था। मैं वाकई हैरान हूं।

लेकिन उसकी किताब अच्छी है—मेरे शिष्यों के लिए नहीं वरन जो अपने पागलपन में बहुत आगे निकल गये है उनके लिए। यदि तुम्हारा पागलपन बहुत बढ़ चुका है तो बीइंग एंड टाइम पढ़ो। यह समझने से बिलकुल परे है। वह तुम्हारे सिर पर हथौड़े की तरह चोट करेगी। लेकिन उसमें कुछ सुदंर झलकें है। जब कोई तुम्हारे सिर के ऊपर हथौड़े से चोट करता है तो दिन में तारे नजर आते है। यह किताब ऐसी ही है, उसमे कुछ तारे है।

यह किताब अधूरी है। मार्टिन हाइडेगर ने दूसरा भाग प्रकाशित करने का वादा किया था। वह जिंदगी भर, बार-बार दूसरा भाग प्रकाशित करने का वादा करता रहा लेकिन कभी उसने उसे लिख नहीं। शुक्र है। मैं सोचता हूं कि उसे खुद समझ में नहीं आया होगा कि उसने क्या लिखा है? तो आगे क्या लिखता? दूसरा भाग कैसे छापता? और दूसरा भाग उसके दर्शन की पराकाष्ठा होने वाली थी। उसे न लिखना ही बेहतर था। कम से कम मज़ाक का विषय तो न बना। वह दूसरा भाग लिखे बगैर ही मर गया। लेकिन पहला भी अंतिम दर्जे के पागलों के लिए अच्छा है। और ऐसे कई लोग है। इसलिए मैं इन किताबों पर बोल कर उन्हें अपनी सूची में सम्मिलित कर रहा हूं।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

49/ प्रिंसिपिया एथिका-(जी. इ. मूर)

प्रिंसिपिया एथिका—जी. इ. मूर

आधुनिक दर्शन शास्त्र के विकास में जी. ई मूर का योगदान उतना ही महत्वपूर्ण है! जितना कि बर्ट्रेंड रसेल का। उसकी बहुत कम रचनाएं प्रकाशित हुई। और ''प्रिंसिपिया एथिका'' उनमें से सर्वप्रथम और सर्वाधिक प्रसिद्ध किताब है।

अंग्रेजी साहित्य और चिंतन पर उसका प्रभाव विचारणीय है। बर्ट्रेंड रसेल ने इस किताब के बारे में लिखा, ''इसका हमारे ऊपर (कैम्ब्रिज में) जो प्रभाव पडा, और इसे लिखने से पहले और बाद में जो व्याख्यान हुआ उसने हर चीज को प्रभावित किया। हमारे लिए वह विचारों और मूल्यों का बहुत बड़ा स्त्रोत था। लॉर्ड केन्स का तो मानना था कि यह किताब प्लेटों से भी बेहतर है।

''यह किताब नैतिक तर्क सारणी के दो मूलभूत सिद्धांतों की मीमांसा करती है। इसमें दो प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण मालूम होते है; वे कौन सी चीजें है जो अपने आप में शुभ है, और हम किस तरह के कृत्य करें? नीतिशास्त्र के चिंतन में मूर के लेखन की सरलता, स्पष्टता और कॉमन सेंस ताजा प्राण फूंक देते है। उसकी बौद्धिक प्रामाणिकता और ओज इस किताब पर श्रेष्ठता की मुहर लगाते है।

यह किताब उस मानसिकता और बौद्धिक स्थिति के लिए लिखी गई है। जो आज से पचास साल पहले निति और नैतिकता का आचरण में बहुत विश्वास रखती थी। बीसवीं सदी के पूर्वार्ध में मनुष्य के मन पर नीति की जबरदस्त पकड़ थी। यहां तक कि सभी धर्म नैतिक आचरण बनकर रह गये थे। आज की तारीख में इस किताब का महत्व समझ में आना बहुत मुशिकल है। क्योंकि आज नीति की धज्जियां उड़ गई है। हम मानसिक तौर पर एक अलग ही समय में जी रहे है।

बहरहाल जिस समय यह किताब लिखी गई उस समय यह क्रांतिकारी साबित हुई। क्योंकि उसने नीति नियमों की बुनियाद को हिला दिया। अच्छा-बुरा, सही-गलत, पाप-पूण्य, इसकी सामाजिक परिभाषा पत्थर की लकीर जैसी स्थिर होती है, मजबूत होती है। उसके आधार पर न्याय, अदालत, पुलिस, धर्म इत्यादि बनाये जाते है। और यहां मूर मौलिक सवाल उठाता है कि जिसे हम शुभ कहते है वह क्या है? क्या वह किसी वस्तु की आंतरिक गुणवता है या कि एक खास तरह के आचरण का मापदंड है? क्या अस्तित्व में लिखा है कि फलां चीज शुभ है और फलां चीज अशुभ? यह आचरण सही है और यह गलत? इसे आदमी ही तय करता है, अस्तित्व नहीं।

ये सारे प्रश्न नीतिशास्त्र के अंतर्गत आते है, किताब की भूमिका में मर ने यह बात स्पष्ट की है, ''जब हम कहते है, फलां आदमी अच्छा है या वह शख्स दुर्जन है। जब हम पूछते है, मुझे क्या करना चाहिए? या क्या ऐसा करना गलत होगा? तो यह नीतिशास्त्र का अधिकार है कि वह इस तरह के प्रश्नों की चर्चा करे। अधिकार जब हम इन शब्दों का प्रयोग करते है, ''शुभ, अशुभ, कर्तव्य, अधिकार, अच्छा, बुरा तब हम नैतिक मूल्यांकन कर रहे होते है।

अधिकांश नीतिवादी दार्शनिक अच्छाई को अच्छे आचरण से जोड़ते है। क्योंकि एक आदमी अच्छा है कि नहीं यह कैसे पता चलेगा? उसके आचरण से ही न? जब हम कहते है नशे में धुत होना बुरा है तो हम मानकर चलते है कि मदहोश होना बुरा कृत्य है।

मूर की विशिष्टता यह है कि वह आचरण को गुणवत्ता से अलग करता है। पहले गुणवत्ता, बाद में आचरण। और उसका मुद्दा सटीक है। कोई व्यक्ति अच्छा है। इसीलिए अच्छा आचरण कर सकता है। बुरा आदमी

अच्छा आचरण कर सकता है। बुरा आदमी अच्छा आचरण कैसे कर सकता है। इसका मतलब है, अच्छाई अपने आप में कोई गुण है, मूल्य है।

अच्छाई की परिभाषा क्या है? मूर कहता है अच्छाई को परिभाषित करना असंभव है। ठीक वैसे ही जैसे पीले रंग ने देखा हो उसे समझाना मुश्किल है कि पीला रंग क्या है।

एक बार यह स्थापित कर कि अच्छाई का विश्लेषण और चर्चा करना नीतिशास्त्र को तीन हिस्सों में बांटा है। एक नैसर्गिक नीतिशास्त्र, दूसरा आध्यात्मिक नीतिशास्त्र और तीसरा सुखवाद (हिडोनिज्म) इससे पहले कि मनोविज्ञान एक स्वतंत्र विज्ञान की तरह विकसित हुआ, अध्यात्म, विज्ञान और गुह्म विज्ञान, ये सब ''नैचुरल साइंस'' नैसर्गिक विज्ञान कहलाते थे। नैसर्गिक विज्ञान मानता है कि ''शुभ'' वस्तुएं न हो तो क्या समय में कहीं भी केवल अच्छाई हो सकती है? क्या ''शुभ'' एक अनुभूति है या कि वह वस्तुओं का अंग है जिससे कि वे बनी है? यदि वह उनका मूल द्रव्य है तो उसे निकाल लेने पर वह बचेगी ही नहीं।

''सुखवाद'' पर एक पूरा परिच्छेद है। सुखवाद सुप्रसिद्ध दार्शनिक मिल का सिद्धांत है जो बीसवीं सदी के प्रारंभ में बहुत लोकप्रिय था। और आज यह सिद्धांत मात्र दर्शन नहीं, मनुष्य की जीवन चर्या बन चुका है। यह सिद्धांत मनुष्य की हर इच्छा और हर कृत्य के पीछे एक ही प्रेरणा को मानता है। और वह है सुख पाने की आकांशा इसलिए सुखवाद के अनुसार शुभ की परिभाषा है सुख। जो भी सुखद है उसे हम शुभ या अच्छा कहते है। सुखवादी दार्शनिक सुख को सर्वोपरि मानते है, सुख के अलावा जो भी है, फिर वह पूण्य हो या ज्ञान, जीवन हो या प्रकृति, या सौंदर्य, ये सब सुख प्राप्त करने के साधन की तरह अच्छे है। ये अपने आप में साध्य नहीं है। मिल ने लिखा है: ''सुख, और दुःख से मुक्ति ये ही अपने आपे साध्य हो सकते है।''

नीतिशास्त्र का एक और तल है आध्यात्मिक नीतिशास्त्र। मूर की दृष्टि में यही नीतिशास्त्र शुभ की परिभाषा कर सकता है। क्योंकि यह नैसर्गिक नीतिशास्त्रियों या सुखवादियों की तरह शुभ को किसी वस्तु का गुण नहीं मानता।

''आध्यात्मवादी लोगों की यह बहुत बड़ी योग्यता है कि वे ज्ञान को सिर्फ उन वस्तुओं तक सीमित नहीं मानते जिन्हें हम छू सकते है। देख सकते है, या महसूस कर सकते है। आध्यात्मवादी मानिसक तल पर जो वस्तुएं है उनके बारे में तो सोचते ही है, साथ में वस्तुओं के उस वर्ग के बारे में भी चिंतन करते है जो समय में नहीं होती, समय का अंग नहीं है, न ही प्रकृति का अंग है। सच तो यह है कि वह होती ही नहीं। यह जो वर्ग है ये शुभ को एक विशेषण की तरह समझ सकते है। यह ''गुडनेस'' याने अच्छाई नहीं है, वरन वे वस्तुएं और गुणवत्ताएं है जो समय के भीतर हो सकती है। जिनकी एक अवधि होती है। और जो होती है और विदा भी हो सकती है। ये हमारे जानने के विषय हो सकते है।

''इस वर्ग के सबसे अहम उदाहरण है, अंक अर्थात नंबर। यह तो निश्चित है कि दो प्राकृतिक चीजें है; और यह भी उतना ही सुनिश्चित है कि ''दो'' का अपना कोई अस्तित्व नहीं होता, और न ही हो सकता है। दो और दो चार जरूर हो सकते है। लेकिन अस्तित्व में न तो दो होते है और न चार होते है। और फिर भी उसमे कोई अर्थ तो होता है। तो एक अर्थ में दो है भी, और नहीं भी। जिसे सामान्य सत्य कहा जाता है, मसलन धरती पर कहीं भी कोई भी दो चीजें जुडकर चार होती है, वह वस्तुत: चार होती ही नहीं। इसे सामान्य सत्य माना जाता है। और प्लेटों के समय से लेकर आज तक इन ''सामान्य सत्यों'' ने दार्शनिकों के चिंतन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

मूर के अनुसार, आध्यात्मिक नीति शास्त्री ''सुप्रीम गुड'' '' आत्यंतिक शुभ'' को मानते है लेकिन वह समय के बारे में अंत: वह प्रकृति का हिस्सा नहीं होता है। प्रकृति और सभी प्राकृतिक वस्तुएं समय में जीती है।

इसके बाद मर ने नीतिशास्त्र और आचरण का संबंध स्थापित किया है। नीतिशास्त्र के लिए शुभ की अवधारणा को मानना बहुत आवश्यक है क्योंकि उनका पूरा भवन ही उस पर खड़ा है।

जब हम किसी बात को या वस्तु को ''अच्छा'' कहते है तो क्यों कहते है? इसे तय करना नीति शास्त्र का काम है।

इसी से जुड़ा हुआ दूसरा पहलू है या अच्छा भाव से किये हुए हर कृत्य का परिणाम अच्छा होता है। अगर हां, तो किसके लिए अच्छा है? खुद के लिए या सबके लिए? क्या कोई ऐसा कृत्य हो सकता है जो सब के लिए अच्छे परिणाम लाये?

किताब का अंतिम परिच्छेद है: ''दि आइडियल, आदर्श'' इससे पहले वाक्य से ही मूर अपनी भूमिका स्पष्ट करता है—'' इस परिच्छेद का शीर्षक संदिग्ध है। जब हम किसी अवस्था को आदर्श कहते है तो हम तीन अलग-अलग बातें करना चाह सकते है। जब हम किसी चीज को अच्छा कहते है तो हो सकता है। कि हम न केवल अच्छा मानते है। वरन अन्य सभी चीजों से उसे बेहतर समझते है।''

''आदर्श का अर्थ है वस्तुओं की सर्वश्रेष्ठ अवस्था, आत्यंतिक शुभ का सार निचोड़। इस अर्थ में स्वर्ग की सम्यक कल्पना आदर्श की सम्यक धारण होगी। तथापि वैयक्तिक शुभ के पार एक सामूहिक और सार्वत्रिक शुभ की भी संकल्पना है। इसे ही दर्शन शास्त्र में मानवता का शुभ कहते है। यह वह अंतिम लक्ष्य है जिसके लिए हम काम करें। इस अर्थ में युटोपिया आदर्श है। युटोपिया की मन ही मन कल्पना करने वाले अपने ख़्यालों में कई चीजों को संभव मान सकते है। जो कि यथार्थ में असंभव हो सकते है।''

क्या ऐसा कोई शुभ है जो अपने आपमें सत्य हो सकता है। हो सकता है यह जो आत्यंतिक शुभ है उसकी कुछ ऐसी गुणवत्ताएं हों जिनकी हम कल्पना भी कर सकते हो। क्या कोई ऐसा खालिस शुभ है जिस पर अशुभ की बिलकुल छाया न हो? यदि सुख शुभ नहीं हो सकता, सौंदर्य शुभ नहीं हो सकता, ज्ञान शुभ नहीं हो सकता —क्योंकि प्रत्येक का विपरीत उसमे समाया हुआ है—तो फिर परम शुभ क्या है।

दो सौ पच्चीस पृष्ठों की यह खोज अंतत: शुभ तक नहीं पहुँचती अपितु पाठक को अधर में ही लटका देती है। जिस प्रश्न को लेकर शुरूआत की थी, ''वॉट इज़ गुड'' ''शुभ क्या है। उसका उत्तर मिलना तो दूर, प्रश्न और विराट हो जाता है। तो फिर सवाल उठता है हम किस मुंह से इस अथाह जीवन के नीतिशास्त्र, कानून, अदालतें, किस लिए? यदि यह किताब किसी को इतना भी डांवाडोल कर देती है तो क्या चाहिए जी इ मूर सफल हुआ।

ओशो का नज़रिया–

जी. इ. मूर एक महान समसामयिक लेखक, न एक किताब लिखी है: ''प्रिंसिपिया एथिका'' और पूरे इतिहास में संभवत: वह एकमात्र व्यक्ति है जिसने शुभ को परिभाषित करने के लिए इतनी गहराई से सोचा हो। शुभ की परिभाषा किए बगैर कोई नीतिशास्त्र कोई नैतिकता नहीं हो सकती। अगर तुम्हें यही पता नहीं हे कि शुभ क्या तो तुम कैसे जानोंगे क्या नैतिक है, क्या अनैतिक ; क्या सही है, क्या गलत।

उसने एक बुनियादी सवाल को उठाया और बगैर यह जानते हुए कि यह आखिरी सवाल है। और वह मुसीबत में फंस गया। आज की दुनियां के सर्वाधिक बुद्धिमान लोगों में एक था वह। वह इस सवाल को हर दृष्टि कोण से देखकर लगभग ढाई सौ पन्नों तक खोज करता है: ''शुभ क्या है?'' और इतने सरल से शब्द की परिभाषा करने में वह बुरी तरह असफल रहा। हर कोई जानता है कि अच्छा क्या है, हर कोई जानता है बुरा क्या है। हर कोई जानता है सुंदर क्या है। हर कोई जानता है बुरा क्या है? हर कोई जानता है सुंदर क्या है? लेकिन उसकी परिभाषा करोगे तो तुम उसी मुसीबत में पड़ोगे।

उसने सोचा होगा कि हर कोई जानता है कि शुभ क्या है, सिर्फ थोड़ा सा राज जानने की बात है। ताकि उसकी परिभाषा की जा सके। लेकिन ढाई सौ पन्नों के बारीक तर्क के बाद, गहन चिंतन और बौद्धिक विश्लेषण के बाद वह इस नतीजे पर पहुंचता है कि शुभ अव्याख्येय है।

ओशो

बोधिधर्म: दि ग्रे टेस्ट झेन मास्टर

जी. इ. मूर की ''प्रिंसिपिया एथिका'' मुझे यह किताब बहुत पसंद है। यह तर्क की महान सरणी है। यह दो सौ से अधिक पृष्ठ एक ही प्रश्न के ऊहापोह में बिताता है: शुभ क्या है। और अंतत: इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि शुभ अव्याख्येय है। अद्‌भुत लेकिन उसने अपना गुह्म पाठ बखूबी किया। उसने जल्दी से निर्णय नहीं ले लिया जैसे कि रहस्यदर्शी लेते है। वह दार्शनिक था। वह आहिस्ता-आहिस्ता कदम-दर-कदम बढ़ता गया। शुभ अव्याख्येय है जैसे कि सौंदर्य है या भगवत्ता है। वस्तुत: जो भी मूल्यवान है वह अव्याख्येय है। ध्यान रहे, जिसकी भी परिभाषा की जा सके वह दो कौड़ी का है। जब तक कि तुम अव्याख्येय तक नहीं पहुंचो, तुम किसी मूल्यवान के करीब आये ही नहीं।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

50/ लस्ट फॉर लाइफ-(विंसेंट वैनगो)

लस्ट फॉर लाइफ—विंसेंट वैनगो

यह कहानी है उत्तप्त भावोन्मेष की, सृजन के विवश करनेवाले विस्फोट की; प्रसिद्ध डच चित्रकार विंसेंट बैन गो की जो अपनी ही प्रतिभा की आग में जीवन भर जलता रहा और अंतत: उसी में जलकर भस्मसात हो गया।

अजीब किस्मत लेकिन पैदा हुआ यह प्रतिभाशाली, बदसूरत कलाकार। हॉलैंड के प्रतिष्ठित वैनगो परिवार में जन्मा वैनगो बंधु योरोप के उच्च वर्गीय, ख्यातिलब्ध चित्रों के सौदागर और प्रदर्शक थे। पूरे योरोप में उनकी अपनी आर्ट गैलरीज थी। छह भाईयों में से दो धर्मोपदेशक थे। उनमें से एक धर्मोपदेशक भाई की संतान थी विंसेंट और थियो। थियो विंसेंट से दो साल छोटा था। थियो समाजिक रस्मों रिवाज के मुताबिक चलने वाला, अपने व्यवसाय में सफल आर्ट डीलर था। विंसेंट उससे ठीक उलटा। समाज के तौर तरीके, शिष्टाचार उसे कभी रास नहीं आते थे। संभ्रांत व्यक्तियों दंभ और नकलीपन से बुरी तरह बौखला जाता था। और उसी समय प्रतिक्रिया करता।

घर से बुज़ुर्गों ने उसके लिए धर्मोपदेशक का रास्ता चुना। विंसेंट को समाज के गरीब तबके से बहुत हमदर्दी थी। उसने सोचा इस काम में वह उन लोगों की मदद कर सकेगा। विंसेंट का प्रशिक्षण शुरू हुआ। वह दिन रात धर्मग्रंथों का अध्ययन करने लगा। लेकिन उसकी एक बहुत बड़ी कमजोरी थी। वह व्याख्यान नहीं दे पाता था। किसी प्रकार का शाब्दिक संप्रेषण उसके लिए संभव नहीं था।और धर्मोपदेशक की पूरी ताकत ही उसकी वाणी होती है। आखिर परीक्षा में वि उत्तीर्ण नहीं हो पाया। लेकिन उसके एक शिक्षक उससे हमदर्दी रखते थे। उन्होंने कहां, दक्षिण बेल्जियम में बॉरिनेज नाम का एक गांव है। वहां कोयले की खदानें है। पूरी बस्ती ही खदान में काम करती है। वहां के हालत बड़े बदतर है। कि कोई पादरी वहां जाने को तैयार नहीं है। विंसेंट खुश से वहां गया। लेकिन वहां के लोगों की जिंदगी देखकर उसे बड़ा धक्का लगा। सारे मजदूर तेरह घंटे जमीन के नीचे 700मीटर की गहराई पर अंधेरे में बिताते थे। उनके बच्चे बिबियाँ हमेशा बीमार, भूखे और अर्धनग्न हुआ करते थे। उन्हें विंसेंट कौन सा धर्म सिखाये? उनके दिल में आपने लिए विश्वास जगाने की खातिर। विंसेंट उनके जैसा भूखा, चिथड़ों में लिपटा और बीमार रहने लगा। उसने अपने कपड़े मजदूरों में बांट दिये, बदन पर कोयले की कालिख पोत ली। वहां चर्च में यह खबर पहुंचते ही दो विशप बॉरिनेज आये और उन्होंने ईसाइयत की तौहीन करने के जुर्म में विंसेंट को निकाल दिया।

विंसेंट अपने माथे पर दो लकीरें बहुत गहरी खुदवाकर लाया था। गरीबी और लोगों की नफरत। वह जिस परिवार में जन्मा था उस स्तर पर कभी नहीं जी पाया, हमेशा गरीबी में झुलसता रहा। भोजन का अभाव और बुखार उसके सदा के दोस्त थे। दूसरा अभिशाप—किसी स्त्री का प्रेम उसे कभी नहीं मिल पाया। ऊंचे खानदान की दो स्त्रियों से उसने पागलपन की हद तक प्रेम किया। लेकिन दोनों से उसे नफरत ही मिली। और जिन दो स्त्रियों ने उसे प्रेम की थोड़ी सी उष्मा दी वे दोनों वेश्याएं थी। बाजारू औरतें थी। अंत: उनके प्रेम से उसे सदमा अधिक मिला, पोषण कम।

धर्मोपदेशक के काम से छुट्टी मिलने पर अचानक विंसेंट को अपने भीतर की चित्रकला का पता चला। बॉरिनेज की एक झोपड़ी में बैठे-बैठे उसने पेंसिल से और कोयले से चित्र बनाना शुरू किया। अकस्मात उसके भीतर कोई द्वार खुल गया। कोई सोई हुई चेतना जाग उठी। और वह घंटो चित्र बनाने में डूबा रहने लगा। खदान के मजदूर उनके बच्चे राहगीर हर किसी को वह विषय बनाने लगा। लेकिन चित्र बनाकर पेट तो नहीं

भरता था। भूख पेट और शरीर कब तक सहन करता। विंसेंट बहुत बीमार हो गया। उसके भाई थियो को खबर मिली और वह आकर उसे हॉलैंड अपने मां-बाप के पास ले गया।

मां बाप उससे परेशान थे। यह जवान लड़का, न पैसे कमाता है, न कोई काम करता है, बस कागज पर लकीरों से खेलता रहता है। लेकिन विंसेंट से बहस करने का मतलब था की वह फिर घर छोड़ कर चला जाये। उसके गांव के लोग भी उसका तिरस्कार करते थे। क्योंकि वह सुबह-सुबह ईजेल और रंगों का बक्सा लेकर खेतों में चला जाता और दिन भर किसानों के चित्र बनाता रहता। सुख-सुविधा विंसेंट को रास नहीं आती थी। कुछ वक्त बीता नहीं की फिर उसे एक झोंका आता और वह अपनी बोरिया-बिस्तर लेकर चल पड़ता।

विंसेंट ने कभी पैसे नहीं कमाये। वह हमेशा थियो के पैसों पर जीता रहा। थियो दोनों के गुज़ारे के लिए पैसे कमाता। थियो छाया की तरह विंसेंट का साथ निभाता और उसे भरोसा दिलाता। थियो को यकीन था एक दिन जरूर विंसेंट के चित्रों की लोग कदर करेंगे जो आज उनका मजाक उड़ाते है। विंसेंट के चित्र उसी के जैसे थे। अनगढ़, ग्रामीण, माटी से नाता जोड़ते हुए। उस समय जो अन्य चित्रकार थे उन्हें विंसेंट अपने चित्र दिखाता। सभी निराशा में गर्दन हिला देते। कहते, ये चित्र बड़े भद्दे और अजीब है। उनमें अनुपात नहीं है। रेखाओं की सुघडता नहीं है। लोग उसे सलाह देते। किसी विद्यालय में जाओ और ठीक से सींखो। लेकिन किसी भी तरह की व्यवस्था या प्रशिक्षण विंसेंट के आजाद मिज़ाज के अनुकूल नहीं था।

चित्र बनाना विंसेंट की विवशता थी। कोई ऊर्जा उसके भीतर से ज्वालामुखी की तरह फूट पड़ती थी और वह उसे कैनवास पर अभिव्यक्त करता। कुदरत को देखने की उसकी अपनी आँख थी। वह अनेकता में एकता देखता था। अगर खेतों में काम करने वाले किसान के चित्र बना रहा है तो पता नहीं चलता कहां किसानों के शरीर खत्म हुए ओर कहां मिट्टी शुरू हुई। क्योंकि वह कहता दोनों एक ही मिट्टी से बने है। यदि थियो उसे पैसे और चित्रकला का सामान न भेजता रहता तो विंसेंट कभी का मर चुका होता। और संसार एक अद्‌भुत चित्रकार से वंचित रह जाता।

थियो पेरिस की आर्ट गैलरी ''गुपिल्स'' का संचालक था। वह विंसेंट को पेरिस ले आया। वहां पहली बार विंसेंट ने चित्रकला में हुए परिवर्तन को देखा, इंप्रेशानिज्म से परिचित हुआ। उस समय के अन्य प्रतिभाशाली चित्रकारों से मिला। पेरिस में कला अपने पूरे वैभव में थी। पेरिस कला नगरी बन गई थी। पॉल गोगां, लोत्रेक, मॅनेट, देगास जैसे कई चित्रकार वहां रहते थे। उनके मिलना-जुलना, उनके साथ विचारों का आदान-प्रदान करना, इस सब से विंसेंट की कला में नया मोड़ आ गया। इंप्रेशानिज्म के बीज उसके भीतर थे ही। वे जोर से अंकुरित हुए। लेकिन एक जगह बसना विंसेंट की किस्मत में नहीं लिखा था। उसकी आवारगी ने फिर सिर उठाया। पेरिस का माहौल, चित्रकारों के साथ बातचीत, उनका ओछापन, इससे विंसेंट बुरी तरह ऊब गया। फिर उसने अपना सामान समेटा और दक्षिण की और आर्ल्स गया।

आर्ल्स भूमध्य सागर के किनारे बसा गांव था। विंसेंट को अब सूरज की तलाश थी। प्रखर तपता हुआ सूरज और उसकी रोशनी में खिले हुए कुदरत के लाल, हरे, पीले नीले रंग....इन रंगों को कैनवास पर उतारने के लिए वह तड़प रहा था। थियो ने फिर एक बार उसका साथ निभाया, उसे सहारा दिया। आर्ल्स में विंसेंट का दिन क्रम वही था—सुबह अपना साजो सामान उठाकर खेतों में जाना और शाम ढलने तक चित्र बनाना। उसके कैनवासों के ढेर पर ढेर बनते जा रहे थे। उन्हें रखने के लिए अलग कमरे की जरूरत पड़ती। लेकिन अब तक उसका एक भी चित्र बिका नहीं था। जिसके चित्र बाद में लाखों डालर में बिकते थे और योरोप ही हर आर्ट गैलरी में खान से टंगे रहते थे उन्हें देखने के लिए भी लोग तैयार नहीं थे। और उनके जन्मदाता को दो वक्त का खाना भी नसीब नहीं हुआ।

आर्ल्स के लोग विंसेंट को फाऊ-राऊ कहते थे। "फाऊ-राऊ" पागल चित्रकार। विंसेंट कभी-कभी वेश्या घरों में जाता था। वहां एक लड़की थी रेशोल, वह विंसेंट से प्यार करती थी। वह मजाक में विंसेंट से कहती मुझे तुम्हारा कान काटकर दो। तुम्हारा कान मुझे बहुत अच्छा लगता है। एक दिन पागलपन के दौर में विंसेंट ने सचमुच अपना दायां कान काटकर उसे भेट कर दिया।

यह विंसेंट के पागलपन की शुरूआत थी। इसके बाद हर तीन महीने में फिट पड़ने लगे। उस दौर में वह कुछ भी कर बैठता। इसलिए उसे पागल खाने भरती किया गया। थियो को खबर मिली, वह आकर उसे पेरिस ले गया। दो दौरों के बीच विंसेंट बिलकुल ठीक रहता। अब विंसेंट के चित्रों पर लोगों की नजर पड़ने लगी। कुछ पत्रिकाओं में उसके चित्रों की प्रशंसा में लेख भी छापने शुरू किये। लेकि अब विंसेंट इन बातों से अछूता था। जुलाई के महीने में जब उसे दौरा पड़ने वाला था। विंसेंट के हाथों में एक पिस्तौल आ गई। खेतों में चित्र बनाने के लिए गया था, वहीं उसने अपने आपको गोली मार ली।

उसके ठीक छह महीने बाद थियो ने शरीर छोड़ दिया।

कभी-कभार ऐसा भी होता है कि कोई व्यक्ति इसलिए आत्महत्या कर लेता है कि वह जीने के लिए समझौता करते-करते थक चूका है। वैनगो ने इसीलिए आत्महत्या की—वह एक अनूठा आदमी था। महान चित्र कार। लेकिन जीवन में कदम-कदम पर उसे समझौता करना पडा। उन सब समझौतों से वह थक चूका था। अब वह भीड़ की मानसिकता का हिस्सा बने रहना वह और नहीं सक सकता था। अपनी निजता पाने के लिए उसने आत्महत्या कर ली। वह वर्षों से सूर्योदय का चित्र बनाना चाहता था। और जिस दिन उसने वह चित्र पूरा किया उसने सोचा कि अब और कोई समझौता करने की जरूरत नहीं है। जो उसे जीवन को देना था। वह उसने दे दिया। यदि वह पूर्व में हुआ होता तो उसके पास एक विकल्प था। सन्यास, क्योंकि वह पश्चिम में हुआ इसलिए इस विकल्प से चूक गया।

ओशो

किताब की एक झलक–

"क्या मैं पागल खाने में हूं? विंसेंट लड़खड़ाता हुआ कोने में रखी हुई एकमात्र कुर्सी पर बैठा और उसने आंखे मिलीं। बारह साल की उम्र से उसने गहरे और धुँधले चित्र देखे थे। उन चित्रों में ब्रश का कान नजर नहीं आता था। कैनवास का हर तफ़सील सही और पूरा होता था और सपाट रंग धीरे से एक दूसरे में धुल जाते थे।

ये चित्र जो दीवालों पर टंगे थे, उसकी हंसी उड़ा रहे थे। वे उनके साथ जरा भी मेल नहीं खाते थे जो उसने देखे थे या जिनकी कल्पना की थी। बारीक सपाट सतहों का कहीं पता ह नहीं था। और न ही उस भावुक सादगी का। विदा हो गई वह ब्राइन तरलता जिसमें योरोप ने सदियों तक अपने चित्रों को डूब गया था। यहां खड़े थे वे चित्र जो पागलों की तरह सूरज के साथ रंगरलियां कर रहे थे। उनमें रोशनी थी, जीवन था और धड़कते हुए प्राण थे। बैले नर्तकियों के चित्र मंच के पीछे बने हुए थे। उनमें आदिम लाल, हरे और नीले रंग धृष्टता के साथ एक दूसरे के साथ मिलाये गये थे। उसने हस्ताक्षर देखे—देगास।

नदी तट पर बनाए हुए कुछ नैसर्गिक दृश्य भी थे। जिनमे ग्रीष्म ऋतु का परिपक्व, रसीला रंग और माथे पर चमकता हुआ सूरज झलक रहा था। चित्रकार का नाम था: मॉनेट। अब तक विंसेंट ने हजारों कैनवास देखे होंगे लेकिन उनमें वह आभा, श्वास का स्पंदन और सुगंध न थी। जो इन आलोकिक चित्रों में थी। मॉनेट ने जो सबसे गहरा रंग इस्तेमाल किया था वह हॉलैंड के चित्रालयों में पाये जाने वाले सबसे फीके रंग से भी फिका था। ब्रश का काम सिर उठाकर मानों देख रहा हो। और आपने जरा उसे छुआ नहीं की वह सिहर जायेगे....सुकड़

जायेगा। कैसे बिना किसी शर्म हया के हर रेखा सुस्पष्ट, थी। बुश का प्रत्येक स्पर्श प्रकृति की लय में प्रवेश करता हुआ नजर आ रहा था। ऐसे रंग और सजीव चित्र विंसेंट देख कर दंग रह गया।

विंसेंट एक चित्र के सामने खड़ा हुआ था। एक आदमी ऊनी बनियान पहने अपनी बोट की पतवार हाथ में लिए खड़ा था। वह फ्रैंच आदमी का प्रतीक था जो रविवार की दोपहर का मजा ले रहा था। उसकी पत्नी चुपचाप नीचे बैठी हुई थी। विंसेंट ने चित्रकार का नाम देखा; मॉनेट। कमाल है। उसके बाह्य दृश्यों में जरा भी समानता नहीं। उसने गौर से देखा। नाम मॉनेट नहीं; मॅनेट था।

पता नहीं क्यों, मॅनेट के चित्र एमिल झोला के पुस्तकों की याद दिला रहे थे। उनमें सत्य की वही तीव्र खोज थी, वही निर्भीक पैनापन, वही अहसास कि चरित्र सुंदरता है; फिर वह कितना ही गंदा क्यों न प्रतीत हो। उसने उसकी तकनीक को ध्यान से देखा। उसे दिखाई दिया कि मॅनेट बुनियादी रंग, बिना किसी फर्क के, एक-दूसरे के करीब रखता है। कई तफसिलों की सिर्फ आहट थी। रंग, रेखाएं, प्रकाश और छायाएं, इन सबकी कोई सुनिश्चत सीमा नहीं थी। बल्कि वे एक दूसरे में पिघल रहे थे।

विंसेंट बोल उठा, ठीक वैसे ही जैसे आँख उन्हें प्रकृति में पिघलता हुआ दिखती है।

उसने कानों में मॉव की आवाज गूँजी; विंसेंट क्या किसी रेखा के बारे में निश्चित वक्तव्य देना तुम्हारे लिए सर्वथा असंभव है?

वह फिर से बैठ गया और उसने चित्रों को भीतर उतरने दिया। कुछ समय बाद वह युक्ति उसकी समझ में आयी जिसकी वजह से चित्रकला में आमूल क्रांति घटी थी। ये चित्रकार अपने चित्रों की वायु को पूरा भर देते थे। और वह जीवंत बहती हुई, भरपूर वायु उन बीजों को साथ कुछ करती थी जिन्हें उसमें देखा जा सकता था। विंसेंट जानता था कि सैद्धांतिक लोगों के लिए वायु होती ही नहीं। उनके लिए यह सिर्फ एक खाली अवकाश है जिसमें वे ठोस वस्तुएं रखते है।

लेकिन ये नये मनुष्य, इन लोगों ने वायु खोज ली थी। उन्होंने प्रकाश और सांस वातास और सूरज को खोज लिया था। और उन्होंने उस स्पंदित तरलता में बसने वाली अनगिनत तरंगायित ऊर्जाओं से छनती हुई चीजों को देख लिया था। विंसेंट जान गया था, अब चित्रकला पहले जैसी नहीं रहेगी। कैमरा और सिद्धांतों में उलझे लोग चीजों की सही प्रति छवि बनायेगे। और चित्रकार हर चीज को उनकी अपनी प्रकृति से और सूरज से आंदोलित वायु में से छनता हुआ देखेंगे। ऐसा लगता था जैसे इन लोगों ने एक नवीन कला को जन्म दिया है।

वह लड़खड़ाता हुआ सीढ़ियों से उतरा। थियो मुख्य कक्ष में था। वह मुड़ा। उसके होंठों पर मुस्कुराहट थी। और आंखे उत्सुकता से अपने भाई के चेहरे को खोज रही थी।

''क्या हुआ विंसेंट? उसने पूछा।

आह थियो। विंसेंट ने आह भरकर कहा। उसने कुछ कहने की कोशिश की लेकिन असफल रहा। उसने ऊपर की और देखा और चित्रालय की इमारत के बाहर दौड़ गया।

बेलों से ढ़के चौड़े रास्ते पर चलते हुए वह ऑपेरा तक पहुंचा। पत्थर की इमारतों के बीच से उसे पुल दिखाई दिया और वह नदी की और चल पडा। वह पानी की सतह तक पहुंचा और उसने सीन नदी में अपनी उंगलियां डुबोई। फिर वहां से उठकर वह निरूद्देश्य पेरिस की सड़कों पर घूमता रहा। बिना इसकी फिक्र किये कि वह कहां जा रहा है। बड़े-बड़े साफ सुथरे सायादार मार्गों पर भव्य दुकानें, फिर सड़ी सी गलियाँ, फिर प्रतिष्ठित रास्ते और उन अंतहीन शराब की दुकानें....।

आखिर जब दोपहर ढलने लगी तब उसे रू लावल, उसके रहने का स्थान मिला। उसके भीतर का हलका सा दर्द उसकी थकान ने दबा दिया था। वह सीधे वहां गया जहां उसके चित्र गठरियों बंधे थे। उसने उन सबको

फर्श पर बिछाया। वहाँ अपने कैनवासों को ध्यान से देखता रहा। हे भगवान। वे अँधियारे और रूखे-सूखे थे। बड़े बोझिल, निष्प्राण और मुद्रा। वह अनजाने में बीती हुई सदी के चित्र बना रहा था।

थियो घर आया। उसने अपने भाई को जमीन पर उदास बैठा हुआ पाया। वह नीचे उसके पास बैठ गया। प्रकाश की आखिरी किरण कमरे से विदा हो गई। कुछ देर थियो खामोश रहा।

विंसेंट, मैं जानता हूं, तुम पर क्या गुजर रही है। तुम अवाक हो गये हो, अभिभूत करने वाली बात है। है न? चित्रकला ने आज तक जो-जो पवित्र माना है उसे सबको यहां पर फेंक दिया गया है।

विंसेंट की छोटी-छोटी आंखे थियो की आँखो से चार हुई। थियो, तुमने मुझे क्यों नहीं बताया? मुझे क्यों नहीं पता चला? तुम मुझे उससे पहले यहां क्यों नहीं ले आये? मेरे छह लंबे वर्ष बरबाद हो गये।

बरबाद हुए? कतई नहीं, ''थियो ने जोर से कहा, ''तुमने तुम्हारी कलाकारी को निर्मित किया है। तुम विंसेंट वैनगो की तरह चित्र बनाते हो, संसार में और कोई तुम्हारी तरह चित्र नहीं बना सकता। अगर तुम अपना ढांचा बनाने से पहले यहां आ जाते तो पेरिस तुम्हें अपने ढाँचे में ढाल लेता।

''लेकिन मुझे क्या करना होगा? इस कचरे को देखता रहूँ? वैनगो ने एक बड़े कैनवास को ठोर मारते हुए कहा, ''यह मरा हुआ है, थियो, और दो कौड़ी का।

''तुमने मुझे पूछा कि तुम्हें क्या करना होगा। मैं बताता हूं, तुम्हें इंप्रेशनिस्ट (प्रभाव वादी) चित्रकारी से प्रकाश और रंग के विषय में सीखना होगा। तुम्हें उनमें केवल उतना भर लेना होगा। उससे अधिक नहीं। तुम्हें नकल नहीं करनी। उनके साथ वह मत जाओ। पेरिस कही तुम्हें दबोच न ले।

लेकिन थियो, मुझे सब कुछ अ. ब. स. से सीखना है। मैं जो भी करता हूं, गलत है।

तुम जो भी करते हो वह सब सही है। सिर्फ तुम्हारे प्रकाश और रंग को छोड़कर। जिस दिन तुमने बॉरिनेज से पेंसिल उठायी उस दिन से तुम इंप्रेशनिस्ट हो। तुम्हारे रेखांकन को देखो। तुम्हारे ब्रश के काम को देखो। मॅनेट से पहले किसी ने इस तरह का काम नहीं किया। तुमने जो चेहरे बनाये है, तुम्हारे वृक्ष, खेत में काम करती हुई आकृतियां.....ये सब तुम्हारे इंप्रैशन, तुम्हारे प्रभाव है। वे अनगढ़ है, अधूरे है, तुम्हारे व्यक्तित्व से झर कर आते है। तुम्हारी रेखाओं को देखकर लगता है कि तुम कभी भी निश्चित वक्तव्य नहीं देते। इंप्रेशनिस्ट होने का यही अर्थ है—दूसरों की तरह चित्र नहीं बनाना; नियम और क़ायदों के गुलाम नहीं बनना। तुम तुम्हारे युग के प्रतिनिधि हो विंसेंट। और तुम इंप्रेशनिस्ट हो; तुम्हें अच्छा लगे या बुरा।

''थियो मुझे पुलक हो रही है।''

''पेरिस के युवा चित्रकारों में तुम्हारा नाम हो चुका है। मेरा मतलब उनसे नहीं जिनके चित्र बिकते है। मेरा मतलब उनसे है जो महत्वपूर्ण प्रयोग कर रहे है। वे तुमसे परिचित होना चाहते है। तुम उनसे बढ़िया चीजें सीखोंगे?

वे मेरा काम जानते है? युवा इंप्रेशनिस्ट चित्रकारों ने मेरा काम देखा है?

विंसेंट घुटनों के बल बैठ गया ताकि वह थियो को अच्छी तरह से देख सके। थियो को झुंडर्ट के पुराने दिन याद आये जब वे नर्सरी के फर्श पर एक साथ खेलते थे।

''निश्चित ही इतने साल मैं पेरिस में क्या करता रहा? वे सोचते है कि तुम्हारे पास पैनी नजर है, और है ड्राफ्ट्समैन की पकड़। अब तुम्हें कुछ इतना ही करना है कि तुम्हारे रंगों को हलका करके जीवंत, आलोकित हवा को चित्रित करना सीखना है। विंसेंट, क्या उस दौर में जीना एक वरदान नहीं है जब इतनी महत्वपूर्ण घटनाएं घट रही हो।''

''थियो शैतान कहीं है, शानदार शैतान।''

''चलो, उठकर खड़े हो जाओ। दीया जलाओ, आओ।''

'' सुंदर कपडे पहनो और खाना खाने बाहर चलें। मैं तुम्हें ब्रेसरी यूनिवर्सल ले चलता हूं। वहां पेरिस के सबसे स्वादिष्ट चेतोब्रां मिलते है। मैं तुम्हें असली भौज का जायका देता हूं। शैंपेन की बोतल के साथ। आज के महान दिवस का जश्न मनाऐंगे, प्यारे, जब पेरिस और विंसेंट वैनगो को मिलन हुआ था।''

ओशो का नज़रिया–

आज की पहली किताब है: अरविंग स्टोन की ''लस्ट फॉर लाइफ''। प्रसिद्ध डच चित्रकार विंसेंट वैनगो के जीवन पर आधारित उपन्यास है। स्टोन ने इतना अद्‌भुत काम किया है कि मैं नहीं सोचता कि किसी और ने इस तरह का काम किया है। किसी ने किसी दूसरे व्यक्ति के बारे में इतनी घनिष्ठता से नहीं लिखा। जैसे वह अपने अंतरतम के बारे में लिख रहा हो।

''लस्ट ऑफ लाईफ'' सिर्फ उपन्यास नहीं है। एक आध्यात्मिक किताब है। जिसे में आध्यात्मिक कहता हूं, उन अर्थों में आध्यात्मिक। मेरी दृष्टि में, जीवन के सभी आयाम एक संश्लेषण में समाहित करने चाहिए। तभी व्यक्ति आध्यात्मिक बनता है। इस किताब को अरविंग स्टोन ने इतनी खूबसूरती से लिखा है कि वह खुद अपना अतिक्रमण करे इसकी संभावना कम है।

इस किताब के बाद उसने बहुत सी किताबें लिखी। आज की मेरी दूसरी किताब भी अरविंग स्टोन की ही है। मैं उसे दूसरी कहता हूं क्योंकि वह गौण है। वह ''लस्ट फॉर लाईफ'' की कोट की नहीं है। यह किताब ''अॅगनी एंड दि एक्स्टसी'' यह भी उसी प्रकार की है। एक और कलाकार की जीवनी। शायद स्टोन सोच रहा होगा कि वह ''लस्ट ऑफ लाईफ'' की छवि बनाये, लेकिन वह असफल रहा। यद्यपि वह असफल हुआ। किताब दूसरे नंबर पर है; किसी दूसरे की तुलना में नहीं, उसकी अपनी ही तुलना में। कलाकार, कवि, चित्रकार, इनके जीवन पर लिखे हुए सैकड़ों उपन्यास है लेकिन उनमें से कोई इस दूसरी किताब की भी ऊँचाई छू नहीं सकता। फिर पहली की तो बात ही क्या करनी। दोनों ही सुंदर है लेकिन पहली की सुंदरता श्रेष्ठतम है।

दूसरी किताब थोड़ी कनिष्ठ है लेकिन इसमे अरविंग स्टोन की गलती नहीं है। जब तुम ''लस्ट ऑफ लाइफ' ' जैसी किताब लिखते हो, तो साधारण मानवीय प्रवृति यही होती है कि उसकी नकल करें; उसी प्रकार की कोई और रचना करे। लेकिन जब तुम नकल करते हो, तब वह उस जैसी नहीं रहती। जब उसने लस्ट.....लिखी तब वह नकल नहीं कर रहा था। वह क्राँरा द्वीप था। जब उसने ''अॅगनी एंड दि एक्स्टसी'' लिखी तब वह नकल कर रहा था। और यह बिलकुल घटिया नकल है। अपने बाथरुम में हर कोई करता है। जब वह आईने में देखता है। दूसरी किताब के बारे में ऐसा ही लगता है। लेकिन मैं कहता हूं, यद्यपि यह आईने का प्रतिबिंब है, यह यथार्थ को झलकाता है। इसलिए मैं उसे सम्मिलित करता हूं।

यह किताब माइकेल एंजेलो के जीवन के बारे में है। महान जीवन। स्टोन बहुत कुछ चूक गया है। यदि ''गोगां'' (फ्रेंच चित्रकार) के बारे में होता तो ठीक था, लेकिन यदि माइकेल एंजेलो के बारे में है तो मैं उसे माफ नहीं कर सकता। लेकिन वह बहुत खूबसूरती से लिखता है। उसका गद्य पद्य जैसा है।

हालांकि दूसरी किताब ''लस्ट फॉर लाइफ'' जैसी नहीं है। हो नहीं सकती। सिर्फ इसलिए क्योंकि विंसेंट वैनगो जैसा दूसरा आदमी नहीं हुआ। वह डच आदमी अतुलनीय था। वह अद्वितीय है। सितारों से भरे हुए पूर आकाश में वह अकेला चमकता है—बिलकुल अलग, अनूठा अपने आप में असाधारण। उस पर उत्कृष्ट किताब लिखना सरल था। माइकेल एंजेलो के बारे में भी यही हो सकता था लेकिन उसने खुद की नकल करने की कोशिश की, इस लिए चुक गया।

कभी नकल मत करना। किसी के पीछे मत चलना—स्वयं के भी।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

51/ ट्रैक्टेटस लॉजिको-फिलोसफिकस

ट्रैक्टेटस लॉजिको—फिलोसफिकस

विटगेंस्टीन ऑस्टिया के वियना शहर में एक रईस खानदान में पैदा हुआ। उसके पिता उद्योगपति थे उनके पास धन का अंबार था। अंत: विटगेंस्टीन को उसके सात भाई-बहनों के साथ उच्च कोटि की शिक्षा मिली। उसकी मां और पिता दोनों ही संगीतज्ञ थे और अत्यंत सुसंस्कृत थे।

इंजीनियरिंग तथा गणित को सीखने के लिए विटगेंस्टीन 1908 में इंग्लैड गया। वह बहुत ही मेधावी छात्र था और हर सिद्धांत का खुद प्रयोग करने में विश्वास रखता था। 1903 में बर्ट्रेंड रसेल की विख्यात किताब ''प्रिंसिपल ऑफ मैथेमेटिक्स'' प्रकाशित हुई थी। तो विटगेंस्टीन सहज ही रसेल की और खिंचा चला आया। 1911 में वह केंब्रिज जाकर रहने लगा जो कि रसेल का ठिकाना था। विटगेंस्टीन रसेल का विद्यार्थी बन गया। सामान्यतया बर्ट्रेंड रसेल किसी विद्यार्थी से प्रभावित नहीं होता था—उसकी अपनी प्रतिभा इतनी बुलंद थी कि उसने सामने सभी बौने लगते थे।

लेकिन विटगेंस्टीन के संबंध में उसने लिखा है, ''विटगेंस्टीन को पढ़ाना मेरे जीवन के सर्वाधिक रोमांचकारी बौद्धिक अभियानों में एक रहा है। इसकी आग, कुशाग्र बुद्धि और बुद्धि की निर्मलता असाधारण थी। मैं जो कुछ सिखा सकता था वह उसके शीध्र ही आत्मसात कर लिया।''

1912 तक रसेल को यह सुनिश्चित हो गया कि विटगेंस्टीन एक जीनियस है और उसकी प्रतिभा को गणित के दर्शन की दिशा में मोड़ना जरूरी है। विटगेंस्टीन गणित और तर्क के सवालों का अध्ययन करने में डूब गया लेकिन उसके लिए उसे केंब्रिज छोड़कर नार्वे जाकर एकांत में रहना पडा क्योंकि केंब्रिज के बुद्धिजीवी सिर्फ चर्चा करने में उत्सुक थे। उनकी बातचीत में कोई गहराई नहीं थी।

1914 में पहला विश्वयुद्ध शुरू हुआ और विटगेंस्टीन स्वदेश ऑस्ट्रिया जाकर सेना में भर्ती हुआ। सेना में वह एक बहादुर सैनिक साबित हुआ और वीरता के लिए मैडल भी मिला। मजे की बात, युद्ध की इस धमा चौकड़ी के बीच भी उसने किताब लिखी। जिसकी एक झलक हम यहां देख रहे है। इटली में वह बंदी बनाया गया और उसके थैले में ''ट्रैक्टेटस फिलोसफस'' की पांडुलिपि मिली। इटालियन सरकार ने मेहरबानी की और इस पांडुलिपि को बर्ट्रेंड रसेल के पास भिजवानें की अनुमति दी।

1919 में विटगेंस्टीन आजाद किया गया। इसी समय उसे बहुत बड़ी पारिवारिक विरासत मिली। लेकिन विटगेंस्टीन ने उसे दान कर दिया क्योंकि उसका मानना था कि दार्शनिक को अमीर नहीं होना चाहिए। विटगेंस्टीन ऐसे कई इरछे-तिरछे विचार पालता जो आम आदमी से हटकर होते। ''ट्रैक्टेक्स'' उसकी एक मात्र रचना है जो उसके रहते प्रकाशित हुई। इसका एक यह था कि वह अपने लेखन से कभी संतुष्ट नहीं होता था। उसमें निरंतर सुधार करता रहता।

वह जब कक्षा में पढ़ता था तो कभी नोटस लेकिर नहीं जाता। उसने किसी दोस्त से कहा था कि जब भी वह अपना व्याखान लिखकर ले जाता तो कागज पर लिख हुए शब्द उसे मुद्रा शरीर की भांति लगते। इसलिए कक्षा में जब वह पढ़ाता था तो वे विचार सहजस्फूर्त होते थे। उनमें विलक्षण ऊर्जा होती थी। विद्यार्थी उसे सुनते मंत्रमुग्ध हो जाते थे।

फिर भी विटगेंस्टीन की अपनी मान्यता थी कि उसके विद्यार्थियों के मानसिक विकास के लिए उसका प्रभाव हानिकारक था। और इसमें सचाई थी। उसके विचार सुदूर आकाश के पंछियों की तरह कहीं से उड़कर आते थे। और विद्यार्थियों के सिर के ऊपर से गुजर जाते थे। उन्हें समझना कठिन था ही, लेकिन उन्हें पचाना

और भी कठिन था। लेकिन इसके बावजूद, विटगेंस्टीन के व्यक्तित्व का सम्मोहन उसकी आवाज की सांगतिक लयकारी उसके श्रोताओं को बांधकर रखती थी।

सभी प्रतिभाशालियों की जो नियति होती है वह विटगेंस्टीन की भी थी; निहायत अकेलापन। उसे एक बेचैन ख्याल हमेशा कुरेदता रहता था कि वह इस संसार के लिए लायक नहीं है। हकीकत यह थी कि वह इस संसार के लायक नहीं था। वह अपना मत या प्रणाली बनाना नहीं चाहता था। क्योंकि वह अपने आपको छोटा बनाना नहीं चाहता था। 1947 में उसने केंब्रिज से अवकाश ले लिया। और आयरलैंड में एक छोटे से मकान में अकेला रहने लगा। 1949 में पता चला कि उसका एक साथी है, और वह है कैंसर। लेकिन वह साथी उसे पूरी तरह से स्वीकृत था क्योंकि विटगेंस्टीन और जीना नहीं चाहता था। 1951 में उसकी मृत्यु हुई। लेकिन अंत तक उसका चिंतन और बौद्धिक अनुसंधान जारी था। उसकी प्रतिभा की रोशनी जरा भी कम नहीं हुई थी।

यह किताब सबसे पहले 1921 में लंदन में प्रकाशित हुई। यह विटगेंस्टीन की एकमात्र दार्शनिक रचना है जो उसकी हयात में प्रकाशित हुई। यह किताब जि अंदाज में लिखी गई है—छोटे-छोटे परिच्छेद जिनके क्रमांक दिये गये है। और सूत्र मय, सारगार्भित शैली में लिखे हुए विचार—उस वजह से छपते ही यह बुद्धिजीवियों के बीच में चर्चा का विषय बन गई। इस किताब का अनूठापन इसकी विषय वस्तु में है; और वह है, भाषा का दर्शन शास्त्र।

भाषा का उपयोग हम सभी करते है लेकिन वह उपयोग हम यंत्रवत करते है। आदतवश करते है। जब हम शब्दों का प्रयोग करते है तो उस समय हमारे मन की क्या स्थिति होती है। हमारे मस्तिष्क पर क्या प्रभाव पड़ता है इस बारे में हम कभी नहीं सोचते। लेकिन विटगेंस्टीन की प्रतिभा इसकी गहराई में प्रवेश कर गई और उसने भाषा के कई अनजाने पहलू उजागर किये। सिर्फ भाषा के विभिन्न पहलूओं पर कोई दार्शनिक किताब लिख सकता है। यह बात ही असाधारण है। इसलिए पहले तो पाठक चौंक जाता है। उसकी रीढ़ सीधी हो जाती है।

दूसरी बात, किताब की भूमिका रसेल ने लिखी है। यह भूमिका कुछ लंबी है और इसकी शैली विटगेंस्टीन की शैली से ठीक उलटी है। विटगेंस्टीन जितना संक्षेप में लिखता है उतना ही रसेल लंबे-लंबे वाक्यों में अपने विचार व्यक्त करता है। लेकिन रसेल के वक्तव्य भी काफी रोचक है। यह लिखता है:

''दूसरी समस्या : विचार, शब्द और वाक्य, इनका आपसी संबंध क्या है? और ये तीनों जिस अर्थ को प्रगट करते है उसका इन तीनों से क्या रिश्ता है? यह समस्या बौद्धिक है।

''तीसरी बात, वाक्यों का प्रयोग सत्य कहने के लिए किया जाता है। झूठ के लिए नहीं। यह समस्या विशिष्ट विज्ञान की है।

चौथी एक वाक्य का दूसरे वाक्य के साथ क्या संबंध हो जिससे कि वह दूसरे के लिए एक प्रतीक बने? यह सवाल तर्क का है। और विटगेंस्टीन का पूरा प्रयास यह है कि तर्क की दृष्टि से परिपूर्ण भाषा कैसे बने।

भाषा का बुनियादी फर्ज है तथ्यों को स्वीकार तथा अस्वीकार करना। हम बोलते या लिखते क्यों है? क्योंकि हमें कुछ कहना होता है। इसका मतलब हुआ, हम जिन शब्दों का प्रयोग करते है वह अर्थ से लबालब होते है। क्या ऐसी भाषा की कल्पना की जा सकती है जिसमे कोई अर्थ न हो, आशय न हो, वह जिबरिश होगी, भाषा नहीं।

यदि शब्दों की गहराई में उतरें तो शब्द क्या है? मात्र आकृतियां प्रतीक। इन प्रतीकों के बारे में विटगेंस्टीन ने बहुत गहराई से सोचा है। उसकी दृष्टि में शब्द जो है वे तथ्यों के चित्र है। उदाहरण के लिए आम

का फल है, उसका कोई नाम नहीं है। लेकिन हम जब उसे एक नाम देते है, ''आम'' तो हमने अक्षरों के ज़रिये एक चित्र बनाया जिसे यह भाष न आती हो उसके लिए ''आम'' शब्द सिर्फ एक चित्र है। तथ्य का चित्र।

भाषा के एक-एक अंग को लेकिर उसका बारीक से बारीक विश्लेषण करना विटगेंस्टीन या रसेल जैसे असाधारण प्रतिभाशाली विचारकों के लिए एक बौद्धिक खेल होगा लेकिन सामान्य आदमी भाषा की इतनी बारीकियों पर सोचने लगे तो उसका सर चकराने लगेगा। और वह सोचेगा कि इस तरह सोच-विचार बोलने से अच्छा है चुप रह जाओ।

खुद विटगेंस्टीन भी इससे नावाकिफ नहीं है। उसने अपनी किताब की भूमिका में लिखा है–

''शायद यह किताब वही व्यक्ति समझ सकेगा जिसके ऐसे विचार है जो इस किताब में लिखे है। तो टेक्स्ट बुक नहीं है। यदि कोई एक व्यक्ति भी इसे पढ़ेगा और समझ लेगा तो किताब का उद्देश्य सफल हुआ।

''इस किताब में दर्शन शास्त्र की समस्याओं की चर्चा है। किताब यह दिखाती है कि ये समस्याएं इसलिए खड़ी होती है क्योंकि हमारी भाषा का तर्क शास्त्र नहीं समझा जाता है। पूरी किताब का सारांश इन शब्दों में समा सकता है; जो कहा जा सकता है उसे साफ कहा जा सकता है। और जिसके बारे में हम चर्चा नहीं कर सकते उसके करीब से हम मौन में गुजर जायें।

तो किताब का लक्ष्य है, विचारों की सीमा बनाना; या फिर विचारों की नहीं, विचारों की अभिव्यक्ति की। क्योंकि विचारों की सीमा बनाने के लिए हमें दोनों छोर पर सोचने को खोज लेना चाहिए।

तो केवल भाषा में ही सीमा बनायी जा सकती है। और सीमा के दूसरे छोर पर सिर्फ अर्थहीनता शेष रहेगी।

9मैं इसकी निर्णय नहीं कर पाऊंगा। कि मेरे प्रयास अनय दार्शनिकों से कितना मेल खायेंगे। और मेरा यह दावा नहीं है कि मैंने जो लिखा है वह बिलकुल नया है। और मैंने किन्हीं किताबों के नाम इसलिए नहीं दिए क्योंकि मुझे इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि मेरे विचार किसी और के दिमाग में आये थे।

''मैं इतना जरूर कहूंगा कि मैं फ्रेज के महान ग्रंथों का आभारी रहूंगा और मेरे मित्र बर्ट्रेंड रसेल की रचनाओं से मैने बहुत प्रेरणा पायी है। अगर इस रचना का कोई कीमत है तो वह दो बातों में: एक, इसमें विचार प्रगट किये है—और जितने विचार प्रगट किये गये है उतने तीन निशाने पर लगे है। यहां मैं कमजोर सिद्ध हुआ हूं। क्योंकि मैं इस काम को सफलता पूर्वक करने में सक्षम नहीं हूं। दूसरे लोग आयें और इसे हासिल करें।

दूसरी तरफ इन विचारों में निहित सत्य सुनिश्चित अनयुजेबल है। इसलिए मुझे हर तरफ से इस समस्या का समाधान मिल गया है। और अगर मैं गलत न होऊं तो इस किताब से यह साबित होता है कि समस्या का समाधान होने के बाद भी कितना कम हासिल होता है।

किताब की एक झलक:

जो भी है वह यह जगत है।

जगत तथ्यों की समग्रता है, वस्तुओं की नहीं।

जगत तथ्यों के द्वारा निर्धारित होता है, और इससे कि वे सभी तथ्य है।

संसार में चीजें जैसी है, उन्हें किसी श्रेष्ठतर से कोई मतलब नहीं है। ईश्वर संसार में स्वयं को प्रगट नहीं करता।

सभी तथ्य समस्या को बनाने में योगदान देते है। उसे हल करने में नहीं।

संसार में चीजें जैसी है वैसी वे रहस्यपूर्ण नहीं है वरन वे ''है'' यही रहस्य है।

जब उत्तर को शब्दों में नहीं कहा जा सकता तब प्रश्न को भी शब्दों में नहीं कहा जा सकता।

पहली है ही नहीं।

अगर प्रश्न को बनाना संभव हो तो उसका उत्तर देना भी संभव होगा।

संदेशवाद को नकारा नहीं जा सकता, लेकिन वह ज़ाहिर रूप से मूढ़ता पूर्ण होता है। जब वह वहां संदेह करता है जहां प्रश्न भी पूछा नहीं जा सकता।

क्योंकि संदेह तभी हो सकता है जब प्रश्न होता है। प्रश्न तब होता है जब उत्तर होता है। और उत्तर तब होता है जब कुछ कहा जा सकता है।

हमे लगता है कि अगर सभी वैज्ञानिक प्रश्नों के उत्तर दिये जाएं तब भी जीवन की समस्याएं पूरी तरह से अछूती रह जाती है। उस समय कोई प्रश्न नहीं बचते, और यही अपने आपमें उत्तर है।

जीवन की समस्या का समाधान उसके विलीन होने में देखा जाता है।

मेरे सिद्धांत इस प्रकार मार्गदर्शक बनते है: जो मुझे समझता है वह अंतत: उनकी व्यर्थता को समझ लेता है। जब वह सीढ़ीयों की मानिंद उनका उपयोग करता है—उन पर चढ़कर उनके पार जाने के लिए। जब वह ऊपर चढ़ जाता है तब सीढ़ी को फेंक दे।

उसे इन सिद्धांतों के पार जाना होगा, तभी वह संसार को सम्यक् देख पायेगा।

हम जिसके संबंध में बात नहीं कर सकते वहां से चुपचाप गुजर जाना चाहिए।

ओशो का नजरिया:

तीसरी किताब फिर एक जर्मन की है—लुडविग विटगेंस्टीन। जरा इसका शीर्षक सुनो: ट्रैक्टेटस लॉजिको फिलोसफिकस। हम इसे सिर्फ ट्रैक्टेटस कहेंगे। इस वक्त जो भी किताबें है उनमें यह सबसे मुश्किल किताबों में से एक है। जी. ई. मूर जैसा आदमी, जो कि बहुत बड़ा अंग्रेज दार्शनिक है, और बर्ट्रेंड रसेल—एक और महान दार्शनिक, न केवल इंग्लैंड की बल्कि पूरी दूनिया का—दोनों सहमत थे कि विटगेंस्टीन उनसे कई गुना श्रेष्ठ था।

लुडविग विटगेंस्टीन वाकई प्यारा आदमी था। मैं उससे नफरत नहीं करता और नापसंद भी नहीं करता। मैं उसे पसंद करता हूं। उससे प्रेम भी करता हूं, लेकिन उसकी किताब से नहीं। उसकी किताबें सिर्फ एक कवायद है। सिर्फ कभी-कभार, पन्नों पर पन्ने गुजरने के बाद कोई वाक्य मिलता है जो रोशन होता है। जैसे, ''जिसे कहा नहीं जा सकता उसे नहीं कहना चाहिए। उसके संबंध में मौन रहना चाहिए।'' अब यह एक खूबसूरत वक्तव्य है। संत, रहस्यदर्शी, कवि इन सबको इससे बहुत सीखना चाहिए। जिसे कहा नहीं जा सकता उसे नहीं कहना चाहिए।

विटगेंस्टीन गणित की शैली में लिखता था—छोटे-छोटे वाक्य। परिच्छेद भी नहीं, सिर्फ सूत्र, लेकिन आज के विकसित विक्षिप्त आदमी के लिए इस किताब से बहुत मदद मिल सकती है। वह ठीक आत्मा पर चोट कर सकती है। मस्तिष्क पर नहीं।

कील की तरह वह उसके अंतरतम में प्रवेश कर सकती है। वह उसे दु:स्वप्न से जगा सकती है।

लुडविग विटगेंस्टीन प्यारा आदमी था। उसे ऑक्सफर्ड जैसे पद के लिए निमंत्रित किया गया था जिसे सभी चाहते है। लेकिन उसने इंकार कर दिया। मुझे उसकी यही बात पसंद है। वह किसान और मछुआरा बनने गया। यही उसकी प्यारी बात है। ज्यां पाल सार्त्र से यह अधिक अस्तित्वगत है। हालांकि विटगेंस्टीन ने अस्तित्वाद के बारे में कभी बात नहीं की। आस्तित्ववाद के बारे में कुछ चर्चा नहीं की जा सकती, उसे जीना होता है और कोई उपाय नहीं है।

यह किताब उस समय लिखी गई जब विटगेंस्टीन जी ई मूर तथा, बर्ट्रड के मार्ग दर्शन में पढ़ रहा था। इंग्लैंड के दो महान दार्शनिक और साथ में एक जर्मन—"ट्रैक्टेटस लॉजिको फिलोसफिकस" लिखने के लिए वह काफी है। इसका अनुवादित रूप होगा: विटगेंस्टीन, मूर, रसेल। मैं विटगेंस्टीन को गुर्जिएफ के मार्ग दर्शन में पढ़ाना अधिक पसंद करता। बजाएं मूर और रसेल के। उसके लिए वह सही जगह थी मगर वह चूक गया। शायद अगली बार, मेरा मतलब है अगले जन्म में.....उसके लिए कह रहा हूं, मेरे लिए नहीं। मेरे लिए यह काफी है। यह आखरी है। लेकिन उसके लिए, कम से कम एक बार उसे च्वांगत्सु, गुर्जिएफ या बोधिधर्म जैसे की संगत में रहना जरूरी है। लेकिन मूर, रसेल और व्हाइटहेज नहीं। वह इन लोगों के साथ था। गलत लोगों के साथ। गलत लोगों के साथ सही आदमी। यही उसे ले डूबा।

मेरा अनुभव यह है कि सही संगत से गलत आदमी भी सही हो जाता है। और इससे उल्टा भी सच है—गलत संगत में सही आदमी भी गलत हो जाता है। लेकिन यह सिर्फ अज्ञानी पर लागू होता है। ज्ञानी आदमी प्रभावित नहीं होता। इसीलिए मैंने जो कहा वह सिर्फ साधारण मानवता पर लागू होता है, जो जाग गये है उन पर नहीं।

विटगेंस्टीन जाग सकता था, वह इसी जीवन में जाग सकता था। लेकिन वह गलत संगत में पड़ गया। लेकिन उसकी किताब उन लोगों के काम आ सकती है जो तीसरे दर्जे के पागल है। यदि यह उनकी समझ में आ जाए तो वक पुन: स्वस्थ हो जायेंगे।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

52/ मुल्ला नसरूद्दीन कौन था

मुल्ला नसरूद्दीन कौन था

कई देश मुल्ला नसरूद्दीन को पैदा करने का दावा करते है। टिर्की में तो उसकी कब्र तक बनी हुई है। और हर साल वहां नसरूद्दीन उत्सव मनाया जाता है। उस उत्सव में मुल्ला जैसी पोशाक पहनकर लोग उसके क़िस्सों को अभिनीत करते है। एस्किशहर उसका जन्म गांव बताया जाता है।

ग्रीन लोग नसरूद्दीन के क़िस्सों को अपनी लोककथा का हिस्सा बनाते है। मध्ययुग में नसरूदीन के क़िस्सों का उपयोग तानाशाह अधिकारियों का मजाक उड़ाने के लिए किया जाता था। उसके बाद मुल्ला नसरूदीन सोवियत यूनियन का लोक नायक बना। एक फिल्म में उसे देश के दुष्ट पूंजीवादी शासकों के ऊपर बाजी मारते हुए दिखाया गया था।

मुल्ला मध्यपूर्व और उसके आसपास बसने वाली मनुष्य जाति के सामूहिक अवचेतन का हिस्सा बन गया। कभी वह बहुत बुद्धू बनकर सामने आता है तो कभी बहुत बुद्धिमान। उसके पास कई रहस्यों के भंडार है। सूफी दरवेश उसका उपयोग मनुष्य के मन के अजीबो गरीब पहलुओं को उजागर करने के लिए किया करते थे।

विद्वानों की कलम की बहुत सी स्याही नसरूद्दीन को कागज पर उतारने पर खर्च हुई है। जबकि नसरूदीन के पास उनके लिए कोई वक्त नहीं है। सूफी, जो कि विश्वास रखते है कि गहरी अंत: प्रज्ञा ज्ञान की पथप्रदर्शक है, इन कहानियों को ध्यान विधियों की तरह इस्तेमाल करते है। वे साधकों से कहते है कि इनमें कुछ मनपसंद कहानियों को चुनकर उन पर मनन करो और उन्हें जज़्ब करो। इस तरह उच्चतर प्रज्ञा में तुम्हारा प्रवेश होगा।

मुल्ला नसरूदीन को ऐतिहासिक व्यक्ति मानने की गलती न करें तो ही इसके मिथक को समझा जा सकता है। मुल्ला की लोकप्रियता का राज रही है। कि वह हर इंसान के भीतर बसता है। वह मानवीय मन का ही एक साकार रूप है। मुल्ला के लतीफ़ों को समझने के लिए कोई बड़ी दार्शनिक विद्वता नहीं चाहिए। एक ही बात आवश्यक है—अपने आप पर हंसने की क्षमता।

मुल्ला: दरवेशों का मुखिया और परिपूर्ण सदगुरू था। कई लोग कहते है, मैंने सीखना चाहा लेकिन यहां मुझे सिर्फ पागलपन मिला। फिर भी गहरी समझ को कहीं और खोजेंगे तो पायेंगे।

नसरूद्दीन और ज्ञानी–

दरबार में नसरूद्दीन के खिलाफ मुकदमा चल रहा था। दार्शनिक, तर्कशास्त्री और कानून के विद्वानों को नसरूदीन की जांच करने के लिए बुलाया गया था। मामला संगीन था। क्योंकि नसरूदीन ने कबूल किया था कि वह गांव-गांव घूमकर कहता था कि तथा कथित ज्ञानी लोग अज्ञानी, अनिश्चय में जीन वाले और संभ्रमित होते है।

उस पर इल्जाम लगाया गया कि वह राज्य की सुरक्षा का सम्मान नहीं कर रहा है।

सम्राट ने कहा, ''तुम पहले बोलों।''

मुल्ला ने कहा, ''पहले कागज और कलम ले आओ।''

कागज और कलम मंगवाये गये।

''इनमें से सात लोगों को ये दे दो और उनसे कहो कि वे सब एक सवाल का जवाब लिखें, ''रोटी क्या है?''

उन सबने अपने-अपने कागज पर लिखा। वे कागज सम्राट को दिये गये और उसने उन्हें पढ़कर सुनाया:

पहले ने लिखा—रोटी एक भोजन है।

दूसरे ने लिखा—वह आटा और पानी है।

तीसरे ने लिखा—खुदा की भेट है।

चौथे ने लिखा—सींका हुआ आटा है।

पांचवें ने लिखा—आप किस चीज को रोटी कहते है इस पर निर्भर है।

छठे ने लिखा—एक पोषक तत्व।

सांतवे ने लिखा—कोई नहीं जानता कि रोटी क्या है।

नसरूद्दीन ने कहा: ''जब वे सब मिलकर यह तय नहीं कर पाये कि रोटी क्या है तब बाकी चीजों के बारे में निर्णय ले सकेंगे। जैसे मैं सही हूं या गलत। क्या आप किसी की जांच परख या मूल्यांकन करने का काम ऐसे लोगों को सौंप सकते है। क्या अजीब नहीं है कि उस चीज के बारे में एक मत नहीं हो सकता जिसे वे रोज खाते है। और फिर भी मुझे काफिर सिद्ध करने में सभी राज़ी हो गए। उनकी राय का क्या मूल्य है?

तस्करी–

नसरूदीन गधे पर बैठ कर पर्शिया से ग्रीस बार-बार जाता था। और हर बार वह घास की गठरियां ले जाता था। सरहद के संतरी घास को उघाड़ कर बारीकी से छानबीन करते लेकिन उसमे कुछ भी नहीं मिलता। लौटते समय वह खाली हाथ लौटता।

संतरी पूछते, ''तुम क्या ले जा रहे हो नसरूदीन।''

''मैं एक तस्कर हूं।''

नसरूदीन की अमीरी बढ़ती गई और वह ईजिप्त जाकर बस गया। वर्षों बाद कस्टम का एक अधिकारी उसे मिला और उसने पूछा :''मुल्ला अब जबकि तुम ग्रीस और पर्शिया के इलाके से बहार हो, इतनी शान औ शौकत से रह रहे हो। तुम क्या चुराकर ले जाते थे जिसे हम कभी पकड़ नहीं पाये।

गधे, नसरूदीन ने कहा।

मैं उसे अच्छी तरह जानता हूं–

एक दिन लोग दौड़ते हुए मुल्ला नसरूदीन के पास आये। उन्होंने हांफते हुए कहा, ''मुल्ला तुम्हारी सास नदी में गिर गई। और वहां बहाव तेज है, वह समुंदर में बह जायेगी।

पलक झपकते ही नसरूदीन नदी में कूद पडा और बहाव से उल्टे तैरने लका।

लोग चिल्लाए, ''नहीं-नहीं, मुल्ला नीचे की और। व्यक्ति यहां से नीचे की और ही बह सकता है।

मुल्ला ने कहा: ''सुनो मैं अपनी सास को अच्छी तरह से जानता हूं, अगर हम कोई नीचे की और बहता हो तो मेरी सास को ऊपर की और खोजना पड़ेगा।''

राज दरबार में–

एक बार जगमगाती हुई पगड़ी पहन कर नसरूदीन दरबार में दाखिल हुआ। वह जानता था कि राजा उसे पसंद करेगा। और वह पगड़ी को उसे बेचने में सफल हो सकता है।

''मुल्ला, तुमने इस शानदार पगड़ी की क्या कीमत चुकाई।

''हजार स्वर्ण मुद्राएं सरकार।''

वजीर मुल्ला की चाल को समझते हुए राजा के कान में फुसफुसाया: कोई बुद्धू ही इस पगड़ी की इतनी कीमत दे सकता है।

तुमने इतनी ज्यादा कीमत क्योंकर चुकाई। हजार स्वर्ण मुद्राओं की पगड़ी कभी सूनी नहीं।

बादशाह सलामत मैंने इसलिए दीं क्योंकि मैं जानता था पूरी दुनियां में एक ही बादशाह है, जो इसकी कीमत दे सकता है।

राजा ने उसकी प्रशंसा से प्रसन्न होकर नसरूदीन को दो हजार स्वर्ण मुद्राएं दे दी।

बाद में मुल्ला ने वज़ीर को बताया: ''तुम्हें पगडियों की कीमत पता होगी लेकिन मुझे राजाओं की कमजोरी पता है।''

खाने की चीज और पढ़ने की चीज–

नसरूदीन बाजार से एक कलेजा खरीदा और वह उसे ले जा रहा था। दूसरे हाथ में उसे पकाने की विधि लिखा हुआ कागज था जिसे एक मित्र के पास से लाया था।

अचानक चील ने झपट्टा मारा और उसके हाथ से कलेजा लेकर उड़ गई।

नसरूदीन ने चिल्लाकर कहा, ''अरे मूरख, मांस ले गई तो ले जा, लेकिन उसे बनाने की विधि तो मेरे पास ही है।''

किसी और की चिट्ठी–

नसरूदीन की लिखावट अच्छी नहीं थी। उसकी पढ़ने की क्षमता और भी खराब थी। लेकिन गांव के बाकी लोगों की अपेक्षा वह ज्यादा पढ़ा लिखा था। एक दिन एक आदमी का उसके भाई को संबोधित पत्र लिखने के लिए नसरूदीन तैयार हो गया।

उस आदमी ने कहा, ''तुमने जो लिखा है उसे पढ़कर सुनाओ, मैं यह पक्का करना चाहता हूं कि कुछ रह तो नहीं गया।

मुल्ला ने अपनी लिखाई पर नजर डाली। ''मेरे प्यारे भाई'' से आगे वह पढ़ ही नहीं पाया। तब उसे इधर उधर देख कर कहां की कुछ समझ नहीं आ रहा की क्या लिखा है आगे।

उस आदमी ने कहा, गजब है, तुम ने अभी-अभी आपने ही हाथ से सब लिखा है, और खुद तुम ही नहीं पढ़ पा रहे हो, फिर भला दूसरा इसे कैसे पढ़ सकता है।

नसरूदीन ने कहा, पर भाई ये मेरी समस्या नहीं है। मेरा काम है, लिखना, सो मैंने लिख दिया। अब आगे वाले पढ़े या न पढ़े मैं क्या कर सकता हूं।

वह गांव का आदमी मान गया। उसने कहा, ''और फिर चिट्ठी तुम्हारे लिए भी तो नहीं है।''

ओशो का नजरिया–

मुल्ला नसरूद्दीन काल्पनिक चरित्र नहीं है। वह सूफी था। और उसकी मजार अभी तक है। लेकिन वह ऐसा आदमी था कि अपनी कब्र में जाकर भी उसने मज़ाक करना न छोड़ा। उसने ऐसी वसीयत लिखवाई कि उसकी कब्र का पत्थर मात्र एक दरवाजा हो, जिसपर ताला लगा हो। और चाबियां समुंदर में फेंक दी हों।

अब यह अजीब है। लोग उसकी कब्र देखने जाते है। और उस दरवाजे के चारों और घूमते है। क्योंकि दीवालें है ही नहीं, सिर्फ द्वार खड़ा है बिना दीवालों के। और द्वार पर ताला पडा है। मुल्ला कब्र में पडा हंसता होगा।

मैंने नसरूदीन से जितना प्रेम किया है उतना किसी से नहीं किया होगा। वह उन लोगों में से एक है जिन्होंने धर्म और हास्य को एक किया। नहीं तो वे हमेशा एक दूसरे की और पीठ किये हुए खड़े है। नसरूदीन ने उनकी पुरानी शत्रुता छोड़ने के लिए उन्हें विवश किया। जब धर्म और हास्य मिलते है। जब ध्यान हंसता है और हंसना ध्यान बन जाता है तब चमत्कार घटता है—चमत्कारों का चमत्कार।

ओशो

53/ दि बुक ऑफ ली तज़ु

दि बुक ऑफ ली तज़ु

कन्फ्यूशियन दर्शन के बाद, ताओ वाद की बहुत बड़ी दार्शनिक परंपरा है। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में ताओ दर्शन प्रौढ़ हुआ। और तभी से ताओ ग्रंथों में किसी ली तज़ु नाम के रहस्यदर्शी का उल्लेख पाया जाता है। जी तज़ु जो हवाओं पर सवार होकर यात्रा करता था। उसकी ऐतिहासिकता भी संदिग्ध है। पता नहीं उसका समय क्या था। कुछ सुत्रों के अनुसार वह ईसा पूर्व 600 में हुआ, और कुछ कहते है 400 में पैदा हुआ। ली तज़ु एक व्यक्ति भी है, और दर्शन भी। कहते है ली तज़ु पु-तिएन शहर में रहता था। और चालीस साल तक किसी ने उसकी दखल नहीं ली। और राज्य के उच्च पदस्थ और राजसी परिवार के लोग उसे सामान्य आदमी समझते थे। चेंग में सूखा पडा और ली तज़ु ने वेइ जाने का फैसला लिया।

उसके नाम से जो किताब प्रचलित है वह कहानियों, निबंधों और कहावतों का संकलन है। किताब के आठ परिच्छेद है। उनमें से ''याँग चु'' शीर्षक से जो परिच्छेद है वह सुखवाद का समर्थन करता है। बाकी सात परिच्छेदों का संकलन ताओ तेह किंग और च्वांग तज़ु के बाद सर्वाधिक महत्वपूर्ण किताब बन गई है। चीनी विद्वानों के मुताबिक यह किताब 300 ईसवी में संकलित की गई थी। यह ताओ वाद का दूसरा सृजनात्मक काल था।

ताओ अर्थात मार्ग, या कहें वह नियम जिससे आस्तित्व की हर चीज संचालित होती है। आकाश, पृथ्वी और उनके बीच की असंख्य वस्तुएं जो एक नियम से जीती है—रात और दिन, ऋतुऐ विकास और विनाश जन्म मृत्यु। सिर्फ मनुष्य को ही उसके नियम की जानकारी नहीं है। प्राचीन समय के ऋषि जीने का सही ढंग जानते थे और राज करते थे।

ताओ वाद बनने के लिए दार्शनिक होने की आवश्यकता नहीं है। उसे बौद्धिक तर्क-वितर्क में पड़ने की जरूरत नहीं है। वह लोगों को सूत्रों, कहानियों और कविताओं के द्वारा मार्ग दर्शन करता है। ली तज़ु की ताकत उसकी जीवंत अद्‌भुत हास्यपूर्ण कहानियों में है। पश्चिम के बुद्धिवाद मस्तिष्क के लिए ताओ कुछ ज्यादा ही साधारण और बेबूझ लगता है। ताओ वाद इसी विश्व में रहते है लेकिन उन्हें वह इतना निराशा जनक नहीं लगता जितना पाश्चात्य लोगों का लगता है।

ली तज़ु के इस परिच्छेद में ताओ वाद का दृष्टिकोण झलकता है। तुम्हारा अपना शरीर तुम्हारी मलकियत नहीं है। यह एक आकार है जो तुम्हें धरती और आकाश ने दिया है। तुम्हारे जीवन पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है, वह तुम्हारी ऊजाओं के बीच हुआ मेल है जो धरती और आकाश ने कुछ समय के लिए दिया है। तुम्हारा स्वभाव और तुम्हारी तकदीर तुम्हारी अपनी नहीं है, वह एक मार्ग है धरती और आकाश द्वारा बनाया हुआ। तुम्हारे बच्चे और पोते तुम्हारे नहीं है। धरती और आकाश ने तुम्हारे शरीर से पैदा किया है। जैसे कीड़े अपनी चमड़ी को छोड़ देते है। तुम धरती और आकाश की श्वास हो जो बाहर भीतर जाती है। तुम उस पर मलकियत कैसे कर सकते हो।

चीनी दर्शन में ची या प्राण आस्तित्व का बुनियादी तत्व है जिससे विश्व बना है। शुन्य में से ची प्रगट हुआ। अपने स्त्रोत पर वि विशुद्ध और हल्का था। लेकिन सधन होते-होते उसके दो हिस्से बने। जो हल्का था वह आकाश बना और जो भारी था वह पृथ्वी बना।

ली तज़ु या चीनी दर्शन बहुत विधायक है, उसे सर्व स्वीकार है। उसके बुनियादी तत्व है:

1—जो विपरीत है वे एक दूसरे के परि पूर्वक है। और एक के बिना दूसरा संभव नहीं है।

2—व्यक्ति का होना भ्रांति है। व्यक्ति का जन्म और मृत्यु ची के अंतहीन रूपांतरण में घटने वाली घटनाएं है।

3—शून्यता, जिससे हम आये है, हमारा असली घर है। उससे हम ज्यादा देर भाग नहीं सकते है।

4—मृत्यु कैसी होती है इसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते इसलिए डरने का कोई सवाल ही नहीं है। शायद मृत्यु का हम जीवन से अधिक मजा ले सकते है।

ली तज़ु का आदर्श सब कुछ त्यागना नहीं है। वरन बहुत पैनी संवेदनशीलता को जगाना और प्रतिसंवेदन करने की क्षमता है। ''मेरे शरीर का मेरे मन के साथ तालमेल है, मेरे मन का ऊर्जाओं के साथ मेरी ऊर्जा का आत्मा के साथ और आत्मा का शून्य के साथ तालमेल है।

''जब सूक्ष्म से सूक्ष्म चीज या हल्की सी ध्वनि मुझे प्रभावित करती है तो चाहे वह सुदूर आठ सीमाओं के पार हो या मरी भौहों और पलकों के बीच हो। मैं उसे जान जाता हूं। हालांकि मुझे यह पता नहीं है कि मैं उसे सिर के साथ छेदों द्वारा जानता हूं। या मेरे चार अंगों द्वारा या मेरे ह्रदय या पेट के द्वारा। वह केवल आत्मज्ञान है।

''जब मेरे भीतर और बाहर सब समाप्त हो गया, मेरी आंखें मेरे कानों जैसी हो गई। मेरे कान नाक जैसे, मेरी नाक मुंह जैसी हो गई। तब सब एक हो गया।

'' मेरा मन एकाग्र हुआ और शरीर शिथिल अस्थियां और मांस धुल मिल गया। मुझे ख्याल नहीं आया कि मेरा शरीर किस पर टिका है और पैर कहां जा रहे है। मैं हवा की मानिंद पूरब पश्चिम बहता रहा। मानो सूखा हुआ पत्ता या घास हो। और मैं कभी जान नहीं सका कि हवा मुझे पर सवार है या हवा पर।''

अगर तुम्हारे भीतर कुछ भी सख्त नहीं हो
तो बहार की चीजें स्वयं ही प्रगट कर देंगी
गति करो तो पानी जैसे बहो
प्रतिध्वनि जैसे प्रतिसंवेदित होओ

ली तज़ु और पूरा चीनी दर्शन मृत्यु के अहसास से भरा है। उसकी बहुत सी कहानियां मृत्यु के संबंध में है।

ताओ दर्शन में एक तरह की निर्दोषिता है जो बच्चों की सी सरलता से अद्भुत लोक, रोमांच और किवदंतियों में विश्वास करती है। जैसे, उनकी कहानियों में सम्राट मरते समय आकाश में उड़ जाता है। यह हकीकत तो नहीं हो सकती। लेकिन यह आस्था कि दृश्य जगत के पार कुछ है जो अज्ञात है, ताओ वाद की संवेदना का महत्वपूर्ण हिस्सा है। प्राचीन चीन में अल्केमिस्टों का एक संप्रदाय शारीरिक अमरता में विश्वास रखता था और उस दिशा में रसायनों की खोज करता था। लेकिन वे ताओ वाद की मुख्य धारा का हिस्सा कभी नहीं बने।

ली तज़ु का दर्शन भी कहानियों से बना हुआ है। ये छोटी-छोटी कहानियां वह सब कह देती है जो बड़े-बड़े दर्शन शास्त्र नहीं कह पाते।

ली तज़ु की कहानियां

ली तज़ु ची जा रहा था लेकिन आधे रास्ते से वापस लौट आया। रास्ते में उसे पो हुन वू जेन मिला। उसने पूछा कि वह बीच में ही क्यों लौट आया?

''मैं किसी बात से चौंक गया, सावधान हुआ।''

''किस बात से?''

''मैंने देस होटलों में खाना खाया और पाँच होटलों में उन्होंने मुझे पहले परोसा।''

'' अगर इतनी सी बात है तो तुम चौंक क्यों गये?''

''जब व्यक्ति की आंतरिक एकात्मता दृढ़ नहीं होती तो उसके शरीर से कुछ रिसता है और उसके आभा मंडल में प्रविष्ट होता है। और वह बाहरी तल पर लोगों को उसे सम्मान देने के लिए विवश करता है। उससे वरिष्ठ और श्रेष्ठ लोगों की बजाएं। और उससे वह मुश्किल में पड़ जाता है।

होटल वाले का एकमात्र मकसद उसके चावल और दाल बेचकर पैसा कमाना होता है। उसका लाभ बहुत थोड़ा है। अगर ऐसे लोग जिनको मेरे से इतना थोड़ा लाभ होना है, एक ग्राहक के नाते मेरी इतनी इज्जत करते है तो दस हजार रथों का मालिक, जिसके राजकाज में अपना शरीर जर्जर कर लिया है और अपना ज्ञान खाली कर लिया है। उसके साथ यह घटना और भी बदतर नहीं होगी? ची का राजकुमार मुझे किसी पर नियुक्त करेगा और आग्रह करेगा कि मैं कुशलता से काम करूं। इससे मैं सावधान हो गया।''

बहुत बढ़िया नजरिया है। लेकिन तुम यहां रह गए तो बाकी लोग तुम पर जिम्मेदारी डालेंगे।''

थोड़े ही समय बाद, जब पो-हुन बू-जेन ली तज़ु से मिलने गया तो ली तज़ु का बरामदा अतिथियों के जूतों से भरा हुआ था। पो-हुन-बू जेन उत्तर की और अभिमुख होकर खड़ा हुआ। (ली तज़ु गुरु के आसन पर दक्षिण की और अभिमुख था।) वहां कुछ देर खड़े रहने के बाद कुछ कहे बगैर वह चल दिया। द्वारपाल ने ली तज़ु को खबर की। ली तज़ु जूते हाथ में लेकर नंगे पाँव दौड़ पडा और द्वार के पास उसे पकड़ा।

''अब चुंकी आप आ गये। है महाराज क्या मुझे मेरी औषधि नहीं देंगे?''

''पो-हुन-वू-जेन बोला, ''बहुत हो गया। मैंने तुझे विश्वास पूर्वक कहा था कि लोग तेरे ऊपर जिम्मेदारी डालेंगे। और उन्होंने डाल दी। ऐसा नहीं है कि तुम उन्हें रोकने में सक्षम नहीं हो। लोगों पर ऐसा प्रभाव पड़ने से तुम्हें क्या मिलता है। जो तुम्हारी अपनी शांति को भंग करता है? अगर तुम दूसरों को प्रभावित करना ही चाहते हो तो वह तुम्हारे बुनियादी केंद्र को विचलित कर देगा।''

**** **** ****

त्झु कुंम पढ़ाई कर-करके थक गया। उसने कन्फ्यूशियस से कहा, ''मुझे विश्राम खोजना है।''

''जिंदा लोगों के लिए विश्राम नहीं है।''

''तो क्या मैं उसे कभी नहीं पा सकूंगा।''

''पाओगे। तुम्हारी कब्र के विशाल, गुंबद समान टीले की प्रतीक्षा करो, और जान लो कि तुम्हें विश्राम कहां मिलेगा।''

''मौत महान है। भद्र जनों को उसमे विश्राम मिलता है और क्षुद्र आदमी उसमे पनाह ढूँढता है।''

त्झु कुंम, तुम समझ गये। सभी लोग जीवन की खुशी को समझते है। उसके दुःख को नहीं। बुढ़ापे की थकान को जानते है। उसकी सहजता को नहीं। मृत्यु की कुरूपता को जानते है। उसके विश्राम को नहीं।''

**** **** ****

ली तज़ु हु तज़ु के साथ पढ़ाई कर रहा था। हु तज़ु ने उससे कहा, ''जब तुम पीछे रहना जानोंगे तब मैं तुम्हें सिखाना शुरू करूंगा कि कैसा आचरण हो।''

''कृपया कर मुझे पीछे रहना सिखाये।''

''तुम्हारी छाया को देखो और तुम समझ जाओगे।''

ली तज़ु ने पीछे मुड़कर अपनी छाया का निरीक्षण किया। जब उसका शरीर झुका तब उसकी छाया तिरछी था। जब उसका शरीर सीधा था, तब छाया सीधी थी। तो झुकना या सीधे खड़े रहना शरीर पर निर्भर करता है न कि छाया पर। और हम सक्रिय हों या निष्क्रिय यह दूसरों पर निर्भर करता है, न कि स्वयं पर।

''पीछे रहकर आगे रहने का यहीं मतलब है।''

**** **** ****

कुआन मिन न ली तज़ु से कहां, ''यदि तुम्हारे शब्द सुंदर या असुंदर है तो वैसी ही उसकी प्रतिध्वनि होगी। यदि तुम्हारी आकृति छोटी या लंबी हो तो वैसी ही उसी छाया होगी। शोहरत प्रतिध्वनि है। आचरण छाया है। इसलिए कहते है:

अपने शब्दों के प्रति सावधान रहना।

क्योंकि कोई न कोई उनसे सहमत होगा।

अपने आचरण की फ्रिक करना

कोई न कोई उसकी नकल करेगा।

**** **** ****

कन्फूशियस लू-लियांग जलप्रपात को देख रहा था। पानी सौ फीट छलांग लगा रहा था। और तीस मील तक उसका फेन उछल रहा था। वह ऐसी जगह थी जहां मछलियाँ, कछुए और मगरमच्छ नहीं तैर सकते थे। लेकिन वहां उसने एक आदमी को तैरते हुए देखा। यह सोचकर कि कोई किस्मत का मारा अपनी जान देने पर उतारू है। उसने एक शिष्य को उस आदमी को बचाने के लिए भेजा। लेकि कुछ दूरी तक तैरने के बाद वह आदमी बाहर आया। और गुनगुनाता हुआ किनारे पर चलने लगा।

कन्फूशियस ने उससे पूछा, ''मैंने सोचा तुम कोई भूत-प्रेत हो लेकिन तुम तो आदमी दिखाई देते हो। क्या मैं पूछ सकता हूं कि पानी से गुजरने का कोई तिलिस्म तुम्हें आता है।''

''नहीं कोई तिलस्म नहीं आता। मेरे लिए तो जन्म जाता है, उससे मैंने शुरू आत की है। जो नैसर्गिक है उसमे मैं पला और नियति पर श्रद्धा कर मैं प्रौढ़ हुआ। मैं भीतर आनेवाले के प्रवाह के साथ भँवर में उतरता हूं और बहार जानेवाले प्रवाह के साथ बाहर निकलता हूं। पानी पर अपने स्वभाव को थोपने की बजाये मैं पानी के स्वभाव के पीछे चलता हूं। इस प्रकार मैं पानी से संबंधित होता है।''

''क्या मतलब है तुम्हारा? थोड़ा स्पष्ट करोगे?''

''मैं जमीन पर पैदा हुआ, इस लिए जमीन पर सुरक्षित हूं—यह जन्मजात है। मैं पानी पर पला इसलिए पानी में सुरक्षित हूं—ये नैसर्गिक है। और मैं बिना यह जाने उसे कहता हूं कि मैं यह कैसे करता हूं—यह नियति में श्रद्धा करना हुआ।''

**** **** ****

ली तज़ु जरूरतमंद था। उसके चेहरे पर खाली पेट होने के निशान थे। एक अतिथि ने चेंग के मुख्य मंत्रि झु याँग से यह बात कही, ''ली तज़ु मार्ग को जानेवाला, ज्ञानी व्यक्ति है। अगर आपके राज्य में रहते हुए वह भूखा रहता है तो यह सोचा जायेगा कि आप उदार शास्ता नहीं है।''

झु याँग ने फौरन आदेश देकर उसे भेंट स्वरूप आनाज भिजवाया। ली तज़ु उसके संदेश वाहक से मिलने बाहर आया। दो बार झुक कर धन्यवाद दिया और भेंट अस्वीकार कर दी।

जब संदेशवाहक चला गया और ली तज़ु घर में आया तो उसकी पत्नी आंखे तरेरकर उसे देखने लगी और कहा, मैंने सुना है कि मार्ग को जाननेवाले ज्ञानियों के पत्नी और बच्चे आराम से रहते है। लेकिन अब, जबकि

भुखमरी हमारे चेहरों पर लिखी हुई है, और मंत्रि आपको भोजन भेज रहा है, आप उसे लेने से इंकार कर रहे है। लगता है हमारे भाग्य में दुःख ही लिख हुआ है।''

ली तज़ु ने मुस्कराते हुए कहा, ''ऐसा नहीं है कि मंत्रि मुझे निजी तौर पर जानता है, उसने किसी और के कहने पर मुझे अनाज भेजा है। मतलब, कभी वह मेरी निंदा भी करना चाहे तो वह दूसरे के कहने पर करेगा। इसलिए मैंने स्वीकार नहीं किया।''

ओशो का नजरिया:

ली तज़ु पराकाष्ठा है ताओ त्ज़ु और च्वांग त्ज़ु की उसकी किताब अपरिसीम रूप से सुंदर है इसलिए मैं उसे अपनी सूची में सम्मिलित करता हूं।

ली तज़ु कौन था?

पश्चिम के विद्वान ली तज़ु के बारे में परेशान रहे है—ऐसा कोई व्यक्ति हुआ भी या नहीं। यह काफी विवादास्पद है। उन्होंने इस पर कड़ी मेहनत की है कि ऐसा कोई व्यक्ति सचमुच में हुआ है। पूरब के लिए यह पूरी विद्वता मूर्खतापूर्ण है। यह कोई अर्थ नहीं रखता है कि ऐसा कोई व्यक्ति हुआ या नहीं। यदि तुम मुझसे पूछे कि वह हुआ या नहीं, मेरे लिए दोनों बराबर है। जिसने भी ये सुंदर कहानियां लिखी है, वह ली तज़ु है—कोई भी। एक बात तय है कि किसी ने ये सुंदर कहानियां लिखी है। इतना तो पक्का है। क्योंकि कहानियां है।

अब, कहानियां ली तज़ु नाम के व्यक्ति ने लिखी है या किसी दूसरे नाम के व्यक्ति ने, उससे क्या फर्क पड़ता है? उससे कहानियों में कुछ जुड़ेगा नहीं, वे पूर्ण है। उससे कहानियां से कुछ कम नहीं होगा। ली तज़ु ऐतिहासिक व्यक्ति है या नहीं। यह इन कहानियों को कैसे प्रभावित कर सकता है? ये कहानियां इतनी सुंदर है, उनका अंतनिर्हित मूल्य है। एक बात तय है कि किसी ने उनको लिखा है—पर उसका नाम क्या था, इसे लेकिन परेशान क्यों हो, वह ली तज़ु था या कोई ओर?

यह हो सकता है कि ये कई लोगों द्वारा लिखी गई हो, तब भी कोई समस्या नहीं है। जिसने भी ये कहानियां लिख है उसने ताओ की चेतना को जीया है। इसके बिना यह लिखी नहीं जा सकती। एक व्यक्ति ने लिखा हो या अनेक व्यक्तियों ने, परंतु जब भी ये कहानियां लिखी गई है कोई ताओ चेतना के गहरे में उतरा है, किसी ने जीवन का अर्थ जाना है। किसी के पास दर्शन है।

ली तज़ु संदेहास्पद है। वह किसी भी तरह से ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं है। उसने कोई पदचिह्न नहीं छोड़ा है। या तो वह कोई ऐतिहासिक व्यक्ति नहीं था। या कोई महान घोड़ा था। मेरे लिए ये गैर महत्वपूर्ण है। वह महान घोड़ा था जिसने कभी धूल नहीं उड़ाई और अपने पीछे कोई राह नहीं छोड़ी।

उसने अपने आपको पूरी तरह से भुला दिया। मात्र यह छोटी-सी पुस्तक है—''दि बुक ऑफ ली तज़ु'' इन छोटी सी कथाओं के साथ। यह ली तज़ु के बारे में कुछ नहीं कहती है।

ली तज़ु हो सकता है। कि कोई स्त्री हो। वह हो सकता है कि आदमी हो। कौन जानता है? वह चीनी हो सकता है, वह तिब्बती हो सकता है। कौन जानता है? हो सकता है वह हुआ ही नहीं हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है। परंतु इन कथाओं का मूल्य है। ये कथाएं द्वार है।

ओशो

ताओ, दी पाथलेस पाथ, भाग—2

54/ एनेलेक्टस ऑफ कन्फ्यूशियस

एनेलेक्टस ऑफ कन्फ्यूशियस

कन्फूशियस चीन के प्राचीन और प्रसिद्ध दार्शनिकों में से एक है। जैसा कि सभी प्राचीन पौर्वात्य व्यक्तियों के साथ हुआ है, इतिहास में उसके जन्म और मृत्यु की कोई सुनिश्चत तारीख दर्ज नहीं है। जो भी उपलब्ध है वह केवल अनुमान है। कन्फ्यूशियस का जीवन काल ईसा पूर्व 551-479 बताया जाता है। कुछ इतिहासविद् उससे सहमत है, कुछ नहीं। जो भी हो, उसके जैसे व्यक्तियों के वचन महत्वपूर्ण होते है, उनका इतिहास या भूगोल नहीं। उसके जीवन के संबंध में जो भी आंशिक जानकारी इधर-उधर उपलब्ध है उसे जोड़कर जो चित्र बनता है वह यह कि कन्फ्यूशियस सामान्य परिवार में पैदा हुआ, वह विवाहित था। जीते जी उसकी ख्याति एक विद्वान और सर्वज्ञ ऋषि के रूप में फैल चुकी थी। और वह लगातार उसका खंडन करता था। वह इसका इन्कार करता था कि वह उसके पास कोई विशेष ज्ञान है। उसके मुताबिक उसके पास जो असाधारण बात थी वह थी सत्तत सीखने की प्यास। सुदूर अतीत में जो दिव्य शास्ता थे उनके आगे वह स्वयं को नाकुछ मानता था।

उसका काम सिर्फ इतना था कि प्राचीनतों के ज्ञान को वह हस्तांतरित करे। पुरातन में उसका विश्वास और निर्भरता अटूट थी।

परंपरा के अनुसार कन्फ्यूशियस के 72 शिष्य थे और एनेलेक्टस में बीस शिष्यों के सूत्र है। एनेलेक्टस चीनी शब्द ''लून यू'' का अनुवाद है। उसका अर्थ है। चुनिंदा वचन। इस किताब के बीस परिच्छेद है और इसकी सामग्री से पता चलता है कि ये कन्फ्यूशियस की मृत्यु के अरसे बाद लिखे गये है। कन्फ्यूशियस के शिष्यों की कई शाखाएं बन गई थी। उसके पट्टी शिष्य मास्टर त्सेंग की मृत्यु हो चुकी थी। इन बीस परिच्छेदों में से सिर्फ तीन से नौ तक परिच्छेद पुराने और कन्फ्यूशियस के मूल रूपेण मालूम होते है। 10 और 20 परिच्छेद का मूल सूत्रों से कोई संबंध नहीं है। दसवां परिच्छेद क्रिया कांडो के नियमों का संकलन है और बीसवें में शु चिंग प्रणाली के वचन है। उन्नीसवें परिच्छेद में सिर्फ शिष्यों के वचन है। 18, 17 और 14 के परिच्छेदों में तो कन्फ्यूशियस के विरोधकों के वचन संग्रहीत है।

मूल किताब का सर्वसंमत समय है ईसा पूर्व चौथी शताब्दी। लेकिन इस किताब में अलग-अलग लोगों के वचनों की जो खिचड़ी पकाई गई है उसे देखते हुए लगता है कि क्या कन्फ्यूशियस के कुछ असली सूत्र हमारे हाथ लगेंगे। इस संबंध में चीनी मुहावरों का चलन समझ लें तो हम रिलैक्स हो जायेंगे। चीन सदा से प्राचीन प्रज्ञा को मानता रहा है। और इसीलिए जो भी सूत्र वहां प्रचलित है वे प्राचीन समय में चले आ रहे है। कोई भी एक व्यक्ति उनका लेखक नहीं है। कन्फ्यूशियस भी खुद को एक माध्यम मानता है, द्रष्टा नहीं।

अब हम उन परिच्छेदों को देखें जो यकीनन कन्फ्यूशियस के माने जाते है। वे है तीन से लेकर नौ तक। इनकी आबोहवा, सोच, अभिव्यक्ति कन्फ्यूशियस दर्शन से मेल खाती है। उनके विषय है—क्रिया कांड, भलाई, शिष्यों का मूल्यांकन, कन्फ्यूशियस का स्वयं के संबंध में वक्तव्य और कुछ शिष्यों की कहानियां। कन्फ्यूशियस के वचन ''दि मास्टर सैड'' इन शब्दों से शुरू होते है। अन्य शिष्यों को भी मास्टर कहा गया है। लेकिन आगे उनका नाम भी आता है।

किताब की एक झलक:

मास्टर ने कहा: उच्च पद पर संकीर्ण दृष्टि के लोग, कोई भी धार्मिक क्रिया बिना आदर के साथ बिना दुःख के निभाई गई मृत्यु शोक की रस्में–इन्हें देख सकता ।

मास्टर ने कहा: भलाई के बगैर आदमी लंबे समय तक विपदा नहीं झेल सकता। और न ही लंबे समय तक संपदा को भोग सकता है।

मास्टर ने कहा: धन और पद हर व्यक्ति को चाहत होती है। लेकिन यदि वे उसके मार्ग में अवरोध बनते है तो उन्हें छोड़ देना चाहिए। गरीबी और अपनी पहचान नहीं होना, इससे हर कोई नफरत करता है। लेकिन यदि वे उसके मार्ग में बाधा नहीं बनते है तो उनका वरण करना चाहिए। जो सज्जन भलाई का दामन छोड़ते हों वे सज्जन कहलाने योग्य नहीं है। सज्जन भलाई की राह से कभी भटकते नहीं है। वे कभी इतने परेशान नहीं होते कि इसके आगे घुटने टेक दें। या कभी इतने बेहाल नहीं होते कि इसके आगे झक जाएं।

मास्टर ने कहा: सुबह को मार्ग के संबंध में सुनो, सांझ संतुष्ट मर जाओ।

मास्टर ने कहा: मेरे मार्ग पर एक ही धागा है जो उसके भीतर से बहता है।

मास्टर चेंग ने कहा, ''हां''

जब मास्टर बाहर चले गये तब शिष्यों ने पूछा इसका क्या मतलब हुआ। मास्टर चेंग ने कहा, ''हमारे मास्टर का मार्ग है: वफादारी है, सोच।''

मास्टर ने कहा: भले आदमी की मौजूदगी में सतत सोचो कि तुम उसके जैसे कैसे हो सको। बुरे आदमी की मौजूदगी में अपनी आंखें भीतर मोड़ लो।

मास्टर ने कहा: पुराने जमाने में व्यक्ति अपने शब्दों पर नियंत्रण रखता था क्योंकि उसे यह डर होता था कि अगर वह शब्दों को आचरण में न उतार सके तो उसकी कितनी बेइज्जती होगी।

मास्टर ने कहा: सज्जन यह ख्याति चाहता है कि वह बोलने में धीमा है लेकिन काम करने में तेज है।

मास्टर ने कहा: जान युंग भला है लेकिन बोलने में कमजोर है।''

मास्टर ने कहा: उसे अच्छा वक्ता होने की जरूरत क्या है?

जो होशियारी के साथ दूसरों को नीचा दिखाते है वे कभी लोकप्रिय नहीं होते। वह भला है या नहीं। यह मैं नहीं जानता लेकिन उसे कुशल वक्ता बनने की कोई जरूरत नहीं है।''

मास्टर ने कहा: साइ यू दिन में सोता था। सड़ी हुई लकड़ी का शिल्प नहीं बन सकता। और न ही सूखे गोबर के कंडों से बनी दीवाल पर पलास्टर लग सकता है। में उसे डांट भी दूँ तो क्या फायदा।

मास्टर ने कहा: एक समय था जग मैं लोगों की बातें बड़े गौर से सुनता था और मान लेता था कि वे उनके शब्दों पर अमल करेंगे। और अब ने केवल उनकी बातों को सुनता हूं वरन वे जो कहते है उस पर भी नजर रखता हूं। त्साई यु के साथ मेरा जो तजुर्बा था उसे यह बदलाहट आई है।

मास्टर ने कहा: मुझे जो सिखाया गया था, उसे मैंने यथावत हस्तांतरित किया, उसमें अपनी और सक कुछ भी जोड़ा नहीं। मैं प्राचीनों के प्रति निष्ठावान था और उनसे प्रेम करता था। मैं मौन होकर सुनता रहा और जो कहा गया उसे आत्मसात करता गया। मैं सीखने से कभी थका नहीं और जो सीखा उसे दूसरों को सिखाने से भी निश्चय ही ये गुण है जिनका मैं दावा कर सकता हूं। ये ख्यालात मुझे उद्विग्न करते है कि मैंने अपनी नैतिक शक्ति की और ध्यान नहीं दिया, मेरी शिक्षा को पूरा नहीं किया, कि मैंने ईमानदार लोगों के बारे में सुना लेकिन मैं उनके पास नहीं गया, मैंने दुर्जनों के बारे में सुना लेकिन मैं उन्हें सुधार नहीं सका।

विश्राम के समय मास्टर का मिज़ाज सहज और मुक्त होता था। उनके भाव हमेशा प्रसन्न और सजग होते थे।

ओशो का नज़रिया:

मुझे कन्फ्यूशियस बिलकुल पसंद नहीं है, और उसमें मुझे कोई अपराध भाव महसूस नहीं होता। मुझे बड़ा हल्का लग रहा है यह सोचकर अब यह किताब में दर्ज हो रहा है। कन्फ्यूशियस और लाओत्से समसामयिक थे। लाओत्से उम्र में थोड़ा बड़ा था। कन्फ्यूशियस लाओत्से से मिलने भी गया था। लेकिन कंपते हुए वापस आया। जड़ें हिल गई थीं, पसीना-पसीना हो गया था।

उसके शिष्यों ने पूछा, ''क्या हुआ गुफा में? आप दोनों ही थे भीतर, और कोई नहीं था।''

''वह वास्तव में खतरनाक है।''

कन्फ्यूशियस सच कह रहा था। लाओत्से जैसा आदमी तुम्हें मार सकता है। ताकि पुनरुज्जीवित कर सके। और जब तम तुम करने को तैयार नहीं होते तब तक तुम्हारा पुनर्जन्म नहीं हो सकता है। कन्फ्यूशियस अपने ही पूनर्जन्म से भाग खड़ा हुआ। मैंने लाओत्से को चुन लिया है। सदा के लिए। कन्फ्यूशियस बहुत साधारण, बहुत भौतिक जगत का हिस्सा है। ये बात दर्ज हो कि मैं उसे पसंद नहीं करता। वह पाखंडी है। आश्चर्य है कि वह इंग्लैंड में पैदा नहीं हुआ। लेकिन उन दिनों चीन इंग्लैंड जैसा ही था। उन दिनों इंग्लैंड जंगली था, वहशी था, वहां कुछ भी मूल्यवान नहीं था।

कन्फ्यूशियस राजनैतिक था, धूर्त और चालाक था। लेकिन बहुत बुद्धिमान नहीं था। अन्यथा वह लाओत्से के चरणों में गिर जाता। भागता नहीं। वह सिर्फ लाओत्से से ही डरा नहीं था, वह मौत से भी डर गया था। क्योंकि लाओत्से और मौत एक ही है। लेकिन मैं कन्फ्यूशियस की कोई प्रसिद्ध किताब सम्मिलित करना चाहता था—सिर्फ उसे न्याय देने के लिए ''एनेलेक्टस'' उसकी सर्वाधिक महत्वपूर्ण किताब है। मेरे लिए वह एक वृक्ष की जड़ों की भांति है। कुरूप लेकिन आवश्यक—जिसे तुम आवश्यक अशुभ कहते हो। एनेलेक्टस एक आवश्यक अशुभ है। उसमे वह संसार और सांसरिक विषयों के संबंध में, राजनीति और तमाम चीजों के संबंध में बात करता है।

एक शिष्य ने पूछा, ''मास्टर मौन के बारे में क्या? वह चिढ़ गया, चिल्लाया। चीख कर उसने कहा, खामोश, मौन.... ? मौन का अनुभव तुम कब्र में करोगे। जीवन में उसकी कोई जरूरत नहीं है। बहुत सी महत्वपूर्ण चीजें है करने के लिए।''

तुम समझ सकते हो मैं उसे पसंद क्यों नहीं करता। उस पर दया आती है। भला आदमी था लेकिन दुर्भाग्य श्रेष्ठतम व्यक्ति के, लाओत्से के करीब आकर चूक गया। मैं उसके लिए आंसू गिरा सकता हूं

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

55/ एरिस्टोटल्स थियोरी ऑफ पोएट्री एंड फाइन आर्ट

एरिस्टोटल्स थियोरी ऑफ पोएट्री एंड फाइन आर्ट

''कविता और कला के संबंध में एरिस्टोटल का सिद्धांत।'' यह शीर्षक ही विरोधाभासी मालूम होता है। कविता और कला दोनों ही सूक्ष्म तत्व है। वायवीय है, उनका सिद्धांत कैसे हो सकता है। और वह भी एरिस्टोटल जैसे तर्कशास्त्री द्वारा।

काव्य का शास्त्र लिखने की परंपरा नई नहीं है। और न ही केवल पश्चिम की है। भारत में भी कश्मीरी पंडित मम्मट ने काव्य शास्त्र लिखा था। वह संस्कृत भाषा में है। और बड़ा रसपूर्ण है, क्योंकि संक्षिप्त सूत्रों में गूंथा हुआ है। उसका पहला ही सूत्र है: ''रसों आत्मा काव्यत्व'' रस काव्य की आत्मा। इसकी तुलना में एरिस्टोटल का पोएटिक्स गंभीर है, लेकिन उसकी बारीक बुद्धि ने काव्य और नाटक की गहराई में प्रवेश कर उनके एक-एक पहलुओं को उजागर कर दिया है। उसकी यह कलाकारी अपने आप में एक सुंदर रचना शिल्प है। इस संबंध में हमें कुछ बातें ख्याल में लेनी चाहिए।

एक तो एरिस्टोटल का समय, दूसरे ग्रीक सभ्यता और मानसिकता। तीसरे खुद एरिस्टोटल का व्यक्तित्व। यक ग्रंथ आज से 2400 बी. सी. अर्थात क्राइस्ट पूर्व समय में लिख गया था। ग्रीक सभ्यता उस समय अपने शिखर पर थी। सॉक्रेटिस, प्लेटों, और उसके बाद एरिस्टोटल—यह शिष्य परंपरा थी। सॉक्रेटिस रहस्यदर्शी था, प्लेटों दार्शनिक था।और एरिस्टोटल तर्कशास्त्री। सॉक्रेटिस के शिखर से निकली हुई सलिला बहते हुए नीचे आई और एरिस्टोटल के रूप में उसने बुद्धि के मैदान में प्रवेश किया। एरिस्टोटल की मजबूत बुनियाद पर पशिचम का पूरा बौद्धिक भवन खड़ा हुआ है। आज मनुष्य जाति जिस विश्लेषणात्मक तर्क प्रणाली का उपयोग करती है वह एरिस्टोटल की दी हुई है। एक तरह से हम एरिस्टोटल के बौद्धिक वंशज है।

एरिस्टोटल का यह काव्य-शास्त्र उस समय ग्रीस में जो भी महाकाव्य या नाटक प्रचलित थे उनके आधार पर लिखा गया है। जैसे होमर का इलियड, सोफोक्लीस का ईडीपस, और अनय कई रचनाएं जो आज काल के गर्भ में विलीन हो गई है। इन रचनाओं के अध्यन के बाद एरिस्टोटल ने कुछ अपने निष्कर्ष निकाले जो इस निबंध के रूप में लिखे। ''पोएटिक्स'' एक निबंध है जो एरिस्टोटल के विशाल साहित्य का हिस्सा है। यह एक ही निबंध पश्चिम के लेखकों और आलोचकों को इतना महत्वपूर्ण लगा कि इसकी अलग किताब बनी और इसके अनेक संस्करण प्रकाशित हुए। मूल निबंध ग्रीक भाषा में था। वह जब तक अंग्रेजी में अनुवाद न होता तब तक यूरोप और अमरीका के पाठकों के किसी मतलब का न था। उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी परिधान पहनकर, ''पोएटिक्स'' पशिचमी क्षितिज पर प्रगट हुआ और तबसे काव्य और नाटक के विषय में विचारकों की समझ को गढ़ने का काम करने लगा।

एरिस्टोटल का सूत्र मय वाक्य ''The art imitates nature'' कला प्रकृति की नकल करती है। बुद्धिजीवियों में प्रसिद्ध हुआ। हालांकि यह कथन ग्रीक चिंतन का अंश था। पूरी तरह से एरिस्टोटल का नहीं था। प्राचीन ग्रीस में हर तरह की कला को नकल माना जाता था। लेकिन प्रकृति की नकल। गहरे में देखें तो यह बात बहुत अर्थपूर्ण है। कोई भी कला लें, ''चाहे रंग हो या शिल्प या नृत्य या संगीत या शब्द—प्रकृति में पहले से ही सब कुछ मौजूद है। कलाकार उसे ही अलग-अलग माध्यमों से प्रगट करता है। क्या चित्रकार के पास ऐसा रंग है जो प्रकृति में नहीं है। क्या संगीतकार के पास ऐसा कोई सूर है जो अस्तित्व में नहीं गूंज रहा है। क्या कवि के पास ऐसा भाव जो की मनुष्य में नहीं है।

''कला प्रकृति का अनुकरण है''—यह कथन सिर्फ बौद्धिक नहीं है। इसमें सत्य की अनुगूँज है। इसीलिए वह 2400 साल तक लोगों के दिलों दिमाग पर छाया रहा। कलाकार कितना ही महान क्यों न हो, वह प्रकृति से बड़ा कलाकार नहीं हो सकता। ''पोएटिक्स'' में लिखे गए ऐसे कालजयी वचनों ने एरिस्टोटल को इक्कीसवी सदी तक सलामत रखा। और ओशो ने अपनी मनपसंद किताबों में उसे स्थान दिया।

ओशो ने जिस संस्करण पर हस्ताक्षर किये है वह चौथी बार 1967 में, न्यूयॉर्क में छपी है। एरिस्टोटल के मूल निबंध पर तीन गुना लंबी टीकास लिखी है एम. एच. बुचर ने। जो इस पुस्तक में शामिल है। यह टीका एरिस्टोटल की दुर्बोध भाषा को सुबोध बनाता है। 2400 साल पहले शब्दों के जो अर्थ थे, भाषा शैली या सोचने का ढंग था, वह बिलकुल अलग था। आज के मनुष्य के लिए उसे समझना मुश्किल है। इसीलिए व्याख्याकार का सेतु आवश्यक है। यह काम बुचर ने कुशलता से किया है।

वह जबाब देते है, ''माना के पोएटिक्स'' कविता का सामान्य शास्त्र है, और महाकाव्य और नाटक का विशेष शास्त्र है। तथापि यह सौंदर्यशास्त्र का बहुत व्यावहारिक उपयोग है। केवल कल्पना विलास नहीं। समय कोई भी हो, कला मनुष्य जीवन का अभिन्न अंग है। इक्कीसवी सदी में तो सभी कलाएं खूब लहलहा रही है। लोगों के पास अधिक धन है, साधन है और कलाओं के प्रति संवेदनशीलता है।

किताब की शुरूआत में एरिस्टोटल काव्य के तीन हिस्से करता है। महाकाव्य, ट्रैजेडी या दुखांत नाटक, और कॉमेडी, सुखांत।

उन दिनों काव्य और नाटक और कॉमेडी अलग-अलग नहीं थी। कला की विभिन्न शाखाएं एक दूसरे में धूलि मिली थी। कला की दो कोटिया थी। अनुकरण कला और उपयोगी कला। एरिस्टोटल को पढ़ने से पहले एक बात ख्याल में लेना जरूरी है। शब्दों के अर्थ उस समय क्या थे? एरिस्टोटल जब इमिटेशन या ''अनुकरण'' कहता है तो उसके मायने क्या है? कलाकारों के फूले हुए अहंकार के लिए यह बड़ी चोट है। कला यदि महज अनुकरण है तो सृजन का महत्व क्या है?

एरिस्टोटल के अनुसार दुखांत नाटक एक रेचन , कैथार्सिस है। वह दर्शकों में दया और भय जगाता है। मंच पर भीषण दुःख देखकर उसके भीतर के भावों की निर्जरा हो जाती है। वह नाटक के पात्रों के संग अपना जीवन जी लेता है।

नाटक के विभिन्न अंगों के संबंध में एरिस्टोटल ने इतनी गहराई से लिखा है कि उसके सुझाव आज भी अच्छे नाटक के लिए मापदंड बन सकते है। जैसे: ''नाटक के प्रसंग इतने प्रभावशाली होने चाहिए कि उनकी व्याख्या करने के लिए शब्दों की जरूरत महसूस न हो।''

नाटक जीवन का चित्रण है। जीवन में घटनाएं सिर्फ घटती है। जीवन उनकी व्याख्या नहीं करता।

एरिस्टोटल के समय महाकाव्य और दुखांत नाटक के दायरे एक ही थे। बस अलग होने शुरू ही हुए थे। इसीलिए नाटक के लेखक के लिए एरिस्टोटल जो शब्द प्रयोग करता है वह है: कवि। दुखांत नाटक के लिए आवश्यक अंग है: कथा वस्तु, विचार, भाषा, उच्चारण, शब्दों की लय। पात्रों का अभिनय, चरित्र-चित्रण। इन सबका बहुत बारीक वर्णन पढ़ते हुए मन में एरिस्टोटल की प्रतिभा की प्रशंसा उमगने लगती है।

नाटक में शब्द और विचार की चर्चा एरिस्टोटल ने इस प्रकार की है: विचार के अंतर्गत बोलने के वे सभी उतार-चढ़ाव आते है। जो बोलने से पैदा किये जाते है। भावनाओं की उतैजना जैसे दया, भय, क्रोध इत्यादि। अभिनेता के जो विचार है वे ही उसके भाषण में प्रगट होने चाहिए। इसके लिए उसके शब्द भावों से ओतप्रोत होने जरूरी है।

भाषा क्या है? इसका विश्लेषण करते हुए एरिस्टोटल भाषा के सारे पेच खोलकर उसके पुर्ज़े अलग कर देता है। ''जिन चीजों से भाषा बनती है, अक्षर, व्यंजन, जोड़ने वाला शब्द संज्ञा, क्रिया, विभक्ति या मुहावरा।'' इसके बाद वह एक-एक शब्द को लेकिर उसके और टुकड़े करता है।

किसी भी बात की गहराई में उतरने की अद्‌भुत क्षमता है उसमें। यह समीक्षा की ग्रीक पद्धति है—तथ्यों को जुटना, और जब सारे तथ्य इकट्ठे हो जाएं तब उनको देखकर एक सामान्य नियम बनाना।

एरिस्टोटल के सामने ग्रीक कला और साहित्य का भंडार पडा था। उसमें से अधिकांश साहित्य आज हमारे लिए उपलब्ध नहीं है। अपनी प्रतिभा के उतंग शिखर पर खड़ा एरिस्टोटल पीछे मुड़कर मानों ग्रीक संस्कृति का जायज़ा ले रहा है। लेकिन काव्य और नाटक के मूल तत्वों की उसने जो समीक्षा की है, वह न केवल ग्रीक साहित्य की अपितु किसी भी कला के मूल सिद्धांत बन गये है। इसलिए ''पोएटिक्स'' ग्रीक कला से जुदा होकर विश्व काव्य और नाटक के लिए मार्गदर्शक बना हुआ है। इसे पढ़कर एक तथ्य बड़ी बुलंदी से उभरता है। आज ढाई हजार साल बाद, मनुष्य का बह्या जीवन कितना ही बदला हो, उसका अंतस उसकी भावनाएं, वहीं है जो किसी भी युग में रही होंगी। यही सेतु है हमारे और एरिस्टोटल के बीच।

हमारी विश्लेषक बुद्धि analytical mind, कहां से पैदा हुआ, हमारी बुद्धि जिसकी विरासत है उसका मस्तिष्क कैसा होगा इसका अध्यन करने के लिए ही सही। एरिस्टोटल को पढ़ना रोचक होगा। हो सकता है इसीलिए ओशो यह किताब अपनी प्रिय किताबों की सूची में शामिल करते है।

एरिस्टोटल तो अपने आपमें श्रेष्ठ है ही, लेकिन एस. एच. बुचर की समझदार समीक्षा ''पोएटिक्स'' के शब्दों को खोलने में बहुत मदद करती है।

किताब की एक झलक:

ऐसा मालूम होता है कविता दो स्त्रोतों से निकली है, और वे दोनों ही स्त्रोत हमारी प्रकृति में गहरे छिपे है। एक, तो नकल करने की वृति मनुष्य में बचपन से ही होती है। उसमें और अन्य जानवरों में जो फर्क है वह है: वह सारे प्राणियों में सबसे अधिक नकलची, अनुकरणशील प्राणी है। जीवन के पहले पाठ वह दूसरों की नकल करके ही सीखता है। और नकल करके उसे जो सुख मिलता है वह सुख भी कम नहीं है।

अनुभव की प्रक्रिया में हमें इसका प्रमाण मिलता है। जिन चीजों को देखकर हमें दुःख होता है उन्हें जब हम याद करते है तो छोटी से छोटी तफसील भी हम भूलते नहीं। जैसे घृणित जानवर या मुर्दा शरीर हमारी आंखों के आगे घूमते रहते है। इसका कारण यह है कि कोई भी बात सीखने से हमें बड़ी खुशी मिलती है। इसमें दार्शनिक और साधारण जन, सभी शामिल है। बहरहाल, सामान्य जनों की सीखने की क्षमता कम होती है। इसलिए लोग एक जैसी चीजें देखना पसंद करते है। ताकि उसके बारे में सोचते हुए वे सीखते है। या अनुमान करते है। और फिर कहते है, ''ओह यही वह है।''

तो अनुकरण हमारे स्वभाव की एक वृति है। उसके बाद समस्वरता और लय भी हमारी एक वृति है। छंद उसी लय की हिस्सा है। अंत: इस प्राकृतिक भेंट को लोगों ने विकसित किया, अपनी विशेष क्षमता के द्वारा वे तुकबंदी करने लगे, जिससे कविता का जन्म हुआ।

यहां पर कविता दो दिशाओं में बंट गई है। लेखकों के व्यक्तिगत स्वभाव से प्रभावित हुई। उनमें से जो गंभीर आत्माएं थी उन्होंने उदात्त कृति तथा भद्र पुरूषों के कृत्यों की नकल की—उन्होंने व्यंग लिखा। जो पहली कोटि के लोग थे उन्होंने देवताओं की स्तुति-गान और प्रसिद्ध आदमियों की प्रशंसा में गीत लिखें। व्यंग कविता लिखने वाले कवि होमर से पहले पाये नहीं जाते। हालांकि ऐसे कई लेखक रहे होंगे। होमर के बाद ऐसे उदाहरण

दिये जा सकते है। जैसे, उनका अपना काव्य ''मार्गाइट्स'' और इस प्रकार की अनय रचनाएं। यहां उचित छंद का प्रयोग भी किया गया है। इसलिए इस छंद को व्यंग्य करने का छंद भी कहा जाता है। इस तरह पुराने कवि दो कोटि के थे: वीर रस के या व्यंग्यात्मक।

गंभीर काव्य शैली में होमर सबसे प्रमुख है। वह अकेला था जिसने नाटक शैली को उत्कृष्ठ अनुकरण के साथ जोड़ा। तो उसने भी कॉमेडी, सुखांत, नाटक की नींव रखी। व्यक्तिगत व्यंग्य लिखने की बजाय व्यंग्य के भाव को नाटकीय ढंग से पेश किया। उसके काव्य ''मार्गाइट्स'' का कॉमेडी के साथ वही संबंध है जो इलियड और ओडिसी का दुखांत, ट्रैजेडी के साथ है।

जब कॉमेडी और ट्रैजेडी स्थापित हुई तब कवियों के दोनों वर्गों ने अपने-अपने रुझान के अनुसार अपनी स्वाभाविक वृति को अपनाया। जो व्यंग्यात्मक थे उन्होंने कॉमेडी लिखी, और महाकाव्य के लेखन ट्रैजेडी, दुखांत नाटक लिखने लगे। क्योंकि नाटक, कला का श्रेष्ठतर और अधिक विशाल रूप था। ट्रैजेडी आहिस्ता-आहिस्ता विकसित हुई। उसमे नए तत्व जुड़ते गए। कई परिवर्तनों से गुजरने के बाद उसे अपनी नैसर्गिक रूपरेखा मिली और वही वह रूक गई।

एस्किलस मंच पर पहली बार दूसरे अभिनेता को ले आया। उसने कोरस, समूह गान का महत्व कम किया और मुख्य अंश को संवाद का रूप दिया। सोफोक्लीस ने अभिनेताओं की संख्या तीन की और नेपथ्य को जोड़ा। एक लंबे अरसे के बाद नाटक की कहानी का क्षेत्र विस्तीर्ण होता चला गया। और ट्रैजेडी की भव्यता आई।

महाकाव्य और दुखांत नाटक में एक समानता है: वह श्रेष्ठ कोटि के चरित्रों का काव्य में किया गया अनुकरण है। उनमें फर्क यह है कि महाकाव्य में एक ही छंद होता है और वह वर्णनात्मक होती है। उनकी लंबाई भी अलग-अलग होती है। दुखांत नाटक की कोशिश यह रहती है कि सूर्य की एक परिक्रमा में जितना समय लगता है वही उसकी कथा वस्तु की सीमा हो। जबकि महाकाव्य में जो घटनाएं घटती है उनमें समय की कोई सीमा नहीं होती। यह एक और फर्क है। लेकिन शुरू-शुरू में ट्रैजेडी और महाकाव्य, दोनों को एक जैसी स्वतंत्रता थी।

ओशो का नज़रिया–

तुम्हें आश्चर्य होगा कि (आज का) मेरा चौथा चुनाव है: एरिस्टोटल की ''पोएटिक्स''

एरिस्टोटल को पश्चिमी दर्शन और तर्कशास्त्र का जन्मदाता कहा जाता है। निश्चय ही वह है; लेकिन केवल दर्शन और तर्कशास्त्र का, असली तत्व का नहीं। असली बात आती है सॉक्रेटिस से। पाइथागोरस और डायोजिनिस से। डायोजिनिस से, लेकिन एरिस्टोटल से नहीं।

आश्चर्य है कि उसने यह खूबसूरत किताब लिखी। और एरिस्टोटल को पढ़नेवाले विद्वान इस किताब को नहीं पढ़ते। उसके ग्रंथों में मुझे इस किताब को ढूंढना पड़ा। मैं खोज रहा था कि मुझे इस व्यक्ति में कोई सौंदर्य मिलेगा या नहीं। जब मेरी निगाह ''पोएटिक्स'' पर पड़ी—बस कुछ पन्नों की छोटी सी किताब—तो मैं रोमांचित हुआ। तो इस आदमी में दिल भी था। बाकी सब किताबें उसने दिमाग से लिखीं, लेकिन यह किताब दिल से पैदा हुई।

हां, यह कविता के सार-सूत्र के संबंध में है। काव्य शस्त्र के विषय में है—और काव्य का सार सूत्र प्रेम के सार सूत्र के अलावा और कुछ हो सकता है। यह बुद्धि की नहीं, अंत: प्रज्ञा की सुवास है।

मैं इस किताब का समर्थन करता हूं।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

56/ अन्ना कैरेनिना : लियो टॉलस्टॉय

अन्ना कैरेनिना: लियो टॉलस्टॉय

जीवन के शाश्वत, अबूझ रहस्यों और विरोधाभासों को सुलझाने का एक ललित प्रयास—

अन्ना कैरेनिना रशियन समाज की एक संभ्रांत महिला की कहानी है। जो अनैतिक प्रेम संबंध जोड़कर अपने आपको बरबार कर लेती है। इस उपन्यास में टॉलस्टॉय कदम-कदम पर यह दिखाता है कि समाज कैसे स्त्री और पुरूष के विषय में दोहरे मापदंड रखता है। अन्ना के सगा भाई ऑब्लान्स्की के अनैतिक प्रेम संबंध होते है, और न केवल वह अपितु उसके स्तर के कितने ही पुरूष खुद तो पत्नी से धोखा करते है, लेकिन अपनी पत्नियों से वफादारी की मांग करते है। समाज चाहता है कि पत्नी अपने पति की बेवफाई को भूल जाये और उसे माफ कर दे।

अन्ना कैरेनिना एक आकर्षक, करुणापूर्ण और गरिमा मंडित महिला है। उसके संपर्क में आने वाले सभी लोग उसका समादर करते है। उससे अभिभूत है। अन्ना का करिश्मा सभी पुरूषों पर असर करता है। सिवाय उसके पति के। उनका विवाह प्रेम-विहीन है। उनका पति संगदिल पुरूष है जिसे सामाजिक दिखावे और अपनी पद-प्रतिष्ठा की फिक्र अधिक है। और अन्ना की भावनाओं और सुख दुःख की कम।

अन्ना एक दहकती हुई आग है। उसमे साहस है, और वांछित सुख को पा लेने की हिम्मत भी। वह उच्च वर्ग की स्त्रियों की रीति और रिवाज को ताक पर रखकर एक सेना अधिकारी ब्रॉन्सकी के साथ प्रेम करने लगती है। दोनों एक बॉल डांस में मिलते है, और एक दूसरे के प्रेम में पड़ जाते है। इस अवैध प्रेम की राह पर निडरता से आगे बढ़कर अन्ना अपने प्रेम को अपने पति के आगे कबूल करती है।

जब वह पति को छोड़कर ब्रॉन्स्की के साथ विदेश जाती है तब अपने बेटे से बिछुड़ जाती है। पति बेटे से कहता है कि उसकी मां मर गई। बेटे के जन्म दिन पर वह किसी तरह चोरी छुपे पहुँचती है लेकिन उसकी खुशी कुछ पल जी पाती है क्योंकि उसका पति फौरन उसे पकड़ लेता है और वहां से निकाल बाहर कर देता है। बड़े चाव से लाये हुए खिलौने भी वह अपने बच्चे को नहीं दे पाती है। पति अपने बेटे से कहता है, "इस औरत ने इतना कुकर्म किया है कि वह उसे दुबारा नहीं देख पायेगा। वह बहुत बुरी औरत है।"

अन्ना पति कसे तलाक लेने के लिए तरसती है। जब उसे प्यार का इतना बड़ा सरोवर मिला है तो वह निर्दयी पति के साथ रूखी-सूखी जिंदगी क्यों बीताये? लेकिन उसका पति उसे तलाक देने से इन्कार कर देता है। अन्ना उसकी प्रेमी ब्रॉन्स्की के साथ विवाह कर प्रतिष्ठित जीवन नहीं जी सकती। उसके पूर्व परिचित मित्र प्रियजन और समाज का प्रतिष्ठित वर्ग उसे व्यभिचारिणी कह उससे बचना चाहता है। यहां तक कि वह थियटर भी नहीं जा सकती। अन्ना को चारदीवारी में बंद रहकर, घुट-घुट कर अपना समय काटना पड़ता है। जब कि ब्रॉन्स्की मजे से समाज में घूमता फिरता है।

अन्ना अपने प्यार पर सब कुछ कुर्बान कर देती है—घर, बेटा, प्रतिष्ठा। इन हालातों का असर उसके दिमाग पर होता है और वह मानसिक रोग की शिकार हो जाती है। वह सदा भयभीत रहती है, चिड़ चिड़ी और तनाव ग्रस्त हो जाती है। रिश्ता तनावपूर्ण हो जाता है, और ब्रॉन्स्की के प्यार का झरना सूख जाता है। सब तरफ से असफल, हताश अन्ना स्वयं को बदनसीब समझने लगती है। और निराशा के गहन क्षण में अपने आपको ट्राम के नीचे झोंक देती है।

मृत्यु के उपरांत भी समाज उसकी भर्त्सना ही करता है। ब्रॉन्स्की की मां उसके बारे में कहती है : ''वह बदज़ात औरत थी। इतनी विवश वासना। सिर्फ कुछ असाधारण करने के चक्कर में उसने अपना और दो शानदार पुरूषों का विनाश कर दिया।''

उसकी नन्हीं, ब्रॉन्स्की से पैदा हुई बेटी भी बाद में उसके पति के पास जाती है।

अन्ना का अपराध इतना था कि उसने एक ऐसे पुरूष से प्रगाढ़ प्रेम किया जो उसका पति नहीं था। लेकिन रशिया के सुसंस्कृत, प्रतिष्ठित समाज ने उसे ऐसा नारकीय जीवन जीने को मजबूर कर दिया कि उससे उसे मृत्यु अधिक सार्थक मालूम हुई।

टॉलस्टॉय ने यह उपन्यास उस समय लिखा जब वह रशियन समाज से वितृष्ण हो चुका था। उच्चवर्गीय समाज के नकली मूल्य, उनका पाखंड, उनका छिछोलापन, संस्कृति की गिरावट, उनका सबका सशक्त पारदर्शी चित्रण करने के साथ-साथ वह समाजिक समस्याओं का भी वर्णन करता है। जैसे किसान और जमींदार, स्त्री और पुरूष का भेदभाव, अन्ना कैरेनिना की मृत्यु की घटना के सहारे वह जीवन और मृत्यु की मूलभूत पहेली की दार्शनिकता भी दिखाना चाहता था।

अन्ना कैरेनिना रशियन साहित्य की सर्वाधिक लोकप्रिय नायिकाओं में से एक है। उसका अभिभूत कर देनेवाला सौंदर्य इस गहरे और समृद्ध उपन्यास के वातास को धेरे रहता है। टॉलस्टॉय के अनुसार यह जीवन के शाश्वत, अबूझ रहस्यों और विरोधाभासों को सुलझाने का एक ललित प्रयास है। उपन्यास का प्रारंभ जिस वक्तव्य से होता है। वह वक्तव्य ही टॉलस्टॉय की गहरी अनंतदृष्टि का प्रतीक है।

''सारे सुखी परिवार एक जैसे होते है; लेकिन हर दुःखी परिवार अपने ही ढंग से दुखी होता है।''

यह उपन्यास जिस काल में लिख गया—1875—77, उसमे समय की गति बहुत धीमी थी। लोगों के पास बहुत वक्त था। इसलिए 804 पृष्ठों की प्रदीर्घ किताब पढ़ना उनके लिए बड़ा मुश्किल मामला नहीं था। आज की आपाधापी में जो इतना लंबा कागजी सफर करने को तैयार हो, वही इस उपन्यास के संपन्न ताने बाने का आनंद ले सकता है।

ओशो का नजरिया:

अन्ना कैरेनिना : एक असाधारण किताब

लियो टॉलस्टॉय की अन्ना कैरेनिना बहुत खुबसूरत उपन्यास है। तुम हैरान होओगे कि मनपसंद किताबों में मैं उपन्यास को क्यों सम्मिलित कर रहा हूं। क्योंकि मैं दीवाना हूं। मुझे अजीबोगरीब चीजें अच्छी लगती है। अन्ना कैरेनिना मेरी प्रिय किताबों में एक है। मुझे याद है मैंने उसे कितनी बार पढ़ा है।

यदि मैं सागर में डूब रहा होऊंगा और विश्व के लाखों उपन्यासों में से मुझे एक चुनाना होगा तो मैं अन्ना कैरेनिना चुनूंगा। इस खूबसूरत किताब के साथ रहना सुंदर होगा। उसे बार-बार पढ़ना होगा, तो ही आप से महसूस कर सकते है। सूंघ सकते है। और स्वाद ले सकते है। असाधारण किताब है यह।

लियो टॉलस्टॉय एक असफल संत रहा, जैसे महात्मा गांधी असफल संत रहे। लेकिन टॉलस्टॉय महान उपन्यासकार था। महात्मा गांधी ईमानदारी का शिखर बनने में सफल रहे और आखिर तक बने रहे। इस सदी में मैं किसी और आदमी को नहीं जानता जो इतना ईमानदार हो। जब वे लोगों को पत्र लिखते थे: योर्स सिंसयरली, तब वे सचमुच ईमानदार थे। जब तुम लिखते हो, ''सिंसयरली योर्स'' तब तुम जानते हो, और हर कोई जानता है कि सब बकवास है। बहुत कठिन है। लगभग असंभव—बस्तुत: ईमानदार होना।

लियो टॉलस्टॉय ईमानदार होना चाहता था। लेकिन हो न सका। उसने भरसक कोशिश की। मुझे उसकी कोशिशों से पूरी सहानुभूति है। लेकिन यह धार्मिक आदमी नहीं था। उसे कुछ और जन्म रूकना होगा। एक तरह

से अच्छा है कि वह मुक्तानंद जैसा धार्मिक आदमी नहीं था। नहीं तो हम ''रिसरेक्शन, वॉर एंड पीस, अन्ना कैरेनिना, जैसी अत्यंत सुंदर एक दर्जन रचनाओं से वंचित रह जाते।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

57/ मिस्टर एकहार्ट-रहस्य सूत्र—(057)

मिस्टर एकहार्ट के रहस्य सूत्र

एक हार्ट बहुत करीब था। एक कदम और, और संसार का अंत आ जाता—उस पार का लोक खुल जात।

एक हार्ट जर्मन का सबसे रहस्यपूर्ण और ग़लतफ़हमियों से घिरा रहस्यदर्शी है। एक सदी पहले तक जर्मन रोमांटिक आंदोलन के द्वारा मिस्टर एकहार्ट को, "एक अर्ध रहस्यवादी चरित्र" समझा जाता था। न तो उसके जन्म की तारीख मालूम थी, न स्थान। जर्मनी में किसी कब्र पर उसका नाम दिवस खुदा नहीं था। कुछ छुटपुट तथ्यों की जानकारी थी—मसलन वह परेसा में पढ़ा, सन 1402 में डाक्टर ऑफ थियॉलॉजी की उपाधि प्राप्त की, जर्मनी के स्टैसवर्ग शहर में वह उपदेशक था। 1322 में कालोन के एक विद्यापीठ में उसे ससम्मान आमंत्रित किया गया। और पीठाधीश बनाया गया। तब तमक एकहार्ट अपने रहस्यवाद से ओतप्रोत प्रवचनों के लिए प्रसिद्ध हो चुका था। कालोन के आर्चबिशप को रहस्यवाद से चिढ़ थी। उसे उसमें बगावत की बू नजर आती थी। 1326 में उसने एकहार्ट पर मुकदमा दायर किया। उस पर इलजाम था, वह सामान्य जनों में खतरनाक सिद्धांत फैल रहा है।

एकहार्ट जैसे प्रतिष्ठित शिक्षक के खिलाफ लगाया गया यह आरोप अभूतपूर्व था। एकहार्ट ने जवाब दिया कि वह सिर्फ पेरिस विश्वविद्यालय या पोप को जवाब देगा। मुकदमा लंबे समय तक चला। न्यायाधीश बदलते रहे। आखिर स्वयं पोप ने धर्म शास्त्रियों की समिति नियुक्त की। हर नयी समिति एकहार्ट के प्रवचनों के कुछ अंश निकालकर उन्हें बगावती, गैर धार्मिक करार देती रही। हर आरोप का खंडन एकहार्ट खुद करता रहा। यह सिलसिला जारी ही था कि इस बीच एकहार्ट की मृत्यु हो गई। उसके मरने के एक साल बाद भी पोप ने उसके प्रवचनों के कुछ अंश अलग किए और उन्हें खतरनाक और बगावती करार किया।

ईसाई चर्च की साजिश की वजह से सन् 1900 तक एकहार्ट के वचनों को अंधेरे में छुपाया गया। जब उसकी खोजबीन शुरू हुई तब एकहार्ट के लेखन की भाषा पुरानी हो चुकी थी। लेकिन उसके शब्दों से उठती हुई सत्य की, निजी अनुभव सुगंध आज भी उतनी ही ताजा थी। एक सदी पहले तक उसके कुछ ही प्रवचन उपलब्ध थे। अन्य सब लेखन गायब थे।

ओशो का नजरिया–

आज मेरी सूची में दूसरा नाम है: एकहार्ट, काश वह पूरब में पैदा होता। जर्मन लोगों में पैदा होकर परम तत्व के बारे में बात करना थोड़ा मुश्किल काम है। लेकिन इस बेचारे ने यह काम किया, और बहुत अच्छे तरह किया। जर्मन आखिर जर्मन है। वे कुछ भी करें, परिपूर्णता से करते है।

एकहार्ट गैर पढ़ा लिखा था। आश्चर्य की बास है, रहस्यदर्शीयों में से कई लोग पढ़े लिखे नहीं थे। लगता है शिक्षा में कोई गलती है, शिक्षित रहस्यदर्शीयों की संख्या इतनी कम क्यों है? निश्चित ही, शिक्षा कुछ नष्ट कर रही है। इसलिए लोग रहस्यदर्शी नहीं हो पा रहे। हां, शिक्षा पच्चीस साल बरबाद कर देती है—किंडरगार्टन से लेकिर विश्वविद्यालय के पोस्ट ग्रैजुएट तक तुम्हारे भीतर जो भी सुंदर है, उसे नष्ट करती चली जाती है। विद्वता के नीचे कमल का फूल कुचल दिया जाता है। तथाकथित प्राध्यापक, शिक्षक, उप कुलपति आदमी के भीतर के गुलाब को मसल देते है। उन्होंने खुद के लिए कैसे-कैसे खुबसूरत नाम चुने है।

वास्तविक शिक्षा अभी शुरू नहीं हुई है। शुरू होनी है। वह ह्रदय की शिक्षा होगी। दिमाग की नहीं—तुम्हारे भीतर जो स्त्रैण तत्व है उसकी, पुरूष तत्व की नहीं।

हैरानी की बात है कि एकहार्ट जर्मनी के बीच पैदा होकर—जो कि सर्वाधिक दंभ से भरी जाति है। अपने ह्रदय में बना रहा। और वही से बोलता रहा.....।

एकहार्ट ने थोड़ी सी बात कहीं, लेकिन वह उस समय के कुरूप धर्म गुरूओं को झूंझलाने के लिए काफी थी। पोप, और अन्य सारे शैतान जो धर्मोपदेशकों के इर्दगिर्द होते है उन्होंने एकहार्ट पर पाबंदी लगा दी। वे एकहार्ट को सिखाने लगे कि क्या कहना है। और क्या नहीं कहना है। लेकिन इकहार्ट सरल आदमी था उसने अधिकारियों की बात मान ली। वह तो मेरे जैसा पागल आदमी होता है जो इन मूर्खों की बात नहीं मानता।

....इकहार्ट बहुत करीब था। एक कदम और, और संसार का अंत आ जाता। उस पार का लोक खुल जाता। लेकिन पोप के सारे दबाव के बावजूद उसने खूबसूरत बातें कही। उसके वक्तव्यों में सत्य का अंश प्रवेश कर गया। इसलिए मैं (मेरे मनपसंद लेखकों में) उसे शामिल करता हूं।

ओशो

बुक्स आई हेव लव्ड

58/ लीव्स ऑफ ग्रास: (वॉल्ट विटमैन)

लीव्स ऑफ ग्रास: (वॉल्ट विटमैन)

जुलाई 1855, वॉल्ट विटमैन छत्तीस साल का रहा होगा। जब उसकी 'लीव्स ऑफ ग्रास'का प्रथम संस्करण छपा। यदि वह तारीख चार जुलाई 'अमेरिका का स्वतंत्रता दिवस' नहीं रही होगी तो होनी चाहिए। उस दिन विटमैन ने न केवल पत्रकारिता के अपने अभूतपूर्व व्यवसाय से, स्वच्छंद लिखने से और तुकबंदी से बल्कि साहित्य की उन परंपराओं से जो साहित्य को लोकतंत्र के कालवाह्मा बनाती है। स्वतंत्र होने की घोषणा की। विटमैन ने ऐसी कविता लिख जिसके व्यापक आकार और कल्पना में उन अमरीकी लोगों के जीवन की और व्यवसाय की झलक थी जिनके पास कविता पढ़ने की फुरसत नहीं थी।

अपने स्वयं के निजी स्वभाव का उत्सव मनाकर वॉल्ट विटमैन ने अमरीका स्वभाव का उत्सव मनाया। उसकी किताब के छह संस्करण प्रकाशित हुए। अगले पैंतीस वर्षों में उसके और कई संस्करण छपे। जब कि बराबर उसकी निषेधात्मक आलोचनाएं, कविताओं के सेन्सर करने के प्रयेत्न हो रहे थे। वॉल्टन में 1882 में उसे प्रतिबंधित भी किया गया।

इस किताब की पहली प्रति पढ़ने के बाद इमर्सन ने, साहित्य में किये गये विटमैन के ढीठ प्रयोग को 'बुद्धि ओर प्रज्ञा की असाधारण कलाकृति जो अमेरिका ने आज तक पैदा की है।' इन शब्दों में नवाजा।

विटमैन के आलोचकों को क्या तकलीफ थी? उसके कविता की परिपाटी को तोड़-मरोड़ दिया था। न तो उसने सर्वमान्य छंद और मात्राओं की फिक्र की, न अनुप्रास का मेल किया। उसने चालू अमरीकी जबान में अपने आपको मुक्त भास से प्रगट किया। उसके लिए सेक्स जीवन का एक महत्वपूर्ण अनुभव है। जिसका उत्सव उसने अनेक कविताओं में मनाया था। उसी वजह 'विक्टोरियन अमेरिका' की नैतिकता से उसे बहुत तिरस्कार मिला।

आज विटमैन को अमेरिका का होमर और डांते कहा जाता है। और उसके कृतित्व को नये युग में साहित्यिक मौलिकता की कसौटी। विटमैन अपने साहित्य को सिर्फ साहित्यिक प्रयोग नहीं मानता था। वे उसके अपने भावनात्मक और व्यक्तिगत स्वभाव की अभिव्यक्तियां थी। इस अर्थ में 'लीव्स ऑफ ग्रास' आत्म कथा है। लेकिन कवि की दृष्टि पूरे अमेरिका जीवन की जोशीली आत्मा को घेर लेती है।

'लीव्स ऑफ ग्रास' के प्रकाशन के तीस साल बाद, सा 1880 में मरण शय्या पर पड़े विटमैन ने किताब की अंतिम भूमिका लिखते हुए कहा: 'तीस साल के अनवरत संघर्ष के बाद अब मैं बुढ़ापे की धुँधली रोशनी में, 'लीव्स ऑफ ग्रास' को देखता हूं, वह नये जगत के लिए दीप स्तंभ है—अगर मैं ऐसा कह सकूँ तो। मुझे अपने समय ने स्वीकार नहीं किया और मैं भविष्य के सुहाने सपनों के सहारे जीता हूं। सांसारिक और व्यावसायिक अर्थों में लीव्स ऑफ ग्रास, असफल से भी बदतर रही। लोगों ने मेरी किताब की और उसके लेखक के नाते मेरी जो आलोचना कि, उसमें अभी तिरस्कार और क्रोध का स्वर है। मेरे दुश्मनों की एक मजबूत कतार हर कहीं मौजूद होती है.....।'

लेकिन मुझे जो कहना था उसे मैंने पूर्णत: मेरे ढंग से कहा और उसे अचूक दर्ज किया। उसका मूल्यांकन समय ही करेगा। इतना जरूर है कि मेरी आत्मा के बाहर की किसी भी ताकत से न मैं प्रभावित हुआ, न विकृत हुआ।''

साहित्यिक, पाठक, आलोचक वॉल्ट विटमैन से इतने क्रोधित क्यों थे? उसने किसी का क्या नुकसान किया था? अपना गीत ही तो गाया था। लेकिन यही उसका कसूर था।

ओशो का नजरिया:

मैं वॉल्ट विटमैन से उतना ही प्रेम करता हूं, जितना रवीन्द्र नाथ टैगोर से। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि रवीन्द्र नाथ भारतीय है और वॉल्ट विटमैन अमरीकी। दोनों में कुछ है जो इन मूढता पूर्ण बातों का अतिक्रमण करता है। अमरीकी, हिंदू,भारतीय ईसाई। दोनों अज्ञात में ऊंची उड़ान भरते है। और जो अव्याख्येय है। उसे व्यक्त करने की अद्‌भुत क्षमता रखते है। वॉल्ट विटमैन मेरे प्रियजनों में से एक है।

दि लास्ट टेस्टामेंट

आज सुबह मैंने वॉल्ट विटमैन के शब्द कहे। वह कहता हूं, मैं उत्सव हूं, मैं गीत हूं।''

यह एक अति सुंदर कविताओं में से एक है। उसमें वह अपना ही गीत गाता है। 'कोई कारण नहीं है, उत्सव होना, गीत होना मेरा स्वभाव है।' यह स्वस्थ है। इसका मतलब है, स्वयं होना।

वॉल्ट विटमैन जब तक जिंदा रहा। उसकी बड़ी निंदा की जाती रही। क्योंकि वह अकारण प्रसन्न रहता था। वह अकेला नाच सकता था, गा सकता था। किसी के लिए नहीं बस, स्वयं के लिए। यह कि वह स्वयं एक गीत था। स्वयं मूर्तिमान उत्सव था। ईसाई गंभीरता उसे समझ न सकी। साधारण मनुष्य जाति या तो उसे पागल समझती थी या शराबी। लेकिन न वह नशे में था न पागल। अमेरिका ने जितने लोगों को पैदा किया है उनमें वह सबसे बुद्धिमान लोगों में से एक था। बुद्धिमानी एक उत्सव है।

दि इनविटेशन

59/ सेवन पोर्टलस आफ़ समाधि

सेवन पोर्टलस आफ़ समाधि:-मैडम ब्लावट्स्की

(हवा का एक झोंका है ब्लावट्स्की। और कोई उससे बहुत महानतर शक्ति उस पर आविष्ट हो गई है: और वह हवा का झोंका उस सुगंध को ले आया है।)

इस जगत में जो भी जाना लिया जाता है। वह कभी खोता नहीं है। ज्ञान के खोने का कोई उपाय नहीं है। न केवल शास्त्रों में संरक्षित हो जाता है ज्ञान, वरन और भी गुह्म तलों पर ज्ञान की सुरक्षा और संहिता निमित होती है। शास्त्र तो खो सकते है। और अगर सत्य शास्त्रों में ही हो तो शाश्वत नहीं हो सकता। शास्त्र तो स्वयं भी क्षणभंगुर है। इसलिए शास्त्र संहिताएं नही है। इस बात को ठीक से समझ लेना जरूरी है। तभी ब्लावट्स्की की यह सूत्र पुस्तिका समझ में आ सकती है।

ऐसा बहुत पुराने समय में भारत ने भी माना था। हमने भी माना था कि वेद संहिताओं का नाम नहीं है। शास्त्रों का नाम नहीं है। वरन वेद उस ज्ञान का नाम है, जो अंतरिक्ष में , आकाश में संरक्षित हो जाता है। जो इस अस्तित्व के गहरे अंतस्तल में ही छिप जाता है। और होना भी ऐसा ही चाहिए। बुद्ध अगर बोले और वह केवल किताबों में लिखा जाए तो कितने दिन टिकेगा। और बुद्ध का बोला हुआ अगर अस्तित्व के प्राणों में ही न समा जाए तो अस्तित्व ने उसको स्वीकार ही नहीं किया।

करोड़ों-करोड़ों वर्ष में कोई व्यक्ति बुद्धत्व को उपल्बध होता है। वह जो जानता है, वह इस जगत का जो गहनत्म अनुभव है। जो रहस्य है। इस जगत की जो आत्यंतिक अनुभूति है, यह पुरा जगत उसे सम्हाल कर रख लेता है। इस जगत के कण-कण की गहराई में वह अनुभूति छा जाती है। समाविष्ट हो जाती है। वहीं अर्थ है कि वेद शास्त्रों में वह अनुभूति छा जाती है। समाविष्ट हो जाती हे। यही अर्थ है कि वेद शास्त्रों में नहीं, वरन आकाश में लिखा जाता हे। शब्दों से नहीं बल्कि जब बुद्ध जैसे व्यक्ति के प्राणों में सत्य की घटना घटती है। तो साथ ही साथ उस घटना की अनुगूँज आकाश के कोने-कोने में छा जाती है। और जब भी कोई व्यक्ति बुद्धत्व के करीब पहुंचने लगेगा, तब प्राचीन बुद्धों ने जो जाना था, उसके प्राणों में आकाश के द्वारा, उस अनुगूँज की फिर से प्रतिध्वनि हो सकती हे।

ब्लावट्स्की की यह किताब साधारण किताब नहीं है। इसने उसे लिखा नहीं, इसने उसे सुना ओर देखा है। यह उसकी कृति नहीं है, वरन आकाश में जो अनंत-अनंत बुद्धों की छाप छूट गई है, उसका प्रतिबिंब है। ब्लावट्स्की ने कहा है कि यह जो मैं कह रही हूं, यह आकाश-संहिता से मुझे उपलब्ध हुआ है। ऐसा मैंने आकाश से पाया और जाना है।

आकाश से अर्थ है: वह जो चारो तरफ घेरे हुए है हमें, जो हमारे भीतर भी है और हमारे श्वास-श्वास में है। जिसके बिना हम नहीं हो सकते; और हम नहीं थे तब भी जो था। और हम नहीं होंगे तब भी जो रहेगा। आकाश से अर्थ है: परम अनस्तिव का। ब्लावट्स्की ने कहा है: इस परम अस्तित्व ने ही मुझे बताया है। वही इस पुस्तक में मैंने संग्रहीत किया है। लेखिका वह नहीं है। सिर्फ संग्रह किया है उसने।

यही वेद ऋषियों ने कहा है कि हमने सुना है वह वाणी। और हमने अपने हाथों लिखी है। लेकिन हमारे हाथों से कोई और ही उसे लिखवाया हे। जीसस ने भी यही कहा है कि मैं जो कह रहा हूं; वाणी मेरी हो, लेकिन जो उस वाणी से बोल रहा है। वह परमात्मा का है। मोहम्मद ने भी यही कहा हे कि कुरान मैने सुनी है। उसका इलहाम हुआ। उसकी मुझे प्रेरण हुई है; और किसी रहस्यमयी शक्ति नें मुझे पुकार और कहा कि पढ़।

और मोहम्मद के साथ तो बड़ी मीठी घटना है। क्योंकि मोहम्मद पढ़ नहीं सकते थे। और जब पहली बार उन्हें ऐसी भीतर कोई आवाज गूंज गई कि पढ़, तो मोहम्मद ने कहा; मैं हूं बे पढ़ा लिखा। मैं पढूंगा कैसे। और कोई किताब तो सामने थी ही नहीं। जिसे पढ़ना था। कुछ और था आंखों के सामने जिसे गैर पढ़ा लिखा भी पढ़ सकता है। जिसको कबीर भी पढ़ लेते है। कुछ और था जो पढ़ना नहीं पड़ता। जो दिखाई पड़ता है। कुछ और था। जो इन आंखों से जिसका कोई संबंध नहीं है। किसी और भीतर की आँख का संबंध है। मोहम्मद ने समझा कि इन आंखों से मैं कैसे पढूंगा। मैं पढ़ा लिखा नहीं हूं। लेकिन कोई और भीतर की आँख पढ़ सकती है। और वही कुरान का जन्म हुआ।

ब्लावट्स्की की यह पुस्तक, 'समाधि के सप्त द्वार' वेद, बाईबिल, कुरान महावीर बुद्ध के वचन, उस हैसियत की पुस्तक है। यह भी उसे आकाश में अनुभव हुआ है।

इस पुस्तक के एक-एक सूत्र को समझ पूर्वक अगर प्रयोग किया तो जीवन से वासना ऐसे ही झड़ जाती है, जैसे कोई धूल से भरा हुआ आए और स्नान कर ले और सारी धूल झड़ जाए। या कोई थका मांदा किसी वृक्ष की छाया के नीचे विश्राम कर ले और सारी थकान विसर्जित हो जाए। ऐसा ही कुछ इस पुस्तक की छाया में, इस पुस्तक के स्नान में आपके साथ हो सकता है। लेकिन इसे बुद्धि से समझने की कोशिश मत करना। इसे ह्रदय से समझने की कोशिश करें।

मैंने इस पुस्तक को जान कर चूना है। क्योंकि इधर दो सौ वर्षों में ऐसी न के बराबर पुस्तकें है, जिनकी हैसियत वेद-कुरान और बाइबिल की हो। उन थोड़ी सी दो चार पुस्तकों में है यह पुस्तक।

समाधि के सप्त द्वार। और इसलिए भी चुना कि ब्लावट्स्की ने जरा सी भी भूलचूक नहीं की आकाश की संहिता को पढ़ने में। ठीक मनुष्य के जगत में उस दूर के सत्य को जितनी सही-सही हालत में पकड़ा ह। प्रतिबिंब जितना साफ बन सकता है। उतना प्रतिबिंब साफ बना है। और यह पुस्तक आपके लिए जीवन की आमूल क्रांति सिद्ध हो सकती है। फिर इस पुस्तक का किसी धर्म से भी कोई संबंध नहीं है। इसलिए भी मैंने इसे चुना है। न यह हिंदू है, न यह मुसलमान हे। और धर्म को जितना निर्वैयक्तिक, गैर-सांप्रदायिक ढंग से प्रकट किया जो सकता है। उस ढंग से इसमे प्रकट हुआ है।

ओशो

समाधि के सप्त द्वारा

60/ दि स्प्रिचुअल टीचिंग ऑफ—रमण महर्षि

दि स्प्रिचुअल टीचिंग ऑफ—रमण महर्षि

श्री रमण महर्षि बीसवीं सदी के प्रारंभ में तमिलनाडु के एक पर्वत अरुणाचल पर रहते थे। परम ज्ञान को उपलब्ध रमण महर्षि भगवान कहलाते थे। अत्यंत साधारण जीवन शैली को अपनाकर वे सादगी से जीवन बिताते थे। उनका दर्शन केवल तीन शब्दों में समाहित हो सकता है : 'मैं कौन हूं?' यही उनकी पूरी खोज थी, यही यात्रा और यही मंजिल। अधिकतर मौन रहनेवाले रमण महर्षि के बहुत थोड़े से बोल शिष्यों के साथ संवाद के रूप में उपलब्ध हैं। ऐसी तीन छोटी—छोटी पुस्तिकाओं का इकट्ठा संकलन है : 'दि स्पिरिचुअल टीचिंग ऑफ रमण महर्षि।'

इस किताब की भूमिका लिखी है विख्यात मनोवैज्ञानिक कार्ल गुस्ताव जुंग ने। यह भूमिका वस्तुत: जूंग ने भगवान रमण महर्षि की जीवनी के लिए लिखी थी। इस जीवनी के लेखक थे डा. झिमर। उस लंबी भूमिका का एक अंश इस पुस्तक के आमुख में लिया गया है।

जूंग के वक्तव्य का सार—निचोड़ यही है कि पश्चिम का मनोविज्ञान अभी अपने बचपन में है और श्री रमण जैसे प्रबुद्ध पुरूषों की चेतना से बहुत दूर, बहुत छोटे उसके कदम हैं। जुग को स्वयं तो आत्मज्ञान नहीं था लेकिन उसे मनोविज्ञान की सीमाओं का और श्री रमण में प्रस्कृटित असीम का अहसास था। उसकी भूइमका का शीर्षक है : 'श्री रमण और आधुनिक मानव के लिए उनका संदेश। 'श्री रमण के बारे में जुग लिखता है : 'श्री रमण भारत श्रम के सच्चे सुपुत्र हैं।उनकी देशना और जीवन में हमें भारत का विशुद्धतम अर्क मिलता है। यह युगों—युगों का मंत्र है। भारत में वे रुपहले आकाश में एक धवल बिंदु हैं। भारत का पवित्रतम श्री रमण के जीवन और देशना में पाया जाता है।

आत्मा और परमात्मा का मिलन युरोपीय लोगों के लिए बहुत धक्कादायी सिद्ध होगा। यह खास पूर्वीय दृष्टिकोण है। मनोवैज्ञानिक इसमें कोई योगदान नहीं दे सकता क्योंकि वह उसके दायरे के बहुत पार है।'

जुंग ने मनुष्य जाति को आगाह किया है कि ' पश्चिम का भौतिकवाद अब पूरब पर फैलने लगा है और शीघ्र ही इसके परिणाम दिखाई देंगे जो कि नजरअंदाज नहीं किये जा सकते। साफ—सुथरे सुविधापूर्ण मकान में रहना निश्चय ही आरामदेह है लेकिन उससे यह जवाब नहीं मिलेगा कि मकान में रहने वाला कौन है।

'मनुष्य के बाह्य जीवन में बहुत तरक्की और सौंदर्य की गुंजाइश है लेकिन वह भूल जाता है कि बाहर कितना ही विकास हो, उसकी 'और' की भूख बढ़ती ही चली जाती है।

'जब तक आंतरिक मनुष्य विकसित नहीं होता तब तक भौतिक वस्तुएं उसे संतोष नहीं देंगी। बाह्य पर बहुत ज्यादा ध्यान मनुष्य को एक अजीब से आंतरिक दुख से भर देता है और उसे समझ में नहीं आता कि उसके दुख का कारण उसका अपना मन है। इसीलिए पूरब की प्रज्ञा और रहस्यवाद के पास हमें देने के लिए बहुत कुछ है।'

किताब की झलक:

शिष्य: क्या संन्यासी के लिए एकांत जरूरी है?

महर्षि: एकांत मनुष्य के मन में होता है। व्यक्ति बीच बाजार होकर भी मन की पूरी शांति को बनाये रख सकता है। ऐसा व्यक्ति हमेशा एकांत में रहता है। दूसरा व्यक्ति जंगल में रहकर भी अपने मन को काबू में नहीं रख सकता। उसे एकांत में होना नहीं कहा जा सकता। एकांत मन का रुख है। जो आदमी जीवन में वस्तुओं को पकड़ता है वह एकांत में नहीं हो सकता—फिर वह कहीं भी रहे। असंग व्यक्ति हमेशा एकांत में होता है।

शिष्य: मौन क्या है?

महर्षि: वह अवस्था जो वाणी और विचार का अतिक्रमण करती है वह मौन है। वह ऐसा ध्यान है जिसमें मानसिक गतिविधि नहीं है। मन पर मालकियत करना ध्यान है। गहरा ध्यान शाश्वत वाणी है। मौन निरंतर बोलना है। वह 'भाषा' का अनवरत प्रवाह है। वह बोलने के द्वारा टूटता है क्योंकि शब्द इस निःशब्द भाषा में बाधा डालते हैं। भाषण लोगों में कोई सुधार किये बगैर घंटों में उनका मनोरंजन कर सकते है। इसके विपरीत मौन स्थायी है, पूरी मनुष्य जाति का लाभ करता है। यहां मौन का अर्थ मुखरता है। मौखिक भाषण इतने मुखर नहीं होते जितना कि मौन है। मौन अनवरत बोलना है। वह सर्वोत्तम भाषा है। एक अवस्था आती है जब शब्द विलीन होते हैं और मौन छा जाता है।

शिष्य : फिर हम अपने विचारों को एक—दूसरे तक कैसे पहुंचाये?

महर्षि : जरूरत तभी होती है जब द्वंद्व की प्रतीति होती है।

शिष्य : भगवान, घूम—घूम कर जनता को सत्य की शिक्षा क्यों नहीं देते?

महर्षि : क्या तुम्हें पता है कि मैं यह नहीं कर रहा हूं? क्या शिक्षा का मतलब एक मंचपर चढ़कर इर्द—गिर्द इकट्ठे हुए लोगों पर बौछार करना होता है? सिखाना नौन का संप्रेषण होता है, और वह मौन में ही होता है।

शिष्य : आत्मा को कैसे जानें?

महर्षि : किसकी आत्मा? खोजो।

शिष्य : मेरी, लेकिन मैं कौन हूं?

महर्षि : स्वयं खोज लो।

शिष्य : मैं नहीं जानता, कैसे।

महर्षि : जरा इस प्रश्न पर विचार करो—कौन है जो कहता है : 'मैं नहीं जनता?' तुम्हारे वक्तव्य में यह 'मैं ' कौन है? तुम क्या नहीं जानते?

शिष्य : शायद कोई, या कुछ ऐसा जो मुझमें है।

महर्षि : यह 'कोई' कौन है? किसमें है।

शिष्य : शायद कोई शक्ति।

महर्षि : खोजो।

शिष्य : मैं क्यों पैदा हुआ?

महर्षि : कौन पैदा हुआ? तुम्हारे सभी प्रश्नों का एक ही उत्तर है।

शिष्य : तो फिर मैं कौन हूं?

महर्षि : तुम मुझे परखने आये हो? तुम्हें कहना चाहिए कि तुम कौन हो।–

शिष्य : मैं कितनी ही कोशिश करूं, यह 'मैं' मेरी पकड में नहीं आता। वह

साफ—साफ पता भी नहीं चलता।

महर्षि : कौन है जो कहता है कि 'मैं' का पता नहीं चलता। क्या तुम्हारे भीतर दो मैं हैं कि एक को दूसरे का पता नहीं चलता?

शिष्य : अपने आपसे यह पूछने की बजाय कि मैं कौन हूं क्या मैं अपने आपसे यह पूछ सकता हूं कि आप कौन हैं? उससे मेरा मन आपके ऊपर केंद्रित होगा और आपको मैं गुरु के रूप में ईश्वर मानता हूं। हो सकता है उससे मैं अपनी खोज के करीब आ सकूंगा।

महर्षि : तुम्हारी खोज जो भी रूप ले, तुम्हें अंततः एक ही 'मैं' पर आना है, आत्मा पर। ये सारे भेद जो 'मैं ' और 'तुम' के बीच, गुरु और शिष्य के बीच हैं वे अज्ञानवश हैं। परम अहम ही वास्तव में है। इससे अन्यथा सोचना भ्रांति है।

ओशो का नजरिया:

रमण महर्षि की किताब को किताब कहना उचित नहीं होगा, यह छोटी—सी पुस्तिका है : मैं कौन हूं?

रमण न तो विद्वान थे, न ज्याद्य पढ़े—लिखे थे। उन्होंने सत्रह याद। की आयु में घर छोड़ दिया और कभी वापस नहीं गये। जब असली घर मिल जाये तो साधारण धर में कौन रहता है? उनकी विधि तुम्हारे अंतरतम केंद्र में एक सरल—सी खोज है—पूछते जाओ, 'मैं कौन हूं?'

कभी मैं ऐसी किताबों का जिक्र करता हूं जो बहुत अच्छी हैं लेकिन उनके लेखक सामान्य है, क्षुद्र हैं। अब मैं ऐसे आदमी का जिक्र कर रहा हूं जो सचमुच बहुत महान है लेकिन जिसने बहुत छोटी—सी किताब लिखी, एक पुस्तिका जैसी। नहीं तो हमेशा वे मौन रहते। वे बहुत कम बोलते थे, कभी—कभार। यदि खलील जिब्रान रमण के पास जाता तो उसे बहुत लाभ होता। फिर वह वाकई मास्टर की आवाज सुनता। ('दि वाइस ऑफ दि आफ्टर' जिब्रान की एक किताब है) महर्षि रमण को भी जिब्रान ये मिलकर बहुत फायद्य होता। जिब्रान जैसे लिखता था वैसे कोई नहीं लिख रुकता था।

रमण कमजोर लेखक थे, जिब्रान अच्छा लेखक था लेकिन कमजोर आदमी था। वे दोनों मिलते तो संसार के लिए एक आशीष जिन होते।

दि बुक्स आय हैव लव

ओशो

61/ राबिया बसरी के गीत

राबिया-बसरी के गीत

इस किताब का नाम लिए बिना ओशो ने राबिया के गीतो को अपनी पसंदीदा किताबों की फेहरिस्त में रखा है। इसी फहरिस्त में मीरा भी आती है। जिसे ओशो बहुत 'मीठी' कहते है। और राबिया को 'नमकीन'। और इसी तुलना के ऊपर एक मजाक भी कहते है: मुझे डायबिटीज है, इसलिए मीरा को तो मैं बहुत ज्यादा खा या पी नहीं सकता। लेकिन राबिया चलेगी—नमक तो में जितना चाहे ले सकता हूं। शायद फकीरों में राबिया वह अकेली औरत है जिसकी कहानियां ओशो के प्रवचनों में बार—बार सुनाई देती है। दरअसल खोज की तो पाया कि ओशो ऐसी कोई किताब ही नहीं है, जिसमें राबिया का जिक्र न आया हो; ऐसा दूसरा नाम केवल बुद्ध का है।

राबिया 713 इस्वी में इराक के बसरा शहर में पैदा हुई थी। हजरत मुहम्मद और राबिया के बीच लगभग कोई सौ साल का ही फासला है। इसीलिए सबसे पहले हुई सूफी नारी राबिया है। और यह भी कहा जाता है कि प्रेम के मार्ग का प्रारंभ राबिया से होता है।

कहते है कि राबिया जब पैदा हुई तो उसके गरीब घर में न तो चिराग जलाने के लिए तेल था और न उसे लपटेने के लिए कोई कपड़ा। राबिया की मां ने उसके पिता से कहा कि वह पड़ोस से थोड़ा तेल और कोई कपड़ा मांग लाये। लेकिन राबिया के पिता ने यह कसम उठा रखी थी कि वह अपना हाथ अल्लाह को छोड़ कभी किसी के आगे नहीं फैलाएंगे। पत्नी का दिल रखने के लिए वह पड़ोस में गए और बिना किसी से कुछ मांगे वापस आ गये।

कहते है उस रात हज़रत मुहम्मद उनके सपने में आए और बोले, 'तेरी बेटी मुझे अजीज है। तू बसरा के अमीर के पास जा और उसे एक खत दे। जिसमें यह लिखना: तू हर रात नबी को सौ दुरूह करता है और हर जुम्मेरात को चार सौ दुरूद करता है। लेकिन पिछली जुम्मेरात को तू दुरूद करना भूल गया, सज़ा के तौर पर इस खत लाने वाले को चार सौ दीनार दे दे।'

आंखों में आंसू लिए राबिया के पिता आमिर के पास पहुंचे। अमीर नाच उठा कि वह नबी की नजरों में है। उसने 1000 दीनार गरीर गरीबों में बांटे व खुशी—खुशी चार सौ दीनार राबिया के पिता को दिये और यह भी कहा कि उन्हें जब जरूरत हो उसके पास चले आएं।

राबिया के पिता की मृत्यु के बार बसरा में अकाल पडा। राबिया अपनी मां और बहनों से अलग एक दूसरे कारवां के पीछे चल पड़ी, जो लुटेरों के हाथ लग गया। उन लुटेरों ने राबिया को गुलामों के बाजार में बेच दिया।

राबिया का मालिक उससे कड़ी मेहनत करवाता। वह बिना किसी शिकयत सब काम करती, और रात जब वह अकेली होती तो अपने प्रीतम 'अल्लाह' के साथ मानों खेलती। रात वह अपने गीत रचती और अल्लाह को सुनाती।

एक रात राबिया के मालिककी नींद खुली तो उसने देखा राबिया यह गीत गा रही थी:

आंखें आराम में है; तारे डूब रहे है
परिदों के घोसलों में कोई आवाज नहीं
समुंदर के शैतान भी चुप है
खलाफों और शहंशाहों के दरवाजे बंद है
लेकिन बस एक तेरा दरवाजा खुला है

तू ही है जो बदलता नहीं
तू ही है जो कभी मिटता नहीं
मेरे अल्लाह,
हर आशिक अपने—अपने महबूब के साथ है
मैं बस तेरे साथ हूं।

राबिया के मालिक ने देखा कि जब वह गा रही थी। तो उसके चेहरे से ऐसा नूर टपक रहा था कि जैसे रात में रोशन हो गयी हो। वह राबिया के पैरों में गिर पडा और बोला कि कल से तू मेरी मालकिन होगी और मैं तेरा गुलाम। उसने राबिया से यह भी कहा कि अगर वह जाना चाहे तो वह उसे गुलामी के बंधन से आजाद कर देगा।

राबिया ने कहा कि वह रेगिस्तान में जाकर कुछ समय अकेली रहना चाहती है। रेगिस्तान में उसने कई दिन गुजारे और वहीं मुर्शिदके रूप में उसे हसन अल बसरी मिले, जिसके चरणों में वह रहने लगी।

कहते है कि जिस दिन राबिया प्रवचन में न आती हसन चुप ही रहते। जब उनसे पूछा गया तो वह बोले, जिस बर्तन में चाश्नी हाथीको पिलाई जाती है, वह बर्तन चींटियों को चाशनी पिलाने के काम नहीं आ सकता।

एक दिन रात अचानक रात गीत गाते हुए राबिया चुप हो गई। जब वह हसन से मिली तो हसन ने उसकी आंखों में देखकर कहा: अरे तुझे तो मिल गया। कैसे मिला तुझ?

राबिया ने कहा, आप 'कैसे' की बात करते है, और मैंने जाना कि, 'कैसे' और 'ऐसे' कहीं नहीं पहुंचते है। जो है, सो है। 'कैसे' तो वहां पहुंचाएगा और होना यहां है।

हसन ने राबिया को गले लगाया और कहा कि तू जा अपने गीतों को फैला।

वह अकेली एक कुटिया में रहने लगी और हजारों शिष्य उसके पास पहुंचने लगे। वह जो गाती, शिष्य उसे लिख लेते। उसके जो गीत आज उपलब्ध है, वह उसके शिष्यों ने ही कागज पर उतारे है।

राबिया के कुछ गीत:

आबे ज़म—ज़म मिले तो आंखे धोलूं
और देख हूं कि पूरी जमीन ही मुकद्दस (पवित्र) है।
कोई भटक ही नहीं सकता वहां, जहां उसकी मदद न हो।
जो कुछ भी तुम छूते हो
उसी ने तो छुपाया है।
मैंने तो बस आलू के छिलके उतारे है
तुम उसकी कीमत सोचने लगे
प्यारों, कुछ भी कहां जाएगा?
सब अल्लाह में है।

……..

क्यों अल्लाह को छेड़ें न?
क्यो न उसके साथ शरारत करें?
क्यों न समझें उस आजादी को
जिस आजादी में 'वो' है
और जिस आजादी में 'वो' हमे देखना चाहता है।

.....

चलो ऐसा सजदा करें कि सब दीवारें गुम हो जाएं

जहां मस्ती अपने आप में ऐसी ढले

कि खुदी गुम हो जाए।

62/ लाइट ऑन का पाथ

लाइट ऑन का पाथ–(मेबिल कॉलिन्स)

उन दिनों लेखकों को उनके लेखन के लिए पुरस्कार नहीं दिया जाता था। नोबेल पुरस्कार या साहित्य अकादमियां किसी के ख्याल में नहीं थी। क्योंकि रचना क्रम में लेखक सिर्फ एक वाहक था। ज्ञान तो आस्तित्व में भरा पडा है। उससे थोड़ा सुर साध लिया बस।

''लाईट ऑन दा पाथ'' याने राह की रोशनी। रोशनी को मानव समाज के बीच लाने के लिए बहाना बनी मेबिल कॉलिन्स—एक अंग्रेज महिला जो थियोसाफी आंदोलन की एक सदस्य थी। उन्नीस वीं सदी के मध्य में और बीसवीं सदी के दूसरे-तीसरे दशक तक पश्चिम में थियोसाफी जीवन दर्शन का बहुत प्रभाव था। थियोसाफी की जन्म दाता मैडम ब्लावट्स्की एक रशियन रहस्य दर्शी थी। उसके पास अतींद्रिय शक्ति थी और वह अशरीरी सद गुरूओं के आदेशों का पालन कर सकती थी।

थियोसाफी चिंतन का पूरा जोर दूसरे लोक पर अदृश्य पर था। वे पृथ्वी से कम जुड़े थे। आकाश से अधिक। दो आँखो से देखना उन्हें गँवारा नहीं था। वे हमेशा तीसरी आँख से संसार को देखने की चेष्टा करते रहते। ब्लावट्स्की के साथ, गुहा ज्ञान में उत्सुक स्त्री पुरूषों का बहुत बड़ा समूह जुड़ा। एक से एक प्रतिभाशाली खोजी उनमें शरीक थे। मेबिल कॉलिन्स और एनी बेसंट इस संध की महत्वपूर्ण महिलाएं थी। एनी बेसंट भारत आई और उसने भारत में थियोसाफी की जड़ें जमाई। आज वह बहुत कम लोगों को मालूम होगा की भारतीय काँग्रेस की स्थापना एक अंग्रेज महिला, एनी बेसंट न की थी।

ओशो की दृष्टि यह है कि जे कृष्ण मूर्ति को मैत्रेय बुद्ध का वाहन बनाने के लिए पूरे थियोसाफी का आंदोलन निर्मित किया गया। पूरी धरती पर एक आबोहवा निर्मित की गई। ताकि उसमें यह अपूर्व घटना घट सके। लेकिन बड़े ही नाटकीय ढंग से थियोसाफी का आंदोलन समाप्त हो गया।

वर्षो मेहनत करके लेडबीटर और एनी बेसंट ने कृष्ण मूर्ति के शरीर और मन को तैयार किया और जब बुद्ध के अवतरण का क्षण तब खुद कृष्ण मूर्ति ने किसी और चेतना का वाहन बनने से मना कर दिया। तब तक वे स्वयं इतने शक्ति मान बन गए थे। कि उनकी अपनी चेतना ही बुद्धत्व को उपलब्ध हुई। इस अप्रत्याशित घटना के बाद थियोफिसी का आंदोलन लड़खडा गया।

मेबिल कॉलिन्स को प्रसाद रूप में हुए ये वचन समझने के लिए यह पृष्ठ भूमि उपयोगी होगी। थियोसाफी के सदस्यों का मार्ग दर्शन तिब्बत के कुछ अशरीरी सद्गुरु ने किया था। जिनमें ''के0 एच0'' सबसे अधिक चर्चित थे। थियोसाफी की कई किताबें के0 एच0 ने लिखवाई है। कृष्ण मूर्ति भी उन्हीं से जुड़े हुए थे।

चूंकि ये किताबें सीधे गुरु से प्रगट हुई है, शिष्यों के लिए उनकी साधना के दौरान जो भी आवश्यक सूचनाएं थी वे इनमें दी गई है। मेबिल कॉलिन्स की यह किताब वाकई में पथ का प्रदीप है।

किताब की शैली सूत्र मय है। इसके दो भाग है और हर भाग में 21 सूत्र है। ये सूत्र सदगुरू से सीधे उतरे है जैसे गंगोत्री से गंगा उतरी हो। इन सूत्रों में जो भी अंश है उन्हें समझने के लिए मेबिल कॉलिन्स ने नोटस लिखे हे। वे नोटस स्पष्ट रूप से उसकी बुद्धि से उपजे है और सूत्रों में छिपे हुए अर्थों को उजागर करते है।

इन सूत्रों को ओशो ने प्रवचन माला के लिए चुना। 1973 में जिन दिनों ओशो खुद ध्यान शिवरों का संचालन करते थे। माउंट आबू के एक शिविर में सात दिन तक ओशो इन सूत्रों पर प्रवचन करते रहे। वे प्रवचन अंग्रेजी में है। ''दि न्यू अल्केमी टु टर्न यू ऑन'' शीर्षक से इन प्रवचनों का संकलन प्रकाशित हुआ है। जो जिज्ञासु इन सूत्रों की गहराईयों में गोते लगाना चाहते हों वे इस किताब को पढ़कर आनंदित हो सकते है।

''लाईट ऑन दि पाथ'' के पहले भाग में सभी शिष्यों के लिए कुछ नियम बताये गये है। पहले भाग के अंत में यह मान गया है कि शिष्य अब समझ गया है और मौन में डूब गया है। दूसरे भाग में शिष्य से कहा जाता है कि तूने जो पाया है। उसके बीज अब दूसरे के लिए बो। दूसरा भाग ये मानकर लिखा गया है कि साधक अब शिष्य बन गया है, अपने पैरों पर खड़ा हो गया है। चल सकता है। नाच सकता है। आनंदित हो सकता है।

चूकि सूत्र बहुत छोटे है, उन्हें समझाने के लिए लेखिका ने कुछ सूत्रों पर नोटस लिखे है। और उनके बाद उसकी अपनी लंबी समीक्षा है: कमेन्टस ऑन लाईट ऑन दि पाथ'' लाइट आन दा पाथ पर टिप्पणी है।

यह टिप्पणी इन सूत्रों को पढ़ने की भूमिका बनाती है। एक निगाह देती है। सदगुरू के इन वचनों को कैसे पढ़ा जाये। क्योंकि यह कोई उपन्यास या अख़बार नहीं है।

लेखिका कहती है:

इस पुस्तक को पढ़ने वाले सभी पाठक यह स्मरण रखें कि उनमें से जो भी सोचेगा कि यह सामान्य अंग्रेजी में लिखी गई है उन्हें इसमें थोड़ा-बहुत दर्शन शास्त्र नजर आयेगा। लेकिन खास मतलब नहीं दिखाई देगा। जो इस तरह पढ़ेंगे उन्हें यह पुराना अचार नहीं बल्कि तीखा नमक मिला हुआ ऑलिव का फल प्रतीत होगा। सावधान इस तरह न पढ़ें। इसे पढ़ने का एक और तरीका है, जो कई लेखकों के बारे में सही बैठता है। दो पंक्तियों के बीच छिपा हुए गहन आशय को खोजें। वस्तुत: यह गहन, गुप्त भाषा का अर्थ खोलने की कला है। सभी रूपांतरण का रसायन प्रस्तुत करने वाली रचनाएं इसी गुप्त भाषा में लिखी जाती है। बड़े से बड़े दार्शनिकों और कवियों ने इसका उपयोग किया है। ये लोग अपनी गहन प्रज्ञा को बांटते है लेकिन उन्हें शब्दों में रहस्य भर देते है जो उसी रहस्य को आकार देते है। प्रत्येक व्यक्ति रहस्यों को खुद ही उघाड़े—यही प्रकृति का नियम है। इसमें कोई किसी की मदद नहीं कर सकता ।

थियोसाफी की रीति के अनुसार लेखिका कहती है कि संपूर्ण किताब सूक्ष्म तल के अक्षरों में लिखी गई है इसलिए उसी तल पर पढ़न जरूरी है। यह शिक्षा सूक्ष्म शरीर को विकसित और पोषित करने के लिए दी गई है। वह एक बात स्पष्ट करती है कि यह सूत्र केवल शिष्यों के लिए लिखे गए है। उनके लिए जो गुहा ज्ञान के लिए उत्सुक है।

किताब की एक झलक–

''ये नियम सभी शिष्यों के लिए लिखें गये है। इन पर ध्यान दो।

''इससे पहले कि आंखे देख सकें, वे आंसुओं के काबिल न रहें। इससे पहले कि कान सुनें, उनकी संवेदनशीलता खो जानी चाहिए। इससे पहले कि सद गुरूओं की सान्निध्य में वाणी कुछ कहे, उसकी चोट करने की ताकत खत्म होनी चाहिए।

इससे पहले की आत्मा सद गुरूओं के सामने खड़ी रहे, उसके पाँव हृदय के रक्त से घुलने चाहिए।

1—महत्वाकांक्षा को मार डालों।

2—जीवेषणा को मार डालों।

3—सुविधाओं की इच्छा को खत्म करो।

4—इस तरह काम करो जैसे महत्वाकांक्षी करते है।

5—जीवन का सम्मान इस तरह से करो जैसे वासना से भरे लोग करते है।

6—इस तरह से खुश रहो जैसे खुशी के लिए जीने वाले रहते है।

7—अलगाव के भाव को समाप्त करो।

8—उत्तेजना की इच्छा को समाप्त करो।

9—विकास की भूख को मार डालों।

10—तुम अकेले और अलग-थलग खड़े होते हो। क्योंकि जो भी शरीर में बंधा है, जिसे भी अलग होने का अहसास है, जो भी शाश्वत से जुदा हुआ है, वह तुम्हारी मदद नहीं कर सकता। संवेदनाओं से सींखो और उनका निरीक्षण करो। क्योंकि ऐसा करने से ही तुम आत्म-ज्ञान की शुरूआत कर सकते हो।

11—ऐसे विकसित होओ जैसे फूल होता है—अचेतन, लेकिन हवाओं के लिए अपनी आत्मा को खोलने को आतुर।''

''नोटस'' शीर्षक के अंतर्गत मेबिल कॉलिन्स अपने शब्दों में सूत्रों की व्याख्या करती है। पहले सूत्र ''महत्वाकांक्षा'' पर उसकी व्याख्या बहुत सार गर्भित है। देखें—''महत्वाकांक्षा पहला अभिशाप है। जो आदमी अपने साथियों के तल से ऊपर उठ रहा है उसके लिए वह बहुत बड़ा सम्मोहन है। पुरस्कार पाने की चाह का यह सरलतम रूप है। इसकी वजह से बुद्धिमान और शक्तिशाली लोग अपनी श्रेष्ठतर संभावनाओं से सतत संचित रह जाते है। फिर भी यह एक आवश्यक शिक्षक है। उसके परिणाम मुंह में धूल और राख भर देते है। मृत्यु और वियोग की भांति वह अंतत: मनुष्य को दिखाता है कि खुद के लिए काम करना निराशा के लिए काम करना है।

यद्यपि यह पहला नियम सीधा सरल मालूम होता है। उसे दर किनार मत करो। क्योंकि साधारण आदमी के ये दोष एक सूक्ष्म रूपांतरण से गुजरते है और चेहरा बदलकर शिष्य के ह्रदय में प्रगट होते है। यह कहना आसान है कि ''मैं महत्वाकांक्षी नहीं हूं:'' लेकिन यह कहना आसान नहीं है कि जब गुरु मेरे ह्रदय को पढ़ेगा तब यह उसे पूर्णतया शुद्ध पायेगा।''

किताब के दोनों भागों के अंत में तीन शब्द है:

''तुम्हें शांति मिले।''

इन शब्दों में न जाने क्या जादू है। इन्हें पढ़ते ही अंतस में शांति की तरंगें उठने लगती है। जाग्रत गुरूओं की वाणी में ही ऐसी शक्ति होती है। यदि ये सूत्र साधारण आदमी की समझ में नहीं आते तो इन गुरूओं को कोई परवाह नहीं है। उनकी तरफ से एक बात साफ है, ये सूत्र केवल शिष्य के लिए कहे गये है।

ओशो का नजरिया:–

''मेबिल कॉलिन्स की किताब ''लाईट ऑन दि पाथ।'' जो भी शिखर की यात्रा करना चाहता हो उसे लाईट ऑन दा पाथ। समझ लेनी चाहिए। यह छोटी-सी किताब है, जहां तक आकार का प्रश्न है। बस कुछ पन्ने। लेकिन जहां तक गुणवत्ता का संबंध है। वह बहुत बड़ी है, श्रेष्ठतम किताबों में से एक है। और आश्चर्य की बात, यह आधुनिक समय में लिखी गई है। कोई नहीं जानता यह लेखिका मेबिल कॉलिन्स कौन है। वह अपना पूरा नाम भी नहीं लिखती। केवल एम0 सी0 लिखती है। संयोगवशात कुछ मित्रों के द्वारा मैं इसका पूरा नाम जान सका।

एम0 सी0 क्यों? मैं इसकी वजह समझ सकता हूं। लेखक सिर्फ वाहन है। और ''लाइट आन दि पाथ'' के तो संबंध में तो यह विशेष रूप से सच है। शायद सूफी खिद्र—मैंने तुम्हें इसके बारे में बताया था। वह आत्मा जो लोगों का मार्ग दर्शन करती है, उनकी मदद करती है—एम0 सी0 के काम के भी पीछे था।

एम0 सी0 थियोसोफिस्ट थी। पता नहीं वह सूफी खिद्र द्वारा पथ प्रदर्शित करवाना पसंद करती या नहीं। लेकिन मैं यदि उससे समानांतर थियोसोफिकल नाम का उपयोग करूं तो एम0 सी0 निश्चित रूप से आनंदित होगी—वे उसे के0 एच0 कहते है। कोई भी नाम चलेगा। नाम में कुछ नहीं रखा है। तुम उसे क्या कहते हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।

63/ दी कन्फेशन्स ऑफ सेंट ऑगस्टीन

दी कन्फेशन्स ऑफ सेंट ऑगस्टीन

संत अगस्तीन एक महान संत और बिशप था। जो सन 354 में न्यूमिडिया में पैदा हुआ जिसे अब अल्जीरिया कहते है।

अगस्तीन के पिता जमीदार थे। और पेगन (गैर-धार्मिक) थे। अगस्तीन की मां मोनिका का प्रभाव उन पर अधिक था। कन्फेशन्स में मोनिका का जिक्र बार-बार आता है। और कुछ परिच्छेद तो केवल उसी के बारे में है। मोनिका की बदौलत अगस्तीन ईसाई धर्म में शिक्षित हुआ। अगस्तीन एक मेधावी युवक था। इसलिए उसके पिता उसे वकील बनाना चाहते थे। वह जब अठारह साल का हुआ तो पिता ने उसे कार्थाज नामक एक बड़े शहर में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेज दिया। लेकिन वहां पर उस मायावी नगरी के मोह जाल में फंस गया और एक स्त्री के साथ अनैतिक संबंध बना बैठा। यह संबंध पंद्रह साल तक चला। और उस स्त्री से उसे ऐ बैटा भी पैदा हुआ। जिसे अगस्तीन ''मेरे पाप का फल'' कहते है। इस समय उनकी उम्र उन्नीस साल थी।

विख्यात दार्शनिक सिसेरो का ग्रंथ पढ़कर उनका चित भोग-विलास से हटकर दर्शन और स्वयं की खोज में संलग्न हुआ। किसी भी प्रामाणिक खोजी के भीतर जो सवाल मंडराते है। वे उनके भीतर भी उठे थे, पापा क्या है? पूण्य क्या है? यदि प्रेम पूर्ण और न्यायपूर्ण परमात्मा ने संसार की रचना की है तो यहां पाप पुण्य क्यों है? दु:ख क्यों है? उस समय उपलब्ध धार्मिक ग्रंथ ''दि ओल्ड टैस्टामैंट'' में वे इनका जवाब ढूंढने लगे। लेकिन उस ग्रंथ की कहानियों में जो विरोधाभास था, उसमें वर्णित संत पुरूषों के जीवन में जो अनैतिकता का चित्रण था उसे पढ़कर अगस्तीन और भी उलझन में पड़ गये।

मिलन शहर में आकर उनका परिचय ईसाइयत के उच्चतर दर्शन में हुआ, जिसमें परमात्मा को से विश्वव्यापी चेतना के रूप में प्रस्तुत किया है। यह उन्हें ज्ञात हुआ कि परमात्मा आत्मा का ही उन्नत रूप है। और प्रत्येक व्यक्ति को उसे पाने का हक है। बशर्ते कि वह तपस्या की अग्नि से गूजरें। यहां से अगस्तीन की आध्यात्मिक अंतर् यात्रा शुरू हुई।

ईसाई धर्म में अपने अपराधों की स्वीकारोक्ति, प्रचलित है। चर्च में जाकर व्यक्ति अपने दुष्कर्मों की स्वीकारोक्ति, कन्फेशन्स कर प्रायिश्चत ले सकता है। इस छोटी सी किताब को इसी रूप में प्रस्तुत किया गया है। संत अगस्तीन ईश्वर को अपनी जीवनी सुनाते है। यह किताब उन्होंने सन 395 के बाद लिखी। तब वे बिशप बन चुके थे। और उनकी आयु लगभग 46 वर्ष की थी।

अगस्तीन के जीवन काल में ही इस किताब की ख्याति दूर-दिगन्त तक फैल गई। और शीध्र ही उसे ''न्यू टैस्टामैंट'' के बाद सर्वाधिक प्रसिद्ध ईसाई लेखन का दर्जा मिला। ''कन्फेशन्स'' की मुद्रित प्रति सबसे पहले सन 1475 में लैटिन भाषा में प्रकाशित हुई।

अँगरेजी अनुवाद सर टॉ वी मैथ्यू ने किया जो 1620 में प्रकाशित हुआ। उसके बाद ''कन्फेशन्स के कई अनुवाद हुए लेकिन सर मैथ्यू का अनुवाद बेजोड़ रहा। उनकी भाषा तथा अभिव्यक्ति की समृद्धि तथा प्राचीन लैटिन शब्दों के आशय को आधुनिक अंग्रेजी में रूपांतरित करने का कौशल अनूठा है।

किताब के नौ परिच्छेद है जो कि अगस्तीन की बृहत रचना ''रिट्रेक्टेशन्स'' से अलग किये गये है। कुछ पन्ने है 254। इन ढाई सौ पन्नों में अगस्तीन बचपन से लेकर अपने जीवन के मुख्य प्रसंगों का वर्णन करते हुए अपने उन छोटे-मोटे पापों को प्रगट करते है जिनका बोझ उनकी छाती पर सवार है।

पूरी किताब किसी ''भक्ति सूत्र'' की भांति प्रतीत होती है। सूरदास की मानिंद ''प्रभु जी तुम चंदन हम पानी'' के अंदाज में अगस्तीन परमात्मा का स्तुतिगान करते है। इस भक्त के ह्रदय में समसामयिक समाज के प्रति विद्रोह की चिनगारी भी धधकती है। उन्हें स्कूल जाना, ग्रीक भाषा का गणित और व्याकरण सीखना और प्रवचन की कला सीखना बिलकुल पसंद नहीं है। अगस्तीन का कथन ह्रदय को छू लेता है। जब वे परमात्मा से कहते है कि मेरी सबसे पहली प्रार्थना यह थी: हे प्रभु कल स्कूल में मेरे शिक्षक मेरी पिटाई न करें।

आज इक्कीसवी सदी में हमें कन्फेशन्स पढ़कर बहुत आश्चर्य होता है। क्योंकि जिन्हें अगस्तीन पाप कह रहे है वह हमारी आम जिंदगी का हिस्सा हो गये है। पढ़ाई की उपेक्षा खेल कूद में अधिक रस लेते है। शिक्षकों या बुज़ुर्गों के प्रति मन में क्रोध होना, इन्हें आज कौन पाप कहेगा? लेकिन अगस्तीन इन छोटी-छोटी बातों के लिए क्षमा मांगता है।

उनके यौवन में तो वे वासना के ज्वार में डूब ही गये थे। लेकिन अपने धार्मिक संस्कारों के कारण वे उससे उबर भी गये। और उसके बाद एक निष्णात प्रवचनकर्ता और बिशप बन गये।

कन्फेशन्स का अंत उनकी मां की मृत्यु से होता है। मोनिका एक साध्वी थी और उसका अंत भी जीसस क्राइस्ट में निमज्जित होने के भाव को लेकर ही हुआ। मां की मृत्यु के बाद भी अगस्तीन फिर परमात्मा से अपने मानवीय दुःख शोक और मां के शरीर से जो लगाव था उसके लिए क्षमा मांगते है।

साधारणतया मनुष्य जिन क्षुद्र भावों को छुपाता है उन्हें अगस्तीन जैसा प्रतिष्ठित बिशप सरलता से प्रगत करता है। शायद इसी कारण यह छोटी सी किताब पंद्रह सौ साल तक ''बेस्ट सेलर'' सर्वाधिक बिकनेवाली किताबों में से एक थी। अपने हर ज़ख़्मों को उघाड़ कर जमाने के सामने रख देना बड़ी ताकत और हिम्मत का काम है। सत्य के प्रति उनकी इसी निष्ठा ने अगस्तीन को संत बना दिया।

किताब की एक झलक:–

जैसे ही मेरे ह्रदय की गुह्म गहराइयों से दुःख का अंबार फट पडा। और मेरी आंखों के सामने उसका ढेर लग गया। एक प्रबल तूफान उभरा और उसके पीछे आयी आंसुओं की वर्षा। इस आशंका से कि मैं अभूतपूर्व चीख-पूकार से उन्हें प्रकट करूंगा। मैं अलिपियस के पास से उठ गया—क्योंकि इस रूदन प्रक्रिया के लिए मुझे एकांत की जरूरत थी। और मैं बहुत दूर चला गया। ताकि उसकी मौजूदगी मेरे लिए बाधा न बने। एक अंजीर के पेड़ के नीचे मैं गिर पडा और अपने आंसुओं को पूरी आजादी दे दी। और वे नदियों की भांति मेरी आंखों से बह निकले—तेरे लिए एक स्वीकार योग्य हवन, मेरे प्रभु। और मैं तुझे पुकारता रहा: कब तक है प्रभु। आखिर कब तक। क्या तुम हमेशा मुझसे खफा रहोगे? मेरी पुरानी अशुद्धियों का ख्याल मत करों।

मैं (बाय बल के) इन शब्दों से पुलकित था, इसलिए मैं ये उदगार कहता रहा—कब तक, कब तक? कल .....फिर अभी क्यों नहीं? इसी क्षण मेरी अशुद्धि का अंत क्यों नहीं कर देते? इस तरह कहते हुए मेरे ह्रदय के सबसे कड़वे दुःख में डूबा रोता रहा।

और आश्चर्य; मैंने एक आवाज सुनी। मानों कोई बालक या बालिका थी। नजदीक ही कहीं। गुनगुनाते हुए कह रही थी। ''उठाओ और पढ़ो'' और तत्क्षण बदले हुए तेवर से मैं गौर से सोचने लगा कि क्या बच्चे किसी खेल में इन शब्दों को गुनगुनाते है; लेकिन मुझे याद नहीं आ सका की मैंने ऐसा कुछ सुना हो। फिर अपने आंसुओं की धारा को रोकते हुए मैं उठा और मैंने सोचा कि ईश्वर यही चाहता है। कि मैं धर्मग्रंथ का वह परिच्छेद पढ़ूं जो किताब खोलने पर अनायास खुलेगा। क्योंकि मैंने सुन रखा था कि कैसे एंटनी ने इत्तेफ़ाक से एक पृष्ट पढ़ने पर यह सोचा कि यह उसे दी गई चेतावनी है; मानो वह परिच्छेद उसी के लिए लिखा गया था–

''जा, तेरे पास जो भी है उसे बेच दे और गरीबों को बांट दे, और तुझे स्वर्ग की संपदा मिलेगी। तुम आओ और मेरे पीछे चलो।''

इस आदेश पर अमल करके वह फौरन तेरे में समा गया।

इसलिए शीध्रता से मैं वहां गया जहां अलिपियस बैठा था, क्योंकि मैंने एपॉसल की किताब वहां छुपा रखी थी। जब मैं वहां से उठा था। मैंने जल्दी से वह किताब उठाई उसे खोला और जहां मेरी नजर पड़ी वहीं से पढ़ना शुरू किया: ''न तो दंगे-फसाद में न शराब में, न तो व्यभिचार में उच्छृंखल आचरण में, न संघर्ष और ईर्ष्या में वरन अपने ध्यान को परमात्मा क्राइस्ट में केंद्रित करो। और मांस और उसकी सुख पूर्ति के लिए कुछ भी न करो।''

इसके आगे मैने नहीं पढ़ा, और न ही इसकी कोई जरूरत थी, क्योंकि इस वाक्य के समाप्त होते ही मेरे ह्रदय में एक सुस्पष्ट और अमिट रोशनी प्रगट हुई जिसमें मेरे पुराने संदेहों का अँधेरा छट गया।

फिर किताब को बंद करके उस पर एक उँगली रखकर मैंने शांत मुद्रा से अलिपियस को वह सब बताया जो घटा था। और उसने मुझे वह सब कहा जो उसके भीतर तरंगायित हुआ था। और जिसके बारे में मुझे कुछ भी पता नहीं था। फिर उसने मुझे वह अंश दिखाने के लिए कहा जो मैंने पढ़ा था। वह उससे आगे की पंक्ति पढ़ने लगा: और अब उसे अपने साथ ले चलो जिसका विश्वास कमजोर है।'' और यह संदेश उसने अपने आप पर लागू किय—और वैसा मुझे कहा भी। इस आदेश से उसे बहुत बल मिला और बिना किसी झंझट या विलंब से वह मेरे साथ हो लिया। हालांकि मेरे साथ उसके मतभेद थे लेकिन शुभ उद्देश्य और निश्चय के तले वे सब विलीन हो गये।

वहां से हम मेरी मां के पास गये, उसे पूरा वाकया सुनाया और वह आनंदित हुई। वह प्रसन्नता से नाच उठी और है प्रभु, उसने तुझे बहुत धन्यवाद दिया। तू जो कि उससे कर सकता है। जो हम मांगते है या सोचते है। अब उसको दिखाई दिया कि तुने मेरे बारे में इतना अधिक दिया है जितना वह अपनी उदासी और दुखभरी प्रार्थनाओं में भी नहीं मांग सकती थी। क्योंकि तूने मुझे इस कदर तेरे प्रति समर्पित कर लिया कि अब मैं इस जगत की कोई महत्वाकांक्षा या पत्नी इत्यादि की चाहत ही नहीं कर सकता। विश्वास के नियम पर मेरे पाँव जमाकर तूने उसे दिखा दिया है कि मुझे कहां खड़ा होना चाहिए।

इस तरह तूने उसके शोक को आनंद में बदल दिया—इतना ओतप्रोत जितना कि उसने सोचा भी नहीं होगा: इतना निर्मल और विशुद्ध जितना कि मेरे जैसे बेटे के भीतर उसे मिलना मुश्किल था।

ओशो का नजरिया–

अगस्तीन पहला आदमी है जिसने अपनी जीवनी निर्भीकता से लिखी है। लेकिन वह दूसरी अति पर चला गया। अपनी किताब ''कन्फेशन्स'' में अगस्तीन बहुत ज्यादा क्षमा याचना करता है—उन पापों के लिए भी जो उसने किये भी नहीं—सिर्फ स्वीकारोक्ति के आनंद के लिए। दुनिया को यह कहने का आनंद, कि ऐसा एक भी पाप नहीं है जो मैंने नहीं किया है। आदमी जो भी पाप कर सकता है वे मैंने सब किये है।''

यह सच नहीं है, कोई आदमी सभी पाप नहीं कर सकता। ईश्वर भी नहीं। ईश्वर का क्या कहना है। शैतान भी सोचने लगता है कि अगस्तीन जिन पापों की माफी मांग रहा है उनका मजा कैसे लिया जाये।

अगस्तीन ने अतिशयोक्ति की। यह संतों की आम बीमारी है। वे हर बात को बढ़ा-चढ़ा कर बोलते है—उनके पापों को भी; ताकि उसके बाद वह आपने पूण्य को भी बढ़ा चढा कर बात सके। यह कहानी का दूसरा हिस्सा है। अगर तुम अपने पापों की अतिशयोक्ति करते हो तो उसकी पृष्ठभूमि में छोटे से पुण्य भी बहुत बड़े

बहुत रोशन मालूम होंगे। वे स्याह बादल बिजली को अधिक प्रगट करते है। पाप किये बगैर तुम संत नहीं बन सकते। जितने बड़े पाप, उतना बड़ा संत, सीधा गणित है।

फिर भी मैं इस किताब को अपनी मन पंसद किताब में शामिल करता हूं, क्योंकि यह बड़ी खूबसूरती से लिखी गई है। मैं ऐसा आदमी हूं—कृपा करके इसे दर्ज करो—अगर झूठ भी खूबसूरत हो तो मैं उसके सौंदर्य के लिए उसकी तारीफ करूंगा। उसके झूठ के लिए नहीं, कौन फ्रिक करता है वह झूठ है या नहीं। लेकिन उसकी सुंदरता उसे पढ़ने का आनंद देती है।

कन्फेशन्स झूठों का श्रेष्ठतम कृति है। लेकिन इस आदमी ने अपना काम बेहतरीन ढंग से किया है। निन्यानवे प्रतिशत सफल हुआ है। उसके बाद कइयों ने कोशिश की—टालस्टाय ने भी, लेकिन वह सफल नहीं हुआ। अगस्तीन उससे बेहतर साबित हुआ।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

64/ गॉड स्पीक्स-(मेहर बाबा)

गॉड स्पीक्स—मेहर बाबा

यह एक अदभुत किताब है जो मौन से प्रगट हुई है। जो व्यक्ति आजीवन निःशब्द में डूबा हुआ था उसने उस परम मौन को और परात्पर की अनुभूति को शब्दों में ढाला है।

यह जिक्र हो रहा है बीसवीं सदी के प्रारंभ में हुए विश्व विख्यात संत मेहर बाबा का। उनकी किताब ''गॉड स्पीक्स'' ओशो की मनपसंद किताबों में शामिल है।

मेहर बाबा जबान से कभी नहीं बोले, लेकिन उंगलियों से हमेशा बोलते थे। उनके पास ए, बी, सी के अक्षरों का एक तख्ता था। और उस तख्ते पर बिजली की तरह नाचती हुई उनकी उंगलियां उनका आशय लोगों तक पहुंचा देती। काश उस जमाने में कम्पयूटर होता। मेहर बाबा का संदेश वे खुद ही टाइप कर के संप्रेषित कर देते। जो भी हो, जिस ढंग से यह किताब संकलित और संपादित की गई है वह अपने आप में एक आश्चर्य है। किताब के संपादक आइ वी डयूस और जॉन स्टीवन्स खुद हैरान है कि यह असंभव काम उन्होंने कैसे कर लिया। अक्षर-तख्त पर द्रुत गति चलती हुई मेहर बाबा की उंगलियों के शब्दों को समझकर साथ ही साथ वे उन्हें टाइप करते गये। उनकी पांडुलिपि को बाद में स्वयं मेहर बाबा ने संपादित किया।

परमात्मा के गर्भ से निकली हुई इस मौन वाणी का नाम अत्यंत सार्थक है: गॉड स्पीक्स—परमात्मा बोलता है। सृष्टि की उत्पती, उसका उद्देश्य आत्मा की अधोगति, ऊर्ध्व गति और परमात्मा का स्वरूप—यह मूलत: इस किताब की रूप रेखा है। दस परिच्छेदों में मेहर बाबा उनके अपने दर्शन को शब्दांकित करते है। उनके दर्शन को सुस्पष्ट करने के लिए उन्होंने स्वयं कुछ नक्शे बनाकर पुस्तक में जोड़े है।

पहले परिच्छेद में चेतना के विभिन्न तल वर्णित कर बाबा दूसरे परिच्छेद में बताते है कि इस संपूर्ण चेतना को आकार में उतरने की इच्छा कैसे हुई। स्वयं को जानने की इच्छा से सृष्टि उत्पन्न हुई। यह ठीक ऐसे ही है जैसे वेदों में या उपनिषदों में उत्पत्ति की प्रक्रिया कही गई है। ''एकोअहम बहुस्याम'' चेतना के मूल रूप को ये वे अन लिमिटेड को सीमित होने की इच्छा हुई और वह सीमित बन गया, तो इसका अर्थ हुआ कि सीमित भी इच्छा करके वापिस असीम बन सकता है। तो हर आत्मा के गर्भ में परमात्मा बनने की स्वाभाविक इच्छा स्फुरित होती रहती है। वह अकारण नहीं है।

तीसरे परिच्छेद में बाबा कहते है कि मनुष्य देह में चेतना को पूर्ण विकसित होने के लिए सात तलों से गुजरना पड़ता है। वे तल है; पत्थर से खनिज, खनिज से वनस्पति, वनस्पति से कीटक, कीटक से मछली, मछली से पक्षी, पक्षी से पशु, पशु से मनुष्य। चेतना जब स्थूल तल पर जीने से ऊब जाती है तब उच्च तलों पर उठने की चेष्टा करती है। यही उसकी आध्यात्मिक यात्रा का प्रारंभ है।

चेतना जब उर्ध्व गति करती है तो वह भी सात तलों से गुजरती है। ये सात तल स्थूल से सूक्ष्म की और बढ़ते चले जाते है। लेकिन चेतना जो कि सातवें तल पर याने कि उसके मूल रूप में अपरिसीम है, उसे विकसित होने के लिए मनुष्य की देह ही धरनी होती है। मनुष्य देह में मन और बुद्धि की संभावना है, इसलिए बुद्धत्व भी वहीं संभव है।

नौवें परिच्छेद में मेहर बाबा ईश्वर की भी दस अवस्थाएं प्रस्तुत करते है। यह उनकी विराट वैशिवक अनुभूति का परिणाम है कि वे देह में बंधी हुई मनुष्य कि आत्मा को भी ईश्वर की ही एक अवस्था मानते है। पुनर्जन्म की प्रक्रिया में संलग्न आत्मा, विकास करती हुई आत्मा, प्रगत आत्मा—सभी उसी परमात्मा की

अवस्थाएं है। और दसवीं अवस्था है: मैन—गॉड। ''गॉड एज मैन गॉड'' अर्थात मानवीय परमात्मा के रूप में ईश्वर। उनका इशारा परिपूर्ण सदगुरू की और है। वह भी परमात्मा का ही एक रूप है।

दसवें और अंतिम परिच्छेद में वे इस गहन चर्चा का निष्कर्ष निकालते है। यह परिच्छेद आश्चर्य जनक रूप से छोटा है। यह परिच्छेद मेहर बाबा के शब्दों में ही पढ़े:—

''परमात्मा को समझाया नहीं जा सकता। उसके संबंध में तर्क नहीं किया जा सकता। उसका सिद्धान्त नहीं बनाया जा सकता। न ही उसकी चर्चा की जा सकती है। या उसे समझा जा सकता है। परमात्मा को सिर्फ जिया जा सकता है।

तथापि यहां जो कहां गया है। और आदमी के मन की बौद्धिक हलचल को शांत करने के लिए जो भी समझाया गया है उसमें बहुत से शब्द और स्पष्टीकरण जोड़ने बाकी है। क्योंकि सत्य यह है कि सच को अनुभव किया जाना चाहिए और ईश्वर की दिव्यता को स्वयं पाना और जीना चाहिए।

अनंत की यह शाश्वत सत्य को समझना सृष्टि के भ्रम में उलझे हुए व्यक्ति रूप आत्माओं का लक्ष्य नहीं है। क्योंकि सत्य को समझा नहीं जा सकता उसे होश पूर्ण अनुभवों के द्वारा बोधगम्य किया जा सकता है।

इसलिए लक्ष्य है: सत्य को अनुभव करें और मनुष्य देह में रहते ''अहं ब्रह्मास्मि'' को उपलब्ध हो।''

इस परिच्छेद में मेहर बाबा जो कहना चाहते थे। वह पूरा हो जाता है। लेकिन इसके बाद 77 पृष्ठों का परिशिष्ट जोड़ा गया है जो संपादकों के अनुरोध पर मेहर बाबा के द्वारा किये गये कुछ स्पष्टीकरणों का संकलन है। 177 से लेकर 249 तक यह परिशिष्ट अपने आप में एक अलग पुस्तक बन सकती है। सधना पथ पर उठने वाले विभिन्न प्रश्नों के बारे में मेहर बाबा यहां चर्चा करते है।

इसमें एक छोटा सा आलेख संन्यास पर भी है। आज से पचास-साठ साल पहले संन्यास की जो स्थिति थी उसके बारे में मेहर बाबा की टिप्पणी सोचने जैसी है। उसे पढ़ कर लगता है आज भी क्या बदलाहट हुई है?

बह्म संन्यास याने सारे भौतिक सुखों और जुड़ावों का त्याग करना। प्रारंभिक चरणों में यह सहयोगी है यदि उसमे आतंरिक त्याग और परमात्मा की अभीप्सा जगती है। भारत में ऐसे हजारों हजार संन्यासी पाये जाते है जिन्होंने बह्म संन्यास एक व्यवसाय के रूप में अपना लिया है। ताकि वे एक आलसी और अनुत्पादक जिंदगी जीयें। अगर बह्म संन्यास सच्चा हो तो वह आंतरिक संन्यास में रूपांतरित होगा।

पश्चिम के लिए बह्म संन्यास गैर व्यावहारिक है और सुझाया नहीं जा सकता। उनका संन्यास आंतरिक होगा। और मन का त्याग। व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए दुनियां में रहे और संसार में न उलझे।

सूफी कहते है: ''दिल बा यार, दस्त बे कर।''

दिल यार के साथ लगा रहे और हाथ काम करते रहें।

ओशो का नजरिया:–

यह किताब ऐसे व्यक्ति ने लिखी है। जिसे जुन्नैद जरूर पसंद करता—मेहर बाबा। वह तीस साल मौन रहे। कोई दूसरा व्यक्ति इतने लंबे अरसे तक मौन नहीं रहा। महावीर सिर्फ बारह साल मौन रहे। यह रेकार्ड था। मेहर बाबा ने सारे रिकार्ड तोड़ दिये। तीस साल मौन रहना। वे अपने हाथों की मुद्राएं बनाते थे—जैसे में बनाता हूं। क्योंकि कुछ बातें है जो केवल मुद्राओं से ही कही जा सकती है। मेहर बाबा ने शब्द छोड़ दिये लेकिन वे मुद्राएं नहीं छोड़ सके। और यह हमारा सौभाग्य है कि उन्होंने मुद्राएं नहीं छोड़ी। उनके जो निकटवर्ती शिष्य थे। उन्होंने उनकी मुद्राओं को समझाकर लिखना शुरू किया। और तीस साल बाद जो किताब प्रकाशित हुई उसका शीर्षक बड़ा अजीब था—जैसा कि होना चाहिए था—उसका शीर्षक था: गॉड स्पीक्स। ईश्वर बोलता है।

मेहर बाबा मौन में जिये और मौन में मरे। उन्होंने कभी बात नहीं की। लेकिन उनका मौन ही प्रखर वक्तव्य था—उनकी अभिव्यक्ति, उनका गीत। इस अर्थ में किताब का शीर्षक अजीब नहीं है—ईश्वर बोलता है।

एक झेन किताब है: फूल बोलते नहीं। यह बिलकुल गलत है। फूल भी बोलता है। वह उसकी सुगंध से बोलता है। निश्चित ही, वह अँगरेजी जापनी या संस्कृत नहीं बोलता लेकिन वह फूलों की भाषा बोलता है। लेकिन मैं जानता हूं क्योंकि मुझे सुगंध की एलर्जी है। मैं मीलों से फूल की जबान सुन सकता हूं। इसलिए मैं अपने अनुभव से यह कह रहा हूं। यह कोई प्रतीक नहीं है। ईश्वर भी बोलता है—आवाज कैसी भी हो। यह मेहर बाबा के लिए एकदम सही लागू होता है। वह बिना बोले बोलते थे।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

65/ समयसार-(आचार्य कुन्दकुन्द)

समयसार—आचार्य कुन्दकुन्द

दिगम्बर जैन संप्रदाय का महान ग्रंथ समयसार जैन परंपरा के दिग्गज आचार्य कुन्द कुन्द द्वारा रचित है। दो हजार वर्षों से आज तक दिगम्बर साधु स्वयं को कुन्कुन्दाचार्य की परंपरा का कहलाने का गौरव अनुभव करते है।

जैसी की भारत की अध्यात्मिक परंपरा रही है, अध्यात्म-ग्रंथों के रचेता स्वयं के व्यक्तिगत जीवन के संबंध में कभी-कभी उल्लेख नहीं करते। आचार्य कुन्दकुन्द भी उसके अपवाद नहीं है। चूंकि उनकी कोई ऐतिहासिक जानकारी नहीं है। उनके बारे में विभिन्न कथाएं प्रचलित है। उन कथाओं में ऐतिहासिक तथ्य चाहे कम हों, लेकिन सत्य बहुत है। कथाओं में वर्णित आलेखों तथा कुछ शिलालेखों को जोड़ कर जो कहानी बनती है वह इस प्रकार है:

आज से लगभग दो हजार साल पहले पूर्व विक्रम की प्रथम शताब्दी में कोण्डकुन्दपुर (कर्नाटक) में इनका जनम हुआ। माता-पिता ने इनका नाम रखा यह तो ज्ञात नहीं लेकिन इनके कई नाम प्रचलित है। वक्रगीव, एलार्चाय, पद्मनन्दी, गृद्धपृच्छ, इत्यादि। जो नाम लोकप्रिय हुआ: कुन्दकुन्द, उसका कारण यह होगा कि वे कोण्डकुन्दपुर के निवासी थे। कवि की काव्यात्मक दृष्टि से देखें तो चन्द्र गिरि का एक शिलालेख कहता है: कुन्द पुष्प समान धवन प्रभा होने से इन्हें यह नाम प्राप्त हुआ।

विंध्य गिरि शिलालेख में उनका वर्णन और भी सुन्दर है: यतिश्वर कुन्दकुन्द मानो धूल से भरी धरती से चार अंगुल ऊपर चलते थे। क्योंकि वे अन्तर-बाह्य धूल से मुक्त थे।

चौदहवीं शताब्दी तक आचार्य कुन्दकुन्द की महिमा इतनी वृद्धि गत हो गई थी कि उस समय के कवि वृन्दवादन दास को कहना पडा:

हुए है, न होहिंगे; मुदिन्द कुन्दकुन्द से।

भगवान महावीर की श्रुत परंपरा में गौतम गणधर के साथ केवल कुन्कुन्दाचार्य का ही नाम आता है। अन्य सभी आचार्य ''आदि'' शब्द में सम्मिलित किए जाते है।

भगवान महावीर की अचेलक परंपरा में आचार्य कुन्दकुन्द का अवतरण उस समय हुआ जब उसे उनके जैसे तलस्पर्शी एवं प्रखर प्रशासन आचार्य की आवश्यकता थी। यह समय श्वेताश्वतर मत का आरंभ काल ही था। उस समय बरती हुई किसी भी प्रकार की शिथिलता भगवान महावीर के मूल मार्ग के लिए घातक सिद्ध हो सकती थी।

आचार्य कुन्दकुन्द पर दो अत्तर दायित्व थे: एक तो अध्यात्म शास्त्र को व्यवस्थित लेखन रूप देना और दूसरा शिथिल आचार के विरूद्ध सशक्त आन्दोलन चलाना। दोनों ही कार्य उन्होंने सामर्थ्य पूर्वक किये।

कुन्दकुन्द की ग्रंथ संपदा बड़ी है। उन्होंने लगभग आधा दर्जन ग्रंथ लिखे जिनमें समयसार(जिसका मूल नाम है समयपाहुड़) सर्वाधिक प्रभावशाली रहा।

कुन्दकुन्द के एक हजार वर्ष बाद ''समयसार'' पर आचार्य अमृतचन्द्रदेव ने संस्कृत में गंभीर टीका लिखी, जिसका नाम है ''आत्म ख्याति'', समयसार का मर्म जानने के लिए आज इसी टीका का आश्रय लिया जाता है। समयसार की प्रशंसा करते हुए वे इसे ''जगत का अक्षय चक्षु'' कहते है। उनका मानना है कि समयसार से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है।

समयसार क्या है?

यह ग्रंथ दो-दो पंक्तियों से बनी 415 गाथाओं का संग्रह है। ये गाथाएँ पाली भाषा में लिखी गई है। आधुनिक युग में समयसार का प्रसार करने वाले कान जी स्वामी इसे इस प्रकार प्रस्तुत करते है।

''ये समयसार शस्त्र शास्त्रों का आगम है। लाखों शास्त्रों का सार इसमें है यह जैन समाज का स्तंभ है। साधकों की कामधेनु है, कलाकृति है। इसकी हर गाथा छठवें सातवें गुण स्थान में झूलते हुए महामुनि के आत्मानुभव से निकली हुई है।''

इस समयसार के कुल नौ अध्याय है जो क्रमश: इस प्रकार है।

जीव-अजीव अधिकार

कर्ता कर्म अधिकार

पुण्य–पाप अधिकार

आस्त्रव अधिकार

संवर अधिकार

निर्जरा अधिकार

बंध अधिकार

मोक्ष अधिकार

सर्व शुद्ध ज्ञान अधिकार

इन नौ अध्यायों में प्रवेश करने से पहले एक आमुख है जिसे वे पूर्वरंग कहते है। यह मानों ''समयसार'' का प्रवेशद्वार है। इसी में वे चर्चा करते है कि समय क्या है, यह चर्चा बड़ी अर्थ पूर्ण, अर्थ गर्भित है।

''समय'' शब्द के दो हिस्से है: सम+अय। अयन का अर्थ है गमन करना, जाना। अर्थात समय का जब भी अनुभव होता है, वह ऐसे होता है जैसे वह गुजर रहा है। समय का अनुभव स्थिरता की तरह नहीं होता। ''सम'' उपसर्ग है जिसका अर्थ है: एक साथ। जो एक साथ गतिमान है वह समय।

तथापि अयन का एक और अर्थ भी है: जानना, वेदना,। समय को जानता कौन है? जो समय को जानता है वह भीतर बैठा है। वही जानने वाला है। इसलिए कुन्दकुन्द समय को आत्मा भी कहते है। और वहीं अर्थ सम्यक है। क्योंकि समयसार आत्मा की पूरी यात्रा का सार-निचोड़ है। संक्षेप में देखा जाए तो समयसार वही कहता है जो भारत का हर मुख्य दर्शन कहता है। जीव बंधन में कैसे पडा और उससे मुक्त कैसे हो सकता है। सांख्य, वेदान्त या समस्त उपनिषाद जिस प्रकिया का ऊहापोह करते है। वहीं समयसार में है, कुछ खास शब्दों और धारणाओं के फर्क के साथ।

सृष्टि के जन्म की प्रक्रिया और उससे पार उठने के विषय में हर धर्म की अपनी प्रणाली और शब्दावली होती है: वैसी समयसार की भी है। लेकिन मूल प्रतिपादन एक ही है। इससे अन्यथा हो भी नहीं सकता। क्योंकि मनुष्य का मन जिस ढंग से काम करता है, और अस्तित्व के जो भी मूलभूत तत्व है, नियम है, वे तो एक जैसे है। चाहे हम जैन दृष्टिकोण से देखें चाहे बौद्ध, चाहे हिन्दू।

उदाहरण के लिए, धर्म कोई भी हो, इंद्रियाँ पाँच ही होंगी, और उनके विषय भी पाँच ही होंगे। उन विषयों के बारे में मन में उठने वाली इच्छाएं भी समान होंगी। यह तो संभव नहीं है कि बौद्ध व्यक्ति आँख से सुनता हो और कान से देखता हो। और जैन धर्मी किसी और बंदियों से देखता-सुनता हो। समयसार पढ़ते हुए उन सारे दर्शन शास्त्रों का पुन: स्मरण होता है जो प्रत्येक ने कभी न कभी पढ़े है।

समयसार की सर्वप्रथम गाथा भारत की प्राचीन परंपरा के अनुसार मंगलाचरण की है। यह एक खूबसूरत रिवाज था जो सभी प्रचीन भारतीय शास्त्रों में पाया जाता है। अपनी बात शुरू करने से पहले उस

विषय में पारंगत पूर्व सिद्धों और ज्ञानी जनों को प्रणाम करके उनके आशीर्वाद की छाया में लेखक मार्गस्थ होते है। कुन्कुन्दाचार्य भी उसी का निर्वाह करते है। वे यह भी कहते है कि श्रतकेवलियों (गणधर) द्वारा कथित समयपाहुड़ को मैं आप तक पहुंचा रहा हूं।

आज के अहंकारी युग में यह वक्तव्य चिंतन मनन करने जैसा है। इतने महान ग्रंथ की रचना को प्रांरभ करते हुए, जिसे दो हजार वर्षों का अंतराल धूमिल न कर सका, लेखक इतना विनम्र है कि खुद इस विशाल कार्य का कर्ता बनना नहीं चाहता। वे कवल इस ज्ञान के वाहक है।

इस पश्चात वे दूसरी गाथा में समय की परिभाषा करते है जो कि पीछे हमने देखी।

पूरे ग्रंथ के अंत में आचार्य चेतावनी और एक प्रलोभन भी देते है: जो समय पाहुड के वचनों को पढ़ कर उसके अर्थ को अनुभव भी करेगा वह उत्तम सौरव्य को प्राप्त होगा।

इस ग्रंथ में जीवन को—जिसे हम जीवन समझते है—रंगमंच की उपमा दी गई है। जो कि बड़ी अर्थपूर्ण प्रतीत होती है। जीवन के नाटक में हम इसीलिए खो जाते है क्योंकि नाटक को सच मान लेते है। ''पाप-पुण्य अधिकार अध्याय में (गाथा नं. 145) कुन्कुन्दाचार्य प्रश्न करते है:

तुम अशुभ कर्म को कुशील ओ शुभ कर्म को सुशील मानते हो, लेकिन वह कर्म सुशील कैसे हो सकता है। जो तुम्हें संसार में या रंगमंच में प्रविष्ट कराता है।

इसके बाद वे कर्म का रहस्य समझाते है।

''वस्तुत: कोई कृत्य नहीं बाँधता। वह राग में डूबा हुआ मन ही है जो बंध जाता है। विरक्त होकर कुछ भी करो तो नहीं बांधगे; यहीं जिनोपदेश है।

अब यह पूरा कर्म सिद्धांत हर धर्म का, हर दर्शन का अधार है। और यहीं से मुक्ति का प्रयास शुरू होता है।

प्रत्येक प्रकरण का प्रारम्भ आचार्य ने इस प्रकार किया है मानो वह एक रंगमंच प्रवेश हो। प्रकरण के प्रारंभ में पात्र मंच-प्रविष्ट होता है अंत में निकल जाता है। और यह पात्र कौन है? पाप-पुण्य मंच पर प्रवेश करते है और अंत में द्वन्द्व समाप्त हो जाता है। इसलिए वे दोनों एक होकर मंच से बाहर निकल जाते है। चौथे अध्याय में आस्त्रव याने मनोविकार मंच पर आते है और अंत में बाहर निकल जाते है। क्योंकि चित में ज्ञान का उदय होते ही विकार ओस करण की तरह विलीन हो जाते है। क्योंकि मन की जो विभिन्न अवस्थाएं हैं—आस्त्रव या संवर या निर्जरा—ये सब कुन्कुन्दाचार्य की दृष्टि में विभिन्न स्वांग है जो मन रचता है। कभी वह विकार बनकर आयेगा, कभी निर्विकार बनकर, लेकिन वे सब स्वांग ही है, सत्य नहीं।

यहां तक कि उनकी दृष्टि में मोक्ष तत्व भी एक स्वांग ही है। आत्मा की रंगभूमि में जीवन-अजीव, कर्ता-अकर्ता, पुण्य-पाप, आस्त्रव-संवर, निर्जरा, बंध, और मोक्ष ये आठ स्वांग आते है। उनका नृत्य होता है। और अपना-अपना स्वरूप बताकर वे निकल जाते है। आखिर अध्याय में सब स्वाँगों के विदा होने पर सर्व विशुद्ध ज्ञान प्रवेश करता है। उसके बाद रंगमंच के पात्र और उनका अभिनय समाप्त हो जाता है। क्योंकि पूरा खेल ही खत्म हो जाता है। आत्मा को अपनी सुधि आ जाती है। कि न मैं कर सकता हूं, न भोग सकता हूं। मैं सिर्फ हूं।

वेदान्त दर्शन जिसे माया कहते है उसे ही कुन्कुन्दाचार्य नाटक की उपमा देते है। और आधुनिक मन के लिए इस दृष्टान्त को समझना अधिक सरल है। ''माया'' शब्द घिस-घिस कर अपना मूल आशय खो बैठा है। वह इतना निन्दित हो चुका है कि अब यह शब्द ही मायावी लगता है।

वास्तव में समयसार को पुनरुज्जीवित करना हो तो उसके शब्दों की प्राचीनता की धूल झाड़ कर उन्हें सद्य स्नात, तरोताजा बनाना आवश्यक है। जैसे निर्जरा को मनोविज्ञान का सुपरिचित शब्द ''कैथार्सिस'' या रेचन कहा जाये तो उसे समझना अधिक सरल होगा। ''संवर'' और कुछ भी नहीं, योग शास्त्र में कथित चित

वृति निरोध है। इस प्रकार निरंतर अन्य शब्दों को भी पुनरुज्जीवित की अग्नि से गुजारा जाये तो इनके आशय कुंदन की भांति निखरेंगे। जीव, आत्मा बंध, मोक्ष, कर्म-अकर्म, पाप-पूण्य, इन सभी शब्दों की गठरी बाँध कर समुद्र में फेंक देने का समय आ गया है। इससे इनमें निहित अनुभव तो विलीन नहीं होगा। उल्टे नए शब्दों के वस्त्र पहनकर जगमगाने लगेगा। कुन्कुन्दाचार्य का ही प्रतीक लें तो वे कहते है: स्वर्ण को कितना ही तपाओ, उसकी स्वर्णत्व खोता नहीं है। उसी प्रकार कर्मों की आग में तपकर भी ज्ञानी अपना ज्ञान खोता नहीं है। ज्ञानी के शब्दों में भी उसके ज्ञान का स्वर्ण भरा हुआ है। उसे आग से क्या भय।

कुन्कुन्दाचार्य के एक हजार साल बाद आचार्य अमृत चन्द्र देव ने ''अमृतख्याति'' टीका लिखकर समयसार को समसामयिक बनाया। उनकी अभिव्यक्ति आधुनिक मनुष्य के अधिक निकट है बजाएं स्वयं कुन्कुन्दाचार्य के। आज फिर से एक हजार साल बाद उसे पुन: नवीन करने की आवश्यकता है।

कौन करेगा इसे?

ओशो ने इस पर प्रवचन करने के लिए सोचा पर नहीं हो सका। इस अपूर्व ग्रंथ को पढ़ने वाले आचार्य कुन्दकुन्द का एक निर्देश ग्रहण कर लें तो ग्रंथ लिखने का उनका उद्देश्य पूरा होगा। उनके वचनों का उपयोग अपना पांडित्य मजबूत करने के लिए न करें, वरन उसे विसर्जित करने के लिए करें।

इस ग्रंथ को पढ़ने वाला कम से कम कुन्कुन्दाचार्य का अंतिम संदेश ही समझ ले तो समयसार समसामयिक हो सकता है।

''जो भव्य जीव इस ग्रंथ को वचन रूप में तथा तत्व रूप में जानकर उसके अर्थ में स्थिर होगा वह उत्तम सौरव्य को प्राप्त होगा।''

ओशो का नजरिया:–

कुन्दकुन्द का ''समयसार'' आज की मेरी सूची में चौथी किताब है। मैंने उस पर कभी प्रवचन नहीं किया। मैंने कई दफे सोचा लेकिन हमेशा उस ख्याल को छोड़ दिया। जैनियों द्वारा निर्मित की हुई श्रेष्ठतम पुस्तक है यह, लेकिन यह रूखा-सूखा गणित है। इसलिए मैंने यह ख्याल बार-बार छोड़ दिया। मुझे कविता से प्रेम है। यदि यह काव्यात्मक होता तो मैं उस पर प्रवचन करता।

मैंने उन कवियों पर भी प्रवचन किए है जो जागे हुए नहीं है। लेकिन जो बुद्ध होकर भी गणित और तर्क से अभिव्यक्ति करते थे उन पर नहीं। गणित इतना रूखा-सूखा है। तर्क रेगिस्तान है।

हो सकता है वे यहां, मेरे संन्यासियों के बीच कहीं होंगे.....लेकिन नहीं-नहीं हो सकते। कुन्दकुन्द बुद्ध पुरूष थे। वे पुन: पैदा नहीं हो सकते है।

उनका ग्रंथ सुंदर है, इतना ही कह सकता हूं। इससे अधिक मैं कुछ नहीं कह सकता। क्योंकि वह गणित जैसा है। गणित का भी अपना सौंदर्य है, उसकी लय है। इसलिए में उसकी प्रशंसा करता हूं। गणित का अपना सत्य है लेकिन वह सीमित है और दाहिने हाथ का है।

''समयसार'' का अर्थ है: सार-सूत्र। अगर कभी कुन्दकुन्द का समयसार तुम्हें मिला तो उसे दाहिने हाथ में पकड़ना। बाएं हाथ में नहीं। यह दाहिने हाथ की पुस्तक है—हर तरह से दाहिनी। यह इतनी सही है कि मुझे इससे थोड़ी वितृष्णा है—लेकिन आंखों में आंसू भर कर। क्योंकि मुझे उस आदमी को सौंदर्य विदित है—जिसने उसे लिखा। मुझे कुन्दकुन्द से प्रेम है, और उसकी गणित की अभिव्यक्ति मुझे जरा भी पसंद नहीं है।

ओशो

बुक्स आई हैव लव्ड

66/ लॉग पिलग्रिमेज-(शिवपुरी बाबा)

दि लाईफ ऐंड टीचिंग ऑफ श्री गोविंदान्द भारती-(नान एक शिवपुरी बाबा)

कभी-कभी किसी सिद्ध पुरूष के बारे में ऐसा घटता है कि उनकी देशना से भी अधिक प्रभावशाली होता है उनका जीवन। जो पहुंचे वे बात तो एक ही कहते है क्योंकि सबका अंतिम अनुभव एक जैसा होता है। लेकिन जिस राह से सयाने पहुँचे है वे राहें अलग होती है। शिवपुरी बाबा इसी कोटि के योगी है जिनके जीवन का वर्णन करने के लिए एक ही शब्द काफी है: ''अद्भूत''

केरल प्रांत, सन् 1826, एक ब्राह्मण परिवार में जुड़वाँ बच्चे पैदा हुए उनमें एक लड़का और एक लड़की। यह परिवार नंबुद्रीपाद ब्राह्मण था। याने कि उसी जाति का जिसके आदि शंकराचार्य थे। वह लड़का पैदा होते ही मुस्कुराया, रोया नहीं। उसके दादा उच्युत्म विख्यात ज्योतिषी थे। उन्होंने बालक की कुंडली देखकर बताया कि कोई बहुत बड़ा योगी पैदा हुआ है। उसका नाम रखा गया गोविन्दा। जब वह 18 साल का हुआ तो उसके दादा ने संन्यास लिया और वे वन की और प्रस्थान करने को तैयार हुए। उस समय गोविन्दानंद ने उनके साथ जाने की तैयारी की।

जाने से पहले अपने हिस्से की पूरी जायदाद बहन के नाम कर दी और दादा के साथ चल दिया। दोनों ही मिलकर नर्मदा नदी के किनारे विंध्य पर्वत के अंचल में रहने लगे। जब वृद्ध अच्युतम की मृत्यु करीब आई तो उन्होंने गोविंदानंद से कहा, ''मैंने तेरे लिए भरपूर हीरे-जवाहरात छोड़े है। हम शंकराचार्य की परंपरा के है और हमारे लिए उन्होंने बनाया हुआ नियम है कि हर संन्यासी विश्व परिक्रमा करे। उनका अभिप्राय था पूरे भारत वर्ष का भ्रमण, लेकिन मैं चाहता हूं कि तू सचमुच पूरे विश्व की परिक्रमा करे। और संन्यासी यह परिक्रमा पैदल ही करता है।

दादा की मृत्यु के बाद गोविंदानंद और भी घने जंगल में जाकर एकांत में तपस्या करने लगा। कंद-मूल, जंगली अनाज खाकर गुजारा करने लगा। उस बियाबान में उनके संगी-साथी थे तो सिर्फ जंगली जानवर। वे ऋतंभरता प्रज्ञा जगाने में लीन थे। मन के एक-एक विकल्प को हटा कर मन को खाली करने की साधना कर रहे थे। 1857 की जंग कब हुई, उन्हें कोई पता न चला। इस प्रकार 25 वर्ष उनहोंने ध्यान-समाधि में बीताये। जब तक कि उनके भीतर निर्विकार समाधि का विस्फोट नहीं हुआ।

अब तक वे पचास वर्ष के हो चुके थे। अब उन्हें दादा को दिये हुए वचन को पूरा करना था। एकांतवास को छोड़कर गोविंदानंद बड़ौदा आये जहां सयाजी राव राज कर रहे थे। बड़ौदा में उनकी मुलाकात श्री अरविंद से हुई। लोकमान्य तिलक भी वहां आये थे। उन्हें गोविंदानंद ने ज्योतिष के कुछ पाठ पढ़ाये। भारत का भ्रमण करते हुए वे कलकता राम कृष्ण परमहंस के पास पहुँचे। रामकृष्ण उनसे आठ साल छोटे थे।

भारत भ्रमण के बाद वे खैबर दर्रे से निकल कर अफ़गानिस्तान होते हुए मक्का पहुंचे। मक्का से जेरूसलेम 800 मील की दूरी पर है। बीच में रेगिस्तान पड़ता है। जिसे पार कर वे जीसस की जन्मस्थली पहुंचे।

शिवपुरी बाबा ने एक बार स्वयं बेनेट को बताया कि पृथ्वी पर जितनी जमीन है उसका अस्सी प्रतिशत वे पैदल धूम चूके है। विश्व परिक्रमा करने में उन्हें चालीस साल लगे—1875 से 1915 तक। विषुववृत के पास धरती का पूरा गोल 25,000 मील है। उससे कहीं अधिक दूरी उन्होंने पैदल नापी है।

विश्व परिक्रमा को आगे बढ़ाये—

एशिया मायनर से होते हुए बाबा ग्रीस और रोम पहुंचे। वहां से पूरे यूरोप की भूमि पर घूमना सुगम था। बाबा के साथ एक संयोग रहा कि वे जहां भी गये वहां के शास्ताओं से उनकी भेंट होती रहती थी। एक तो लोग

उनकी आवभगत करते थे। और दूसरे उनका तेज ऐसा था कि उस देश के शासक व राज परिवार भी उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहते थे।

जब वे योरोप में थे तो इंग्लैड की महारानी विक्टोरिया न उन्हें निमंत्रित किया। 1896 से 1901 तक वे लंदन में रानी के मेहमान बनकर रहे। उनकी मुलाकात विंस्टन चर्चिल और बर्नाड शॉ से भी हुई। बाबा की धारा प्रवाह अंग्रेजी और बोलने की कुशलता उन्हें पशिचम में बहुत उपयोगी रही। बर्नार्ड शॉ से जब वे मिले तो उसके कहा, ''आप भारतीय साधु बिलकुल बेकार होते है। आपको समय की कोई कद्र नहीं है।''

बाबा ने कहा, आप समय के गुलाम है। हम तो समयातित में जीते है।''

1901 में रानी विक्टोरिया का देशंत हुआ और बाबा अटलांटिक महासागर पर कर अमेरिका पहुँचे चुकी थी। वहां कई निमंत्रण उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। स्वामी विवेकानंद शिकागो की धर्म परिषद ऐ अभी-अभी वापस गये थे। भारतीय अध्यात्म में अमरीकी लोगों का रस जगा था। बाबा का वहां बहुत अच्छा स्वागत हुआ। वे राष्ट पति रूजवेल्ट से भी मिले।

उतर अमरीका में तीन साल रह कर वे चलते-चलते मेक्सिको और फिर दक्षिण अमेरिका पहुंच। लंबे-चौड़ दक्षिण अमेरिका को पार कर वे जहाज से न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया होते हुए जापान पहुंच। इस समय तक पहला विश्व युद्ध शुरू हो चुका था। इसलिए जापान से चीन होते हुए बाबा भारत आये और बनारस रुके। बनारस में पं मदन मोहन मालवीय हिंदू विद्यापीठ बनाने की तैयारी कर रहे थे। उसके लिए बाबा ने पचास हजार रूपये दिये। पंडित मालवीय ने बाबा का प्रगाढ़ ज्ञान देखकर उन्हें कुलपति बनने का अनुरोध किया लेकिन बाबा ने इंकार किया क्योंकि संन्यासी कुलपति कैसे बन सकता है।

दादा को दिया वचन पूरा हुआ। अब बाबा हिमालय के जंगल में बसना चाहते थे। लेकिन उससे पहले अंतिम बार वे केरल जाकर अपने घर के स्वजनों से मिलना चाहते थे। इस बीच सत्तर साल गुजर चुके थे। वे अपने गांव गये तो न उनका घर था, न परिवार को कोई सदस्य। उनके दादा की भविष्यवाणी सच हुई: ''बाबा के साथ ही उनका वंश समाप्त होगा।'' बाबा फिर नर्मदा के जंगल में आये। दादा ने दी हुई अमानत में से जो बचा खुचा धन था उसे मिट्टी में गाड़ कर वे नेपाल की और प्रस्थान कर गये। उस समय उनकी आयु थी सिर्फ नब्बे वर्ष।

काठमांडू के पास हिमालय का एक शिखर है शिवपुरी। उस पर बाबा ने अपनी कुटिया बना ली। तब से गोविंदानंद शिवपुरी बाबा कहलाने लगे। नेपाल से लेकर श्रीलंका, बर्मा तक ''शिवपुरी शिखर के वृद्ध योगी। की सुगंध फैलने लगी, लेकिन वे किसी तरह के शिष्य, यात्री या दर्शनार्थी नहीं चाहते थे। वे न तो महात्मा बने, न गुरु। वे बस एकांत वासी मुनि ही बने रहे। बेनेट उनकी जीवनी लिखना चाहते थे। इसलिए जब वे बाबा से उनके जीवन के प्रसंगों के बार में पूछने लगे तो बाबा ने कहा, ''वह गैर जरूरी है। तुम मेरी देशना के बारे में लिखो, मेरे बारे में नहीं।''

इस समय बाबा सौ साल के थे। वे कुछ 132 साल तक जीयें। नेपाल में उन्होंने अंतिम 38 वर्ष बीताये। सौ वर्ष की आयु में उन्हें मसूड़ों का कैंसर हो गया था। देश विदेश के काफी डॉक्टरों ने उनका इलाज किया लेकिन वे ठीक नहीं कर सके। आखिर बाबा ने यौगिक प्रक्रिया से कैंसर का इलाज किया।

राजनेताओं और शासकों के साथ शिवपुरी बाबा का कोई जोड़ था। जो आखिर तक बना रहा। 1956 में भारत के राष्ट्रपति डाक्टर राधाकृष्णन भी बाबा से मिलने गये थे। उनके बीच जो वार्ता लाप हुआ वह इस प्रकार है।

राधाकृष्णन—''आपकी देशना क्या है?''

बाबा—''मैं तीन अनुशासन सिखाता हुं: आत्मिक, नैतिक और शारीरिक।''

राधाकृष्णन—''संपूर्ण सत्य केवल इतने थोड़े शब्दों में?'

बाबा—''हां'' (डॉ राधाकृष्णन ने अपने साथियों की और देखा और मुड़ कर कहा—''संपूर्ण सत्य इतने थोड़े शब्दों में।''

बाबा बोले—''हां''

राधाकृष्णन जब आये तब उन्होंने बाबा को सिर्फ नमस्कार किया था। इन दो शब्दों को उनके अचेतन में इतना प्रभाव या भय कह लीजिए की गये तो बाबा के पैरों पर सिर रखकर गये।

इस घटना को स्मरण करते हुए बाबा ने बेनेट को बताया, ''मेरा जवाब सुनकर राधाकृष्णन के चेहरे पर पहले तो शर्म और बार में भय उभरा। शर्म इसलिए कि उनकी प्रकांड विद्वत्ता के बावजूद उन्हें जीवन का सार निचोड़ समझ में नहीं आया। और भय, इसलिए क्योंकि एक लंबी उम्र एक मान्यता में बिताने के बाद अब अपनी जीवन शैली बदलना असंभव था।''

28 जनवरी 1963 को शिवपुरी बाबा की 132 साल चली काया विसर्जित हुई। शरीर छोड़ने के लिए कुछ बहाना चाहिए था, तो वह हुआ न्युमोनिया का। थोड़ी सी बीमारी और यह अद्‌भुत योगी भौतिक तल से अदृष्य हुआ।

तीन अनुशासन–

भारत के राष्ट्रपति के ऊपर शिवपुरी बाबा के तीन अनुशासनों के सिद्धांतों का जो असर हुआ वह पाठकों को याद होगा। जब बाबा ने उन की देशना की चर्चा मेरे साथ की तब मैं गहन रूप से प्रभावित हुआ। लेकिन मैं यह नहीं बता सकता कि मैं उनकी बातों से प्रभावित हुआ या उनकी शख्सियत की खूबसूरती से। मुझे लगता है कि उनके शब्दों में जो ताकत थी वह इसलिए थी कि वे उनके द्वारा कहे गये थे। बाद में उनके शब्दों पर मनन करने लगा तो मुझे महसूस हुआ कि उनकी ताकत व्यक्तिगत नहीं थी बल्कि इसलिए थी क्योंकि वे शब्द वर्तमान जगत के लिए बहुत उपयोगी थे। वे खुद भी बार-बार इस पर जोर देते थे। ''मेरा व्यक्तित्व महत्वपूर्ण नहीं है, मेरी देशना महत्वपूर्ण है।''

मुझसे वे यही कहते थे। ''यदि तुम चाहते हो कि तीन अनुशासनों वाली तुम्हारी किताब लोगों के लिए उपयोगी हो, तो मेरी देशना पर जोर दो, मेरे जीवन पर नहीं।'' शिवपुरी बाबा की बुनियादी देशना है: Right Life; जिसे वह सर्वधर्म कहते थे। मैं तो मानता हूं कि किसी अन्य भारतीय महात्मा की अपेक्षा शिवपुरी बाबा की देशना अधिक व्यापक है। क्योंकि वह चालीस सल तक विश्व भ्रमण करते रहे। ऐसा कोई एशियाई गुरु नहीं है जिसकी शिक्षा पाश्चात्य मनुष्य के भौतिक जीवन पर बिना किसी परिवर्तन के लागू होगी।

बाबा कहते है: ''मनुष्य की संरचना तीन तल पर है। एक तो शरीर और उसके विभिन्न कार्य और शक्तियां, उसका मन और उसके विभिन्न संवेग, गुण-अवगुण, और उसकी आत्मा। मनुष्य के समग्र जीवन में ये तीनों अलग-अलक ढंग से काम करते है। शरीर बुद्धि का पाठ है और उसकी गतिविधियों का क्षेत्र है। अंत: शरीर के साथ उनके अन्य कार्य भी सम्मिलित है जैसे विचार, भाव और संवेदना।

बाबा हमेशा कहते थे कि मन शक्तिशाली होना चाहिए जो कि आत्मा-अनुशासन से ही हो सकता है। वह मन के बारे में इस तरह बात करते थे जैसे मन एक पात्र हो जिसे स्वच्छ करके कार्य सक्षम रखना चाहिए। वे मन का संबंध विचारों से नहीं जोड़ते थे, बल्कि ''बीइंग'' से अंतराल से।

मनुष्य का तीसरा तल है जिसे संस्कृत में पुरूष कहते है।

ये तीन अनुशासन मनुष्य की तीन प्रकार की नियति से संबंधित है। इन तीन नियतियों को शिवपुरी बाबा कहते थे। ''विश्व–बोध, आत्म बोध, और परमात्म बोध।'' तीन अनुशासन को वे तीन मूलभूत तत्वों से जोड़ते है: समझ, संकल्प, और ऊर्जा।

दूसरा अनुशासन है मानसिक। मन अच्छे और बुरे चरित्र का स्थान है। मन शक्तिशाली और विशुद्ध होना चाहिए। ये परस्पर विरोधी तत्व है, इसलिए इनमें एक समस्वरता होनी चाहिए। अनेक लोगों का मन सशक्त लेकिन अशुद्ध होता है। वे अपने शरीर और उसकी ऊजाओं को नियंत्रित कर लेते है लेकिन उनका उदेश्य साफ नहीं होता। ध्यान के लिए जो शांति आवश्यक है उसे वे नहीं पा सकते। इसके उल्टा, ऐसे लोग है। जिनका मन शुद्ध है। लेकिन उसमें सहनशीलता नहीं है, इसलिए वे कमजोर बने रहते है। कमजोर मन, चाहे कितना ही शुद्ध हो, सफलता पूर्वक ध्यान नहीं कर पायेगा। क्योंकि उसमें साहस और लगन नहीं होगी।

शक्ति शाली और विशुद्ध मन निर्मित करने का उपाय है सदगुणों को सतत बढ़ाना। स्वयं के भीतर जो अशुभ तत्व है उन्हें हटाकर शुभ को पोषित करते रहने से एक आंतरिक संघर्ष पैदा होता है। यह संघर्ष मन को सशक्त बनाता है। इसी को मैं आत्मा अनुशासन कहता हूं।''

शिवपुरी बाब का संदेश एक शब्द में कहना हो तो वह है: ''स्वधर्म।'' प्रत्येक मनुष्य स्वधर्म का पालन करे तो पूरा समाज धार्मिक होगा। मनुष्य जीवन का लषय एक ही है। परमात्मा की उपलब्धि । और उसके लिए जीवन में एक अनुशासन होना जरूरी है। जीवन सुव्यवस्थित हो; इसका मतलब है हम तीन व्यवस्थाओं का पालन करें। वे है: आध्यात्मिक व्यवस्था, नैतिक व्यवस्था, और बौद्धिक व्यवस्था। अभी तो हम अव्यवस्थित ढंग से जी रहे है। जब तक हम अपने जीवन को अपने हाथ में नहीं लेते, उसे अनुशासन में नहीं बाँधते तब तक संसार से पार नहीं हो सकते।

ओशो का नज़रिया—

यह किताब एक अंग्रेज लेखक ने लिखी है। एक सच्चा अंग्रेज जिसका नाम है: बेनेट। यह किताब एक बिलकुल अज्ञात भारतीय रहस्यदर्शी के बारे में है जिनका नाम है शिवपुरी बाबा। बेनेट की किताब की वजह से ही दुनिया उनके बारे में जान गई।

शिवपुरी बाबा अनूठे फूल थे—खास कर भारत में, जहां इतने सारे मूढ़ लोग महात्मा होने का दिखावा कर रहे है। भारत में शिवपुरी बाबा जैसे आदमी को पा लेना या तो सौभाग्य है या बहुत लंबी खोज का फल है। भारत में पाँच लाख महात्मा है। और यह नंबर सही है। इस भीड़ में असली आदमी खोजना लगभग असंभव है।

ऐसा दो बार हुआ....कुछ सालों बाद फिर से। पूरब में इस संप्रेषण कहते है। एक लौ से दूसरी लौ में ऊर्जा छलांग लगा सकती है जो बुझने को है। बेनेट को इतने गहन अनुभव हुए फिर भी वह विचलित था। हालांकि वह ऑस्पेन्सकी जितना अस्थिर और धोखेबाज नहीं था। लेकिन जब गुरूजिएफ मर गया उसके बाद वह दूसरे गुरु को खोजने लगा। कैसा दुर्भाग्य, बेनेट के लिए दुर्भाग्य है। बाकी लोगों के लिए अच्छा है। क्योंकि इस तरह वह शिवपुरी बाबा के पास आया। लेकिन शिवपुरी बाबा कितने ही महान क्यों न हो। गुरूजिएफ के सामने कुछ भी नहीं थे। मुझे बेनेट पर विश्वास नहीं होता। बेनेट वैज्ञानिक था, गणितज्ञ था...ओर इससे मुझे सूत्र मिलता है। जितने भी वैज्ञानिक है, उनके क्षेत्र के बाहर मूढ़ता पूर्ण आचरण करते है। वे बचकानी बातें करते है।

बेनेट एक जाना माना वैज्ञानिक था, गणितज्ञ था, लेकिन डांवाडोल हुआ, चुक गया। वह गुरूजिएफ के पास था लेकिन गुरूजिएफ के मरने के बाद दूसरा गुरु खोजने लगा। और ऐसा नहीं है कि वह शिवपुरी बाबा के पास रहा। जब बेनेट शिवपुरी से मिला तब वे बहुत बूढ़े हो चुके थे....129 साल के। वे सचमुच लौह पुरूष थे। वे

132 साल जीयें। सात फिट लंबे थे। और 132 साल में भी उनके मरने के कोई आसार नहीं थे। उन्होंने शरीर छोड़ने का निर्णय लिया। यह उनका अपना निर्णय था।

शिवपुरी मौन में डूबे हुए थे। उन्होंने कभी किसी को सिखाया नहीं। अब विशेष रूप से जो व्यक्ति गुरूजिएफ जैसे व्यक्ति को जानता हो, उसकी महान शिक्षा को जानता हो। उसके लिए शिवपुरी बाबा एक सामान्य व्यक्ति ही थे। बेनेट ने उन पर किताब लिखने के दौरान ही अन्य गुरु की तलाश शुरू कर दी।

फिर उसने इंडोनेशिया में मोहम्मद सुबुध को खोजा जो कि सुबुध आंदोलन का संस्थापक था। सुबुध संक्षिप्त नाम है, ''सुशिल-बुद्ध धर्म'' का।

बेनेट ने मोहम्मद सुबुध को एक बहुत अच्छे व्यक्ति की तरह प्रस्तुत किया न कि गुरु की तरह.....परन्तु इसकी कोई तुलना शिवपुरी बाबा से नहीं की जा सकती और उसकी गुरूजिएफ से तुलना करने का तो सवाल ही नहीं उठता। बेनेट मोहम्मद सुबुध को पश्चिम ले गया और गुरूजिएफ का उतराधिकार बताने लगा। अब यह तो अव्वल दर्जे की बेवकूफी है।

शिवपुरी बाबा बेनेट की श्रेष्ठतम किताब है। बेनेट सुंदर ढंग से, गणित की तरह सुव्यवस्थित लिखता है। यद्यपि वह मूर्ख था। अब यदि आप एक बंदर को भी टाइपराइटर के सामने बैठा दे तो वह भी सिर्फ टाइपराइटर के बटनों को इधर-उधर दबा देने से कुछ सुंदर बात कह सकता है—शायद ऐसी बात जो कोई बुद्ध ही कह सकते है। परन्तु वह उस बात का मतलब नहीं समझ सकता।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड

(लेखक के विषय में: जे. जी. बेनेट गणितज्ञ है और लंदन के इंडस्ट्रियल रिसर्च का निर्देशक रहा है। इसके साथ ही वह एशियाई भाषाओं और धर्मों का अध्ययन करता रहा। एशियाई देशों में उसने बहुत यात्राएं की और बहुत से अंजान आध्यात्मिक गुरूओं से साक्षात्कार किये। विज्ञान और धर्म का समन्वय करते हुए उसने कई दार्शनिक पुस्तकें लिखी है। शिवपुरी बाबा जब 129 साल के थे तब पहली बार बेनेट उनसे मिला था। उनके अदभुद जीवन से प्रभावित होकर उसने बाबा से उनके जीवन और उनकी देशना पर एक किताब लिखने की इच्छा जाहिर की।)

67/ दि सर्मन ऑन दि माउंट

दि सर्मन ऑन दि माउंट

ये सूत्र ईसाई धर्म ग्रंथ ''पवित्र बाइबल'' का एक अंश हे। बाइबल, अंत: प्रज्ञा से परि पूर्ण विभिन्न व्यक्तियों के वक्तव्यों का संकलन है। जो लगभग सौ साल की अवधि में संकलित किया गया। जैसे जोशुआ, सैम्युएल, सेंट मैथ्यूज इत्यादि। जीसस जब सत्य को उपलब्ध हुए तब उन्होंने अपना सत्य लोगों को संप्रेषित करना चाहा। समय-समय पर भिन्न-भिन्न समूह के साथ उनका जो उद्बोधन हुआ वह सब बायबल में संकलित है। ये वक्तव्य उनके शिष्यों ने अपनी स्मृति के अनुसार संकलित किये है।

बाइबल के दो हिस्से है: दि ओल्ड टैस्टामैंट ओ दि न्यू टैस्टामैंट। ''सर्मन ऑन दि माउंट'' न्यू टैस्टामैंट में ग्रंथित है जो सेंट मैथ्यू ने संकलित किया है।

बाइबल में निश्चित ही इतनी आध्यात्मिक शक्ति है कि दो हजार साल तक वह पृथ्वी की आधी से अधिक जनसंख्या का धार्मिक प्रेरणा स्त्रोत बनी। उसने मनुष्य जाति की नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनैतिक विचार धारा को शिल्पिता तथा प्रभावित किया। अपने संदेश को संप्रेषित करने के लिए जीसस ने जो माध्यम चुना वह है कहानियों का। उनके शिष्य भी जीसस की कहानियों और संवादों द्वारा गहन विचारों को अभिव्यक्ति करते है।

''दि सर्मन ऑन दि माउंट'' बाइबल के सर्वाधिक लोकप्रिय संकलनों में से एक है। इस पर बहुत सी टीकाएं और किताबें लिखी गई है। इनमें से एक टीकाकार एमेट फॉक्स कहते है: जीसस अपने शिष्यों को व्याख्यान दिया करते थे। एक लेखक के अनुसार इन्हें ''समर स्कूल'' ग्रीष्म ऋतु के विद्यालय कहा जा सकता है। ऐसे ही एक अवसर पर दिये गये व्याखान के दौरान उन वक्तव्यों को अपने-अपने ढंग से दर्ज किया गया। उनमें से सेंट मैथ्यू का संकलन सबसे प्रामाणिक और यथातथ्य था। उसमें जीसस क्राइस्ट के धर्म के सभी मूलभूत बिंदू आ गये है। यह सटीक है, सुनिश्चित है, और सूत्रों पर स्पष्ट रोशनी डालता है। एक बार क्राइस्ट की देशना का सम्यक अर्थ समझ में आ जाये तो फिर उसे आचरण में लाना शेष रहा जाता है। और यह प्रत्येक की ईमानदारी पर निर्भर करता है कि वह कितनी समग्रता से उसमें उतर जाता है।

यदि आप वास्तव में अपना जीवन बदलना चाहते है, आप ईश्वर और मनुष्य की आंखों में सर्वथा नया मनुष्य बनना चाहते है, आध्यात्मिक विकास करना चाहते है, मानसिक स्वास्थ और शांति चाहते है। तो आप ''सर्मन ऑन दि माउंट'' पढ़ें।

भूमिका के अंत में श्री फॉक्स ने जो शब्द लिखे है (सन 1817) उनमें ओशो की सुस्पष्ट प्रतिध्वनि है: यदि आप कीमत चुकाने के लिए तैयार है, पुराने मनुष्य के साथ सचमुच, समग्रता से नाता तोड़ता चाहते है, और नये मनुष्य का निर्माण करना चाहते है तो ''सर्मन ऑफ दि माउंट पढ़ें।''

भूमिका के अंत में श्री फॉक्स ने जो शब्द लिखे है, (सन 1817 में) उनमें ओशो की सुस्पष्ट प्रतिध्वनि है: यदि आप कीमत चुकाने के लिए तैयार है, पुराने मनुष्य के साथ सचमुच समग्रता से नाता तोड़ता चाहते है। और नये मनुष्य का निर्माण करना चाहते है तो सर्मन ऑन दि माउंट आपके लिए स्वतंत्रता का पर्वत, दि माउंट ऑफ लिबरेशन बन जायेगा।

किताब की एक झलक:

दि बीटिट्यूडस:–

भीड़ को देखकर वह पर्वत पर गया। जब वह स्थिर हुआ तब उसके शिष्य उसके पास आये।

फिर उसने बोलना शुरू किया और उन्हें देशना दी: ''धन्य है वे जो भीतर से गरीब है, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का होगा।

धन्य है वे जो शोक मनाते है क्योंकि उन्हें सांत्वना दी जायेगी।

धन्य है वे जो दुर्बल है क्योंकि वे पृथ्वी के उत्तराधिकारी होंगे।

धन्य है वे जो निर्मल-ह्रदय है क्योंकि उन्हें ईश्वर के दर्शन होंगे।

धन्य है वे जो शांति दूत है क्योंकि वे ईश्वर के पुत्र कहलाये जायेंगे।

जैसा मनुष्य सोचता है

तुम पृथ्वी के नमक हो; लेकिन अगर नमक अपना खारापन खो दे तो नमक में खारापन कहां से भरे? उसके बाद वह किसी का नहीं होगा सिवाय फेंक देने और आदमी के पैरों तले कुचल जाने के।

तुम विश्व के आलोक हो। पर्वत के ऊपर जो शहर बना है वह छुप नहीं सकता।

कोई भी मोमबत्ती जलाकर उसे झाड़ियों में छिपा नहीं देते वरन उसे मोमबत्ती के स्टैंड पर रखते है। और फिर वह घर के सभी लोगों को रोशनी देती है।

तुम्हारे प्रकाश को लोगों के सामने इतना चमकने दो कि उन्हें तुम्हारे अच्छे कर्म दिखाई दें, और तब वे स्वर्ग में विराजमान तुम्हारे पिता का गुणगान करेंगे।

मैथ्यू, पाँच

ट्रेझर इन हैवन

और जब तुम प्रार्थना करते हो तब तुम पाखंडियों की तरह मत बरना क्योंकि वे सायनागॉग और रास्ते के कोनों-कोनों में खड़े रहकर प्रार्थना करते है ताकि लोग उन्हें देख लें। मैं तुमसे कहता हूं, उन्हें उनका पुरस्कार मिल जाता है।

लेकिन तुम—जब तुम प्रार्थना करते हो, बंद कमरे में छिप जाओ; और जब तुम दरवाजा बंद कर दोगे तब एकांत में तुम्हारे पिता से पार्थना करना और तुम्हारा पिता जो एकांत में देख लेता है, तुम्हें खुल आम पुरस्कार देगा।

और जब तुम प्रार्थना करोगे तब बार-बार दोहराओं मत जैसा कि अधार्मिक लोग करते है। वे सोचते है कि उनकी बकवास सुनी जायेगी।

तुम उनके जैसे मत बनों, क्योंकि तुम्हारा पिता जानता है, कि तुम्हें किस चीज की जरूरत है, इससे पहले कि तुम उससे पूछो।

मैथ्यू, छह

ट्रेझर इन हैवन

ओशो का नज़रिया–

जीसस के वक्तव्य बहुत काव्यात्मक है। ''सर्मन ऑन दि माउंट'' लेकिन कविता के साथ मुश्किल यह है कि वह कल्पना होती है। सुंदर , प्रभावशाली, दिलकश, ह्रदय स्पर्शी, लेकिन बौद्धिक नहीं होती। वह नितांत अकार्तिक, अंधविश्वासी हो सकती है। और फिर भी आकर्षित कर सकती है। इसीलिए सभी पुराने धर्मों ने कविता का उपयोग किया पूरी श्रीमदभगवदगीता विशुद्ध कविता है।

यह सांयोगिक नहीं है कि सारे महान शास्त्र कविता में लिखे गये है। उसका बुनियादी कारण है—उन्हें जो कहना था वह सत्य का बहुत छोटा सा अंश है। उसे यथावत् कह देना आकर्षक नहीं होता।

यह ऐसे ही न है जैसे तुम कुर्सी का एक पैर ले आओ और कहो, यह कुर्सी है। कुर्सी बैठने के लिए होती है। तो लोग पूछने ही वाले है, हम एक पैर पर कैसे बैठे। कुर्सी का एक ही पैर यह सिद्ध नहीं कर सकता कि वह पूरी कुर्सी है। तो तुम्हें कुर्सी की कल्पना करनी होगी। और उन्हें पूरी कुर्सी की धारणा देनी होगी। तभी इस पर पैर का मतलब बनेगा। जो भी हो, तुम्हें काल्पनिक कुर्सी निर्मित करनी पड़ेगी।

ये सभी रहस्यदर्शी काव्यात्मक होंगे। कुछ लोग होंगे जिन्हें सत्य के अंश मिले होंगे लेकिन वे काव्यात्म नहीं थे। इसलिए मौन रहे।

ओशो

बुक्स आय हैव लव्ड